

| विषयाका | विषयनामानि | पृष्ठाका | विषयाका | विषयनामानि | पृष्ठाका |
|-----------------------|-------------------------------|----------|---------------|-------------------------------|----------|
| मानप्रकरणम् १ | | | LIBR पृष्ठाका | | |
| १ | मंगलाचरणम् | १ | ३४ | स्विरादीनासङ्गान्तरम् | १ |
| २ | ग्रयनामकीर्तनम् | ३ | ३५ | घनिष्ठापचक्रम् | १ |
| ३ | सौरादिमानम् | ४ | ३६ | पचकेत्याज्यम् | १५ |
| ४ | नक्षत्रमानम् | ४ | ३७ | अचोमुन्ननक्षत्राणि | १ |
| ५ | सावनसौरमाने | ४ | ३८ | तिर्यङ्मुन्ननक्षत्राणि | १ |
| ६ | स्वस्वमासवर्षमानपैत्र्यमानच | ४ | ३९ | ऊर्ध्वमुन्ननक्षत्राणि | १६ |
| ७ | गुरुमानम् | ४ | ४० | वृहन्नक्षत्राणि | १ |
| ८ | सवत्सरनामानि | ४ | ४१ | समाननक्षत्राणि | १ |
| ९ | गतघत्सरानयनम् | ५ | ४२ | कुलोदयमानि | १ |
| १० | ग्रहार्णाराशिदिनमानम् | ६ | ४३ | उपकुलकुलाकुलमानि | १७ |
| ११ | अयनांशकमानम् | ६ | ४४ | अन्यकादिमानि | १ |
| १२ | अयनफलम् | ६ | ४५ | एषायोग्यता | १ |
| १३ | पङ्क्तव | ७ | ४६ | पुष्यमहस्ववर्णनम् | १ |
| १४ | असम्मतनिराकरणम् | ७ | ४७ | त्रिपुष्करयोग | १८ |
| १५ | मानानाकर्ममुद्राद्याद्याविचार | ७ | ४८ | आनदादियोगा | १ |
| १६ | सौरसावनविषेक | ७ | ४९ | एषामुत्पत्ति | १९ |
| १७ | वर्षमध्ये चाद्रदिनसङ्ख्या | ८ | ५० | अमृतसिद्धियोग | १ |
| १८ | नक्षत्रदिनसावनदिनसङ्ख्या | ८ | ५१ | उत्पातादियोगवत्पुष्कम् | १ |
| १९ | सौरदिनसङ्ख्या | ८ | ५२ | यमघटयोग | २० |
| योगोत्पत्तिप्रकरणम् २ | | | ५३ | अडलयोग | १ |
| २० | तियिसङ्ख्या | ९ | ५४ | अडलयोगफलम् | १ |
| २१ | वापसिद्धा | ९ | ५५ | विडलयोग | १ |
| २२ | घारेनेष्टा | १० | ५६ | विद्युत्कृपनादियोगा | २१ |
| २३ | पञ्चमधितयय | १० | ५७ | चडाशुचपात | १ |
| २४ | कर्कियोग | १० | ५८ | कालचक्रधम | २२ |
| २५ | सर्वतयोग | १० | ५९ | कवेतेविलोकनीया | १ |
| २६ | भूराक्राततियय | ११ | ६० | विष्कमादियोगा | २३ |
| २७ | दग्धतियय | ११ | ६१ | अशुभयोगा | १ |
| २८ | प्रतिपदादितिर्यानासङ्ख्या | १२ | ६२ | एकार्गलोपपत्ति | २४ |
| २९ | नक्षत्राणांभीशा | १२ | ६३ | एकार्गलनामानि | १ |
| ३० | स्विरचरसङ्गमानि | १३ | ६४ | एकार्गलस्यदृष्टपुरुषस्वरूपा | १ |
| ३१ | गुह्यलुनक्षत्राणि | १३ | ६५ | एकार्गलस्यदृष्टता | २५ |
| ३२ | तीक्ष्णोद्यमानि | १४ | ६६ | चडाशुचयोग | १ |
| ३३ | मिश्रमेतक्षत्राणाफलच | १४ | ६७ | एकार्गलचडाशुचयोर्द्वैपस्थानम् | १ |

| विपयाका | विपयनामानि. | पृष्ठांशः | विपयाका | विपयनामानि. | पृष्ठांशः |
|-----------------------------------|-------------|-----------|--|-------------|-----------|
| भद्राप्रकरणम् ३ | | | १०४ गङ्गांतयोग | | ४१ |
| ६८ सप्तकरणानि | | २६ | १०५ संधिगतदिनानि | | " |
| ६९ स्थिरकरणचतुष्कम् | | " | १०६ अर्धोदयपर्व | | " |
| ७० करणानघनम् | | " | १०७ पञ्चकपर्व | | " |
| ७१ एषाफलम् | | २७ | १०८ कपिलापथी | | ४२ |
| ७२ विष्टेराकारस्तद्वत्पत्तिश्च | | " | १०९ अष्टकाष्टमी | | " |
| ७३ विष्टयांसुष्ठ्यानिपेय | | २८ | ११० द्विसप्ततिश्राद्धानि | | " |
| ७४ विष्टिमोक्षकाल | | " | १११ युगादितथय | | " |
| ७५ विष्टे पुच्छविवेक | | " | ११२ मन्वादितथय | | " |
| ७६ विष्टेर्देहविभाग | | २९ | ११३ पञ्चश्राद्धानि | | ४३ |
| ७७ न्यूनाधिकमद्रापांभागविवेकता | | " | ११४ अनतिक्रान्तितथय | | " |
| ७८ मद्रागविभागफलं | | " | ११५ सक्रातिन्यूनाधिकमासा | | " |
| ७९ विष्टे स्थितिवर्णनम् | | " | ११६ कतिमासैरधिकभाषातितन्निर्णयः | | " |
| ८० विष्टिगत्यभिमुखम् | | ३० | ११७ कतिवर्षं श्रयमासभाषातितन्निर्णयः | | ४४ |
| ८१ तन्निर्णय | | " | ११८ अधिकक्षयमासानियमः | | " |
| ८२ यामार्घम् | | " | ११९ क्षयमासेऽधिकमासद्वयम् | | " |
| ८३ पूजाविशेषादौविष्टे शुभत्व | | ३१ | १२० अधिकक्षययो साध्यस्थानम् | | " |
| ८४ पूजाविहेतुनाविष्टे शुभत्व | | " | १२१ वृद्धस्यसिद्धांतयोर्मतभेदः | | " |
| पर्वप्रकरणम् ४ | | | १२२ सौरघ्राद्ययोर्षाध्यस्थानम् | | ४५ |
| ८५ पर्वानि | | ३२ | १२३ अधिमासेत्याज्यम् | | " |
| ८६ ग्रहणम् | | ३३ | १२४ रविसंक्रमणपुण्यकालः | | " |
| ८७ ग्रहणकाल | | " | १२५ संक्रमकालकोदरस्तायनम् | | " |
| ८८ ग्रहणनक्षत्रकियत्पर्यंतत्याज्य | | " | १२६ चन्द्रादिग्रहसंक्रमोदरम् | | ४६ |
| ८९ न्यूनाधिकग्रहणहृदिनविवेकना | | " | १२७ समयेकालविवेक | | " |
| ९० क्रान्तिनक्षत्रम् | | ३४ | १२८ हरिपदादिपर्वानि | | " |
| ९१ तारकाणां तारकासंख्या | | " | १२९ ग्रहशीतिमुखपर्व | | " |
| ९२ नक्षत्ररूपम् | | " | १३० पतत्पर्वदिनमाहात्म्यम् | | " |
| ९३ तारकातारकास्थानम् | | ३५ | १३१ विषुवदादि | | ४७ |
| ९४ नक्षत्रध्रुवराशयः | | ३६ | १३२ हरिपदम् | | " |
| ९५ नक्षत्रराशयः | | ३७ | १३३ अयनादिविशेषगत शुभतकाल | | " |
| ९६ भिन्नमण्डलेनक्षत्रोत्पत्ति | | ३८ | १३४ उत्तररक्षिणाधनयोर्विशेषमुक्त- | | ४८ |
| ९७ ग्रहमन्त्रसंगमाधिकार | | " | काल | | |
| ९८ भंगमगतनक्षत्रपुण्यम् | | ३९ | १३५ द्वादशसंज्ञाविस्तार | | " |
| ९९ क्रान्तिसाम्यम् | | " | १३६ नक्षत्राभितमंज्ञातिलक्षा | | " |
| १०० क्रान्तिचक्रम् | | " | १३७ भद्रादिसंज्ञाया कलम् | | " |
| १०१ क्रान्तिचक्ररूपद्वयफलम् | | ४० | १३८ प्रथमादिग्रहोदरसंज्ञातिलक्षम् | | ४९ |
| १०२ क्रान्तिपाथिरूपता | | " | १३९ तैत्तिर्यादिकरणेमुद्रादिरविसंक्रान्तिः | | " |
| १०३ क्रान्तिगणितम् | | " | १४० सक्रातेर्द्वैतनियमः | | " |
| | | | १४१ जयन्यादिशुभान्यष्टरूपविवेक | | ५० |

LIBRARY.

| विषयाका | विषयनामानि. | पृष्ठाका | विषयाका | विषयनामानि | पृष्ठाका |
|--------------------|------------------------------------|----------|---------|--------------------------------------|----------|
| १४२ | दर्शरविस्क्रांत्योरेव वारेफलम् | ५१ | १७२ | राहुकेत्योरुचनीचामाव | ६१ |
| १४३ | विवादादौ ग्रहसक्तमादिदिननिषेध | ५१ | १८० | तत्रमतान्तरम् | ६१ |
| १४४ | उपसहार | ५१ | १८१ | राहुकेत्वोर्मदः | ६१ |
| १४५ | सुयोगशुभयोगयोर्वलम् | ५१ | १८२ | तस्यप्रमाणता | ६१ |
| १४६ | अस्मिन्कस्याचिन्मतेदृषण | ५१ | १८३ | ग्रहाणामेत्रीचक्रम | ६२ |
| १४७ | बहुदोषोऽल्पगुणपरिहरतितदाह | ५१ | १८४ | तात्कालिकग्रहाणामेत्रीचक्रम | ६३ |
| १४८ | बहुगुणेष्वेव दोषांशस्यापित्याज्यता | ५१ | १८५ | सदुक्त्यः मतान्तरनिषेध | ६३ |
| १४९ | गुणवोपयो समानतानिषेध | ५२ | १८६ | फलदायिग्रह | ६३ |
| १५० | तत्रदृष्टांत | ५२ | १८७ | विफलग्रहः | ६४ |
| १५१ | विरुमाकैवर्णनम् | ५२ | १८८ | द्वादशमवनानि | ६४ |
| ग्रहगोचरप्रकरणम् ५ | | | १८९ | ग्रहाणाफलानि | ६४-६६ |
| १५२ | ग्रहगोचरफलसधानम् | ५३ | १९० | अनिष्टग्रहेकरणोपनिषेध | ६७ |
| १५३ | शन्यादीनाममणविधि | ५३ | १९१ | यस्मिन्वारे प्रकृतीर्णतदाह | ६७ |
| १५४ | ग्रहाणालुभमक्रमणमेद | ५३ | १९२ | चन्द्रबलस्यविशेष | ६७ |
| १५५ | ग्रहाणाराशिभोगकालप्रमाणम् | ५३ | १९३ | क्षीणचन्द्रेताराबलम् | ६८ |
| १५६ | ग्रहाणामितिह | ५४ | १९४ | शुभाशुभतारा | ६८ |
| १५७ | ग्रहाणांसप्तयागति | ५४ | १९५ | तारादलेनग्रहाणांशलित्वम् | ६८ |
| १५८ | गतिलक्षणम् | ५४ | १९६ | चन्द्रस्यशुभाशुभफलम् | ६८ |
| १५९ | ग्रहाणावकातिचारेफलनिषेध | ५५ | १९७ | सप्तग्रहेपुंशक्तिरूपेणचन्द्रफलम् | ६८ |
| १६० | भौमादिपंचरस्यवक्रगतिदिननियम | ५६ | १९८ | वर्धमानचन्द्रपलादानता | ६९ |
| १६१ | मार्गगतीदिननियम | ५६ | १९९ | चन्द्रबलग्रहणोपेक्षता | ६९ |
| १६२ | भौमादीनामस्तोदयी | ५६ | २०० | कन्यावरयो पूर्वापरचन्द्रबलग्रहणेहेतु | ६९ |
| १६३ | ग्रहाणांकालाशका | ५६ | २०१ | चन्द्रबलविलोकीकनीयस्थानम् | ६९ |
| १६४ | भौमादीनामस्वदिननियम | ५७ | २०२ | चन्द्रबलस्थानवलोकनीयस्थानम् | ७० |
| १६५ | भौमादीनामुदयदिननियम | ५७ | २०३ | पुरुषाणांकालचन्द्र | ७० |
| १६६ | वक्रोदितशुक्रबुधयोस्तोदयदिननियमः | ५७ | २०४ | स्त्रीणांकालचन्द्र | ७० |
| १६७ | पतन्मतदृष्टीकरणम् | ५८ | २०५ | कालचन्द्रस्यहेयस्थानम् | ७१ |
| १६८ | उत्पातहतप्रबलक्षणम् | ५८ | २०६ | शेषपदग्रहाणांकालसद्भा | ७१ |
| १६९ | ग्रहाणां वयोवस्था | ५८ | २०७ | ग्रहस्यागामिकराशिफलम् | ७१ |
| १७० | तत्रविशेष | ५८ | २०८ | युतिग्रहणाधिकारविधेक | ७१ |
| १७१ | प्रकारान्तरम् | ५८ | २०९ | ग्रहणसमयेवर्तमानचन्द्रराशिगुमा | ७२ |
| १७२ | ग्रहाणाराशिभोगा | ५९ | | शुभम् | ७२ |
| १७३ | मलजानाराशि | ५९ | २१० | पताहग्राशीनांफलम् | ७२ |
| १७४ | खलसोम्यग्रहा | ५९ | २११ | ग्रहाणामनिष्टफलेशान्तिस्नानम् | ७२ |
| १७५ | सूर्यस्थसिंहग्रहस्थापनम् | ५९ | २१२ | अनिष्टसूर्यशान्तिस्नानम् | ७२ |
| १७६ | रविचन्द्रयोः ग्रहाणेश्वामित्वम् | ६० | २१३ | अनिष्टचन्द्रेशान्तिस्नानम् | ७२ |
| १७७ | शेषग्रहाणाराशिग्रहाणि | ६० | २१४ | अनिष्टमैमेशान्तिस्नानम् | ७२ |
| १७८ | सूर्यादीनामुचनीचराशय | ६० | २१५ | अनिष्टबुधेशान्तिस्नानम् | ७२ |
| | | | २१६ | अनिष्टशुक्रेशान्तिस्नानम् | ७२ |

| विषयाङ्का | विषयनामानि. | पृष्ठाङ्का | विषयाङ्का | विषयनामानि. | पृष्ठाङ्का |
|---------------------------------------|-------------|------------|--------------------------------------|-------------|------------|
| २१७ अनिष्टशुक्रशान्तिस्नानम् | " | " | २५३ मूपादिगर्जेनेदोष | " | " |
| २१८ अनिष्टशनीशान्तिस्नानम् | ७४ | " | २५४ मूकपनाविदोष. | ८५ | " |
| २१९ अनिष्टराहोशान्तिस्नानम् | " | " | २५५ दर्पणादिषिनाशदोष | " | " |
| २२० अनिष्टकेतौशान्तिस्नानम् | " | " | २५६ अफालेनदीपूरादौदोष. | " | " |
| २२१ सूर्यग्रहणेशान्तिस्नानम् | " | " | २५७ प्रतिमार्मगादौदोष | ८६ | " |
| २२२ चन्द्रग्रहणेशान्तिस्नानम् | ७५ | " | २५८ रविचन्द्रयोःरुदितविवद्वयदोष | " | " |
| २२३ अनिष्टदायाग्रहयुतौशान्तिस्नानम् | " | " | २५९ ग्रहयुद्धदोष | " | " |
| २२४ सामान्यतः शान्तिस्नानम् | " | " | २६० नक्षत्रमदयुतिदोष | ८७ | " |
| २२५ नवग्रहाणाहोमेन्धनानि | " | " | २६१ रोहिणीशकटमेद | " | " |
| २२६ ग्रहाणापूजनदानाधिकार | ७६ | " | २६२ केतुवैरुतम् | " | " |
| २२७ सूर्यदानम् | " | " | २६३ चन्द्रलुब्धकनक्षत्रयोगदोष | ८८ | " |
| २२८ चन्द्रदानम् | " | " | २६४ छापाशुरपादिवैरुतम् | " | " |
| २२९ मौमदानम् | " | " | २६५ यज्ञातप्रागग्न्यादिवैरुतम् | ८९ | " |
| २३० बुधदानम् | ७७ | " | २६६ प्रारब्धकार्ये उत्पातसंभवहेयता | " | " |
| २३१ गुरुदानम् | " | " | २६७ उत्पातानाशान्ति | " | " |
| २३२ शुक्रदानम् | " | " | संस्कारप्रकरणम् ७ | | |
| २३३ शनिदानम् | " | " | २६८ गर्माधानेसमपशुद्धि | ९० | " |
| २३४ राहुदानम् | " | " | २६९ प्रथमाधानेचारा | ९१ | " |
| २३५ केतुदानम् | ७८ | " | २७० आधानेवर्ज्यनक्षत्राणि | " | " |
| २३६ इष्टेनयग्रहेधार्यम् | " | " | २७१ आधानेराशिदलम् | " | " |
| २३७ उपसंहार | " | " | २७२ आधानेपूर्वादिनिषेध | " | " |
| २३८ ग्रहाणाफलधारकपुरुष | " | " | २७३ आधानेजन्मदिनादिनिषेध | ९२ | " |
| २३९ ग्रहाणामरिष्टनिवर्तकशान्तिप्रकारं | ७९ | " | २७४ आधानेभूमलम् | " | " |
| उत्पातप्रकरणम् ६ | | | २७५ गर्मस्यदशमासानापतय | " | " |
| २४० श्रीमोत्पातेभ्युग्रहगतोत्पात | ८० | " | २७६ आधानेमासेश्वरादिदलप्राप्ता | ९३ | " |
| २४१ प्रभृतिवैरुतम् | " | " | २७७ पूसवनछीमन्तयोः कर्म | " | " |
| २४२ षडवादीनांकालविशेषगतप्रभृति- | " | " | २७८ एतयोर्वारशुद्धि | " | " |
| स्वरूपम् | | | २७९ एतयोर्नक्षत्रयुद्धि | " | " |
| २४३ माद्रपदादीहस्तिनीप्रभृतिस्वरूपम् | ८१ | " | २८० सीमन्तेऋषिपतम् | ९४ | " |
| २४४ कृत्तुगृहप्रवेशकाशुत्पात | " | " | २८१ सीमन्तेर्लभ्ययुद्धि | " | " |
| २४५ मेहेमधुर्पिडादिजननफलम् | " | " | २८२ ज्ञा मरुत्यम् | " | " |
| २४६ दुर्गाशीर्षादिपतनदोष | ८२ | " | २८३ ज्ञातकर्मणिनक्षत्रादीनि | " | " |
| २४७ तिजासोपविष्टकाकादिदोष | " | " | २८४ नामविधानेमतान्तरम् | ९५ | " |
| २४८ आसनादिभगदोष | ८३ | " | २८५ विषादीनांतापविषेकता | " | " |
| २४९ जलाशयादीसजातज्यालापाद्रुदोष | " | " | २८६ नामकथनेलभ्ययुद्धि | " | " |
| २५० जलजुमादिभगदोष | " | " | २८७ ज्येष्ठाशुद्धिजातापर्येदुष्टफलम् | " | " |
| २५१ कपेतादिभैरुनदशनदोष | ८४ | " | २८८ मूलजातस्यरुतम् | " | " |
| २५२ मूर्ध्निस्थितकाकादिदोष | " | " | २८९ मूलजातस्यफलम् | " | " |

| विषयांकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः | विषयांकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः |
|-----------------|-----------------------------|------------|-----------|---|------------|
| २९० | ज्येष्ठाफलम् | " | ३२७ | मूकपनादौमासत्रयंत्रतबंधनिषेधः | " |
| २९१ | पालणकबंधनमुहूर्तः | " | ३२८ | केतुदोषेवर्षपर्यंतत्रतबंधनिषेधः | " |
| २९२ | आंदोलकबंधनेनक्षत्रशुद्धिः | " | ३२९ | क्षयमासादौत्रतबंधनिषेधः | १०५ |
| २९३ | आंदोलकचकेनक्षत्रस्थापनम् | ९७ | ३३० | लुप्तधिकवर्षलक्षणम् | " |
| २९४ | पूर्वादिस्थितक्षत्रफलम् | " | ३३१ | राशिमतगुरोः फलम् | " |
| २९५ | आंदोलकेनक्षत्रशुद्धिः | " | ३३२ | चयोर्तीतिगुरुपूजा | " |
| २९६ | बालकस्यानिष्क्रमणम् | " | ३३३ | दृष्टगुरुचन्द्रयोर्विप्रादीनांपूजाधियम् | १०५ |
| २९७ | निष्क्रमणेनक्षत्राणि | " | ३३४ | दृष्टगुरुचन्द्रादौत्रतबंधः | " |
| २९८ | बालस्याग्रप्राधानम् | ९८ | ३३५ | त्रतबंधेगोचरादिशुद्धिः | " |
| २९९ | अग्राधानेवारनक्षत्राणि | " | ३३६ | तत्रक्षपिमतम् | ५ " |
| ३०० | अत्रक्षपिमतम् | " | ३३७ | पुनर्मतान्तरम् | " |
| ३०१ | अग्राधानेनक्षत्रफलम् | " | ३३८ | माघादौत्रतबंधफलम् | " |
| ३०२ | चौलकर्म | ९९ | ३३९ | तत्रमतान्तरम् | १४६ |
| ३०३ | गुरुशुक्रदोषेचौलनिषेधः | " | ३४० | चर्मदंडमौजीधारणेमतान्तरम् | " |
| ३०४ | मासादिदोषः | " | ३४१ | घसंतादौविप्रादीनांत्रतबंधः | १४७ |
| ३०५ | चौलेनक्षत्राणि | " | ३४२ | शुक्रकृष्णपक्षयोर्त्रतबंधः | " |
| ३०६ | चौलेपूर्वादिप्रतिषेधः | १०० | ३४३ | त्रतबंधेगलग्रहनिषेधः | " |
| ३०७ | अत्रगोचरशुद्धिः | " | ३४४ | त्रतबंधेतिथयः | १४८ |
| ३०८ | लग्नशुद्धिः | " | ३४५ | त्रतबंधो विष्टधादिनिषेधः | १४९ |
| ३०९ | चौलेकंदकादिस्थितरज्यादिफलम् | " | ३४६ | वेदस्वामिनः | ३- |
| ३१० | चूपाणांशौरकर्म | " | ३४७ | गुर्वादीनां वर्णसंज्ञा | १४८ |
| ३११ | मुहूर्तविनापित्रतादौशौरकर्म | १०१ | ३४८ | ऋग्वेदत्रतनक्षत्राणि | १४९ |
| ३१२ | संन्यासिकादीनांशौरकर्म | " | ३४९ | यजुर्वेदत्रतनक्षत्राणि | " |
| ३१३ | केशान्तकर्म | " | ३५० | सामवेदत्रतनक्षत्राणि | १४९ |
| ३१४ | कर्णवेधः | " | ३५१ | अथर्ववेदत्रतनक्षत्राणि | उग्रहणम् " |
| ३१५ | कर्णवेधेनक्षत्रादि | १०२ | ३५२ | तत्रमतान्तरम् | १५० |
| ३१६ | तत्रमतान्तरम् | " | ३५३ | पुनर्मतान्तरम् | भगता " |
| ३१७ | कर्णवेधेनक्षत्रादि | " | ३५४ | अस्तंगतेवेदविधौतदुभाफलम् | १५० |
| ३१८ | कुमार्याधानबंधः | " | ३५५ | तद्युगावादिगतवेदपतेः प्रथमैः सर्वैः | " |
| उपवीतप्रकरणम् ८ | | | ३५६ | त्रतेगुरुशुक्रयोर्वेदवर्णः | क्षयः " |
| ३१९ | उपवीतेवर्षाणि | १०३ | ३५७ | त्रतेगुरुशुक्रचंद्राणां शुद्धाणां फलम् | " |
| ३२० | तत्रमतान्तरम् | " | ३५८ | त्रतेसूर्योद्यंशानां कल्पापुरोधः | १५१ |
| ३२१ | क्षत्रिमाणान्त्रतबंधः | " | ३५९ | त्रतेसूर्योद्यंशानां कल्पापुरोधः | १५१ |
| ३२२ | वैश्यानांत्रतबंधः | " | ३६० | त्रतेसूर्योद्यंशानां कल्पापुरोधः | १५१ |
| ३२३ | व्रतबंधेक्षपिमतम् | १०४ | ३६१ | त्रतेसूर्योद्यंशानां कल्पापुरोधः | १५१ |
| ३२४ | उत्तराषाढादौत्रतबंधः | " | ३६२ | त्रतेसूर्योद्यंशानां कल्पापुरोधः | १५१ |
| ३२५ | | " | ३६३ | त्रतेसूर्योद्यंशानां कल्पापुरोधः | १५१ |

| विषयाद्या | विषयनामानि | पृष्ठांका | विषयाद्या | विषयनामानि | पृष्ठांका |
|-----------|---------------------------------|-----------|---------------------|---|-----------|
| ३६३ | तत्प्रमतान्तरम् | " | ४९९ | महादेवादीनां पूजादीविधिप्रमुखाणाम- नियता | " |
| ३६४ | वृत्तेष्वर्चककालस्य दृष्टीरूपम् | ११४ | ५०० | शुभाशुभकालग्रहणेनिजमतस्य दृष्टीकरणम् | " |
| ३६५ | भूततीतेकालोविषादीनां व्रतनिषेध | " | ५०१ | मन्त्रदेवशरीरम् | " |
| ३६६ | उक्तकालगुदेषां ह्यस्यानम् | " | ५०२ | मन्त्रशरीरावयवफलम् | १०६ |
| ३६७ | वटोर्वनगमनशुद्धि | " | ५०३ | मन्त्रोवापनकालशुद्धि | " |
| ३६८ | पुनर्गृहानयनेमातुल्यकृतगौरव | ११५ | ५०४ | अग्निचक्रम् | " |
| ३६९ | विचारं भविष्येकप्रकरणम् | ९ | ५०५ | अग्निचक्रेन क्षत्रस्थापनम् | " |
| ३७० | विचारणविचारंमशुद्धि | ११७ | ५०६ | अथप्रमतान्तरम् | १२७ |
| ३७१ | प्रमतान्तरम् | " | ५०७ | जन्मादिविवानहोमेऽस्यचक्रस्य निर्दोषत्वम् | " |
| ३७२ | विचारणविचारमदिनानि | ११८ | ५०८ | उपसंहार | " |
| ३७३ | विचारणविचारमक्षत्राणि | " | राजसत्ताप्रकरणम् १० | | |
| ३७४ | विचारणविचारंमवारा | " | ५०९ | राजाभिषेकमुहूर्त | " |
| ३७५ | विचारमेऽयनादिसन्धिनिषेध | " | ५१० | शुक्रशुक्रशुद्धौचक्रवर्त्यभिषेचनम् | १२८ |
| ३७६ | विचारमेऽसमवर्षनिषेध | ११९ | ५११ | देशस्वामिनोभिषेकशुद्धि | " |
| ३७७ | विचारमेऽसमशुद्धि | " | ५१२ | दुर्गरवामिनोभिषेकशुद्धि | " |
| ३७८ | विचारणविचारमोपसंहार | " | ५१३ | भूपामिषेकेपक्षशुद्धि | ११९ |
| ३७९ | विचारशास्त्रम् | " | ५१४ | अभिषेकेदिनशुद्धि | " |
| ३८० | विचारदिनिषेध | १२० | ५१५ | तत्रजापिमतम् | " |
| ३८१ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५१६ | अभिषेकेनक्षत्राणि | " |
| ३८२ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५१७ | अभिषेकेगोचरशुद्धि | " |
| ३८३ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५१८ | अभिषेकेलक्षणशुद्धि | १३० |
| ३८४ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५१९ | उचितमावगतग्रहरेभिषेकफलम् | " |
| ३८५ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२० | शीर्षोदयैरभिषेकफलम् | " |
| ३८६ | विचारणविचारमशुद्धि | १२१ | ५२१ | राजमुद्राचक्रम् | " |
| ३८७ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२२ | चक्रेनक्षत्रस्थापनम् | १३१ |
| ३८८ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२३ | छनयोगेग्रहणक्षत्रशुद्धि | १३२ |
| ३८९ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२४ | अकस्मादज्यपासनरस्यत- त्कालाभिषेक | " |
| ३९० | विचारणविचारमशुद्धि | १२४ | ५२५ | नीचकुलोत्पन्नवृषामिषेकाविधि | " |
| ३९१ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२६ | छत्रासनचञ्चलचामरशुद्धौमतान्तरम् | १३३ |
| ३९२ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२७ | राजमुद्राचलयस्योपसंहार | " |
| ३९३ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२८ | समारचना | " |
| ३९४ | विचारणविचारमशुद्धि | " | ५२९ | समापवेशविधि | " |



| विषयाः | विषयनामानि | पृष्ठाका. |
|--------|---|-----------|
| ४३१ | सिंहासनाधिरुद्रचपस्य दान- कर्तव्यता | ” |
| ४३२ | गजादिराज्यागानासन्धानम् | ” |
| ४३३ | यामादिपुदामवधनशुद्धि | ” |
| ४३४ | गुरुशुक्रास्तादिदोषराज्यामर्कमणा निषेध | १३५ |
| ४३५ | गजकर्ममुहूर्त | ” |
| ४३६ | गजचक्रम् | ” |
| ४३७ | गजचक्रगतनक्षत्रफलम् | १३६ |
| ४३८ | गजयधमुहूर्त | ” |
| ४३९ | व्यश्वकर्मशुद्धि | ” |
| ४४० | व्यश्वचक्रनक्षत्रस्थापनम् | ” |
| ४४१ | रथकर्म | १३७ |
| ४४२ | रथचक्रनक्षत्रस्थापनम् | ” |
| ४४३ | चक्रगतनक्षत्रफलम् | ” |
| ४४४ | रूपमसमस्तकर्म | ” |
| ४४५ | शिविकामसस्तकर्म | १३८ |
| ४४६ | शिपिकाचक्रनक्षत्रस्थापनम् | ” |
| ४४७ | चक्रगतनक्षत्रफलम् | ” |
| ४४८ | राजसेवामुहूर्त | ” |
| ४४९ | सेवापालप्रशुद्धि | १३९ |
| ४५० | महिषोपादीनाकर्मारम्भ | ” |
| ४५१ | सिंहादीनापालनमुहूर्त | ” |
| ४५२ | वानरपमुखानाखेलनादिमुहूर्त | ” |
| ४५३ | कुक्कुटादीनासेवनमुहूर्त | १४० |
| ४५४ | मत्स्यग्रहणमुहूर्त | ” |
| ४५५ | पटमण्डपादिसैन्यरचनामुहूर्त | ” |
| ४५६ | चन्द्रोदयादीनावधनमुहूर्त | ” |
| ४५७ | राजसेवामुहूर्त | १४१ |
| ४५८ | स्रग्भ्राह्मणसेवकधारणमुहूर्त | ” |
| ४५९ | स्रग्भ्राह्मणसेवकधारणमुहूर्त | ” |
| ४६० | स्रग्भ्राह्मणसेवकधारणमुहूर्त | ” |
| ४६१ | वाणधर्माभिदिपालादिधारणमुहूर्त | १४२ |
| ४६२ | वाणादिधारणेतिथिवारशुद्धि | ” |
| ४६३ | नलिकादिशस्त्रविधानेनक्षत्रवारशादि | ” |
| ४६४ | वन्दिमुक्तास्त्रतिथिलप्रशुद्धि | ” |
| ४६५ | नूतनमरीवादने तिथिवारनक्ष त्रशुद्धि | १४३ |

| विषयाः | विषयनामानि | पृष्ठाका. |
|--------|--|-----------|
| ४६६ | मेरीधारणेकालशुद्धि | ” |
| ४६७ | सवचदिगणार्कमशुद्धि | ” |
| ४६८ | पूर्वाक्तकालपुद्गेर्द्धीकरणम् | १४४ |
| ४६९ | सैन्यरचनायानक्षत्रवारशुद्धि | ” |
| ४७० | नृपप्रयाणेनक्षत्रवारशुद्धि | ” |
| ४७१ | दिग्विजयगमनेपूर्वादिनिषेध | ” |
| ४७२ | निम्नकालचक्रम् | १४५ |
| ४७३ | सन्मुखेनिम्नकालपरिहार | ” |
| ४७४ | निम्नकालचक्रज्वालादिमङ्गाय- स्थापनम् | ” |
| ४७५ | ज्वालादियुक्तदिशाफलम् | ” |
| ४७६ | मृतजीवितपक्षा | ” |
| ४७७ | जीवितपक्षेदशिणार्कफलम् | १४६ |
| ४७८ | जीवितपक्षेनक्षत्रवारशुद्धौगुह्यारम्भ | ” |
| ४७९ | जीवितपक्षेकुलभादिमवारफलम् | १४७ |
| ४८० | कोटचक्रसन्धानम् | ” |
| ४८१ | कोटचक्रस्थापना | ” |
| ४८२ | कोटचक्रस्य उपरितनके स्तेनक्षत्र- स्थापनम् | ” |
| ४८३ | चक्रस्यद्वितीयेन्तरालकेनक्षत्र- स्थापनम् | १४८ |
| ४८४ | चक्रस्यतृतीयेकोटकनक्षत्रस्थापनम् | ” |
| ४८५ | प्रवेशनिर्गमस्तमस्थानानि | ” |
| ४८६ | शालचक्रग्रहस्थानफलम् | १४९ |
| ४८७ | अतर्गतग्रहचतुष्कण्ठादग्रहणम् | ” |
| ४८८ | मध्यवाह्ययो पापसौम्ये समसुहृत् | ” |
| ४८९ | स्वमध्यया पापसौम्ये पुरोभगता | ” |
| ४९० | बाह्यमध्यपापसौम्यमेभ्रफलम् | १५० |
| ४९१ | उक्तवेपरीत्येफलम् | ” |
| ४९२ | मध्यवाह्येयुगपत्चक्रमाशुभग्रहे सर्व क्षय | ” |
| ४९३ | स्वमध्येसममामस्थितशुभाशुभग्रह- हाणाफलम् | ” |
| ४९४ | मौमवृषचन्द्रनक्षत्रसपोनेपुरोद्य | १५१ |
| ४९५ | पूर्वादिदिक्षुस्थितशुभमौमवृषशुक्राणा फलम् | ” |
| ४९६ | शुक्रग्रहाविलोकिस्थानफलम् | ” |
| ४९७ | वक्रियद्वाश्रितस्थानफलम् | ” |

| विषयाः | विषयनामानि. | पृष्ठाः | विषयाः | विषयनामानि. | पृष्ठाः |
|--------|------------------------------------|---------|--------|------------------------------------|---------|
| ४९८ | स्तमनक्षत्राश्रितकूरग्रहफलम् | | ५३३ | प्रमाणेसिद्धिर्धोमादिश्रेष्ठता | " |
| ४९९ | कोटचक्रोपसंहार | १५२ | ५३४ | प्रमाणेशुभादिमानि | " |
| ५०० | गुदेनगरपुरादिप्रवेशोतिथेवारशुद्धिः | " | ५३५ | प्रथमातारादियुक्तप्रमाण- | |
| ५०१ | प्रवेशेशुभाशुभवार | " | | नक्षत्रस्य नेष्टता | १६४ |
| ५०२ | प्रवेशेष्टादिशुद्धिः | " | ५३६ | प्रमाणेदिगादिशुद्धि | " |
| ५०३ | चन्द्रस्यद्वादशावस्था | १५३ | ५३७ | योगिनीचक्रम् | " |
| ५०४ | अवस्थाफलम् | " | ५३८ | वारदिक्षूलः | १६५ |
| ५०५ | भांडारमरणशुद्धिः | " | ५३९ | योगिनीक्षूलयोः सम्मुखेत्याग | " |
| ५०६ | कलौराजामिषेक | १५४ | ५४० | शनिबुधयोः कालपाशवचनम् | " |
| ५०७ | मिह्रादिजातिनृपणामभिषेकादि- | | ५४१ | पूर्वादिपुमेपादिस्यचंद्रगृहकल्पना | " |
| | निषेधः | " | ५४२ | सम्मुखदक्षिणमतचन्द्रगृहस्थलाय- | |
| ५०८ | शाककर्तृत्वम् | | | दत्तम् | १६६ |
| ५०९ | शाककारकनामानि | | ५४३ | सम्मुखानांतिथिपाशादीनांत्यागः | " |
| ५१० | शुधिष्ठिरादीनामन्तरालवपाणि | १५५ | ५४४ | कृत्तिकादिस्थितप्रदाणांसम्मुखत्वम् | " |
| ५११ | रपाजन्मभूमयः | | ५४५ | संयामादौशुक्रबुधसम्मुखत्वानव- | |
| ५१२ | रपांसदाकालप्रमाणम् | | | लोकनम् | १६७ |
| ५१३ | रपावलवर्णनम् | | ५४६ | शुभवादिगोत्राणांशुकादिसम्मुखत्व- | |
| | त्रिविधयात्राप्रकरणम् | ११ | | निषेधः | " |
| ५१४ | बृहत्प्रमाणेआपाःहादिनिषेध | " | ५४७ | देशविशेषेणशुक्रादिसम्मुखत्वाव- | |
| ५१५ | प्रमाणेशुक्रादिशुद्धिः | १५७ | | गणना | " |
| ५१६ | अनिष्टगुरौतीर्थप्रमाणनिषेधः | " | ५४८ | सम्मुखनक्षत्रकौलत्याग | १६८ |
| ५१७ | अनिष्टगुरौतीर्थप्रमाणनिष्फलता | " | ५४९ | प्रमाणेललाटयोगनिषेध | " |
| ५१८ | गवनेऋतुशुद्धिः | १५८ | ५५० | परिपचक्रम् | " |
| ५१९ | रपांशुप्रमाणनिषेधः | " | ५५१ | आवरयकपरिपोहघनम् | " |
| ५२० | प्रमाणेशरहतोरीचित्यम् | १५९ | ५५२ | प्रमाणशुद्धि | " |
| ५२१ | प्रमाणेहेमततांरतिष्टता | " | ५५३ | त्रिविधप्रमाणेऽप्यहारादित्रिविध- | |
| ५२२ | शिशिरतोः प्रमाणेश्रेष्ठता | १६० | | फलशुद्धि | १६९ |
| ५२३ | वसन्तसर्वदिक्षुप्रमाणश्रम्यता | " | ५५४ | विषादीनांमुक्तप्रमाणशुद्धि | " |
| ५२४ | अणवलिप्रमाणनिषेधः | १६१ | ५५५ | प्रमाणेजन्मादिस्त्रामिवर्णनम् | " |
| ५२५ | अयनदिक्षूलचक्रम् | " | ५५६ | प्रमाणेलग्रशुद्धिः | १७० |
| ५२६ | चातुर्मासकादीप्रमाणनिषेधः | " | ५५७ | निषिद्धलघ्नम् | " |
| ५२७ | विषमग्रहेऽप्रमाणनिषेध | " | ५५८ | जन्मराजयोगवर्णनम् | " |
| ५२८ | दिस्यमापादिकैरर्वाहृदप्रमाणदि- | | ५५९ | प्रमाणलग्नग्रहमावशुद्धि | १७१ |
| | निषेधः | १६२ | ५६० | राजयोगप्रशस्ता | १७२ |
| ५२९ | महत्पदादीहृदप्रमाणदिनिषेधः | " | ५६१ | राजयोगा | १७३ |
| ५३० | प्रमाणेशुक्रयोगनिषेध | " | ५६२ | राजयोगोपसंहार | " |
| ५३१ | प्रमाणेशुद्धिराशिमानविचार- | | ५६३ | क्षदशमावनामानि | " |
| | त्यागः | " | ५६४ | प्रमाणलग्नप्रथममावका | " |
| ५३२ | शुभादिपुष्यमादिप्रमाणम् | १६३ | | | |

| विषयाः | विषयनामानि. | पृष्ठाः | विषयाः | विषयनामानि. | पृष्ठाः |
|--------|---|---------|--------------------------|------------------------------------|---------|
| ५६५ | द्वितीयतृतीयमावफलम् | १७७ | ६०२ | अर्कादिपुषाश्चम् | १९० |
| ५६६ | चतुर्थपंचमपष्ठमावफलम् | " | ६०३ | दिक्प्राश्चम् | " |
| ५६७ | सप्तमाष्टमावफलम् | " | ६०४ | दिग्योग्यवाहनानि | " |
| ५६८ | नवमदशमावफलम् | १७८ | ६०५ | जलपात्राशुद्धि | " |
| ५६९ | एकादशद्वादशमावफलम् | " | ६०६ | प्रयाणोत्सृज्येनसफलता | १९१ |
| ५७० | न्यूनाधिकयोगेन्यूनाधिकफलम् | " | ६०७ | गमनसमयव्यवहारः | " |
| ५७१ | शकुलसन्धानम् | " | ६०८ | प्रथमप्रयाणवासस्थानम् | " |
| ५७२ | सप्तवाराणांयामार्थानि | १७९ | ६०९ | अन्यप्रयाणशुद्धिः | " |
| ५७३ | दिनेपंचदशमुहूर्ताधिपा | " | ६१० | निजपुरप्रवेशः | १९२ |
| ५७४ | रात्रौपंचदशमुहूर्ताधिपा | १८० | ६११ | पुरप्रवेशेदृष्टतिथ्यादिनिषेधः | " |
| ५७५ | रण्यादिपुत्पाज्यमुहूर्त | " | ६१२ | सूर्यवंश्यनृपस्यप्रवेशविधिः | " |
| ५७६ | प्राणव्यवहार | " | ६१३ | चन्द्रवंश्यनृपस्यप्रवेशविधिः | " |
| ५७७ | प्रयाणक्षेपणक्षत्रैःकालनिर्णयः | " | ६१४ | सामान्यनिशेषपुरुषयो सामान्य | " |
| ५७८ | मतान्तरम् | १८१ | विशेषविधि, | १९३ | |
| ५७९ | दक्षिणगतानि शुभमूचकशकुलानि | " | ६१५ | त्रिविधप्रयाणप्रमाणम् | " |
| ५८० | घायशकुलानि | १८२ | ६१६ | प्रयाणाध्यायोपसंहारः | " |
| ५८१ | घामभागगतशकुलानि | " | विवाहप्रकरणम् १२ | | |
| ५८२ | दक्षिणगतशुभशकुलानि | " | | | |
| ५८३ | निर्गमेप्रवेशेचशकुलविशेषः | " | ६१७ | विवाहवर्णनम् | १९४ |
| ५८४ | विषमसंख्याशकुलानि | १८३ | ६१८ | कृतादिपुविवाहयोग्यवरः | " |
| ५८५ | अशुभशकुलानि | " | ६१९ | विवाहेपुष्पाष्टमपुरुषोत्पन्नवधूवर- | |
| ५८६ | विरुद्धस्वप्रादीनि | १८४ | योग्यगता | | |
| ५८७ | अंगाराविदिगाश्रितशकुलनिष्फलता, | | ६२० | वयसाग्निविधवरः | १९५ |
| ५८८ | शुभस्थानेपुष्पाष्टशकुलानि | १८५ | ६२१ | विवाहेत्याज्यकन्या | " |
| ५८९ | अशुभस्थानप्राप्तशकुलनिष्फलता | " | ६२२ | शुभवधूवरसंयोगः | " |
| ५९० | पोतकीशकुलम् | " | ६२३ | विवाहेगर्भाधानकालग्रहणाय | |
| ५९१ | श्यामादृष्टेष्टितम् | १८७ | कन्याया समविषमवर्षद्वयम् | १९६ | |
| ५९२ | दृष्टेशकुलेकृत्यता | " | ६२४ | मतान्तरदर्शनतात्रिविधश्च | " |
| ५९३ | उत्पातादौप्रयाणविलंबः | १८८ | ६२५ | विवाहेकन्याया सप्तमाष्टमवर्षनिषेधः | " |
| ५९४ | इष्टवस्तुसमागमेप्रयाणविलंबः | " | ६२६ | चंद्रादिमुक्तकन्याकाल | " |
| ५९५ | उदितकेतुदिशिप्रयाणविलंबः | " | ६२७ | कृतादिपुविवाहयोग्यकन्यावयः | १९७ |
| ५९६ | प्रस्थानमोचनम् | " | ६२८ | अष्टमवर्षकन्याविवाहेनप्रमितम् | " |
| ५९७ | प्रस्थानमोचनमर्यादा | " | ६२९ | विवाहेहीनवलप्रद्वैकन्याया, | |
| ५९८ | नृपादीनामिष्टप्रस्थानाविधि | १८९ | पंचमादिवर्षनिषेधः | " | |
| ५९९ | नृपादीनांप्रयाणविधि | " | ६३० | उदाहेष्ट्याद्यवर्षविशेषता | " |
| ६०० | उत्तरादिपुप्रयाणवेला | " | ६३१ | चांद्रमानात्तर्पणग्रहणविशेषता | १९८ |
| ६०१ | प्रयाणनक्षत्रप्राश्चर्यदृष्टपञ्चवारदिक- | | ६३२ | गालितदानफलकन्यापरिहारः | " |
| | प्राश्चर्यदृष्टीकरणम् | | ६३३ | विषादिपूककालस्यदृष्टीकरणम् | " |

| विषयांकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः | विषयांकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः |
|---------------------------|--|------------|-----------|-----------------------------------|------------|
| ७०७ | सूर्यादीनां जन्मदेशा | " | ७४१ | स्रलांतरगतचद्रादिकफलम् | " |
| ७०८ | देशांतरसाधनम् | २२२ | ७४२ | ग्रहाणां दृष्टयः | २३५ |
| ७०९ | वस्त्रप्रवृत्तिः | " | ७४३ | दृष्टिजातकताजकयोर्विशेषः | २३६ |
| ७१० | कालहोराः | " | ७४४ | मघेग्रहविलोकनफलम् | " |
| ७११ | होराफलम् | " | ७४५ | केंद्रयोगः | २३७ |
| ७१२ | तिथ्यादीनामाद्यन्तयोस्त्यागः | २२३ | ७४६ | गोधूलिकलभ्रम् | " |
| ७१३ | आद्यन्तयो फलम् | " | ७४७ | गोधूलिकलभ्रप्रामाण्यम् | " |
| ७१४ | अशानियोगः | " | ७४८ | गोधूलिकलभ्रसमयस्वरूपवर्णनम् | " |
| ७१५ | उपसंहारः | " | ७४९ | गोधूलिकग्रहणेविशेषः | २३८ |
| विवाहप्रकरणोत्तरार्धम् १३ | | | ७५० | घटिकागोधूलिकरूपयोर्विवेक | " |
| ७१६ | विवाहेवर्णवर्ज्योदिनानि | २२४ | ७५१ | कार्तिकादौघटिकालभ्रप्रत्यगः | " |
| ७१७ | गोधूलिकादिलभ्रशुद्धिः | " | ७५२ | वारविशेषेगोधूलिकलभ्रशुद्धि- यक | २३९ |
| ७१८ | कार्तिकीमाश्रयन्कृषिमतद्वपणम् | २२५ | ७५३ | दोषयुक्तगोधूलिकम् | " |
| ७१९ | शन्यादिवारत्यागपूर्वकंकस्याचि- न्मतद्वपणम् | २२६ | ७५४ | गोधूलिकेग्रहमतदोषाः | " |
| ७२० | उद्वाहनक्षत्राणि | " | ७५५ | गोधूलिकेक्षरग्रहलभ्रादिनिषेधः | " |
| ७२१ | उद्वाहेकालियुगउत्तराश्रयाश्रयण- नश्रुतिदोषः | " | ७५६ | गोधूलिकेउत्तरायणादिकालः | २४० |
| ७२२ | उद्वाहेपुष्यनिषेधः | " | ७५७ | सिद्धराशिगतगुणादिषुविवाहनिषेधः | " |
| ७२३ | उद्वाहेशपिननक्षत्रद्वयानिषेधः | " | ७५८ | एतन्मतद्वपणम् | " |
| ७२४ | अश्विन्यादित्याग | " | ७५९ | अष्टयः विवाहा | " |
| ७२५ | विवाहेमूलनक्षत्रौचित्यम् | २२७ | ७६० | उत्तममध्यमाधमपाणिग्रहशुद्धिः | २४१ |
| ७२६ | प्रयाफलम् | " | ७६१ | शास्त्रनीतितोलीकिकथमेत्यवलवत्वम् | " |
| ७२७ | उद्वाहेसोत्पातनक्षत्रत्याग | " | ७६२ | देशधर्मा | " |
| ७२८ | ज्योतिषशास्त्रस्यश्रेष्ठत्ववर्णनम् | " | ७६३ | वेदादिधर्मतोषाहिलोकधर्मदर्शनम् | २४२ |
| ७२९ | शौलादिकार्यशुभाशुभयोगाः | २२८ | ७६४ | उषेष्टादाहिकान्धोदाहानिषेधः | " |
| ७३० | विष्कमादीनां दृष्टाविभागत्याग | २२९ | ७६५ | यमलादिप्रसवेउद्वाहाविषेक | २४३ |
| ७३१ | निर्द्वयोगः | " | ७६६ | अदन्तकुमारयुद्धाहंदाय | " |
| ७३२ | उद्वाहववादिदोष | " | ७६७ | कालधर्माः | " |
| ७३३ | उद्वाहेलभ्रशुद्धिः | " | ७६८ | कृतादिषुविषादीनाविषय | " |
| ७३४ | दिवारात्रिलभ्रानि | २३० | ७६९ | अचितकालेउचितविवाहः | २४४ |
| ७३५ | देशविशेषेणकिचिद्विशेष | " | ७७० | नीतिवर्शनम् | " |
| ७३६ | चद्रेणशुभशुभग्रहयोग | " | ७७१ | खड्गमंगलम् | " |
| ७३७ | निजस्वामिदृष्टिहीनाहीनलभ्रादि- फलम् | " | ७७२ | खड्गमंगलकालशुद्धिः | " |
| ७३८ | तन्वादिमावेशन्यादियोगत्यागः | २३१ | ७७३ | पुनर्विवाहादिशुद्धिः | " |
| ७३९ | भावगतग्रहफलानि | २३४ | ७७४ | पुनर्विवाहपट्टकचक्रम् | २४५ |
| ७४० | कर्तरीयोगः | " | ७७५ | पुनर्विवाहेत्याज्यादिनादि | " |
| | | | ७७६ | कन्यादानयोग्यस्थानम् | " |
| | | | ७७७ | वधुप्रवेशोवारशुद्धिः | " |

| विषयाङ्काः | विषयनामानि | पृष्ठाङ्काः | विषयाङ्काः | विषयनामानि | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------|--|-------------|--------------------|---|-------------|
| ७७८ | वधूपवेशनक्षत्राणि | २४६ | ८०९ | मृषादिभ्योलब्धवस्त्रादीनां तत्का- लधारणम् | " |
| ७७९ | वधूपवेशनधनुर्कादिनिषेधः | " | प्राकारप्रकरणम् १५ | | |
| ७८० | विवाहमंडपोत्थानशुद्धिः | " | ८१० | पर्वतादिस्थानगतशालमेदाः | २५७ |
| ७८१ | मर्तृगृहान्नबोधायाः पितृगृहान्नय- नशुद्धिः | " | ८११ | पाषाणादिनिर्मिता उत्तममध्यमा- धमशालाः | " |
| ७८२ | दीपपट्टाधनम् | २४७ | ८१२ | कोटकरणकालः | २५५ |
| ७८३ | दीपोत्सवस्त्रीगृहप्रवेशे गुप्ता- दिकनिर्दोषता | " | ८१३ | द्विस्वमावराश्यादौ शालप्रारम्भ- निषेधः | " |
| ७८४ | देवादीपपट्टाधनमायेवधूपवेश- विवेकः | " | ८१४ | मार्गादित्रये राहुनिवासस्थानं तत्सामुदायनिषेधश्च | " |
| घस्रालंकारपरिधानप्रकरणम् १४ | | १४ | ८१५ | शालारंभे कुतिषिधारनिषेधः | " |
| ७८५ | घस्रादिधारणे चंद्रचलम् | २४८ | ८१६ | प्राकारारंभे नक्षत्रादिशुद्धिः | २५६ |
| ७८६ | घस्रभूतीमद्रादि योगत्यागः | " | ८१७ | हुणचक्रम् | " |
| ७८७ | घस्रोत्पादनशुद्धिः | " | ८१८ | शालचक्रगतनक्षत्रादिकलम् | " |
| ७८८ | उद्वाहादौ स्रग्द्वीतवस्त्ररूपपरि- धानयोग्यता | " | ८१९ | स्नातगतमौमादिकलम् | " |
| ७८९ | श्वेतवस्त्रधारणशुद्धिः | २४९ | ८२० | प्रवेशादिगतमेष्टशालफलम् | २५७ |
| ७९० | रक्तवस्त्रधारणशुद्धिः | " | ८२१ | सर्पपरिषम | " |
| ७९१ | पीतरक्तपीतवस्त्रधारणशुद्धिः | " | ८२२ | आदिचक्रे स्नातः | " |
| ७९२ | नीलिश्यामवस्त्रधारणशुद्धिः | " | ८२३ | आदिभ्रमे जैनमतम् | " |
| ७९३ | पट्टकूलधारणशुद्धिः | " | ८२४ | आदिभ्रमे जैनमतविवेकः | " |
| ७९४ | कौशेयधारणशुद्धिः | २५० | ८२५ | जैनमतस्याप्राप्तप्राप्तम् | २५८ |
| ७९५ | लोमपट्टधारणशुद्धिः | " | ८२६ | पुनः कस्याभिन्मते दोषोदादनम् | " |
| ७९६ | क्षयमासादिपुस्त्रीणां च्छादिधार- णनिषेधः | " | ८२७ | वास्तुशास्त्रोदिताष्टपदचक्र- दोषोदादनम् | " |
| ७९७ | स्वर्णादिभूषणधारणशुद्धिः | " | ८२८ | ऋषियमतपूर्वकं स्वमतदृष्टीकरणम् | " |
| ७९८ | कौर्मिपट्टधारणशुद्धिः | २५१ | ८२९ | स्नातकरणशुद्धिः | २५९ |
| ७९९ | सङ्गपात्रादिकार्यशुद्धिः | " | ८३० | आपत्यपाशादिबलवर्णनम् | " |
| ८०० | ताम्रादिकर्म | " | ८३१ | क्षेत्रफलसाधनम् | " |
| ८०१ | यस्त्रनष्टरधारणे लभ्यशुद्धिः | " | ८३२ | वस्त्रादीनामं गुलादिज्ञानम् | " |
| ८०२ | कटकालं कृतिधारणशुद्धिः | " | ८३३ | मज्जागुलादीनां प्राप्तिस्थानानि | २६० |
| ८०३ | घृष्टधारणमुहूर्तः | २५२ | ८३४ | महापापम् | " |
| ८०४ | घनसायादिरुत्यशुद्धिः | " | ८३५ | आपानाद्याधरस्थानानि | " |
| ८०५ | युग्मकार्यशुद्धिः | " | ८३६ | वास्तुनक्षत्रादिज्ञानम् | २६१ |
| ८०६ | कप्यादिधारणशुद्धिः | " | ८३७ | क्षेत्रफलादिभिरंशकमाधनम् | " |
| ८०७ | कप्यादिकार्यशुद्धिः | २५३ | ८३८ | पर्वतप्राकारादिप्रापयोग्यता | " |
| ८०८ | चर्मजर्मशुद्धिः | " | ८३९ | वर्षादिनक्षत्रकृतं नक्षत्रमेलापकेन शालपूरणम् | " |



| विषयाङ्काः | विषयनामानि | पृष्ठाङ्का | विषयाङ्का | विषयनामानि | पृष्ठाङ्का |
|--------------------|---------------------------------------|------------|-----------|-------------------------------|------------|
| ८४० | प्रतोलिकाकरणशुद्धि | " | ८७४ | वत्सचक्रेशालादिविभागमेदा | २७१ |
| ८४१ | प्रतोलिकाचक्रेनक्षत्रस्थापनतत्फलच | २६२ | ८७५ | गृहेदिग्द्वारचक्रम् | " |
| ८४२ | नक्षत्रचक्रस्यमेदा | " | ८७६ | गृहस्यत्रिविधत्वम् | " |
| ८४३ | दिग्बत्सचक्रम् | " | ८७७ | हर्म्यादीनां दर्शनीयदोष | " |
| ८४४ | प्रतोलीकरणे सन्मुखराहुचन्द्रयोस्त्याग | " | ८७८ | गृहशष्टिकादिचयनसुखालेपशुद्धि | " |
| ८४५ | निर्दोषशालवर्णनम् | २६३ | ८७९ | पर्णकुटकार्यशुद्धि | २७२ |
| ८४६ | शैलस्यशालवर्णनम् | " | ८८० | ऊर्ध्वसूक्ष्मारम | २७४ |
| ८४७ | जलस्यशालवर्णनम् | " | ८८१ | गृहकरणेलग्रशुद्धि | " |
| ८४८ | भूमिस्यशालवर्णनम् | " | ८८२ | गृहारमेगणकादेश | २७५ |
| ८४९ | गन्धरशालवर्णनम् | २६४ | ८८३ | सूत्रधारैर्गृहकरणम् | " |
| ८५० | श्रीविक्रमार्कबलवर्णनम् | " | ८८४ | इष्टवृक्षसामोप्यदोष | " |
| ८५१ | शालशुद्धयसहाय | " | ८८५ | गृहसमीपस्यबोधिवृक्षादिफलम् | २७६ |
| ८५२ | पुरेऽन्यतशुद्धिदर्शनम् | " | ८८६ | गृहाश्रितगुणकृष्टादिदोष | " |
| ८५३ | पुरवाससंज्ञात्यादिशुद्धि | " | ८८७ | गृहारमेगमिज्वालादिदाप | " |
| ८५४ | गुर्वादिदोषेपुरारमनिषेध | २६५ | ८८८ | गृहारमेसूत्रकीलच्छेददोष | " |
| ८५५ | ग्रामकरणशुद्धि | " | ८८९ | सातेष्टवस्तुफलम् | २७७ |
| ८५६ | ग्रामवत्सचक्रम् | " | ८९० | गृहारमेउत्तरायणादिशुद्धि | " |
| ८५७ | पुररचनेषत्सादिनक्षत्रशुद्धि | " | ८९१ | शुभापस्यग्राहस्यानम् | " |
| ८५८ | पुरप्रतोलीकरणशुद्धि | २६६ | ८९२ | शूरापस्यग्राहस्यानम् | " |
| ८५९ | पुरकरणेलग्रशुद्धि | " | ८९३ | भाष्यव्यययोर्न्यूनानधिक्यफलम् | २७८ |
| ८६० | पुरप्रवेशशुद्धि | " | ८९४ | गृहाणापोडशमेदा | " |
| ८६१ | पुरादिप्रवेशेनक्षत्रवारशुद्धि | " | ८९५ | प्रस्तार | " |
| ८६२ | पुरप्रवेशेलग्रशुद्धि | २६७ | ८९६ | लघुप्रधानस्यानम् | " |
| ८६३ | पुरप्रवेशेऽशेषशुद्धि | " | ८९७ | पोडशमेहनानामानि | २७९ |
| ८६४ | प्रवेशेऽन्यस्यवदान्यता | " | ८९८ | वर्णमेदेमतान्तरम् | " |
| गृहारंभप्रकरणम् १६ | | | ८९९ | गृहमेददर्शनम् | " |
| ८६५ | गृहकरणेदिग्योग्यता | २६८ | ९०० | दिगाश्रितमित्तिमूलफलम् | " |
| ८६६ | दिग्प्राशयारेमेलेनद्वयगम् | " | ९०१ | दारेनवाशादिशुद्धिद्वारम् | " |
| ८६७ | दिङ्मन्त्राद्योर्मेलनेगृहसम्पुस्य | " | ९०२ | द्वारद्वारिकाभोचनविवेक | " |
| शुभत्वम् | | | ९०३ | द्वर्गादिद्वारेष्वेत्याग | २८० |
| ८६८ | गृहारमेमासादिशुद्धि | २६९ | ९०४ | द्वरेष्वेत्यनिर्दोषता | " |
| ८६९ | गृहारमेऽपनादिशुद्धि | " | ९०५ | द्वारकरणेनक्षत्रशुद्धि | " |
| ८७० | उचितदिशिगृहसम्पुस्य | " | ९०६ | द्वारचक्रम् | " |
| ८७१ | गृहकरणेमासप्रमाणता | २७० | ९०७ | मौमेनक्षत्रादिशुद्धि | २८१ |
| ८७२ | गृहकरणेवारनक्षत्रशुद्धि | " | ९०८ | गृहेऽष्टलेख्यादिनिषेध | " |
| ८७३ | मतमेदनवत्सचक्रम् | " | ९०९ | गृहेऽष्टपञ्चपञ्चाभिचिन्ननिषेध | " |
| | | | ९१० | अस्यमासादिव्यनिषेधः | २८२ |

| विषयाकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः | विषयाकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------|-------------|------------|---|-------------|------------|
| १११ इष्टकाचयुनादिकृत्यम् | | १ | १४६ लोकपालस्यापनशुद्धिः | | १ |
| ११२ सौधादौचित्रकर्मशुद्धिः | | १ | १४७ समुच्चयदेवपतिष्टा | | १ |
| ११३ धनन्यासादिगृहाणि | | १ | १४८ पूर्वजगस्यापनशुद्धिः | | १ |
| गृहप्रवेशदेवताप्रतिष्ठा- | | | १४९ जैनार्चविधिप्रतिष्ठा | | २९२ |
| प्रकरणम् १७ | | | १५० चारादियत्नता | | १ |
| ११४ गृहप्रवेशायनादिशुद्धिः | | २८३ | १५१ देवगृहेदेवस्थापनम् | | १ |
| ११५ बलहीनचन्द्रादिदोषप्रवेशनिषेध. | | १ | १५२ विक्रमनृपवर्धनम् | | १ |
| ११६ गृहप्रवेशोचारशुद्धिः | | २८४ | अग्न्याधानादिविशेषमंस्कार- | | |
| ११७ गृहप्रवेशेनक्षत्रशुद्धिः | | १ | प्रकरणम् १८ | | |
| ११८ जन्मतेनस्वमतद्वडीकरणम् | | १ | १५३ अग्न्याधानसमय | | २९३ |
| ११९ कलशचक्रम् | | १ | १५४ अग्निपरिग्रहेकुंभोपागानिषेधः | | २९४ |
| १२० तन्त्रकिञ्चित्प्रतिषेधः | | १ | १५५ अग्निपरिग्रहेनक्षत्रशुद्धिः | | १ |
| १२१ गृहप्रवेशेनक्षत्रशुद्धिः | | २८५ | १५६ नूतनाग्निपरिग्रहेकुंभादिलक्षणनिषेधः | | १ |
| १२२ अग्न्यमतेनस्वमतद्वडीकरणम् | | १ | १५७ अग्निपरिग्रहेलक्षादिशुद्धिः | | १ |
| १२३ गृहप्रवेशेमावगतयफलानि | | १ | १५८ अग्निपरिग्रहेकालशुद्धिः | | २९५ |
| १२४ सूक्तिकागृहकर्मशुद्धिः | | २८६ | १५९ कस्यचिन्मतेदोष | | २९६ |
| १२५ श्रृणुमत्तृणादीनांशालाकम् | | १ | १६० संस्थात्रिकस्यसेव्यता | | १ |
| १२६ देवगृहादेकर्मशुद्धिः | | १ | १६१ पाकपञ्चशुक्लास्तादिदोष | | २९७ |
| १२७ जलगृहादेकर्मशुद्धिः | | २८७ | १६२ होमविधानशुद्धिः | | १ |
| १२८ उपसहारः | | १ | १६३ होमेनक्षत्रशुद्धिः | | १ |
| १२९ गृहप्रवेशेसापवादान्युपादिभानि | | १ | १६४ यज्ञांतस्नानशुद्धिः | | १ |
| १३० प्रवेशेठरुकादिदोषः | | १ | १६५ यज्ञान्तस्नानराजमुद्राचक्रम् | | १ |
| १३१ प्रवेशेयोगिन्प्रादिदोषत्याग | | १ | १६६ सचक्रप्रयेनक्षत्रस्थापनम् | | १ |
| १३२ गृहप्रवेशविधिः | | २८८ | १६७ विशेषतः पंचभेदसिंहासनप्रयचक्रम् | | १ |
| १३३ प्रवेशानन्तरकृत्यम् | | १ | १६८ चक्रस्थितनक्षत्रफलम् | | २९९ |
| १३४ गृहमांडादिनिवेशशुद्धिः | | १ | १६९ पापग्रहविदनक्षत्रफलम् | | १ |
| १३५ गृहोपस्करस्थापनशुद्धिः | | १ | १७० अश्याधिपादीनांमुख्यशुद्धिः | | ३०० |
| १३६ गृहेजलस्यानस्थापनम् | | २८९ | १७१ छुरमचक्रम् | | १ |
| १३७ गृहेदेवमूर्तिस्यापनशुद्धिः | | १ | १७२ चक्रगतनक्षत्रफलम् | | १ |
| १३८ कृष्णमूर्तिस्यापनशुद्धिः | | १ | १७३ अश्यावयवशानिफलम् | | १ |
| १३९ शिवालिंगस्यापनम् | | १ | १७४ गजचक्रम् | | १ |
| १४० ग्रन्थस्यापनशुद्धिः | | २२० | १७५ चक्रगतनक्षत्रफलम् | | १ |
| १४१ मयान्पादिदेवगणस्यापनशुद्धिः | | १ | १७६ गजचक्रशानिफलम् | | १ |
| १४२ रामकृष्णादिगणस्यापनशुद्धिः | | १ | १७७ रथचक्रम् | | ३०२ |
| १४३ स्कंदगणेशादिशिवगणस्यापनशुद्धिः | | १ | १७८ रथचक्रशानिफलम् | | १ |
| १४४ हनुमत्स्यापनशुद्धिः | | १ | १७९ चक्रोपमहारः | | १ |
| १४५ ऋषिगमप्रतिष्ठा | | २९१ | १८० चानप्रत्यता | | १ |
| | | | १८१ तन्त्रलक्षणशुद्धिः | | ३०३ |
| | | | १८२ सन्धासेनक्षत्रादिशुद्धिः | | १ |

| विषयाङ्कः | विषयनामानि | पृष्ठाङ्कः |
|------------------|------------------------------|------------|
| ९८३ | दीक्षाप्रवृत्तशुद्धिः | " |
| ९८४ | धर्मकर्मारम्भः | ३०४ |
| ९८५ | समवाय्ययनेवारादिशुद्धिः | " |
| ९८६ | पुराणकथाश्रवणशुद्धिः | " |
| ९८७ | ऋत्वादिस्तानशुद्धिः | " |
| ९८८ | उपसंहारः | ३०५ |
| मिश्रप्रकरणम् १९ | | |
| ९८९ | क्रियाविधानशुद्धिः | " |
| ९९० | गोर्कर्मशुद्धिः | " |
| ९९१ | चतुष्पदानां प्रवेशादिकर्म | ३०६ |
| ९९२ | अजादीनां कृत्यशुद्धिः | " |
| ९९३ | वृद्धादीनां कर्मशुद्धिः | " |
| ९९४ | कपयिक्रयकरणशुद्धिः | " |
| ९९५ | जलाशयकरणशुद्धिः | ३०७ |
| ९९६ | कूपकरणदिकशुद्धिः | " |
| ९९७ | क्षीयजलसंयजकदेशः | " |
| ९९८ | नीचगतजलदेशः | ३०८ |
| ९९९ | शुभजलज्ञानम् | " |
| १००० | कूपादिकरणकालशुद्धिः | " |
| १००१ | कूपचक्रम् | " |
| १००२ | वापीचक्रगतनक्षत्रफलम् | ३०९ |
| १००३ | तडागचक्रम् | " |
| १००४ | परिस्रादिजनननक्षत्रशुद्धिः | ३१० |
| १००५ | परिस्राचक्रम् | " |
| १००६ | क्षारिकाचक्रम् | " |
| १००७ | मीनार्कादीक्षारिकाकर्मनिषेधः | " |
| १००८ | तरीघटनकर्मशुद्धिः | " |
| १००९ | जलेतरीमोचनशुद्धिः | ३११ |
| १०१० | नौकायंत्रणेलग्रादिशुद्धिः | " |
| १०११ | नौकाचक्रम् | " |
| १०१२ | नौकायां वस्तुप्रणयशुद्धिः | " |
| १०१३ | जलेसेतुवधनशुद्धिः | ३१२ |
| १०१४ | सेतुवधनचक्रम् | " |
| १०१५ | सेतुवधनेलप्रशुद्धिः | " |
| १०१६ | अष्टकचक्रप्रणयकर्म | " |
| १०१७ | तत्रप्रतान्तम् | ३१३ |
| १०१८ | अष्टकचक्रम् | " |
| १०१९ | कूपचक्रेष्टकादिशकज्ञानम् | " |

| विषयाङ्कः | विषयनामानि | S. (पृष्ठाङ्कः) |
|-----------|-----------------------------------|-----------------|
| १०२० | तैलिकपत्रकर्मशुद्धिः | ३१४ |
| १०२१ | तैलिकपत्रचक्रम् | " |
| १०२२ | चक्ररोचकम् | " |
| १०२३ | अल्लिदकृत्यशुद्धिः | " |
| १०२४ | पाषाणकाष्ठविदारणशुद्धिः | " |
| १०२५ | पाषाणादिविदारणेनक्षत्राणि | ३१५ |
| १०२६ | वस्त्रक्रियायंत्रविधौ नक्षत्रादिः | " |
| १०२७ | कुम्भकारकर्मणिमादिशुद्धिः | " |
| १०२८ | कुलालचक्रम् | ३१६ |
| १०२९ | वृक्षारोहणयंत्रचक्रम् | " |
| १०३० | उपलदारुविदारणेवारादिशुद्धिः | " |
| १०३१ | चर्मकापैमादिशुद्धिः | " |
| १०३२ | नवीनकर्महलौजलमरणशुद्धिः | ३१७ |
| १०३३ | जलकार्यशुद्धिः | " |
| १०३४ | चल्लयाविरोपणेवारादिशुद्धिः | " |
| १०३५ | हलप्रवाहेवारादिशुद्धिः | " |
| १०३६ | अडलादौ हलकर्षणनिषेधः | " |
| १०३७ | हलचक्रम् | ३१८ |
| १०३८ | फल्यचिन्मतेदोषः | " |
| १०३९ | क्षेत्रकर्षणशुद्धिः | " |
| १०४० | योद्धादिस्वयनशुद्धिः | ३१९ |
| १०४१ | बीजवापनेमादिशुद्धिः | " |
| १०४२ | कूपजलवापकार्यमतान्तरम् | ३२० |
| १०४३ | बीजवापविषये फणिचक्रम् | " |
| १०४४ | धान्यच्छेदनशुद्धिः | " |
| १०४५ | क्षेत्रे कपोयादिसेपणम् | " |
| १०४६ | गवादीनां वधप्रकारशुद्धिः | " |
| १०४७ | नूतनवृष्यकृत्यम् | ३२१ |
| १०४८ | मेघादीनां कृत्यशुद्धिः | " |
| १०४९ | पशूनां निर्गमप्रवेशशुद्धिः | " |
| १०५० | कपयिक्रयशुद्धिः | ३२२ |
| १०५१ | वस्तुनां विनिमयशुद्धिः | " |
| १०५२ | कालान्तरधनार्पणशुद्धिः | " |
| १०५३ | त्रिपुष्करयोगः | " |
| १०५४ | नवीनपुष्पादीनां संग्रहः | ३२३ |
| १०५५ | नवीनजलादीनां शासनम् | " |
| १०५६ | हरीतस्यादिस्वयनशुद्धिः | " |

| विषयाका | विषयनामानि | पृष्ठाका | विषयाका | विषयनामानि | पृष्ठाका |
|---------|--|----------|----------------------|----------------------------------|----------|
| १०५७ | रसांगसाधनशुद्धि | " | १०९२ | भस्त्रियकार्यारम्भमादिशुद्धि | ३३३ |
| १०५८ | रसांगसेवनम् | ३२४ | १०९३ | वैश्यकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०५९ | रोगोत्पत्तिद्रवतनक्षत्रफलम् | " | १०९४ | शूद्रकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०६० | रोगोत्पत्तिमेष्टुरोगावाधि | " | १०९५ | स्वकार्यैलप्रशुद्धि | " |
| १०६१ | सर्पद्वेषतद्रवतनक्षत्रफलम् | ३२५ | १०९६ | हलिनाकार्यमादिशुद्धि | ३३४ |
| १०६२ | रोगिभ्योपपदानशुद्धि | " | १०९७ | वणिक्कार्यमादिशुद्धि | " |
| १०६३ | हिमप्रतिक्रिया | " | १०९८ | कर्मकादिकर्मसुलप्रशुद्धि | " |
| १०६४ | रोगमुक्तस्नानम् | " | १०९९ | लिपिकारकार्यमादिशुद्धि | " |
| १०६५ | रोगमुक्तव्याध्यागमनशुद्धि | ३२६ | ११०० | गोपकर्मारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०६६ | मांससेवनशुद्धि | " | ११०१ | रथकर्मारम्भमादिशुद्धि | ३३५ |
| १०६७ | विषाशनेमादिशुद्धि | " | ११०२ | स्वर्णकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०६८ | निधदादिप्रोक्तव्यतिरिक्तानां द्रव्या णामक्षणनिषेध | " | ११०३ | मणिकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०६९ | तैलस्नानेतिध्यादिनिषेध | ३२७ | ११०४ | नापितकर्मारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७० | जन्मादिदिनेस्नानस्यनिर्दोषत्व कथनम् | " | ११०५ | मालिककर्मारम्भमादिशुद्धि | ३३६ |
| १०७१ | क्रूरपारेनित्यज्ञाननिर्दोषता | " | ११०६ | कुलालकर्मारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७२ | अष्टम्यादिपुनालीकेरादिमक्षण- शुद्धि | ३२८ | ११०७ | पुनाराणाकर्मारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७३ | तिथिशा | " | ११०८ | तनुव्यापकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७४ | वारस्वामिन | " | ११०९ | चित्रकारकार्यारम्भमादिशुद्धि | ३३७ |
| १०७५ | वर्णाश्रमकर्मसाधनप्रकरणम् २० | " | १११० | रजककर्मारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७६ | जलाशयपतिष्ठा | ३२९ | ११११ | चर्मकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७७ | प्रतिष्ठापामासशुद्धि | " | १११२ | नरविशेषकर्मारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७८ | तन्ममतान्तरम् | " | १११३ | व्याघादीनाकार्यारम्भमादिशुद्धि | " |
| १०७९ | सिंहयुवादीप्रतिष्ठानिधेय | ३३० | १११४ | श्लेच्छकार्यारम्भमादिशुद्धि | ३३८ |
| १०८० | प्रतिष्ठापान्तिध्यादिशुद्धि | " | १११५ | सिलावकादीनाकृत्यमदिशुद्धि | " |
| १०८१ | प्रतिष्ठापामादिशुद्धि | " | १११६ | शौक्वमणिमादिशुद्धि | " |
| १०८२ | जलप्रतिष्ठापान्तिध्यादिशुद्धि | " | १११७ | लिंगप्रमुखकृत्यमादिशुद्धि | " |
| १०८३ | नलीहाहमाभिरूपमातष्ठा | " | १११८ | स्वयम्भवंशकरणपूर्वकायकर्मार्थ | ३३९ |
| १०८४ | चतुर्वर्णानां कृत्यसाधनम् | ३३१ | कालनिर्णयप्रकरणम् २१ | | |
| १०८५ | घणविधेय | " | १११९ | नवरात्रिव्रतम् | " |
| १०८६ | विषयभस्त्रियकृत्यम् | " | ११२० | व्रतेष्वपनयनकाल | ३४० |
| १०८७ | वैश्यशूद्रकृत्यम् | " | ११२१ | कुमस्थानेमादिशुद्धि | " |
| १०८८ | स्वर्णस्वर्णरूपसिद्धिदशानम् | ३३२ | ११२२ | व्रतेष्वपनयनशुद्धि | " |
| १०८९ | विमानानिसगकृत्यम् | " | ११२३ | रेवयादिपुष्टायादिसचिदुपस्था | " |
| १०९० | भस्त्रियवैश्यनिसकृत्यम् | " | पनानिपथ | | " |
| १०९१ | शूद्राणानिसगकृत्यम् | " | ११२४ | शुक्लतादिप्रथमनवरात्रिकव्रतारम्भ | " |
| १०९२ | विप्रकृत्यमादिशुद्धि | " | निपथ | | " |
| | | | ११२५ | नित्यानिपथव्रतविधेय | ३४१ |

| विषयांकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः | विषयांकाः | विषयनामानि. | पृष्ठांकाः |
|-----------|------------------------------------|------------|-----------|---------------------------------|------------|
| ११२६ | शिवरात्रिकालशुद्धिः | १ | ११५९ | अनंतचतुर्दशीव्रतम् | १ |
| ११२७ | न्यूनाधिकतियौविशेषः | १ | ११६० | सूर्यव्रतम् | १ |
| ११२८ | देव्यादिव्रतेतिथिशुद्धिः | १ | ११६१ | चंद्रादिप्रहणव्रतम् | १ |
| ११२९ | गणेशचतुर्थीव्रतशुद्धिः | ३४२ | ११६२ | सूर्यादिप्रहणेपुण्यफलम् | १ |
| ११३० | एकादशीव्रतम् | १ | ११६३ | गर्मवत्याग्रहणावलोकनविशेषः | १५२ |
| ११३१ | अधिकावमतिथ्येकादशीविशेषः | १ | ११६४ | सूतकादौतीथिशुद्धिः | १ |
| ११३२ | एकादश्याविशेषः | १ | ११६५ | क्षणादिकालज्ञानम् | १ |
| ११३३ | तिथिनक्षत्रयोगाग्राह्यदिक्षण- | | ११६६ | आदेकालनियामकम् | ३५३ |
| | नियमः १४३ | | ११६७ | नीलोद्वाहादिआरम्भः | १ |
| ११३४ | नक्षत्राश्रितद्वादश्यांपारणानिवेषः | १ | ११६८ | नीलोद्वाहसमयः | १ |
| ११३५ | नक्षत्रचरणगतविशेषः | १ | ११६९ | गुरुस्तादौनीलोद्वाहनिषेधः | १ |
| ११३६ | रामनवमीव्रतम् | ३४४ | ११७० | क्षयाधिकवर्षलक्षणम् | ३५४ |
| ११३७ | तस्याःपारणादिनम् | १ | ११७१ | क्षयवर्षस्याग्र्यकालनियमः | १ |
| ११३८ | गोकुलाष्टमीव्रतम् | १ | ११७२ | मार्गिगुरोर्लक्षपेकर्मश्रीमंगल- | |
| ११३९ | दृष्टीक्षेपाउपोषणविचारः | १ | | कार्यनिषेधः | १ |
| ११४० | वैष्णवव्रतम् | ३४५ | ११७३ | आदेकालशुद्धिः | |
| ११४१ | नरसिंहजन्मचतुर्दशीव्रतम् | १ | | ग्रंथाध्यायनिरूपणप्रकरणम् २२ | |
| ११४२ | तत्रदृष्टीक्षेपाउपोषणविचारः | ३४६ | ११७४ | बीजकम् | ३५६ |
| ११४३ | दीपमालिका | १ | ११७५ | श्रीविक्रमार्कवर्णनम् | ३५७ |
| ११४४ | पंचयादिवसांशः | १ | ११७६ | समास्यपण्डितवर्गवर्णनम् | |
| ११४५ | त्रिधाकालः | ३४७ | ११७७ | पण्डितनवकवर्णनम् | ३५८ |
| ११४६ | विजयादशमी | १ | ११७८ | समापरिजनवर्णनम् | १ |
| ११४७ | होलिकाधिकारः | ३४८ | ११७९ | सैन्यवर्णनम् | १ |
| ११४८ | आवर्णपूर्णिमायांनितर्पणं | १ | ११८० | शाकप्रवृत्तिः | ३५९ |
| ११४९ | तक्षमतांतरम् | ३४९ | ११८१ | दिग्विजयः | १ |
| ११५० | आपिपंचमीव्रतम् | १ | ११८२ | विक्रमस्यप्रमुत्वादिगुणवर्णनम् | १ |
| ११५१ | हरितालिकापूजनम् | १ | ११८३ | पुराविर्णनम् | १ |
| ११५२ | हर्षाष्टमीव्रतम् | १ | ११८४ | पराक्रमवर्णनम् | ३६० |
| ११५३ | तक्षमतांतरम् | १ | ११८५ | ग्रंथारंभसमाप्तिकालौ | १ |
| ११५४ | पार्वतीव्रतम् | ३५० | ११८६ | सुखबोधिकाकृत्यशक्तिः | ३६१ |
| ११५५ | गौरीतिथिः | १ | | | |
| ११५६ | शीतलासप्तमीव्रतम् | १ | | | |
| ११५७ | कजलीतृतीया | १ | | | |
| ११५८ | अमयाद्वादशीव्रतम् | ३५१ | | | |

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीः ॥

भावमुनिविरचितसुखबोधिकाव्याख्यया समलंकृतम्

ज्योतिर्विदाभरणम् ।

मानप्रकरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुवरणकमलेभ्यो नमः ॥ अविघ्नमस्तु ॥
श्रीमान्पार्श्वजिनोतिशेषकणं प्राप्तः प्रमुः पूर्णगीर्वाक्षसिप्रचलत्कुयोगकमवप्रौढिः मनानाम्पुरः ॥
सस्कीर्त्यानकनादपूरितजगत्साकस्य इष्टार्थदोर्गोर्वाणेश्वरसेवितो विजयते विश्वैकचित्तमणिः ॥ १ ॥
नत्वा गुरुं गिरमपीममुखं च खेदान् श्रीकालिदासकविशक्रविनिर्मितस्य ॥
ज्योतिर्विदाभरणनामधरागमस्य संतन्यते गुरुकृपं सुखबोधिकेयम् ॥ २ ॥
श्रीपत्तने प्रवरपौर्णिमिकाङ्गच्छेदं देरपाठकशुभाश्रयसंश्रितानाम् ॥
श्रीयुक्तपूज्यमहिमाममसूरिराज्ञां शिव्येण भावमुनिना रचिता यथाचित् ॥ ३ ॥

रैभ्याऽत्रिहारितवसिष्ठपराशराद्यैर्नत्वोदितं जनघनव्यव-
हारसिद्धये ॥ ग्रन्थाम्यहं ननु तदेव गिरं यदाक्यं
ज्योतिर्विदाभरणनाम्नि महश्च शैवम् ॥ १ ॥

युग्मम् ॥ अथ ग्रंथारम्भे अंशकृत् श्रीकालिदासकविशक्रो वसंततिलकावृत्तेन समुचिते-
ष्टदेवतानमस्काररूपमंगलमाचरन्ननुबन्धवतुष्टयमाह—रैभ्येति । ननु इति ग्रंथप्रारम्भे निश्चितं
वा यदुक्तम् । 'ननु । निश्चये च विरोधे च क्षमायां माशिक्षाक्षिपे । पक्षांतरे च स्वीकारे प्रारम्भे
प्रश्नतर्कयोः' इति विश्वप्रकाशवृहट्टिप्पनके । अहं कालिदासनामा कविर्गिरं नत्वा प्रणम्य
जनघनव्यवहारसिद्धयै जनानां विप्रादीनां घनो गात्रं तस्य व्यवहारः गर्भाधानसंस्कारादारभ्य
अंत्यसमयं यावदनेन व्यवहारेण व्यवहियते तदीक्षितं स्यादितिकथनात् । तस्य सिद्धौ सम्यक्
फललाभाय । अथवा जनानां घनः समुदायस्तस्य व्यवहारेण व्यवहारः । अथवा जनानां घनो
दृढोऽवश्यं कर्तव्य एव इति सत्तासौ व्यवहारश्च । अथवा घनो बहुआसौ व्यवहारश्च घन-
व्यहारः जनानां घनव्यवहारस्तस्य सिद्धिस्तस्यै 'घनः साद्रे दृढे दाढ्ये विस्तारे मुद्रे बुदे । संघे
मुस्ते घनं मध्यं नृत्यवाद्यप्रकारयोः' इति हेमोनेकार्थः । 'घनो बन्धः पुरं पिंडो वपुः' इत्यभि-
धानचित्तमणिः । रैभ्यादिभिरिति नामभिर्कृषीश्वरैरुदितं कथितं वचनगोचरीकृतं वचनगो-
चरतया प्रकटीकृतं वा एतादृशोपणेन स्वाभिमानापनयनाय वज्रोत्कीर्णमणौ 'सूत्रगतवद्वत्र
मम मतिप्रवेशइति सूचनम् । एवंविधंतदेवइतिकर्मभूतम् । अत्रैवकारेण स्वमतिसंकरूपजन्य-
मपास्तम् । ज्योतिर्विदाभरणनाम्नि ग्रंथे ग्रन्थामि गुंक्यामीत्यन्वयः । ज्योतिर्ज्योतिषं विदु-

रितिज्योतिर्विदो दैवज्ञास्तेषामाभरण भूषणमिव भूषण तन्नाम यस्यासौ तस्मिन् । अथवा
ज्योतिष शास्त्रस्य या विद् विद्या ज्ञान वा तस्याभरण अत्र निमित्तार्थे सप्तमी एतादृशग्र-
थप्रयोजनायेत्यर्थः । ग्रन्थामीतिसमीपमविष्यति च वर्तमानो वेति । तत्किं यत्तदोर्नित्यस-
न्ध । यदाकर्ण्य अर्कसप्तमि यत्तेजः । च पुनः शैव शिवसप्तमि तेजो भुवने विनयते । अत्र गिर-
न्तेवेति वाचिको नमस्कारः । तदाकर्ण्य शैव च तेजइतिविषयः सूचितः १ व्यवहारसिद्धये
इतिप्रयोजनं सूचितः २ ज्योतिर्विदइत्यधिकारिणः सूचिता ३ ज्योतिर्विदन्तीतिज्योतिर्विदस्ते
षामाभरणमित्यादियदस्यानया व्युत्पत्त्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः सप्तमः सूचितः । प्रतिपाद्या
पदार्थाः प्रतिपादको ग्रन्थइतिदिक् । ननु ग्रन्थादौ रैभ्योतिरेकग्रहणं विग्रहेतु 'हानिकारो
हकारः स्यात्' इत्यादिवर्णपक्तौ छदश्शास्त्रेण रोगोत्पत्तिकृद्रेफस्योक्तत्वान्मैव । अपिवाचिना
मत्वाद्ब्रह्मवाचित्वाच्च निर्विघ्नतैवहेतुरिति । अत्र सुखबोधिकाया यत्र सधिविधानं न दृश्यते
तत्सुबोधहेतुः । न सधि विरामे सधिरनं स्यादितिहैमसूत्रेण सिद्धिश्च । अत्र ग्रन्थे श्रीकालिदास
कविना वराहमिहिरादिप्रोक्तमार्गानुगामिनाऽपि वराहमिहिरादिदैवज्ञमदगदौपधप्राया बहुशा-
ब्दिकमतमिश्रिता विषमसप्तम्यो विषयान्वयदुर्घटशब्दागुकिता । परचास्य ग्रन्थस्य वृत्त्याद्यु-
पजीवनं न दृष्टं तथापि श्रीमता सर्वस्वसमयपरसमयविदा श्रीमहिमाप्रभुमुरीश्वरगुरुणा प्रसा-
दावनान्मैष उपक्रमः । अत्र हि मयाऽभिधानं चिन्तामणिः । हैमोऽनेकार्थः । हैमशेषकोशः ।
महीपकोशः । अनेकार्थध्वनिमंजरी । नानाविधैकाक्षरकोशः । शब्दरत्नाकरनामशब्दप्रभेदः ।
हैमलिङ्गानुशासनम् । हैमवृहद्दृष्टिः । धातुरत्नाकरवृत्तिरित्यादिग्रन्था यथामति स्मृताः ।
अतो ह्यव्यक्तमतिना विभ्रमो न कार्यः । सुधिया तु खलता विहाय शोध्यः । तत्र तावच्छब्द-
शुद्धिस्मृतये किञ्चिच्छब्दविक्रान्तिरित्येते । अष्टेषां हस्ताश्रवणां तिथिः ताराः स्वातिरेके
शब्दाः पुत्रीलिङ्गाः । तारकशब्दोत्रिलिङ्गः । उडु स्त्रीलिङ्गः । श्वयुक् स्त्रीलिङ्गः । पुनर्वसु
द्विवचनान्तः पुलिङ्गः । मघा बहुला कृत्तिका एते नित्यं बहुवचनात् स्त्रीलिङ्गाः ।
अब्दः हायन वर्षं मुहूर्तं दिनं दिवसं वासरं कुतपः अहोरात्रं मूत्रं एते शब्दाः पुलिङ्गाः ।
भरणीस्त्रीलिङ्गः । ज्ञातिः पुलिङ्गः । सप्ताः स्त्रीरिव गोविकल्पेन बहुवचनात् शरदस्त्रीलिङ्गः ।
ज्येष्ठाधनिष्ठाश्रविष्ठा एते तृतीयवर्गद्वितीयात् । ज्योतिषशास्त्रेभ्योऽपि दृश्यते तदाहः ।
पुनर्वसु एकवचनात् । मघाऽकृत्तिकाचैरुवनातइति । शुक्ले भृगुः भृगुजः कविः ध्वनिः
काव्यइति । आदिशब्दपर्यायाः । मिथुनराशौ नितुमं नितम्इतिशब्दप्रभेदः । नुभः पितृज्ञः धी-
धनश्चेतिशब्दपर्यायाः । अथ द्वादशराशीनां विशेषसंज्ञामाह-क्रियः १ ताशुरः २ नितुमः ३
कुलीरः ४ लेपः ५ पार्थिवः ६ जूकः ७ कौप्योल्हा ८ लौक्यकः ९ आकोकेरो १० हद्रोगः
११ चातभः १२ चेत्पइति अथैषामध्ये संज्ञानामाह-मिथुनांसहकन्यानुवृत्तिश्चक्रबुधानां शीघ्रं
दयसंज्ञाइति । अथ भावकुराऽलीगतमंज्ञामाह-कोणः नवः ९ पचमः ५ इति । वैद्वकटवः
११४।७।१० इति । अथ पणभरसंज्ञामाह २।५।८।११ इति । अथापोष्णिमसंज्ञामाह-
३।६।९।१२ इति । अथ द्वादशभावसंज्ञामाह-कः १ दृक् २।१२। श्रोत्रः ३।११।

नासिका ४।१० । कपोलः ५।९ । हनुः ६ । ८ मुखं ७ इति । उपचयसंज्ञा ३।६।१०।११
इति । विशेषतो बृहज्जातकतः संज्ञा ज्ञेयाइतिदिक् ॥ १ ॥

अन्यासदुक्तिविहितोद्गमपक्षराशीन्व्यर्थानहं विरचयामि वरोति युक्तैः ॥
मत्वा वराहमिहिरादिमतेरनेकैर्ज्योतिर्विदाभरणमप्यनसन्मताहम् ॥ २ ॥

अथ विशेषतोऽभिव्यक्त्युद्धतयाऽस्य मतं परिहरन् ग्रंथनामोत्कीर्तनमाह—अन्यासदि-
ति । अपिरिति युक्तं 'प्रश्ने युक्तपदार्थेषु' इति हेमनेकार्थः । अहं ज्योतिर्विदाभरणं विरचयामि
करोमीत्यन्वयः । किं कृत्वा । अनेकैर्वोक्तियुक्तैः सत्यवचनाश्रितैर्वराहमिहिरादिमतेरन्याऽ-
सदुक्तिविहितोद्गमपक्षराशीन् व्यर्थान् सत्यज्ञानरहितान् मत्वा ज्ञात्वा असत्योऽक्तिकाश्च ता
उक्तयोन्वेषामसदुक्तयोऽन्यासदुक्तयस्ताभिर्विहितो निर्मायितोऽतएव उद्गमः प्रादुर्भूत एव विधो-
यः पक्षः कुहेवाकस्तस्य राशयो गणास्तान् । कथंभूतं व्योति । अनसन्मताहम् न सन्मतं
असन्मतं, असन्मतं न भवतीति अनसन्मतं शुद्धमतं तस्मै अहं योग्यम् । अथवा असंतो
दुर्बला न असंतोऽनसंतः सज्जनास्तेषां मतं सन्मतं तेन योग्यमित्यर्थः ॥ २ ॥

सौरं च सावनकर्मैदवमासमानं पैत्र्यं गुरोरथमनोर्मरुतामनेन ॥
मानं विधेरिति न वाखिलकर्मसिद्धेर्मानानि माननवकेन सुनिश्चयः स्यात्

अथ प्रथमं नवधा मानमाह—सौरमिति । सौरं सूर्यसंबन्धिमानं १ चकारः समुच्चयार्थः
सावनकं तदेव सूर्यसंबन्धि अयनांशसहितमानं २ ऐदवं चंद्रसंबन्धिमानं ३ आर्क्षं भस्वंबन्धि मानं
४ पैत्र्यं पूर्वजसंबन्धिमानं ५ गुरोर्गिरापतेर्मानम् ६ मनोर्मानम् ७ मरुतां देवानां मानं ८
विधेर्ब्रह्मणोर्मानम् ९ इति नव मानानि सन्ति अनेन माननवकेन अखिलकर्मसिद्धेः सुनिश्चयः
स्यात् । अत्र संबंधे पठौ । 'मानं प्रमाणे प्रस्थादौ मनश्चित्तोन्नतौ ग्रहे' इत्यनेकार्थः ।
'मानशब्दो महाकारे विषभेदे क्रियामितौ ॥ आदके कोलभेदे च प्रतिष्ठायां नगुरुषां'
इति महीपः ॥ ३ ॥

गुर्वक्षराणामुदितं च पट्या पलं पलानां घटिका किलैका ॥
पट्या घटीनां भदिनं तथार्यैस्तिथ्यैकया चंद्रमसो दिनं स्यात् ॥ ४ ॥

अपोपनातिछंदसैतेषु लघुमानत्वात्प्रथमं भमानमाह—गुर्वेति । आर्यैः पंडितैः 'आर्यै-
रे बुधपूज्ययोः' इति महीपः । गुर्वक्षराणां दीर्घवर्णानां पट्याकृत्वा पलमुदितं कथितं ।
पलानां पट्या कृत्वा घटिका कथिता । तथा घटीनां पट्या भं दिने नक्षत्रादिनं कथितं ।
एकया तिथ्या चंद्रमसोर्विधोर्दिनं स्यात् ॥ ४ ॥

खरम्परीच्युदयद्वयजांतरं यदिह सावनसंज्ञादिनं स्फुटम् ॥
प्रतिदिनं स्फुटभुक्तिमितिः सदा खरगभस्तिदिनं विबुधैः स्मृतम् ॥ ५ ॥

अथ द्रुतविलम्बितेन पूर्वाद्धेन साधनमुत्तराद्धेन सौरमानमाह—खरेति । इह सावना खरमरीनेः सूर्यस्योदयद्वयं तस्माज्जायते ज्ञाते जातमेवंविधमंतरं विचालं यत् स्यात् विनुषं मकटं तत् सावनसंज्ञादिनं स्मृतं । सदा सर्वस्मिन्काले प्रतिदिनेदिने भवति । कोर्धः । सूर्यः प्रतिदिनं स्पष्टां यां गतिं गच्छेत् इत्यर्थः । सैव खरगमस्तिदिनं स्मृतं खरास्तीक्ष्णाः गमस्तयः किरणा यस्य सस्तस्य दिनमित्यर्थः ॥ ५ ॥

स्वमितिमाः स्वखवहि३०मितैर्दिनैर्भवति माभिरिनैः १२ स्वसमास्तथा।
द्युनिशमैदवमासमितं सदा पितृषु चासितपक्षदलादितः ॥ ६ ॥

अथ पूर्वाद्धेन स्वस्वमासवर्षमानमाह—स्वमिति । स्वखवन्हिमितैर्निजशून्यरामप्रमितैर्दिनैः ३० कृत्वा स्वमितिमाः स्वकीयमासो भवति माशब्दोकारांतो हसांतश्च । 'मास्तु मासे' इति हैमः । तथाइनैर्मासैर्द्वादशभिः स्वकीय.समाः स्वकीयं वर्षं भवति बहुवचनांतः । अत्र सर्वत्र स्वशब्दग्रहणाद्यया त्रिंशद्दिनैः सूर्यस्य मासः स्यात् तथा षण्मासैः देवानां दिनं तैश्चिन्शन्मितैर्दिनैर्मासइत्यादि । एवं सर्वेषामपि स्वकीयमानेन ज्ञेयमिति अथोत्तराद्धेन वैश्यमानमाह । च पुनः पितृपूर्वजेषु असितपक्षदलादितः सदा ऐदवमासमितं चांद्रमासप्रमितं द्युनिशं अहोरात्रं भवति पितृणां कृष्णपक्षो दिनं रात्रिरित्यर्थः । यतः 'उदेति सूर्यः खलु कृष्णखंडे दिनोदयः स्यात्पितृणां दिनार्द्धं दर्शस्तमेत्यर्कइतीह शोक्ते दले च संख्या पितृणां निशेवम् ॥' इति शिद्धांतशिरोमणौ ॥ १ ॥

माने गुरोरगभिदः परिवत्सराणां पष्टिः ६० स्मृता
मुनिवरैः प्रभवादिकानाम् ॥ स्यादेकवत्सरमितिर्गुस्म-
ध्यमैकराशेस्तु भोगमितिरेव सदा तथाहि ॥ ७ ॥

अथ वसंततिलकया गुरुमानमाह—मानइति । अगान्पर्वणान् भिनसि छिनत्ति भित्तस्यागभिदो वज्जिणोगुरोर्वृहस्पतेः माने मुनिवरैः प्रभवादिकानां परिवत्सराणां स्मृता 'संपर्पन्द्रुचोऽपि वत्सरे' इति अभिधानचिन्तामणिः । तु पुनर्गुरुमध्यमैकराशेर्भोगममाणमेकवत्सरमेकं वर्षप्रमाणं सहेव स्यात् ॥ ७ ॥

प्रभवो विभवः शुक्रः प्रमोदः प्रपतिः ॥

अंगिराः श्रीमुखो भावो

चित्रभानुसुभान्वै च विज

मर्वजित्मर्चनी च तारण

स्नानंदन

विरोधी ।

यो जय

दुर्मुखस्तदनु प्रोक्तो हेमलंबकसंज्ञकः ॥

विलंबाख्यो विकारी स्याच्छर्वरीप्लवसंज्ञकौ ॥ ११ ॥

उक्तः शुभकृतस्तस्मादब्दः शोभनकृतस्मृतः ॥

क्रोधी विश्वावसुर्ज्ञेयो वत्सरो हि पराभवः ॥ १२ ॥

प्लवंगः कीलकाख्योथ सौम्यः साधारणाह्वयः ॥

ततो दिरोधकृन्नामा परिधाविप्रमाथिनौ ॥ १३ ॥

आनंदो राक्षसः प्रोक्तो नलः पिंगलसंज्ञकः ॥

कालयुक्ताख्यसिद्धार्थो रौद्रो दुर्मतिदुंदुभी ॥ १४ ॥

रुधिरोद्गारिक्ताक्षौ क्रोधनः क्षयकृतस्मृतः ॥

वत्सराणां गुरोर्मनि पष्टिसंख्येयमीरिता ॥ १५ ॥

तथाहि अयानुष्टमामष्टकेन पाष्टिमंवत्सराणां नामान्याह—प्रभवइत्याद्यारम्याष्टश्लोकी
सुगमा स्पष्टम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥

नगैर्नखैः २० संनिहतो द्विधा शकः सखत्रिशकोऽ

१४३० क्षयमांगमाजितः ६२५ ॥ गताः सतल्लब्धशकोऽ

अपड् ६० हृतोवशेषके स्युः प्रभवादिवत्सराः ॥ १६ ॥

अयं वंशस्येव गतवत्सरानाह—नगैरिति । शको द्विधा स्थाप्यते नयोर्मध्ये य उपरिस्थ
शकः सप्तभि ७ गण्यतेऽयस्तनवती य शकः सनखैर्विंशत्या सन्निहतो गुणित ततोविंशति-
गुणितशकः पष्ट्या विमजेदुपरिसप्तशके सयोनयेत् इतिश्लोके अस्पष्टमपि ज्ञेय अन्यथा-
अपविरोधोभवेत् पश्चात्सखत्रिशकः सह खत्रिशकेण वर्तते य सत्रिशदधिकचतुर्दशशतम-
हित क्रियते पुन पश्चात्सोऽक्षयमांगमानित पचविंशत्यधिकपट्टशतेन द्वय पुन पश्चात्स-
तल्लब्धशकः तस्माच्छब्दं तल्लब्धेन सह वर्तते य सतल्लब्ध मतल्लब्धश्चामौ शकश्च
सनल्लब्धशकः । कोष्य । सप्तशकाद्वरमक्ताद्यल्लब्धं तत्केवलशके योज्यते इत्यर्थः । पश्चा-
त्सतल्लब्धशकोऽप्यपट्टद्वय पष्ट्या न्हियते विशेषेण प्रभवादिवत्सरा गता स्युर्गित्यर्थः ।
अत्रोदाहरणम् । यथा शको १६३३ द्विस्थाने स्थाप्य उपरि ममभिर्गुणिने जान
११४३१ पश्चादयं स्थापितशकः विंशत्या गुणित ३२६६० तदाएवमान । एतपष्ट्या
६० विमज्य लब्ध ९४४१२० सप्तशके सयोज्य जानम् ११९०९१२० पश्चात्त्रिशद-
धिकचतुर्दशशतेन युक्त क्रियते १३४०९१२० तदा एव जान । पश्चात् पंचविंशत्य-
धिकपट्टशतेन भाजितस्ततोऽल्लब्ध फलं २१ शेष २८०१२० लब्धे ३१ केवलशकः
१६३३ योज्यते तदा १६९४ एव जानोय पष्ट्या द्वय शेष ३४ तस्मात्तद्वत्सराः

प्रमितावत्तरागतास्ततः प्रवनामसंवत्सरा पंचत्रिंशत्तमो वर्तमानो भवतीति रत्नमालाद्यानीतम्
एव शेषतोपि रत्नमालाद्युक्त्या वर्तमानवत्तरस्याभुक्तमासादिकं च भवेदिति स्पष्टम् ॥ १६ ॥

अथायने कीटमृगादिपदके क्रमेण ते दक्षिणसौम्यसंज्ञे ॥

तमीदिने सायनभागभास्वदुत्थे स्फुटे नाकसदामुभे स्तः ॥१७॥

अथोपनात्या दिवौकसां रात्रिदिनमानमाह—अथेति । क्रमेण दक्षिणसौम्यसंज्ञे की-
टमृगादिपदके अयने । कोर्थे । द्वेद्वेप्येकं संयोजनान् कीटादिपदके कर्कादिपदके दक्षिणायनं
मृगादिपदके मकरादिपदके उत्तरायणं ते उभे कर्तृपदे नाकसदां दिवौकसा तमीदिने रात्रिदिवमे
स्फुटे मरुटे स्त भवत । किञ्चक्षणे ते सायनभागभास्वदुत्थे । अयनांशसहितो यो
भास्वान् रविस्तस्मादुत्थे प्रादुर्भवे कर्कादि दक्षिणायनं देवानां रात्रिः । मकरादि उत्तरायणं
दिनमिति । सोम स्वाय्यस्यादनि सौम्या उत्तरा तस्या जातं सौम्यायनमिति ॥ १७ ॥

शाकः शरांभोधिगुणो ४४५ नितो हतो मानं

स्वतर्कं ६० स्यनांशकाः स्मृताः ॥ नोक्तं मया वाऽव्य-

वहारिकत्वतो मनो जगत्कर्तुरथेह मत्कृतो ॥ १८ ॥

अथोपनात्याऽयनांशमानमाह—शाकइति । शरं पञ्च अंशोधिश्चाशरो युगा-
श्चाशरः पञ्चिह्नीकृतो य शरं पुन सप्तैकं पञ्चाशदतो यादृश्यं तेऽयनांशकाः
स्मृताः यष्टेयं तदश्वत्थश्च स्मृता । अयान्तरे मया १६ मत्कृतो अययना नन पुनर्न-
गत्कर्तुर्महणो मान नीतं । अव्यवहारिरस्मत्तन्मस्य व्यवहारो हि लोके नास्ति ॥ १८ ॥

चौलोपयाममस्वमेव लब्धकूपमृपाभिपेरुग्रहसंवमया

दिकानाम् ॥ आरंभउष्णवपुषि हयने हि मौम्ये

स्यादन्यथा कविशुद्धयगे न शस्तः ॥ १९ ॥

अथोपजात्या षड्भूतनाह—सौम्येति । सौम्यायनादुत्तरायणाच्छिरस्ततोमधु-
र्वसंतस्ततोनिदाघोऽग्रीष्मः क्रमेण ऋतुः स्यात् । अपागयनाननादक्षिणायनमुखात् क्रमेण वर्षास्ततः
शरत् ततोहिमसंभवान् हैमंतऋतुः स्यात् इत्येते पूर्वोक्ताः षड्भूतवो दिवौकसां देवानां द्युरात्र-
केऽहोरात्रके काले स्युः ॥ २० ॥

मानेन कश्चिद्धिमरोचिषोमधोर्मध्वाननानेवमृतूनभापत ॥

मासैस्तुसाद्धैरदनैः ३२ । ६२ द्यदाधिकोमितैस्तदैतत्किमतो भवेदसत् ॥ २१ ॥

अथोपजात्याऽसन्मर्तमपाकरोति—मानेनेति । कश्चित्जोहिमरोचिषश्चंद्रस्य मानेन मधोश्चै
त्रान्मध्वाननात् मधुर्वसंतआननं सुखं येषां ते तातृतूनेवमभापत अकथयन् । तुरित्यवधारणे ।
यदा रदनैर्मितैर्द्वात्रिंशैर्मितैर्मासैः साद्धैः पक्षसाहितैः पंचपष्टिप्रमितं पक्षैराधिकोमासो भवेत् ।
तदा किं क्रियते अतएतन्मतमसत् ॥ २१ ॥

तिथ्यर्धमुंडनकरग्रहपितृकर्मयात्राव्रतोपवसनाद्यखिलाक्रियासु ॥

ग्राह्यं बुधैरनिशमैदवमानमेव नाड्यादिकं भवति चाखिलमार्क्षमानात् ॥

अथ वसंततिलक्या केपु कर्मसु किं मानं ग्राह्यं तदाह—तिथ्यर्धेति । बुधैरनिशं
निरंतरं तिथ्यर्द्धाद्यखिलक्रियास्वैदवमानं चांद्रमानमेव ग्राह्यं तिथ्यर्द्धं बधादिकरणम् । मुंडनं
चौलादि करग्रहो विवाहः पितृकर्म पूजकर्म यात्रा प्रयाणं व्रतमुपनयनं उपवसनमुपवासश्च
त्यादि येषां तानि तेषां द्वंद्वे एषामखिलाक्रियासु च पुनराधानादिकं घट्यादिक्रमानमार्क्ष-
मानान्नक्षत्रमानाववति । पूर्वोक्ततिथ्यर्द्धादिक्रियासु इत्यर्थः ॥ २२ ॥

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमेव देवमानादिमानमखिलं किल

सौरमानात् ॥ स्यात्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं

भुक्त्यादिकं दिविपदां खलु सावनाच्च ॥ २३ ॥

अथ सौरसावनविवेकतामाह—वर्षायनेति । किलेति संभावनायाम् वर्षादिपूर्वकं देवमाना-
दिमानं सकलसौरमानादेव स्यात् वर्षं वत्सरो अयनं प्रतीतं ऋतुः शिशिरादिः युगं सत्ययु-
गादिकं एतानि पूर्वं यस्मिन् । खलु निश्चितं । कृच्छ्रादिकं दिविपदां ग्रहाणां भुक्त्यादिकं
च मानं सकलं सावनादेव भवेत् । भुक्तिः स्पष्टा गतिः । कृच्छ्रं चांद्रायणादि । यतः 'त्र्यहं मानः
त्र्यहं सायं त्र्यहमद्याद्याचिनम् । त्र्यहं परं च नाश्रयात्कृच्छ्रं सातपनं स्पृतं ॥' 'कृच्छ्रं सातपना-
दिकम्' इत्यभिधानचिंतामणिः । सूतकं जन्ममरणादागतं । चिकित्सितं वैद्यकर्म । वासरं दिनं
इत्याद्यं यस्मिन्सूतं दिविपदामित्यलुप्तमासः ॥ २३ ॥

वर्षेकमध्ये शशिनो दिनानि हिमांशुसप्तमि ३७१मितानि तज्ज्ञः ॥

साद्धैः ३ द्विवाणांबु ५२ पलेर्धुतेन घटीत्रयेणेव युतान्यथाहुः ॥ २४ ॥

चाइनाक्षत्रसावनसौरवषम.

| | | | | |
|-----|-----|-----|-----|-----|
| १७१ | ३६६ | ३६५ | ३६० | दि. |
| ३ | १५ | १५ | ० | घटी |
| ५२ | ३० | ३० | ० | पल |
| ३० | २२ | २२ | ० | अ. |
| ० | ३० | ३० | ० | व. |

अथोपनातिकैकवर्षमध्ये चंद्रदिनसंख्यामाह—वर्षेकमध्ये इति । तज्ज्ञाद्वक्त्रा वर्षेकमध्ये शशिनश्चंद्रस्य सार्द्धे द्विबाणांबुपलैः त्रिंशदक्षरान्विताद्विपंचाशदलैः ५२।३० युतेनैवंविधेन घटीत्रयेण युनानि युक्तानि हिमागुसप्ताग्रिमितानि एकसप्तत्यधिकशतत्रयप्रमितान्येवंविधानि ३७१ दिनानि आहुः कथयन्ति २४

भवासरास्तत्र रसांगरामा ३६६ सार्द्धं ३० द्विदत्ता २२
नितखाग्नि ३० तुल्यैः ॥ पलैर्युताभिस्तिथिनाडिकाभिः
१५ युक्ताविधूना रविसावनाः ३६५ स्युः ॥ २५ ॥

अथोपनात्या भदिनसावनदिनसंख्यामाह—भवासराति । तत्र वर्षेकमध्ये सार्द्धे द्विदत्तान्वितसामि तुल्यैः पलैस्त्रिंशदक्षरान्वितद्वाविंशत्यक्षराधिकैश्चतुर्दशत्युताभिर्युक्ताभिरेवंविधाभिस्तिथिनाडिकाभिस्तिथिघटीभिः पंचदशप्रमितघटिकाभिर्युक्ताः रसांगरामसंख्याः षट्षष्ट्यधिकशतत्रयप्रमिताः ३६६ भवासराः नक्षत्रदिनाः स्युः ततो नक्षत्रवासरा विधूनाः विधुश्चंद्रस्तेन ऊनाहीना रहीता एकेन न्यूनाः कृताः रविसावनवासराः स्युः ॥ २५ ॥

सौरा नभोगाग्निमिता हि वासराः ३६० स्मृता बुधैः सर्वसु कर्मसु ध्रुवम् ।
यत्सौरचांद्रांतरमेकहायनेऽधिकं तदेवाऽव्यवहारिकं भवेत् ॥ २६ ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे मानाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

अथोपनात्या सौरदिनसंख्यामाह—सौरैति । ध्रुवं निश्चिनं सर्वेषु कर्मसु समस्तशुभकार्येषु बुधैर्नभोगाग्रिमिताः षष्ट्याधिकशतत्रयप्रमिताः सौराः वासराः सौरदिनाः स्मृताः । एकहायने एकवर्षे सौरचांद्रांतरं यदधिकं स्यात् तदधिकमेवाऽव्यवहारिकं भवेत् क्षयादिकाले शुभकार्यं न स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥

इति श्रीपीर्णमीयगच्छाधिराजभट्टरक्पुरदत्तश्रीमहिमाप्रभुसुरेध्वरणसरोरुहचको-

रायमानभावरत्नविरचिताया कालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य

मुखबोधिकाया मानाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

नव्यः श्रीश्रितमहिमाप्रभास्यसुरैः सर्वत्राऽस्सलतनयाप्रबोधपूषा ।

गुण्णात्युग्रतरतया कुले कुवादिदूकानां तदपि न चित्रमत्र लोके ॥ १ ॥

॥ अथ योगोत्पत्तिप्रकरणम् ॥ २ ॥

तावत्सर्वेषामसौम्याखलानां पंचांगेभ्योऽनेककृत्यांगकालम् ॥

वक्ष्येऽथाहं चोपपत्तिः प्रवक्तुं लोकानामग्रे युजामेव संज्ञाम् ॥ १ ॥

श्रीगुरवे नमोनमः ॥ अथ द्वितीयाध्यायं प्रथमं शालिनीवृत्ताष्टकेनाह—तावदिति । अथा-
नंतरं तावदादौ अहं पंचांगेभ्योऽस्ति विवारादिभ्यः सकाशान् युजां योगानां कर्कियमचंदादीनां
संज्ञामाह च पुनरुपपत्तिमुद्भवं सम्यक् ज्ञानं वा वक्ष्ये कथयिष्यामि । किं कर्तुम् । लोकानामग्रेऽ-
नेककृत्यांगकालं बहुविधविवाहादिकार्याणामंगानि तदवयवभूतानि तेषां कालं समयं प्रवक्तुं कथ-
नार्थं । कथं भूतानां युजा सर्वेषां समग्राणां । पुनः कथं भूतानां असौम्याखलानां । असौम्याः पा-
पश्च ते अखलाः सौम्याश्च ते तेषां । 'अंगमतिकगात्रयोः ॥ उपसर्जनमूने स्यादम्युपायप्रतीकयोः'
इति हेमः । इत्यर्थः ॥ १ ॥

नंदा भद्राख्या जया चेति रिक्ता पूर्णाः सर्वाः

पक्षतेः स्यात्क्रमेण ॥ शुक्लेऽथान्या नेष्टमन्योत्तमाः

स्युर्व्यस्ताकृष्णेऽपास्य रिक्ता हि सौम्याः ॥ २ ॥

अथ प्रथमं तिथिसंज्ञामाह—नंदेति । पक्षतेः प्रतिपत्सकाशात् क्रमेण सर्वास्तिथयो नंदा-
दिपंच संज्ञाः स्युश्चकारः समुच्चयार्थः । कोर्यः । प्रतिपत्पठ्येकादश्यो नंदाः । द्वितीयास्त-
मीद्वादश्यो भद्राः । तृतीयाष्टमीत्रयोदश्यो जयाः । चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यो रिक्ताः । पंचमी-
दशमीपंचदश्यः पूर्णा इति नामसद्वृत्तलाः । अथ शुक्लपक्षे नंदादिनिषयो नेष्टमन्योत्तमाः स्युः ।
कृष्णपक्षे व्यस्ता विपरिताः स्युः । अयं भाषार्थः । शुक्लपक्षे नंदादिपंचसु आद्या प्रतिपत्-
द्वितीयातृतीयाचतुर्थीपंचमीरूपाः पंचतिथयः नेष्टाः । एवमद्वितीयाः पंच तिथयः मध्याः । तृतीयाः
पंच तिथयः उत्तमाः । कृष्णपक्षे आद्याः पंच तिथयः उत्तमाः । द्वितीयाः पंच तिथयः मध्याः । तृतीयाः
पंच तिथयः नेष्टा इति । हिइति युक्तार्थे । रिक्तामपास्य हित्वाऽन्याः सर्वास्तिथयः सौम्याः शुभाः
स्युः यतः सामान्येन रिक्तादिर्वर्जं प्रायः आनु शुभकृत्यं कुर्यादित्यर्थः ॥ २ ॥

वारे नंदा पूर्वदेवार्चिताभिर्भद्रा विद्यारे जया सेनिरिक्ता ॥

पूर्णागीर्वाणेशवंधेऽखिलेषु कर्मस्वेवं दोषवत्यास्ति सिद्धा ॥ ३ ॥

अथेता एवं कारमिद्धाआह—वार इति । पूर्वदेवा दैत्याः 'पूर्वदेवाः शुक्रशिष्याः' इत्य-
भिरानन्तिनामणौ । नैरर्जिनावञ्चौ पादौ यस्य शुक्रस्य तस्य वारे नंदा दोषवती दोषयुक्ताऽपि
मिद्धा मिद्धिरुदसि केषु अखिलेषु समस्तेषु कर्मसु कार्येषु एवमनुना प्रकारेण विदि
नुशारे भद्रा आरे भीमे जया । इतस्य सूर्यस्याऽनृत्यं ऐनिः शानिः सह ऐनिना वर्तने
वा मा मैनिः मैनिश्चामौ रिक्ता च सेनिरिक्ता शनिवारे रिक्ता । गीर्वाणानां देवानामीशद-
स्त्रंश्य वयो गुरुभ्य वारे पूर्णा । इतः सामिर्भ्ययोः । इति कोशः ॥ ३ ॥

सर्वारंभे भूमिदायादभान्वोर्नंदागुर्विदोश्च भद्रा जया ज्ञे ॥

रिक्ता धिष्ण्ये हेलिसूनौ च पूर्णे ज्ञेया याम्यागारदा कालविद्धिः ॥४॥

अथैता एव भौमादिवारैर्नेष्टा आह—सर्वेति । कालविद्धिर्देवज्ञैः सर्वारंभेषु सर्वकार्यमारं-
भेषु भूमिदायादभान्वोर्भूमिदायादः पुत्रो मौमः स च मानुश्च तयोर्मगले रवौ च नंदा तिथिर्या-
म्यागारदा यमस्येदं याम्यं तच्चवागारं गृहं च तद्ददातीति मृत्युदा ज्ञेया । चः समुच्चयार्थः । एवं
सर्वत्रापि योज्यं । गुर्विदोर्गुरौ चंद्रे च भद्रा । ज्ञे बुधे जया । धिष्ण्ये शुके रिक्ता । हेलिसूनौ
सूर्यसुते पूर्णादिति । 'दायादौ सुतसंपिंडौ' इति हेमोनेकार्थः । 'धिष्ण्योग्रौ शुके च' इति तत्रैव ॥४॥

व्याशा. २।१० तुल्ये पक्षरंध्रे तिथी स्याद्युग्माऽपास्या

या. तिथिश्चाप्ययुग्मा ॥ तासां सौम्या १५ गोमितं ९

प्रोह्य सर्वाः शस्ताः सर्वासु क्रियास्वेव वस्तम् ॥ ५ ॥

अथ पक्षरंध्रतिथीनाह—व्याशाशति । युग्मा समसंख्या तिथिः पक्षरंध्रमितिनाम स्यात् ।
किं कृत्वा तासां समतिथीनां मध्ये व्याशातुल्ये द्विः द्वौ आशा द्विक् ताम्यां तुल्ये द्वितीयादश-
म्यौ तिथौ अपास्य त्यक्त्वा च पुनरेव अयुग्मापि विषमसंख्यापि अमाऽमावास्या पक्षरंध्रं
स्यान् अत्र पक्षरंध्रं गोमितं पक्षं नवमी च प्रोह्य विहाय सर्वाः सौम्यास्तिथयः सर्वासु क्रियास्वेव
सर्वकार्येषु शस्ताः स्युः । अत्र यद्यपि पक्षरंध्रमध्ये नवमी नोक्ता न कार्ये निषिद्धा तथापि
ग्रंथांतरे प्रोक्ता । पक्षछिद्राणि यद्वाहुः 'पष्ठमऽष्टमी चतुर्थी चतुर्दशी द्वादशी कुह नवमी ॥
पक्षछिद्राण्याहुर्लभते नैतेषु संसिद्धिः' इति ॥ ५ ॥

योगः कर्कसंज्ञकोऽथो तिथेस्तद्वारस्येते मानयोगेनिशं स्यात् ॥

विश्वा१३भिन्ने सूरिभिर्गोर्हितोयं यानोद्वाहाद्येषु कार्येषु नूनम् ॥६॥

अथ कर्कयोगमाह—योगइति । अथो अनंतरमनिशं सदा कर्कसंज्ञको योगः स्यान्
कस्मिन् सति । विश्वाभिन्ने त्रयोदशसंख्याविच्छिन्ने तिथेस्तद्वारस्य तस्य तिथ्यावारस्तद्वारस्तस्य
च मानयोगे इतिप्रसिद्धे सति । अयमभिप्रायो यत्संख्या तिथिर्यावत्संख्याकोवारस्तनयो. संख्यामेलने
त्रयोदशयापाति तदर्थं । यथाच । द्वादश्यां राविस्तदा कर्कः स्यात् । एवमेकादश्या चन्द्रः
दशम्यां मंगलः नवम्यां बुधः अष्टम्यां शुकः सप्तम्यां शुकः षष्ठ्या शनिरिति । अथ
योगो नूनं सूरिभिः प्राज्ञैर्यानोद्वाहाद्येषु प्रयाणविवाहादिषु कार्येषु गौरितस्तिरस्त्यनः ॥ ६ ॥

संवर्तः स्यादत्रिदृक्जातमनुस्तिथ्यां चारं पक्षमूला १ श्रितायाम् ॥

सप्तम्यामंशुर्यदायं क्रियासु प्राज्ञेयंगो वर्जनीयोऽस्ति लासु ॥ ७ ॥

अथ संवर्तस्ययोगमाह—संवर्तइति । यदा पक्षमूलाश्रितायां पक्षमूलपक्षानि तामाश्रितायां
तिथ्यां प्रतिपद्युतद्वितीयायां तिथौ अत्रिदृग्जातमनुस्तिथ्यां जानो विपुस्तस्य नूनं बुधः

स्यात् । च पुनर्यदाऽशुः सूर्यः सप्तम्यां स्यात् तदा सः संवर्ताख्ययोगः स्यात् । मातैररं शीघ्रम-
खिलासु क्रियास्वयं योगो वर्तनीयो हेयः ॥ ७ ॥

देया मेपात्पक्षतेराशिचक्रे पूर्णामुक्त्वा चाखिला या क्रमेण ॥

स्यात्सा तद्वत्पूर्णतिथ्यंघयोत्र क्रूराक्रांता सर्वकर्मस्वनिष्टा ॥ ८ ॥

अथ क्रूराक्रांततिथीराह—देयाइति । अत्र राशिचक्रे सुधीर्मेपाच्च पुनः पक्षतेः प्रनिपत्तः
सकाशात्क्रमेणाखिलास्तिथयो देयाः स्थापनीयाः । किंहुत्वा । पूर्णामुक्त्वा या तिथिः क्रूराक्रांता
क्रूरग्रहैराक्रमिता स्यात् सा सर्वकर्मस्वनिष्टा दोषदा स्यात् । च पुनस्तद्वत् तिथिवत्
पूर्णतिथ्यंघयः पंचमोदशमीपौर्णमासीना चरणा स्याप्याः क्रूराग्रहैर्योधिराक्रमितः सोऽप्यनिष्टः
स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

क्रूराग्रहतिथिचक्रम्.

| मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ष. | म. | कु. | मीरा |
|-----------|-----------|-----------|-----------|-----------|-----------|-----------|---------------|---------------|---------------|---------------|------------------|
| १-२ | ३ | ४ | ६ | ७ | ८ | ९ | ११ | १२ | १३ | १४ | तिथिय |
| पच घटी | पच घटी | पच घटी | दश घटी | दश घटी | दश घटी | दश घटी | पूर्णा घटी | पूर्णा घटी | पूर्णा घटी | पूर्णा घटी | तिथि चर णा |
| १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | |
| १ | २ | ३ | ४ | १ | २ | ३ | ४ | २ | ३ | ४ | श्री |

ध्वांतध्वंसविधिर्वलाहकरसागारं १२ गृहं चैति वा कोदंडं हरमौ-
लिसंस्थितकला दग्धा द्वितीया तदा ॥ ज्ञेयैकांतरराशिर्गैरमणावे
कांतैवं तिथिर्दग्धातो भवति क्रमेण सकलारंभेषु नेष्टप्रदा ॥ ९ ॥

अथ शार्दूलविक्रीडिनेन दग्धतिथीराह—ध्वांतोति । ध्वातध्वंसविधिः । ध्वांतध्वंसमघकार
विनाशं विधाति सृजति इति विधिः । निषत् विधाने घातो रूपं । अथवाघकारविनाशो
विधीयतेऽनेनेतिविधिर्घकारप्रशविधानो रविः । बलाहकोति । बलाहको मेघस्तस्य रसेषु
जलेषु अगारं गेहं यस्य स मीनस्तस्य गृहमाल्योराशित् । बलाहकरसागारसंक्रमित्याधिपाटे
बलाहकरसेषु अगारं यस्य ॥ मीनश्चाऽमो वृश्चिकराशिश्चेत्यर्थः । तमेति प्राप्नोति 'घनरमो
यादेनिवासोऽमृतम्' इतिहमः । च पुनर्वाऽथवा रविः कोदंडधनुराशिमिति तदा हरमौलि-
मस्त्यनकला द्वितीया तिथिर्दग्धा स्यात् । हरमौली स्थोना कलाइव कला यस्यां सा द्वितीया
तिथिर्दग्धेति अनेन विशेषणेन शंभुमूर्द्धस्थितकलाप्रापितध्वंशेणोपलक्षितेति विशिष्टवाचकाना
पदाना एष्वविशेषणे समवधाने विशेष्यमात्रपरता । द्वितीयेति । 'सकीचर्कैर्यस्तपूर्णैर्ध्वं'
इत्यादिन् । मीनाकं धनुरकं च द्वितीया दग्धेतिस्पष्टार्थः । एवममुना प्रसारेण मीनराशितो
धनुराशित एकांतरराशिर्गैरमणौ सूर्ये सति द्वितीयान् एकानरा निर्दिग्धा ज्ञेयाः स्पष्टमाह ।

वृषकुंभार्के चतुर्थी मेघकर्के षष्ठी मियुनरुन्यार्केऽष्टमी सिंहशुक्रार्के दशमी तुलामकरार्के द्वादशीति
 यदुक्तमारभसिद्धौ दशार्केति । 'द्वद्वकन्ये ३।६ मृगेंद्राजौ १०।८ तुलैणे ७।१०।१।२ व्यादियुक्
 तिथिः' इति अतः कारणादग्या तिथिः सकलारभेषु नेष्टप्रदा वाञ्छितदायिनी न भवति ॥ ९ ॥

वृद्धिर्मगलदा बलात्त्वथ खला लक्ष्मीवती स्याद्यशा-
 मित्राख्या निजनाम प्रख्यफलदा तद्वद्वतोग्राह्या ॥
 सौम्यानंदपदा यशोगुणवती तस्माज्ज्योग्राह्या सौ-
 म्याख्या तिथितस्त्विमा निगदिताः संज्ञा बुधैः पक्षतेः ॥ १० ॥

अथ शार्दूलविक्रीडितेन प्रतिपदादितिथीनां संज्ञामाह—वृद्धिरिति। बुधैः पक्षते प्रतिपत्तिथितो
 निजनामाख्यतुल्यफलदा इमाः संज्ञा ज्ञेया निगदिताः कथिताः । प्रतिपदः वृद्धिरितिसंज्ञा ।
 क्रमादेव द्वितीयादितिथीनां मगलदादिसंज्ञा ज्ञेया इति स्पष्टम् । 'स्थिरुत्तरपदैः प्रख्यः प्रकारं
 प्रतिमो निभ' इति हेमः । अत्र प्रसयोगोवर्णत्वेपि प्राक् पूर्वमर्करो न दीर्घो लघुप्रयत्नत्वात् । छन्दो-
 नुशासनेोक्तं तेन छरोर्मगेनेति ॥ १० ॥

अथोच्यते दक्षमतो भनायका दस्रो यमो वह्निकसोमशंभवः ॥

मयादितीज्योरगपूर्वजा भगोर्यमोष्णकृत्वष्टसमीरणाह्वयाः ॥ ११ ॥

वृत्रासुरप्राणहरकृपीटजौ मित्रो मरुत्वानथ यातु पुष्करम् ॥

विश्वेविधिर्विष्णुवसू प्रचेतसश्चाजांघ्र्यहिर्बुधविदन्तखेचराः ॥ १२ ॥

अथ वसंततिलकेनेन्द्रवंशाभ्यामष्टविंशतिनक्षत्राणामीशानाह—अथोच्येति । अथान्नरं मया
 दक्षमतोऽश्विनीनक्षत्रतो भनायका नक्षत्रस्वामिनः एते इति उच्यते । अश्विनो देवदेवौ द्विवचनातो-
 र्यशब्दः १ म० यमः २ रु० वह्निः ३ रो० को० ब्रह्मा ४ मृ० सोमः ५ आ० शम्भुः ६
 पु० अदितिर्देवमाता ७ पु० इन्द्रो गुरुः ८ 'इन्द्रा स्यात्संगमे दाने यागेर्चायां गुरो गावे । इतिकोश'
 श्ले० उरगः ९ म० पूर्वजा पितरः १० पु० भगो योनिः ११ उ० फा० अर्यमा सूर्यभेदः १२
 ह० उष्णरत्न सूर्यः १३ वि० लघ्वा विश्वकर्मा १४ स्वा० समीरणाह्वयो वायुनामा १५ ॥ ११ ॥
 वृत्रेति । वि० वृत्रासुरप्राणहरो वृत्रदेत्यारिः रिन्द्रः कृपीटजोभिः कृपीटे जले तस्माज्जानतः
 इति विग्रहः 'कृपीटयोर्निर्दमुनाः' इत्याभिरानर्चनामाणि 'कृपीटे जले' हेमशेपे बोधो ।
 इमौ द्वावीशौ शक्राभीक्ष्ण्यम् । निशाध्यायाआद्यर्क्षे इन्द्रापरेशमिन्द्वना अनण्यास्याद्विद्वन्संज्ञा
 मिश्रसंज्ञा च । अनयोक्तं दैवज्ञवृत्तये 'पूर्वाद्धे मृदु कर्म चास्य सकलं तीक्ष्णं द्वितीये
 दले' इति १६ अ० मित्रः सूर्यभेदः १७ ज्ये० मरुत्वानिन्द्रः १८ मू० यातु राक्षसः यातुशब्दो न-
 पुमकः १९ पु० पुष्करं जले 'पुष्करं द्वीपनीर्याहि सगरागौप रांनरो ॥ तूर्याभ्ये मरुतेषां दे शृङ्गाम्रं खे
 नपुंउदे' इति हेमः २० उ० विश्वे इति विश्वो निस्त्रोत्रदेवताः सर्वादिवाज्यम् शमीपारः । नन्वत्र

संज्ञावाचिनो विश्वशब्दस्य कथं सर्वादित्वम् । असंज्ञायां सर्वादिरिति वचनात् । उच्यते छान्दोग्ये प्रयोगस्तेन संज्ञायामपि सर्वादित्वम् २१ अभि० विधिर्विज्ञा २२ अ० विष्णुः केशव. २३ व० वसवो-
ऽष्टौ । यदुक्तम् । 'धरा ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानलोनिलः । प्रत्यूषश्च मृदोषश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता.'
इति २४ श० प्रचेता वरुणः २५ पू० अनाविः वास्तुशास्त्रप्रसिद्धो हृदयकोष्ठस्थो देवो
रुद्राणामन्यतमो जपादः २६ उ० मा० अहिर्बुध्नो रुद्रमेदः । यदाहुः । अजपादोऽयमहिर्बुध्नः
पितृणां हरीरवताः ॥ शंभुः शर्वो मृगव्याधः कपालो ज्यं वक्रो भवः' इत्येकादशरुद्रनामानि
२७ रे० विदंतले चर इति विगता नष्टा दंता रदा यस्य सचासौ लेचरश्च पूषेत्यर्थः । २८ अयं च
'यद्वे नष्टदन्तोऽयमवन्' इति श्रुतिः यतो दक्षाध्वरध्वं सने हि पूष्णो दंता महेश्वरेण पातिताः यद्वा-
युपुराणे । 'ततः क्रोधाभिभूतेन पूष्णो वगेन शंभुना । मुष्टिमाहत्य दशनाः पातिता धरणीतले'
इति पूषा रविमेदः यदाहुः । घातु १ अयं २ मित्र ३ वरुण ४ अंशु ५ मग
६ इक्ष ७ विवस्वन् ८ पूषन् ९ पर्जन्य १० विष्णुः ११ त्वष्टा १२ संज्ञा द्वादश सूर्या इति ।
प्रयोननं चैतेषां तु देवतानाम्ना नक्षत्रव्यवहार इति । अत्र बन्धिश्च कश्च सोमश्च शंभुश्चैतेषां द्वंद्वः
अदितिश्च इज्यश्च उरगश्च पूर्वजाश्चैषां द्वंद्वः । उष्णकृच्च त्वष्टा च समीरणाहयश्चैतेषां द्वंद्वः ।
विष्णुश्च वसवश्च प्रचेताश्चैतेषां द्वंद्वः । अनाविश्च अहिर्बुध्नश्च विदंतले चरश्चैषां द्वंद्वः । चकारः
समुच्चयार्थ इति । समासादिकं स्वयमप्युक्तमित्यर्थः ॥ १२ ॥

सनिर्जरज्येष्ठभमुत्तरात्रयं स्थिरं जगुश्चानिशमाद्यसूरयः ॥

समारुतं सादिति भं गदाग्रजज्योतिः श्रविष्ठांबुषभान्वितं चरम् ॥ १३ ॥

अथोपजात्या स्थिरचरसंज्ञभान्याह—सनिर्जरेति । अनिशं निरंतरमाद्यसूरयः पूर्वाचार्याः
सनिर्जरज्येष्ठमं निर्जरज्येष्ठो ब्रह्मा । 'सुरज्येष्ठे विरिचने' इति हेमः । तस्य भं रोहिणी तेन
सह वर्तमानमुत्तरात्रिकं स्थिरं स्थिरसंज्ञं जगुरुन्तु । रोहिणी उत्तराकृत्स्नानी उत्तरापादा उत्तरा-
माद्रपदा इति भवतुष्कं स्थिरं । च पुनराद्यसूरयः समारुतं स्वाविमहितं सादिति भं पुनर्व-
सुसहितं श्रविष्ठा घनिष्ठा अंबुषो वरुणस्तस्य भं शतभिषक् आप्यामान्वितं सहितं गदाग्रजो वि-
ष्णुस्तस्य ज्योतिर्भं श्रवणं विशेष्यकर्मपदं चरं चरसंज्ञं जगुरिति भवेच्चक्रं चरं । 'ज्योतिर्हि
नाधिपे बहौ नक्षत्रेऽक्षिप्रकाशयोः' इति महीपः । इत्यर्थः ॥ १३ ॥

मनीषिणो निर्जरवर्द्धकींदुभे समैत्रपौष्णेमृदुसंज्ञके विदुः ।

दाक्षाभिजिह्वं ससुरेज्यदैवतान्यथो लघूनीह पुराणविग्रहाः ॥ १४ ॥

। अथोपजात्यामृदुलघुनक्षत्राण्याह—मनीषिण इति । मनीषिणः पंडिताः समैत्रपौष्णेऽमुराधारे
बत्तीयुके निर्जरवर्द्धकींदुभे निर्जराणां देवानां सूत्रधारो विश्वकर्मा तस्य भं चित्रा इंदुभं मृग-
शिरः द्वंद्वे कृते तेभ्यः कर्मपदे मृदुसंज्ञके विदुः अवधारयन्ति । इति भवतुष्कं मृदुमज्ञं । अपो
अनतरं पुराणविग्रहाः पुरातनशरीरा वृद्धा इहाधिकारे दम्नोऽश्विनी अभिजित् हस्तोऽरविस्तस्य

मं हस्तः सुरेज्यो गुरुर्देवतं यस्य तद्गं पुण्यः एषां द्वंद्वः । तानि भानि लघुनि विदुर्जानेति इदं
भचतुष्कं लघु 'पुराणः मत्नशास्त्रयोः' इति हैमः 'वेधोहंस' इतिहेमः ॥ १४ ॥

सरिद्विराकाद्रकपर्दिभोगिनोर्भाभ्यां युते गोपतिनैकपेयमे ॥

तीक्ष्णाद्वयेऽथांतकपित्र्यभान्वितं पूर्वात्रयं चोग्रमुशंति कृष्टयः ॥ १५ ॥

अथोपजात्या तीक्ष्णोअभान्याह—सरिद्वरेति । कृष्टयः पंडिताः सरितां नदीनां मध्ये बरा
गंगा तस्याः कानि जलानि तैरार्द्रः । द्वित्रः कपर्दो जटाजूटो यस्य स रुद्रश्च भोगी सर्पश्च
तयोर्भाभ्यामार्द्राश्लेषाभ्यां युते युक्ते एवंविधे गोः स्वर्गस्य पतिरिन्द्रः निकषाया अपत्यं नैकपे-
यो राक्षसस्तयोर्भे ज्येष्ठामूले इतिकर्मपदं तीक्ष्णाद्वह्ये उशन्ति इच्छन्ति । इदं भचतुष्कं ती-
क्ष्णम् । अथ च पुनः कृष्टयोंतको यमः पितरः पर्वजा एतयोर्भान्वितं मरणीमधायुक्त पूर्वात्रयं
पूर्वाकरुणीपूर्वापाठापूर्वाभाद्रपदेति त्रिकमुग्रसंज्ञमुशंति । इदं भपंचकमुग्रम् 'कृतिकृष्टयभिरूप-
धीराः' इति हैमः ॥ १५ ॥

तनूनपादंगनया युतं बुधैर्द्विदैवतं मिश्रमथ प्रकीर्तितम् ॥

निजाभिधानप्रतिमोक्तकर्मणां स्मृतानि सर्वाण्यपि साधने सदा ॥ १६ ॥

अथ वंशस्थेन मिश्रमंतेषां फलं चाह—तनूनपादिति । बुधैः तनूनपादमिः अंगना पंद्रस्त्रीनस-
त्रं कृत्तिका । 'अष्टाविंशतिरश्विन्यादयः सर्वाः शशिमिया' इतिहेमवचनात् । एवं यत्र चंद्रवाच-
कशब्दांगनाशब्दपर्यायोदृश्यते तत्र नक्षत्रमितिज्ञातव्यम् । वक्ष्यमाणाऽधिकारेसर्वत्र तथा युतं ।
द्विदैवतं विशालामिश्रं मिश्रसंज्ञं प्रकीर्तितम् । इदं भयुग्मं मिश्रम् । अपैषां फलमाह सदा
एतानि सर्वाणि स्थिरादीनि निनस्वकीयनामतुल्योक्तकर्मणां साधने स्मृतानीत्यर्थः ॥ १६ ॥

ध्रुवं स्थिरं धीरमलोलमुक्तं चरं चलं लोलमधीरसंज्ञम् ॥

भैत्रं बुधैर्यन्मृदुहारि सौम्यं भीष्मं स्मृतं क्रूरतरं तथोग्रम् ॥ १७ ॥

अथोपजात्या स्थिरादीनां संज्ञांतरमाह—ध्रुवमिति । बुधे स्थिरं ध्रुवं धीरं चोक्तम् ।
एवं चरं चलं लोलमधीरं धीरं चोक्तम् । मृदुहारि सौम्यं चोक्तम् तथा एतन् उग्रं भीष्मं
क्रूरतरं च स्मृतम् ॥ १७ ॥

॥ तीक्ष्णं खरं दारुणं भवेत्लघु क्षिप्रं च साधारणमेव मिश्रम् ॥

भपंचकं दारुणपाशगे सदाऽनिष्टं श्रविष्ठोत्तरखण्डपूर्वकम् ॥ १८ ॥

तीक्ष्णे तीक्ष्णं खरं दारुणं भवेत्लघु क्षिप्रं च भवेत् साधारण एव मिश्रमं भवेत् इत्यर्थः ।
अथ धनिष्ठादिपंचकमाह—श्रविष्ठोत्तरखण्डपूर्वकं धनिष्ठोत्तरसंज्ञादारुण्यं रेवत्यं न भपंचकं पंच-
ययोग इति सदाऽनिष्टं मन्यते । किंलघुं भपंचकं । दारुणपाशगे वरुणमंताविपादाश्रयम् ॥ १८ ॥

प्रेतं नयेत्पितृवनं न चौकसो न गोपनं दारुतृणौघसंग्रहः ॥

यानं यमाशां ग्रथनं न रज्जुभिर्भेषचकेस्मिन्विदधीत शायनम् ॥ १९ ॥

अथ पंचके हेयमाह—प्रेतमिति । जनइतिशेषः । अस्मिन् भेषचके प्रेतं शवं पितृवनं श्मशानम् न नयेन्न प्रापयेत् श्मशानमित्याधारे गौणकर्म । अस्य धातोर्द्विकर्मकत्वात् । अपुनरस्मिन् चौकसो गृहस्य गोपनमाच्छादनं न स्यात् । एवं दारुतृणौघसंग्रहो न स्यात् । एवं यममश्रुते प्राप्नोति यमाशी दक्षिणादिगन्तार्तं यानं प्रयाणं न स्यात् । पुनरत्र जनोरज्जुभिः कृत्वा शयनस्य भेषकस्येदं शायनं ग्रथनं न विदधीत न कुर्वीत । अत्र देवान्मृतस्याग्निस्कारविधानं स्मृत्यंतरादयज्ञेयम् । 'प्रेतो मृते मृतविशेषे च' इतिहेमः ॥ १९ ॥

द्विपालकन्यालधनंजयोग्रभं क्रव्यादभानां नवकं जगुर्बुधाः ॥

कासारकूपाननकर्मसाधने हितं तथाधोमुखमुद्धृतौ क्षितेः ॥ २० ॥

अथाधोमुखसंज्ञनक्षत्राण्याह—द्विपेति । बुधाः द्विपालकं द्विस्वामिकं विशाला व्यालस्य सर्पस्य भमाश्लेषा धनंजयोभिस्तस्य भं कृत्तिका उग्रभांनि पूर्वात्रयमघाभरण्यः क्रव्यादो राक्षसस्तस्य भं मूळं एषां छंदः । एषा भानां नवकमधोमुखसंज्ञं कासारादिकर्मसाधने हितकारि जगुर्बुधाः । कासारस्तडागं कूप आननं मुखं एषा कर्मणा तेषां साधने विधानेऽत्राननशब्दस्याऽदिशब्दार्थत्वात् वापीभूमिगुहादीनां ग्रहणं । तथा क्षिते 'एधेव्याउद्धृतौ' खनने हितमिति । 'न्यालो दुष्टगने सर्वे शवे श्वापदसिंहयो' इति । 'यतंजयोनामभेदे ककुब्भेदे च' मारुते ॥ पार्थिवौ' इतिहेमः ॥ २० ॥

सकाश्यपीद्राऽमरवैद्यमारुतग्रधेन्दुदाराणि विदुर्मूर्खन्यपि ॥

तिर्यङ्मुखान्येपुतरीक्रियामनोक्षवीभगोऽश्वाननकर्मकोविदाः ॥ २१ ॥

अथ तिर्यङ्मुखभान्याह—सकाश्यपीति । कोविदाः बुधाः सकाश्यपी कश्यपस्य स्त्री काश्यपी अधिकारादत्रादितिः इन्द्रः अमरवैद्यः मारुतः ग्रधः रविः एषां छंदः । एषामिन्दुदारा नक्षत्राणि पुनर्भुग्येष्टाश्विनीस्तातिहस्ताभिधानैः सह विद्यन्ते इतिमकाश्यप्यादिगुदाराणि मृदूनि चित्रामृगरेक्यनुराधाभानि तिर्यङ्मुखसमज्ञानि । विदुर्नान्ति । अपिरितियुक्तार्थे च पुनर्बुधा एषु नपसु तरीक्रिया नौकृत्यं अनोक्षादिकर्म च विदुः । अन शकटः अतः पाशकः वि. शुरुसारिकादिपक्षी इभो हस्ती गौः प्रतीतः अश्वआननं मुखं येषां ते तेषां कर्म कार्यमिति । 'पाशकः प्रासनाऽश्वश्च देवन' इतिहेमः । काश्यपस्य कलत्राणि त्रयोदश यदुक्तं भूगोले । दितिः १ अदितिः २ कष्टः ३ सेनब्राह्मणं ४ भानुयोगेश्वरी ५ विनना ६ सविका ७ सुप्रभा ८ सङ्गेनरा ९ मिथुना १० दिवी ११ कालिनरी १२ कनका १३ इति ॥ २१ ॥

रमाधवोमाधवजीवधीरभप्राचेतसेणांकवशाः सवासवाः ॥

उदानतावारणधामचामरध्वजातपत्राद्यृतये हिताः स्मृताः ॥ २२ ॥

अथ वशम्येनोर्ध्वमुखनक्षत्राण्यह—रमेति । सङ्गि सवासवा धनिष्ठयायुता
रमाधवो विष्णु श्रवण उमाधव शमु आर्द्रा जीव गुरु पुष्य । धीरभानि रोहिण्युत्तरा
त्रये । प्रचेता वरुणस्तस्यैणाकवशा चद्रस्त्री शतभिषक् आसा द्रव एतास्ताराउदानना उदं
मुखसज्ञा स्मृता प्रोक्ता । किंभूता एता हिता हितकारिण्य । कस्मै वारणधाम हरित
धाम अंबाडोइतिभाषा । चामरं घना पताका आतपत्रं छत्रं एषाद्रव । एषामाधृतये धा
रणाय । हितादियोगे चतुर्थी । क्वचित्प्रचेतसेणाकवृतिपाठोऽपपाठ प्रचेत शब्दो हसतत्वादिसर्ग
लोप एव । इतिनवकमूर्द्धमुखसंज्ञम् ॥ २२ ॥

द्विदैवतादित्यभसंयुतानि ध्रुवाणि भान्यत्र जगुर्वहन्ति ॥

जघन्यसंज्ञान्यहिशान्तकेंद्रप्रभंजनानां भःपतिभानि चार्याः ॥ २३ ॥

अथोपेन्द्रवज्रया बृहद्भान्याह—द्विदैवतेति। आर्या द्विदैवत विशाखा आदित्यभ पुनर्वसु 'पुन
'वेसुप्रयामुक्त्वा आदित्यै च' इति हैम । आर्या सयुतानि ध्रुवाणि भानि रोहिण्युत्तरात्रयभानि बृहत्
ज्ञानि जगु । च पुनराया । अहिराक्षेया शेरुद्र आर्द्रा अतको भरणी इन्द्रो ज्येष्ठा प्रभननो वायु
स्वाति अभपतिर्वरुणस्तर्ज शतभिषक् । एतानि भानि पंच जघन्यसंज्ञानि जगु । 'च प्रागुक्तोऽ
श शमु शा गौरी कमलाख्या' इत्येकाक्षरकोशे ॥ २३ ॥

शेषाणि भान्यक्षधरामितानि समानसंज्ञानि वदन्ति संतः ॥

लघुध्रुवाधोक्षजभानि शश्वत्सौम्यादयान्यत्थभसंयुतानि ॥ २४ ॥

अथोपनाट्या समानभान्याह—शेषाणीति । संत शेषाण्यक्षधरामितानि पंचदशप्रमित
भानि समानसंज्ञानि वदति । अश्विनी टत्तिका मृगशिरपुष्या पूर्वार्द्रा मघा हस्त श्रित्रा अनुराधा मूल
श्रवण धनिष्ठा रेवेति इति पंचदश । पुन शश्वत्तितर संत अत्यभसयुतानि रेवत्यायुक्तानि लघु
अश्विन्यभिनिद्रस्तपुष्यभानि ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयभानि अधोक्षनो विष्णुस्तर्ज श्रवण ए
द्रव । एतानि भानि संम्यसंज्ञानि वदन्ति ॥ २४ ॥

मिश्रौषधीशाग्रजविश्वकर्मणामुद्हन्युशंतीज्यवमृतशश्विनी ॥

भाम्यां युतानां भगरक्षसोस्तथा कुलोदयाख्यानि चित्रक्षणे श्वरा ॥ २५ ॥

अथोपनाट्या कुलोदयभान्याह—मिश्रेति । चित्रक्षणे श्वरा पंडितवरा मिश्रे टत्ति
विशाखे ओषधीशशश्वन्मृगशिरा अग्रना पूर्वना मघा विश्वकर्मा निषा एषा द्रव । एतानि भ
नि किंभूताना मिश्रौषधीशाग्रजविश्वकर्मणा भगरक्षमोर्ध्वनिराक्षमयोर्ध्वम्या पूर्वोक्ता लघुनीमूला म
युताना तथा ईज्य पुष्य वमवोपनिष्ठा उत्तरात्रय अश्विनी एषा द्रव । एषामुदनि उदं
वाहन्ति । इतित्रयोदश कुलोदयाख्यानि ॥ २५ ॥

ककांतकादित्यकमूरपूष्णामाहुर्वुधाधोपकुलानिभानि ॥

भवाविषद्यालयनेशमित्रज्योतींषि सेंद्राणि कुलाकुलानि ॥ २६ ॥

अथोपजात्योपकुलकुलाकुलभान्याह—ककोति । वुवा-ककादीनां भानि उपकुलसंज्ञान्याहुः कथयति । को ब्रह्मा रोहिणी को वायुः स्वाति । अंतको भरणी आदित्य-पुनर्वसुः कं जलं पूर्वाषाढा मूरः सूर्योदहस्तः पूषा रेवति एषा इंद्रः एषां च पुनर्वुषा-संज्ञाणि ज्येष्ठामहितानि भवो रुद्रः आर्द्रा अविषदितिच्छेदस्तथाच 'अकारो वासुदेवे स्यात्' इतितदैवतं श्रवणं अविषदः अनपादः पूर्वा भाद्रपदा व्यानोश्छेपा वनेशो जलपातिर्वरुणः शनभिषक् मित्रोऽनुराधा एषां इंद्रः एषां ज्योतींषि भानि कुलाकुलानि तन्नामानि आहुः । 'को ब्रह्मण्यात्मानि रवो मयूरेग्रौ यमेशनिष्ठे । कं शी-र्षेऽसुमुखे' इतिकोश ॥ २६ ॥

निरंवकं भं विकनीनिकं भवेदपांगपीडं च कलांवकं ततः ॥

पुण्यादिहेयान्ननु नष्टवस्तुनः सुलोचने नाप्तिमिति क्रमेण तु ॥ २७ ॥

अथावकादिभान्याह—निरंवकमिति । पुण्याच्चतुष्कं चतुष्कं प्रतिमं क्रमेण निरंवकं निर्गते अंवके यस्मात्तदं गताक्षं भवेत् । ततोविकनीनिकं विगता कनीनिका तारा यस्मात्तद्वं काणा-स्थं भवेत् । ततोऽपांगपीडं अपागे नेत्रप्राप्ते पीडा यस्य तद्वं चिपिटास्थं भवेत् । ततः क-लांवकं कले मनोसे अंवके नेत्रे यस्य तद्वं दिव्यनेत्रं भवेत् । चः समुच्चयार्थः । तुरिति विशेषा-र्थे ननु वितर्के । क्रमेण इमानीह सुलोचने दिव्यनेत्रनक्षत्रे नष्टवस्तुनो गतवस्तुन आप्तिं लाभमिति न ईयात्तं न लभेत् । इतीतिर्किं इतिशब्दोत्र विवक्षायां तदयमर्थः । गतासे मे नष्टवस्तुनः प्राप्तिः स्यात् । विकनीनिके यत्नः प्राप्तिः । चिपिटमे प्राप्तेर्वार्त्ता । दिव्यनेत्रे प्राप्तिर्नेति । इति स्वरूपे सात्त्विक्ये विवक्षा नियमे मता' इति हेमनेकार्थः ॥ २७ ॥

सदा विदुः क्रूरभदारुणानि क्रूरेषु पातंगिदिनं तथार्याः ॥

शुभेषु कार्येषु पराणि पुण्यं गुरोरहश्चाखिलकर्मराशौ ॥ २८ ॥

अथ योग्यतमाह—सदा इति । आर्या क्रूरेषु कार्येषु क्रूरभदारुणानि उग्रतीक्ष्णे संज्ञमानि । तथा पातंगिदिनं पतंगस्य सूर्यस्याश्रित्य पातंगि-शनिस्तदिनं विदुः लक्षयन्ति । च पुनरार्या अपराणि उक्तव्यविरिक्तानि भानि शुभेषु कार्येषु विदुः । च पुनरखिलकर्मराशौ समस्तकार्य-समूहे पुण्यं गुरोरहः गुरुदिनं विदुः ॥ २८ ॥

पुप्यस्तनोत्पंगमृतामनेकैरथान्वितोदूपणसंनिपातेः ॥

न्यस्तेज्यभारंभसुकृत्यजातानर्थानुदन्वानिव रत्नधामा ॥ २९ ॥

अथ पुप्यमहत्त्वं वर्णयति—पुप्य इति । रत्न प्रभानं धाम तेजो यस्य सोऽप्यत्र रत्नरत्नं गुरमणिउद्दाम प्रमाणो यस्य सोऽभारताना श्रेष्ठवस्तुनां धाम जन्म यस्मात्स रत्नधामा पुप्यपंगमृतां देहितानर्थान् पदार्थान् तनोति विस्तारयति । विस्तारणः पुप्योऽनर्कदृपणमग्नि-पतेदोपममयापराधिन व्याप्तः । विविक्तानर्थान् । न्यस्तेज्यभारंभसुकृत्यजातान् न्यस्तः

समारोपित इज्यधे पुण्ये आरंभः उद्यमो येषां तानि एवंविधानि सुकृत्यानि सुकर्माणि ते
जातास्तान् । कश्च उद्वान् समुद्र इव । सोप्येवंविध इति समुद्रपक्षे स्नानां धाम स्थानं यस्मि
न्स इति अर्थांतरन्यासोप्यत्र यथा पुण्यः कलिः प्राणिनामर्थान्तरान्तराति । किंभूतानर्थान् । न्य
तिपूर्ववत् । किंभूतः पुण्यः कलिरनेकद्रूपणयुक्तोपात्त्याशये सर्व स्पष्टं स्वभावात्कलिरनर्थं करो
सोऽपि पुण्यनक्षत्रयोगे शुभं करोति तर्हि कृतादियुगे किं वक्तव्यमिति पुण्यनक्षत्रस्यातिशयं
वक्तव्यलंकारः 'तिष्यः पुण्यवत् कलौ भे' इति हेमनेकार्यः । 'धाम रश्मौ गृहे देहे स्थ
जन्मप्रमावयोः' इति तत्रैवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

प्रभूतदोषोदितमप्यभद्रं निहंत्यरं पुण्यकृतेषु तिष्यः ॥

कृतेद्रव्योद्धुकरग्रहाणामत्रैंगिनां कर्मसु सोनिशं स्यात् ॥ ३०

प्रभूतेति । तिष्यः पुण्यः पुण्यकृतेषु पुण्यनक्षत्रे कृतानि कार्याणि तेषु प्रभूतदो
षितमपि मूर्तिद्वयगोपपन्नमप्यभद्रममङ्गलमरं शीघ्रं हन्ति नाशयति । पुनः सपुण्यः कृतः इ
वन्द्यो गुरुस्तस्योद्धुनि पुण्ये करग्रहो विवाहो येस्तेषामंगिनां देहिनां कर्मसु कार्येषु अ
निरन्तरमग्रे भक्षणाय अर्थसामर्थ्यान्नाशाय स्यात् । अक्षुब्धोद्वाक्कारांतोति तृनि अत्ता त
अत्रे कर्तृवत् ॥ ३० ॥

यदा चेत्सासितौ स्यातां भद्रायामारमंत्रिणौ ॥

सायुग्मचरणक्षयां भवेद्योगन्त्रिपुष्करः ॥ ३१ ॥

अथानुष्टुपात्रिपुष्करयोगमाह—यदेति । यदा चेद्यदि सायुग्मचरणक्षयां सहाय्युग्मना
क्षेपते या सा तस्यां विषमांश्रिभयुक्ताया भद्राया २।७।१२ निध्यां साधमिनौ शानिमहिता
मन्त्रिणौ भूमिगौ स्यातां तदा त्रिपुष्करयोगो वृद्धौ विषयोगिनां त्रिनिमलः शुभाऽशुभ
गुणकलशायक उक्तः ॥ ३१ ॥

अर्थजीवधनादीनां लाभे नष्टे हतेत्यये ॥

त्रैगुण्यफलदो योगो वृद्धावुक्तौ गिनामयम् ॥ ३२ ॥

कारिन्मनि अर्थो द्रव्यं जीवधनादिकं गोमहिष्यादिकं यत्र 'अद्रव्यं कल्पयेत्
कल्पमन्यधनं भवेत् ॥ गोमहिष्यादिकं सर्वं बुद्धेर्जीवधनं 'मृत्तम्' इति । एषां लाभे
पलायिनेषां दिना हनेत्यये नाशं प्राप्तिं मति ॥ ३२ ॥

शुभाख्याऽमृतनामानो क्रमेण मुशलाह्वयम् ॥

गदमातंगरक्षांसि चराचरप्रवृद्धकाः ॥ ३५ ॥

अष्टाविंशत्यभिजाः स्युरमी योगाः प्रकीर्तिताः ॥

स्वनामप्रख्यफलदाः प्राप्तावारक्षसंभवाः ॥ ३६ ॥

अथानुष्टुप्चतुष्केनाष्टाविंशत्यानेदादियोगानाह—आनंदेति । आनंदेत्यादिकं व्यापकं गुणम् । नवरं प्राप्तेति व्याश्रितवारनश्रेष्ठ्यो जाताइति ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

त्वावादिभार्दिदुभादोपधीशोहिभादसृजीर्नसते विद्यपीति ॥

गुरो मैत्रतो वैश्वदेवाच्च काव्येऽसिते शंवरेशोद्धतोमी क्रमात्स्युः ॥ ३७ ॥

अथभुजंगप्रपातेनेषामुत्पात्तेमाह—स्वाविति । सुधीः आदिमादश्विनीतो वर्णमानमपर्यंतं गणयेत् । यावत्संख्याकं वर्तमानम् तावत्संख्याक आनंदादियोगो भवेत् एवमोपधीशे चद्रे इंदु-
भान्मृगशीर्षात् । असृजि मंग्रेहिमादृक्तेरात् । विदि बुवे इर्नर्नो हस्तात् । गुरो मैत्रनोऽनुराघतः ।
काव्ये शुक्रे वैश्वदेवादुत्तरापादत । असिने शनौ शंवरं जठंतस्येशोवरुणस्तस्योद्धत शतभिषकृतः
वै निश्चितं क्रमेणेत्येवमेते स्युः । चः समुच्चयार्थः । 'असृग् वक्त्रे मृगे रक्ते' इतिव्याहि ।
'अर्गसंयुक्ताशचरम्' इतिहेमः । अहिभादसृजनीत्यत्र छंदोभंगो दृश्यते ततः पुस्तकांतरं विरो-
कनीयमिति ॥ ३७ ॥

हरावज्जईज्ये निजर्क्ष निजर्क्ष क्रमाद्वास्तमारे ज्ञमेत्रं भवेत् ॥

भर्देत्यधिष्ण्यं च धिष्ण्ये कधिष्ण्यं शनौ चैतदेवं सुधासंज्ञयोगः ॥ ३८ ॥

अथामृनासिद्धियोगमाह—हराविति । हरौ सूरवारे निजर्क्षं धर्कायमं हस्तः । अग्ने चंद्रे
निजर्क्षं मृगशिरः । ईज्ये गुरौ निजर्क्षं पुष्यः । आरे भौमेदास्तमश्विनी । ज्ञे बुवे मैत्रमनुरावा ।
धिष्ण्ये शुक्रैस्त्यधिष्ण्यं रेयती । शनौ को ब्रह्मा तस्यधिष्ण्यं रोहिणी क्रमात्तदा एवं भवेत्तदा
सुधासंज्ञयोगोऽमृनासिद्धियोगो भवेत् । चकारः समुच्चयार्थः ॥ ३८ ॥

द्विदेवादिभानां चतुष्केषु योगाः क्रमात्सप्त ऊष्मांशुपूर्वग्रहाणाम् ॥

सदोत्पातकालाख्यकाणाख्यसौम्या दिनेषु स्वनामप्रकाशेष्टदाः स्युः ॥ ३९ ॥

अथोत्पातादियोगचतुष्कमाह—द्विदेवेति । ऊष्मांशुपूर्वग्रहाणां सूर्यादिममग्रहाणां
सप्तसु दिनेषु द्विदेवादिभानां विशाखादिनक्षत्राणां चतुष्केषु सदा क्रमेण उत्पद्यते १ बाल २
काग ३ सौम्याख्याः ४ योगा निननामनुख्यकृत्तः स्यु । कोऽर्थे । रविदिने विशाखा तदा
उत्पातयोगः अनुरावा तदा काठ ज्येष्ठा तदा कागः भूजं तदा सौम्य एवं नक्षत्रगणने
एवो वारश्चत्वारो योगाः चंद्रादिषु पूर्वाषाढादिन्यप्युक्ताः ॥ ३९ ॥

समारोपित इत्यभे पुप्ये आरंभः उद्यमो येषां तानि एवंविधानि सुकृत्यानि सुकर्माणि ते-
जातास्तान् । कश्च उदन्वान् समुद्रश्च । सोप्येवंविध इति समुद्रपक्षे रत्नानां धाम स्थानं यस्मि-
न्स इति अर्थातरन्यासोप्यत्र यया पुप्यः कलिः प्राणिनामर्थान्तर्नाति । किंभूतानर्थान् । न्य-
तिपूर्ववत् । किंभूत-पुप्यः कलिरेकद्रूपणयुक्तोपेत्याशये सर्व स्पष्टं स्वभावात्कलिरनर्थं करो-
तीति । सोऽपि पुप्यनक्षत्रयोगे शुभं करोति तर्हि रुनादियुगे किं वक्तव्यमिति पुप्यनक्षत्रस्यातिशये-
कस्यलंकारः ' तिप्यः पुप्यवत् कलौ भे' इति हेमनेकार्यः । ' धाम रश्मौ गृहे देहे' स्या-
जन्मप्रमावयोः ' इति तत्रैवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

प्रभूतदोषोदितमप्यभद्रं निहत्यरं पुप्यकृतेषु तिप्यः ॥

कृतेद्रवंधोदुकरग्रहाणामत्रैगिनां कर्मसु सोनिशं स्यात् ॥ ३० ॥

प्रभूतेति । तिप्यः पुप्यः पुप्यकृतेषु पुप्यनक्षत्रे कृतानि कार्याणि तेषु प्रभूतदोष-
दितमपि मूर्खद्वेषणोपपन्नमप्यभद्रममङ्गलमरं शीघ्रं हन्ति नाशयति । पुनः सपुप्यः कृतः इ-
वन्धो गुरुस्तस्योदुनि पुप्ये करग्रहो विवाहो यैस्तेषामगिनां देहिनां कर्मसु कार्येषु अनि-
रन्तरमन्त्रे भक्षणाय अर्घसामर्थ्यान्नाशाय स्यात् । अचृशब्दोक्तकारांतीति वृत्ति अत्ता तां
अत्रे कर्तवन् ॥ ३० ॥

यदा चेत्सासितौ स्यातां भद्रायामारमंत्रिणौ ॥

सायुग्मचरणक्षर्यां भवेद्योगस्त्रिपुष्करः ॥ ३१ ॥

अथानुष्टमात्रिपुष्करयोगमाह—यदेति । यदा चेद्यदि सायुग्मचरणक्षर्यां सहाऽयुग्मनरा-
क्षैर्वर्तते या सा तस्यां विषमांघ्रिभयुक्तायां भद्राया २।७।१२ तिथ्या साऽसितौ शनिसहिताव-
मन्त्रिणौ भौमजीवौ स्यातां तदा त्रिपुष्करयोगो वृद्धौ विषयोगिनां त्रिनिघ्नफलः शुभाऽशुभा-
गुणफलदायक उक्तः ॥ ३१ ॥

अर्धजीवधनादीनां लाभे नष्टे हृतेत्यये ॥

त्रैगुण्यफलदो योगो वृद्धावुक्तोंगिनामयम् ॥ ३२ ॥

कस्मिन्सति अर्थो द्रव्यं जीवधनादिकं गोमहिष्यादिकं यतः ' अकूप्यं रूप्यहेमा-
कूप्यमन्यधनं भवेत् ॥ गोमहिष्यादिकं सर्वं बुधैर्जीवधनं स्मृतम्' इति । एषां लाभे-
पक्षयिते चोरादिना हनेऽस्त्यये नाशं प्राप्ते सति ॥ ३२ ॥

आनन्दो यमदंष्ट्राख्यो धूम्रभृज प्रजापतिः ॥

सौम्यध्वांक्षाह्वयौ तस्माद्ध्वजः श्रीवत्ससंज्ञकः ॥ ३३ ॥

कुलिशो मुद्गरच्छत्रं मित्रं मानुषसंज्ञकः ॥

सरोजं लङ्घकोत्पातो कालक्राणाख्यसिद्धयः ॥ ३४ ॥

शुभाख्याऽमृतनामानो क्रमेण मुशलाह्वयम् ॥

गदमातंगरक्षांसि चराचरप्रवृद्धकाः ॥ ३५ ॥

अष्टाविंशत्यभिन्नाः स्युरमी योगाः प्रकीर्तिताः ॥

स्वनामप्रख्यफलदाः प्राप्ताचारक्षसंभवाः ॥ ३६ ॥

अथानुष्टुप्चतुष्केनाष्टाविंशत्यानंदादियोगानाह—आनंदेति । आनंदेत्यादिकं लापकं
गुणम् । नवरं प्राप्तेति व्याश्रितवारनश्रेष्ठ्यो जाताइति ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

स्वावादिभादिदुभादोपधीशोहिभादसृजीर्नसतो विद्यपीति ॥

गुरो मैत्रतो वैश्वदेवाच्च काव्येऽसिते शंभवेशोद्धतोमी क्रमात्स्युः ॥ ३७ ॥

अथमुजंगप्रयातेनैषामुत्पत्तिमाह—स्वाविति । सुधीः आदिमादश्विनीतो वर्तमानमपर्यंतं
गणयेत् । यावत्संख्याकं वर्तमानं तावत्संख्याकं आनंदादियोगो भवेत् एवमोपधीशे चत्रे इंदु-
भान्मृगशीर्षात् । असृजि मंग्रेहिभादछेद्यात् । त्रिदि बुधे इनर्शनो हस्तान् । गुरो मैत्रतोऽनुराघतः ।
काव्ये शुक्रे वैश्वदेवादुत्तराषाढतः । असिते शनौ शंभरं जठं तस्येशोवरुणस्तस्योद्धतः शतभिषक्तः
वै निश्रितं क्रमेणेत्येवमेने स्युः । चः समुच्चयार्थः । ‘असृग् वक्त्रे मृगे रक्ते’ इतिव्याप्तिः ।
‘अर्णस्यंबुवा शंभरम्’ इतिहैमः । अहिभादसृजीत्यत्र छंदोभंगो दृश्यते ततः पुस्तकांतरं विछे-
दनीयमिति ॥ ३७ ॥

हरावब्जईज्ये निजर्शं निजर्शं क्रमाद्वास्तवारे ज्ञमैत्रं भवेत् ॥

भदेत्यधिष्ण्यं च धिष्ण्ये कधिष्ण्यं शनौ चैतदेवं सुधासंज्ञयोगः ॥ ३८ ॥

अथामृतसिद्धियोगमाह—हराविति । हरौ सूरवारे निजर्शं स्वकीयं हस्त । अजने चंद्रे
निजर्शं मृगशिरः । ईज्ये गुरो निजर्शं पुष्यः । आरे भौमे दाक्षमश्विनी । ज्ञे बुधे मैत्रमनुरावा ।
धिष्ण्ये शुक्रैरधिष्ण्यं रेवती । शनौ को बह्मा तस्यधिष्ण्यं रोहिणी कषाद्यदरा एवं भवेत्तदा
सुधासंज्ञयोगोऽमृतसिद्धियोगो भवेत् । चकारः समुच्चयार्थः ॥ ३८ ॥

द्विदेवादिभानां चतुष्केषु योगाः क्रमात्सप्त ऊष्मांशुपूर्वग्रहाणाम् ॥

सदोत्पातकालाख्यकाणाख्यसौम्या दिनेषु स्वनामप्रकाशेष्टदाः स्युः ॥ ३९ ॥

अथोत्पातादियोगचतुष्कमाह—द्विदेवेति । ऊष्मांशुपूर्वग्रहाणां सूर्यादिमग्रहाणां
सप्तसु दिनेषु द्विदेवादिभानां विशाखादिनक्षत्राणां चतुष्केषु सप्त क्रमेण उत्पात १ काळ २
काग ३ सौम्याख्याः ४ योगाः निगनामनुख्यकलदाः स्युः । कोर्ण्यः । रश्मिदिने विशाखा तदा
उत्पातयोगः अनुरावा तदा काळ ज्येष्ठा तदा काणः मूळं तदा सौम्य एवं नक्षरचतुष्के
एको वारश्चत्वारो योगाः चंद्रादिषु पूर्वाषाढादिनक्षत्राः ॥ ३९ ॥

पितृभं खरगौ द्विदैवतं हिमरस्माज्जसृजीशतारकम् ॥

विदि मूलमजाग्रजार्चिते हुतशुग्ज्योतिरजो डुभार्गवे ॥ ४० ॥

भवतीनभमंशुजे तदा यमघंटाख्ययुगाह्वयोप्यसौ ॥

जनियानशयांबुजग्रहेष्वमरस्थापनकेऽत्ययाय च ॥ ४१ ॥

अथाष्टसंख्यापर्यन्तं वैतालीयवृत्तं तत्र तावद्यमवंटयोगमाह—पितृभमिति भवतीतिगुम् । यदा खरगौ सूर्ये पितृभं मया । हिमगौ चंद्रे द्विदैवतं विशाखा । असृग्नि भौमे ईशतारकमाद्रौ । विदि बुधे मूलं । अजोविष्णुस्तदग्रजो मघवान् तेनार्चितो गुरुस्तस्मिन् दिने हुतशुक् वद्विस्तस्य ज्योतिः कृत्तिका । भार्गवे शुकेऽजो ब्रह्मा तदुडु रोहिणी । अंशुजे शनौ इनभं हस्तो भवति तदा बुधैर्यमघंटादियौ ईरितः । कस्मै जनिर्जन्म यानं प्रयाणं शयः पाणिः स एवांबुजं तद्वहः शयांबुजग्रहः पाणिग्रहणं एषां द्वंद्वः एषु च पुनरमरस्थापनके देवप्रतिष्ठायामत्ययाय नाशाय 'अजश्रृङ्गो हरे विष्णौ रघुजे वेवसि स्मरे' इतिहैमः । इत्यर्थः ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सप्ततंगमतोऽचलैर्मिते नवभिर्भे च नृपालकैर्द्वर्भवेत् ॥

मनुभिः१४कुयमै२१रिभाश्वि२८भिस्त्रियमै२३र्दक्ष२मिते सदाऽऽडलः ४२

अथाडलयोगमाह—पतंगेति । सहपतंगेन सूर्येण वर्तते तत्सप्ततंगं भं तस्माद्रश्मिनक्षत्रादचलैः सप्तभिर्मिते भे सति नृपालकैराजभिः षोडशभिश्च मनुभिश्चतुर्दशभिश्च कुयमैरेकविंशतिभिश्च 'इमाश्विभिरष्टाविंशतिभिश्च त्रियमैस्त्रयोविंशतिभिश्च दक्षमिते द्वाभ्यां च मिते भेद्विति ॥ ४२ ॥

बलकर्पककोपलक्रियाविबुधैराडलके च गर्हिता ॥

भवतीह न दोषभाक् क्रिया शयजंबालजसंग्रहादिका ॥ ४३ ॥

अस्यैवफलमाह—बलेति । विबुधैर्बल सैन्यं कर्पकं हली कं जन्मुपलक्षणात्वात्कासारकूपा-
रामादिः उपलः पापाणः एषां द्वंद्वे प्रत्येकसंयोजनात् । एषां क्रिया समरहलप्रनाहचंबनविधि-
दुर्गप्रमुखा गर्हिता तिरस्कृता । च पुनरिह योगे शयजंबालजसंग्रहादिकाबालात्पंकाज्जायते
तज्जंबालमं कमल शयः पाण्डुरेव जंबालनकरकमलमित्यर्थस्तस्य संग्रहः उद्धाहस्त आदिर्यस्यां
सा शयजंबालनसंग्रहादिका क्रिया दोषभाक् भवति । 'जंबाले च कलो पंके' इतिहैमः ॥ ४३ ॥

विडलौशुमदंशुसंकुलादुडुतो भौमनगाऽस्तशेषके ॥

त्रिमितं यदि पण्मितं भवेद्विधुवज्योतिपि चेष्टनुत्तदा ॥ ४४ ॥

अयं विडलमाह—विडलेति । यदिचेत् अंशुमतो खरंशुभिः किरणैः संकुलं लुप्तं तस्मादु-
डुतः सूर्यनक्षत्रात् विधुर्विद्यनेऽस्मिन्निति विधुवत् तच्च ज्योतिश्च तस्मिन् वर्तमानचंद्रनक्षत्रे आ-
धारे सप्तमौ । भौमोद्योर्भौमस्तस्य नगास्तशेरकं सप्तमानिनशेषकं नक्षत्रं त्रिमितं वाय पण्मित

भवेत्तदा विडलो भवेत् । किंविशिष्टो विडल । इष्टनुत् इष्टमीशित नुदति विनाशयतीति इष्ट-
नुत् ॥ ४४ ॥

तिमिरारिकरावृतर्क्षतोऽश्रमितेविद्युदगैः कुकंपनम् ॥

भवतीभमिते च शूलकोऽशनिरेव प्रतिमैवरेन्दुभिः ॥ ४५ ॥

अथ विद्युत्कंपनादियोगानाह—तिमिरेति । तिमिरारेरेवे कौरावृतर्क्षतो सूर्यकिरणलुप्तन
सत्राङ्गे वर्तमानचन्द्रनक्षत्रेभमिते पञ्चप्रमिते सति विद्युच्छामयोगो भवेत् । एवमगै सप्तमिते कु-
कंपनं भृकंपनयोगो भवेत् । इभमितेऽष्टमिते शूलक । अवरेन्दुभिर्दशभिः प्रतिमे समानेऽशनि-
योगेऽप्य स्यात् ॥ ४५ ॥

अनु केतुरहीन्दुभिः समे तिथिभिर्दण्डक उत्सुकं च भे ॥

खचरेन्दुभिरब्धिलोचनैः परिवेषः कुलिशोऽनलावकैः ॥ ४६ ॥

अनुपश्चात् । अहीन्दुभिरष्टादशभिः समे केतु तिथिभिः समे दण्डक । खचरेन्दुभिरेकोन-
विंशतिभिः समे उत्सुक । अब्धिलोचनैश्चतुर्विंशतिभिः समे परिवेष । अनलावकैः त्रयोविंश-
तिभिः समे कुलिशो भवति । इति सर्वत्र योग्य च पुनरर्थः । युग्मम् ॥ ४६ ॥

द्वियमैरुडुभिर्मितेर्भतोऽर्कयुतात् घातनपातकौ लभेत् ॥

न सदैव फलं सुकर्मणामलमारंभविधानतो जनः ॥ ४७ ॥

द्वियमैरिति । अर्कयुताङ्गतो रविनक्षत्रान् द्वियमैर्द्वाविंशतिभिरुडुभिः सप्तविंशतिभिश्च क्र-
मेण घातनपातकौ योगौ स्याता । सदा जन एषु योगेषु सुकर्मणा शुभकार्याणामारम्भो विवा-
नतो विहितोद्यमादल निश्चयेन फलं न लभेत् न प्राप्नुयात् ॥ ४७ ॥

चंडांशूनविभोडुतोऽहिभमघाचित्रानुराधाश्रवः

पौष्णेष्वाश्विभतः क्रमाद्रूणनयेलादेवतेशान्विते ॥

स्याद्यावत्यगराजजारमणदोश्चंडायुधस्पेतिभे

पातो नारतमेव कर्म रुचिरं नास्मिन्विधेयं बुधैः ॥ ४८ ॥

अथ ऋष्यायुःपातमाह—चंडाश्विति । चंडाशुना सूर्येण ऊना होना विभा कातिर्यस्य तत्
तच्चोडु च तस्मात्सूर्यनक्षत्रात् अहिमादिसप्तसु अश्विमतोऽश्विनीत क्रमेण गणनया कृत्वा ।
इलेति । इडा देवता भूदेवो विप्रस्तस्येशश्चन्द्रस्तेनान्विते युक्ते यावन्ति मे अत्रापारे सप्तमी ।
अगेति । अगाना महीन्द्राणा राना हिमाचलस्तच्चा गौरी नद्रमणईश्वरस्तस्य दोर्धुना तस्य
चंडायुधमत्त तस्य पातो हरायुधपात स्यादित्यन्यथ स्वष्टार्यस्त्वयं । मर्यादात्मनोऽस्मानि स्या
प्यनेष्व पक्षिषु यद्वर्तमानचन्द्रनक्षत्रमुपरिहृताचेह्नक्षत्रेण विद्ध यत् तदा तस्मिन्मेहरायुःपात
स्यादित्यर्थः । बुधैरस्मिन्त्रयेऽनारत सदैव स्वनिर शुभ कर्म न विधेय न कार्यमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

हेलीन्दोरचरे युतावथ विभावर्यार्यधारासुवो-

रुप्रे भेज्जविदोश्च मिश्रभइह क्षिप्रे मृगांकेज्ययोः ॥

मैत्रे धिण्यतमीशयोर्निशिथिनीशैन्योर्विधौ दारुणे

लोले मंगलभंगवान्निखिलभे स्यात्कालचक्रभ्रमः ॥ ४९ ॥

अथ शार्दूलविक्रीडितेन कालचक्रभ्रममाह—हेलीन्दोरिति । अथेह लोके हेलीन्दोः सूर्यचंद्रयोरचरे भे स्थिरनक्षत्रे युतौ मिश्रीभावे सति मंगलभंगवान् विवाहादिकार्यविनाशकृत् कालचक्रभ्रमः स्यात् । एवं विभावर्या रात्रेरर्यः स्वामी चंद्रः घराभूमंगलस्तयो रुप्रे भे युतौ । पुनरठनषिदोश्चंद्रघुषयोर्मिश्रमे युतौ । पुनर्मृगांकेज्ययोश्चंद्रगुर्वोः क्षिप्रे भे युतौ । पुनर्धिण्यतमीशयोः शुक्रचंद्रयोर्मैत्रे भे युतौ । पुनर्निशिथिनीशश्चंद्रः ऐनिः शानेस्तयोर्दारुणे भे युतौ । पुनर्निखिला भा कांतियेस्मिन्स एवंविधे विधौ पूर्णेन्दौ लोले भे सति एषः स्यात् । ‘अठनो धन्वंतरौ चंद्रे शैले पश्ये च संख्यके’ इति ‘अर्यः स्यामिवैश्ययोः’ इति न हेमः । निशीथिनीइत्यत्र शकारमभ्ये दीर्घईकारोऽस्ति अत्र तुन्हस्वइकारः शब्दप्रभेदाद्दृश्यते ॥ ४९ ॥

तिथिवारभवा भवारजाः किल योगाश्च शुभाशुभाह्वयाः ॥

विषयेष्वखिलक्रियाविधावखिलेष्वत्र विलोकनोचिताः ॥ ५० ॥

अथ वैताल्येन केपुकेष्वेते, विलोकनीयास्तदाह—तिथीति । तिथिवारभ्यो भवाजाताः भवारभ्यो नक्षत्रवारभ्यो जायन्ते तज्ज्ञाः शुभाशुभाह्वयाः सौम्यकूरनामयोगाः अखिलेषु विषयेषु देशेषु अत्राखिलक्रियाविधौ समस्तकार्यविधाने विलोकनोचिता दर्शनाय योग्याः स्युः ‘विषयो यस्य योज्ञातस्तत्र गोचरदेशयोः’ इतिहेमः ॥ ५० ॥

हेल्यधिष्ठितभमेशभजाः स्युर्हूणहोस्वशवंगकिणेषु ॥

येखिलेषु च हिताय कुयोगास्तेऽहिताय विषयेष्वखिलेषु ॥ ५१ ॥

अथ स्वागतावृत्तनाह—हेल्येति । हेल्याधिष्ठितभे सूर्याश्रितनक्षत्रं च भेशमं भानां नक्षत्राणामीशश्चंद्रस्तत्र चंद्रनक्षत्रं च ताम्या नायने तज्ज्ञा ये कुयोगाः अखिलेषु हूणादिषु देशेषु हिताय शुभाय स्युः । न पुनस्ते कुयोगाः अपरेषु विषयेषु देशेषु अहितायाऽशुभाय स्युः ॥ ५१ ॥

विष्कंभप्रीत्यायुष्मंतः सौभाग्यशोभनावतिगण्डश्च ॥

सुकर्माधृतिश्रुलाह्वयगण्डावृद्धयभिधामी योगाः क्रमशः ॥ ५२ ॥

धुवाख्यव्याघातो हर्षणवज्रासिद्धयो व्यतीपातः ॥

वरीयानथ परिशिशो सिद्धिसाध्यशुभाह्वयशुक्लाख्याः ॥ ५३ ॥

ब्रह्मैन्द्रोत्थौवैधृतियोगाः स्युस्तिसौम्यसौम्याहि ॥

स्वसंज्ञा संनिभफलमश्रांतं कर्मसु तन्वत्येव ॥ ५४ ॥

अथार्यागद्येन विष्कम्पादिसप्तविंशतियोगानाह—विष्कम्भेत्यादित्रिभिः विशेषकः । सुगमः ।
अश्रांतं निरतरमसौम्यसौम्या क्रूरशुभा अभी योगा कर्मसु कार्येषु स्वसंज्ञासंनिभफल
निजनामसदृशफल तन्वति विस्तारयन्ति ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥

शश्वदमीपामेतेऽशुभफलभाजोपि भवंति वै योगाः ॥

विश्वाकभतिथ्यंगैकोनविंशतिदशधरात्यष्टिमिता ॥ ५५ ॥

अथैतेषामशुमानाह—शश्वदिति । शश्वन्निरतरममीपा सप्तविंशतेर्योगानां मध्ये एते अभीप-
त्यस्ता योगा विश्वा विश्वे त्रयोदश अका नव मानि सप्तविंशति तियय पचदश अगानि पद-
एकोनविंशति दश धरा एक अत्यष्टि सप्तदश एषा द्वाद । एभिर्मिता व्याघात १३
शूल ९ वैधृति २७ वज्र १९ परिघ १९ गड १० विष्कम्भ १ व्यतिपाता १७ ॥ ५५ ॥

वैधृतिव्यतिपातावखिलौ स्याता चानिष्टदौ योगौ ॥

एतद्विहितवृषोनेहपरलोकेऽखिलभोगभागभवति ॥ ५६ ॥

वैधृतीनि । अखिलौ समस्तौ वैधृतिव्यतिपातौ योगौ अनिष्टदौ दोषकरौ स्याता । इहाऽ
स्मिन् मवे एतयोर्वैधृत्यतिपातयोर्विहित कृतो वृषो घर्मो येन स पुमान्परे लोके स्वर्गलोके
खिलभोगमाक् समस्तभोगफलयुक्तो भवति । व्यतिपातो व्यतीपातइतिशब्दप्रभेदोपनिषरे प्रा-
देकपसर्गस्य वा दीर्घत्वात् । वैधृतो वैधृतिशब्दप्रभेदोपलक्षणत्वात् । 'घर्म्य पुण्य वृष'
इतिहैम ॥ ५६ ॥

परिघाद्यर्धमनिष्टमनिष्टा नाड्यः कुलिशस्यादियुतेः ॥

शुभकर्मस्वाद्याः स्युस्तिस्रोतिगंडे पडेव गंडे च ॥ ५७ ॥

परिघेति । परिघस्यार्धं दलमनिष्ट स्यात् । कुलिशस्य वज्रस्य किंभूतस्यआदियुतेरादिना
विष्कम्भेण युति सयोगो यस्य स तस्य विष्कम्भस्य आद्यास्तिस्रो नाड्यो घटिका
नेष्टा च पुनरतिगंडे पट् गंडे पडेव ण्ष्टा स्यु । तेषु शुभकर्मसु ॥ ५७ ॥

व्याघाते न वरा नव पंचाद्याः शूले स्तो द्वौ ॥

अंशे निधौ च मुहूर्त्ताविन्द्रे ध्रुवयोगे च ते शेषे ॥ ५८ ॥

व्याघातेति । एव व्याघाते नव घटिका वरा श्रेष्ठान शूले पच । आद्याइति सर्वत्र योज्य ।
अथैद्रे ध्रुवयोगे च अंशे त्रिभागे इने गते सति द्वौ मुहूर्त्तौ निधौ स्त मवन ॥ ५८ ॥

मितं सदा मानदलेन कर्क्षमसौम्ययोगस्य सरूपकस्य ॥

योगो यदि स्याद्विषमस्तदैवमयोन्यथा पिडयुतस्य भ तत् ॥ ५९ ॥

सत्याः पुरादोग्रहमंगलं शो बभूव तन्मंगलमाचचार ॥

कपालिनोमंगलमप्यहो स्नाक् चेकार्गलोत्पन्ननृपातदोषात् ॥ ६३ ॥

अथास्यैव दुष्टता दर्शयन्नाह—सत्येति । 'व प्रागुक्तोप श शम्भुः शा गौरी कमला-
लया' इति मोमरिवचनात् । श शम्भु पुरा पूर्वं सत्या पार्वत्या दोग्रहमंगल पाणिग्रहण
मंगलमाचचार चकार । च इत्यवगारणे । अहो इत्याश्चर्ये । तन्मंगल पार्वत्या पाणिग्रहणमंगल
कर्तृपद । स्नाक् शीघ्र कपालिनोऽपि मंगल बभूव स्यात् । एकार्गलेषूत्पन्ना ये नरस्तेषा पातदो-
षात् अत्र शब्द उलेन कपालमस्त्यस्येति कपालिनो भिक्षोरपि कुयोगान्मंगल तर्ह्यन्यस्य श्रीमत
कथं न । अत्र कुयोगान्मंगलमिति विरोधात्कार । परिहारस्तु कपालिन ईश्वरस्य भिक्षोश्च
मंगलमेव एतयोर्निश्चयवत्त्वमावात् ननु श्रीमत्पुरुषस्येति । अथवा तन्मंगलमिति कपालिनोमंगल-
मिति सत्त्वे पठ्यी बभूव । सती मंगलमपि भिक्षाटन चकारेत्यर्थ । यतो भिक्षूणा मंगल
भिक्षेति 'सती शिवा महादेवी' इति हेम ॥ ६३ ॥

ऐशं यतेद्धर्षणशूलसाध्यगंडे व्यतीपातकवेधृतीनाम् ॥

यद्वावसाने स्थितमृक्षमृक्षे चंडायुधं तत्र हि कालभं स्यात् ॥ ६४ ॥

अथ चंडायुधमाह—ऐशमिति । पतता गच्छता हर्षणादियोगाना यदवसानेऽस्ते स्थित-
मृक्षं नक्षत्र तत्र तस्मिन्नक्षत्रे हि निश्चयेन ऐशमीशस्येद चंडायुध स्यात् । कीदृश चंडायुध
काला भा कातिर्यस्य तत्कालभम् ॥ ६४ ॥

मरुस्थलीकच्छकलिगवंगदेशान्नगेलं च शिवास्त्रपातः ॥

एकार्गलां दुष्यति नापरेषु देशेषु भौतावहितौ भवेताम् ॥ ६५ ॥

अत्रैतयोर्हेयस्थानमाह—मरुस्थलीति । शिवास्त्रपातश्चंडायुधपात एकार्गलश्च मरुस्थ-
त्यादीन् नगेल पर्वतभूमि च दुष्यति । अपरेषु देशेषु इमो तो चंडायुधेकार्गलावहिताव ५
गुभक्त्रो न भवेतामित्यर्थ ॥ ६५ ॥

निहन्ति काश्मीरखेंद्रयोस्सौ समागधाख्यद्रविडारिमाणयोः ॥

एकार्गलोन्येषु न मंगलव्रजान्नित्याहतुर्गालवदेवलावपि ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिर्विदाभरणे योगोत्पत्त्यध्यायो द्वितीय ॥ २ ॥

निहतीति । इति गालवदेवलावपि ऋषि आहतु कथयत । इति किं । असावेकार्गल.

काश्मीरवरेंद्रयो काश्मीरवराडदेशयोर्माग इद्विडाना सहितयोर्मगलव्रनाविहति विनाश
यति । अन्येषु देशेषु नेति ॥ ६६ ॥

इति श्रीपद्मिनीमायगच्छार्थराजभट्टारकपुरदरश्रीमहिमाप्रभसूरीश्वरचरणसरोरुहचवरीशायमान
शिष्यभावरत्नविरचिताया श्रीकविकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य
सुप्रबोधिनीया द्वितीयोऽध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सदा श्रीमहिम्ना प्रभूणा सुनाम्ना शुभज्ञानलाकर सूरिराज्ञाम् ॥
महीमण्डले स्थाच्छिर्यकस्य नून श्रितस्यास्तमौरुर्ध्वं सनापराशे ॥ १ ॥

॥ अथ भद्राप्रकरणम् ॥ ३ ॥

बवाह्वालवकौलवतैतिलगस्वणिजविष्टयः सप्त ॥
जगदुरथोतिचराणि तिथिलिङ्गात्मकानि करणानि ॥ १ ॥

अथ तृतीयाध्याये प्रथममार्ग्याभ्या सप्तकरणन्याह—इवेति । अयानतर ज्ञातव्यं वरा
हेत्येतेषा द्वद्व । इति सप्तचराणि चलस्वरूपाणि तिथिलिङ्गात्मकानि तिथ्यर्द्धस्वरूपकाणि
जगदु कथयामासु ॥ १ ॥

अचरायुतरंशकलाद्यामासन्ना चतुर्दशी तस्याः ॥
शकुनिचतुष्पदनागकिंस्तुघ्नानि भवन्ति करणानि ॥ २ ॥

अथ स्थिरचरणचतुष्कमाह—अचरेति । अमाया आसन्नं समीपमासन्न उत्तरख
आद्यममासन्न यस्या साद्यामासन्ना चतुर्दशी एतेन कृष्णपक्षउत्तरखण्डश्च सूचित । तस्याश्च
तुर्दश्या सकाशात् अचराणि शकुन्यादीनि करणानि भवन्ति ॥ २ ॥

सितादेः करणं व्येको याततिथ्यर्धसंचयः ॥
सप्तभक्तोवशेषेण मितं स्याद्वततो गतम् ॥ ३ ॥

अथानुष्टुभा करणानयनमाह—सितादेरिति । सितादे सितपक्षमातिपक्ष । यातेतिगत
करणसंचय इति । कोऽयं । द्विगुणीकृतयातनियौ अर्धसंचय स गतकरणमचय
व्येक एतेन रहित । पुन किंनिशिष्ट । सप्तमकनस्तप्तमिर्द्वौवशेषस्तेनमित प्रमित करण
वततो गत स्यादित्यर्थ ॥ ३ ॥

चराणि विष्टिं करणान्यृते च मा भवन्ति सौम्याखिलकर्मसिद्धये ।
तथैव धीरणि च पित्र्यकर्मणे विष्टिर्विघातादिविधौ वरा भवेत् ॥ ३ ॥

अथोपजात्येषां फलमाह—चराणीति । विष्टिमृते विना चराणि करणानि सौम्याखिले-
कर्मसिद्धये शुभसमस्तकार्यसिद्धये भवति । तथैव च पुनर्धाराणि स्थिराणि शकुन्यादीनि
करणानि पित्र्यकर्मणे पूर्वजसंवन्धिकृत्याय भवन्ति पुनः सा विष्टिर्विघातादिविधौ
वरा श्रेष्ठा भवेत् ॥ ४ ॥

भद्रा पुरा संयुग ईशविग्रहाद्भवव वामीवदनामरासुरे ॥

लांगूलिनी सप्तशया त्रिपद्मती वराटिकादृक् घनघोपकस्वना ॥ ५ ॥

अथ सा क' विष्टिस्तदुत्पत्तिमाह—मद्रेति । पुरा पूर्वममरासुरे नाम्नि संयुगे संग्रामे भद्रा
ईशविग्रहाच्छुभशरीराद्भवव संजाता । किलक्षणा । वामीवदना वामी रासभी तद्वददं मुखं यस्याः
सा । यतः । 'वामी शृगाल्यां करभीरासभीवडवासु च' इति हैमः । पुनः किंभूता । लांगूलिनी
पुच्छयुक्ता । पुनः किलक्षणा । सप्त शयाः कराः यस्यास्ता सप्तशया । 'पंचशाखः शयः सप्तः
इति हैमः । त्रयः पादाश्चरणा विद्यन्ते यस्याश्चित्रिपद्मती । वराटिकादृक् कपर्दिकावत् दृशौ
यस्यास्ता वराटिकादृक् । पुनः घनो निविडः कर्तृसतो घोषो घोपकः कुत्सितकांस्यं तद्वत्स्वनः
शब्दो यस्याः सा । 'घनः कांस्ये विद्युतीयघोषे' इति हैमः । कुत्सितार्थे कमल्ययः ॥ ५ ॥

जाले प्रविष्टा कुणपांशुकांबराभिरामश्रजकानने तदा ॥

परेतगा धूमनिभा बलोद्धता वात्येव साभूदतिदीर्घविग्रहा ॥ ६ ॥

जालइति । तदा सा भद्रा वात्या इव वातानां समूहे वात्या तद्वदतिदीर्घविग्रहाऽत्यायतश-
रिराऽभूत् । किंभूता । अमराद्विषां दैत्यानां जाले समूहे प्रविष्टा । पुनः किंभूता । कुणपांशुका-
नि शववत्त्राण्येवांबराणि यस्याः सा कुणपांशुकांबरा 'अजीवे कुणपं शव' इति हैमः । अथवा
कुणपांशुकांबरा शववत्त्रा । अंबरे गगनेऽमरान् द्विपंतीति तेषामंबराभिरामश्रजमिदं योज्यम् ।
पुनः किंभूता । अग्रजाः पितरस्तेषां काननं वनं श्मशानं तस्मिन्परेतेन गच्छतीति परेतगा
इति । पुनर्धूमनिभा धूमसदृशी । पुनर्बलोद्धता शीघ्रोत्कटा । 'श्मशानं करवीरं स्यात्
धूमः' इति हैमः । प्रेतः परेतश्चामृते मृतविशेषे इति ॥ ६ ॥

१९२ यंत्रमंत्रादिषु भद्राशिरमरास्यः कर्लिदजासोदरधामपद्धतिम् ॥
१९३ वेदमंत्रादिषु भद्राशिरमरास्यः कर्लिदजासोदरधामपद्धतिम् ॥
१९४ मंत्रादित्रयारंभे भद्राशिरमरास्यः कर्लिदजासोदरधामपद्धतिम् ॥
१९५ मंत्रादिस्वामिवारयो दैत्यास्तस्याविष्टे सकाशात् कर्लिदजासोदरधामपद्धतिमानशिर
नमस्तर्मग्रापच । तस्याः सोदरो यमस्तस्य धाम्नां शृहाणां पद्धतिः पंक्तिस्तां ।
मंत्रारंभेमीनां । इति हैमः । अथ सा भद्रा कर्पाईन ईशस्य कर्णवदमवाप प्राप ।
तन्यास्तं कर्पाईनं । निषेधः ।

नंदवनः परममुखयुक्तस्य । किलक्षणा सा । बह्व्यायुगा अग्निशस्त्रा । पुनः
किंभूता । यून्यां रघोवेगस्तद्वद्गो यस्याः सा मस्त्रया ॥ ७ ॥

विधेयमेवाग्निशिखाग्रतालुका फलं न साशेतवरात्ति मंगलम् ॥
नैरैरतः स्वात्महितोपलब्धिभिस्तदाश्रितं स्वाश्रितकर्मसिद्धिजम् ॥

अथास्या मुट्यनिषेधमाह—विधेयेति । शात् ईशान् इत प्राप्नो वरो यया शेतवरा
साविष्टि फलमस्ति भक्षयति । किंभूता सा अग्निशिखा अग्नेर्वद्रे शिखा ज्वाला तस्याग्र
तद्वत् तालुक यस्यास्मा । किंभूत फल स्वाश्रितकर्मसिद्धिज स्यादविष्ट्याश्रित विहितं कर्म
तस्य सिद्धिस्तस्या जान भद्राया रुतरार्थनिष्पत्तिनात् अतोहेनोर्नरेस्तदाश्रित विष्टिवेलाप्राप्त
मंगलमुद्वाहादिव न विधेय न कर्त्तव्य । किंभूतनै । स्वात्महितोपलब्धिभि स्वात्मने जीवाय
हिता हितकारिणी उपलब्धिर्बुद्धि प्राप्तिर्ज्ञान वा येषा तरिति । 'उपलब्धिर्भवेद्ज्ञाने तथा
प्राप्तिमनीषयो' इतिमहोप ॥ ८ ॥

पक्षे वलक्षे 'शभवेवमुत्तरे तिथिर्मिताया निगमैर्भवैर्दले ॥
'स्यात्पंचदश्या विपभृन्मिता तिथेरुनितायाःशितिमे च साधके ॥ ९ ॥

अथविष्टिमोग्यकालमाह—पक्षेइति । वलक्षे शुक्लपक्षे निगमैर्वैश्वतुर्भेदश्च पुनर्भवैर्दले-
कादशभिर्मितायास्तिथेश्चतुर्थ्या एकादश्या उत्तरे दले शात् शिवाद्भवतीति शभवा भद्रा स्यात्
चपुनरेव चतुर्दश्या पूर्णिमायाश्च पूर्णपभृता सर्पेण मिता चासौ आसमस्ता तिथिश्च विपभृ
न्मिता तिथिस्तस्या अष्टम्या आद्यके प्रथमे दले शभवा स्यान् । च पुन शिति कृष्णा भा कति-
र्थस्मिन् स तस्मिन् शितिमे कृष्णपक्षे धरोनिताया एकेन रहिताया पूर्वोक्तचतुर्थ्यादितिथे-
स्तृतीयाया दशम्या उत्तरे दले पुनश्चतुर्दश्या सप्तम्या प्रथमे दले सा भद्रा स्यादित्यर्थ ॥९॥

नेष्टाः सदाऽशेषविनाडिका वरं चैके बुधाः पुच्छघटीत्रयं जगुः ॥
तस्या वरामह्वयपराङ्मगा तिथेर्यातामसंतो निशि चादिगापरे ॥१०॥

नेष्टाइति । सदा बुधा क्रियाविधौ तस्याभद्राया अशेषा समस्ताघटीगिष्टाः श्रेष्ठा न जगु
र्नोचु बुधा अस्या पुच्छ घटीत्रयं चर जगुः अथ वेयाचिन्मतमाह अपरेऽमतोऽमेधमो या
भद्रा तिथेरपराङ्मगा उत्तरदलस्थिताऽस्मिन् तामहि दिने वरा श्रेष्ठा जगु पुनर्या भद्रा तिथे
रादिगा पूर्वदलस्थिताऽस्ति ता निशि रात्रौ वरा जगु ॥१०॥

भैः पंचभिर्दसकुभिर्नखैः स्यादस्या घटीभ्यः क्रमतो मिताभ्यः ॥
घटीत्रयं लूनलता परं च सितेऽसिते चोत्क्रमतोपि भैम्याः ॥११॥

। अथास्या पुच्छविवेकतामाह—भैरिति । सिते शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां भै सप्तविंशतिभिर्मिताभ्यो
घटीभ्यः सप्ताश्वत्थस्यभैम्या विष्टेरपर घटीत्रयं लूनलता स्यान् । क्रमत एवमष्टम्या पञ्चभिर्भि-
ताभ्यो घटीभ्यः एकादश्या दसकुभिर्दशभिर्मिताभ्यः पूर्णिमायान्तोर्दशतिभिर्मिताभ्य च
पुनरसिते कृष्णपक्षे उत्क्रमतो वेपरीत्यचलनेनाऽपि तृतीयाया विंशतिभिर्मिताभ्यः सप्तम्या-

द्वादशभिर्मिताम्यः दशम्यां पंचभिर्मिताम्यश्चतुर्दश्यां सप्तविंशतिभिर्मिताम्योऽपरं घटात्रयं लूनलता स्यात् । भीमात् ईशात् यवा मेमी 'भीमभगौ' इति हेमः । लूनलताशब्दोऽस्मिन्ग्रंथे बहुषु स्थानेषु पुच्छवाचको दृश्यते महाकविप्रोक्तत्वात्प्रमाणम् ॥ ११ ॥

निजः पटंशो लपनं गलः स्यात्त्रिंशल्लवृहयंशउरंगभागः ॥

नाभिः कटिर्मार्गणभागकोस्याः शेषं च लां गूललतेशजायाः ॥ १२ ॥

अथास्यादेहविभागमाह—निजेति । अस्याईशाज्जायतेइति ईशजा तस्या मद्राया निजः स्वकीयः शरीरापेक्षया पटंशः पटोभागः पंच घटयो लपनं वटनं स्यात् । एवं त्रिंशल्लवृहयंश-
तमो भाग एका घटी गत्रः कंठः । त्र्यंशस्तृतीयो भागो दश घट्युत्तरो हृदयं । अंगभागः
षष्ठो भागः पंच घटयो नाभिः । मार्गणभागकः पंचमोभागः पट्षट्यः कटिः । शेषं त्रिमितघटयो
लांगूललता पुच्छलनेति ॥ १२ ॥

मयोदितो वर्ष्मविभाग एष त्रिंशद्घटीप्रख्यमितौ हि सत्याम् ॥

सयोपरैर्युक्तियुतो न सद्भिर्मान्यो निरुक्तोपमतः सदास्याः ॥ १३ ॥

अथ न्यूनाधिकमद्रायां भागविवेकतामाह—मयेति । हीतियुक्तार्थे त्रिंशद्घटीप्रख्यमितैः
मद्रायां सत्यां मद्रा मयाऽस्या मद्राया एष वर्ष्मविभाग शरीरविभाग उदितः कथितः ।
अतः कारणादपरैरनसद्भिर्विबुधैरस्याः सोऽयं विभागो मान्यो ग्राह्यः । स कः । योयुक्तियुतो
निरुक्तः कथितः । कोऽर्थः । यदा मद्रा न्यूनाविका स्यात्तदा भागोपि तत्सदृशो भवेत् ॥ १३ ॥

विलीयतेऽर्थो लपने लयो गले तस्मादुरस्यर्थनिमीलनं कलिः ॥

नाभौ धियो रं विलयः कटिस्थले लूने च विष्टेर्विजयोऽनिशं भवेत् ॥ १४ ॥

अथ मद्राङ्गविभागफलमाह—विटीयतइति । अनिशं निरंतरं विष्टेर्लपने मुखेऽर्थः कार्यं
विलीयते विनाशमुपैति । तस्मात्तदनंतरं गलं कंठे लयो मृत्युर्भवेत् । उरसि त्वदि अरस्य
पदार्थस्य निमीलनं हानिर्भवेत् । नाभौ कलिः क्लेशः । अरं शीघ्रं कटिस्थले धियो
बुद्धेर्विलपो नाशः । लूने पुच्छे विजयो भवेत् । च पुनरर्थः । विजयते कर्तारिप्रयोगः । लयश्चेति-
लयवाचकः । उक्तं च लघुस्तवे । 'लीयते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेष्वप्यमो' इति ॥ १४ ॥

स्सातलस्था तिमिकार्मुकांगनाधटस्थिते राजनि भूमिगा भवेत् ॥

द्विरेफगोद्वंद्वनखायुधानुगे विष्टिर्द्विस्था ननु ओपराशिगे ॥ १५ ॥

अथ विष्टेः स्थितिर्नममाह—रसेति । ननु मिश्रितं तिमिर्मनराशिः कार्यको घटुः
अंगना कन्या घटस्तुत्या एषा द्वंद्वः एषु स्थिते राजनि चष्टे सति विष्टीरमानलस्था पाताल-
स्थिता भवेत् । द्विरेफोऽलिः वृश्चिकः गौरूपः द्वंद्वं मिथुनं नखायुध सिंहः एषां द्वंद्वः

एतान् राशोननुगः प्राप्तस्तस्मिन् राजनि एतद्राशिगतचन्द्रे विष्टिर्भूमिगा भवेत् शेषराशिगे
मेपकर्मकरकुम्भगते राजनि विष्टिर्दिवस्था स्वर्गस्थिता भवेदित्यर्थः ॥ १५ ॥

सा याति मन्वह्यगतिश्च्युदन्वदिर्गाश्वरोपर्वधसंमितादिषु ॥

तिथिष्वनिष्ठाभिमुखी यथेयमैन्द्रचाननाशाभ्यइतिक्रमः स्यात् ॥ १६ ॥

अथ विष्टिगत्यभिमुखमाह—सायातीति । मनुश्चतुर्दश अहिरष्ट अगः सप्त तिथिः
पञ्चदश उदन्वान् समुद्राश्रित्वारः दिक् दश ईश्वर एकादश उपर्वधोऽग्निस्त्रयः एषां द्वंद्वः एभिः
संमितासु प्रमितासु तिथिषु सा विष्टिर्दैन्द्रचाननाशाभ्यः पूर्वप्रमुखकाष्ठाभ्यइति यथाक्रमं याति
गच्छति । यथा चतुर्दश्यां पूर्वाभिमुखी । अष्टम्यामग्निदिङ्मुखी । सप्तम्यां दक्षिणाभिमुखी ।
पूर्णिमायां नैऋत्यभिमुखी । चतुर्थ्यां पश्चिमाभिमुखी । दशम्यां वायव्याभिमुखी । एकादश्या-
मुत्तराभिमुखी । तृतीयायामीशानाभिमुखीइति । इयं विष्टिरभिमुखी अनिष्ठा स्यात् ॥ १६ ॥

वार्वातिहोत्रस्वपयातुधानकृत्यं वरेप्रेतपकेन्द्रदिक्षु ॥

भद्राननं भीतिवहं निरुक्तं कृत्योद्यमानामृषिभिः क्रमेण ॥ १७ ॥

अथविशेषतआह—वारिति । ऋषिभिः क्रमेण कृत्येषु कार्येषूद्यमो येषां ते तेषां पुंसां
भीतिवहं भयकारि भद्राननं . विष्टिमुखं निरुक्तं प्रोक्तम् । कासु वारादिदिक्षु । वार्जलं वीति-
होत्रोऽग्निः स्वधनं एषा द्वंद्वः एतान् पातीतिपा . द्वंद्वे प्रत्येकस्यसंयोजनात् जलपोवरुणः अग्नि-
पोऽग्निदेवः स्वपोधनपतिः यातुधानो राक्षसः कृत्तिश्रम्वैवाम्बरं यस्य सकृत्कृत्यम्बरो रुद्रः प्रेतपो
यमः को वायुः इंद्रः सुरपतिः एषां द्वंद्व एषां दिक्षु । स्पष्टार्थस्तु । चतुर्थ्यां पश्चिमायां भद्राननं ।
एवमष्टम्यामग्नेय्या । एकादश्यामुत्तरस्यां । पूर्णिमायां नैऋत्यां । तृतीयायामैशान्यां । सप्तम्यां
दक्षिणस्यां । दशम्या वायव्या । चतुर्दश्या पूर्वस्या । ग्रंथान्तरे तु यावत्संख्यादिगा तावत्सं-
ख्यामिते ग्रहरे भद्रामुखम् । यथा चतुर्थ्यां पश्चिमाया चतुर्थे ग्रहरे एव सर्वमपीतिदृश्यते ॥ १७ ॥

क्षमया च दोर्म्यामिषुभिः शिवैरिनेर्मितं रवौ यामदलं वरं विदुः ॥

विधौ भुवां केरिहिभिर्दिनैरिनेर्द्वाभ्यां सभद्रं स्वरशास्त्रदर्शिनः ॥ १८ ॥

अथयामार्द्धमाह—क्षमयेति । स्वरशास्त्रदर्शिनः . स्वरशास्त्रज्ञा . रवौ रविचारे क्षमयेकेन
दोर्म्यां द्वाभ्यां इषुभिः पञ्चभिः शिवैरेकादशभिरिनेर्द्वादशभिर्मितं यामदलं ग्रहराहं वरं विदुः
अवधारयति । एवंविधौ चन्द्रे भुवकेनाकेनाकेनवाभिराहिरिष्टाभिर्दिनैः पञ्चदशभिरिनेर्द्वा-
दशभिर्द्वाभ्यां मितं सभद्रं कल्याणसहितं यामदलं विदुः ॥ १८ ॥

अंकैरगौरभिभिरंशुभिर्युगैर्दिग्भिर्नृपैः स्याच्च समं शुभं कुजे ॥

पष्टं द्वितीयं दशमं बुधे गुरो तदक्षदोस्कदशाहिसंख्यया ॥ १९ ॥

अंकैरिति । कुजे भौमदिने अंकैर्नवाभिरगैः सप्तभिराग्नमिस्त्रिभिरंशुभिर्द्वादशभिर्युगैश्चतु-
र्भिर्दिग्भिर्दशभिर्नृपैः षोडशभिः समं सदृशं यामार्द्धशुभं स्यात् । बुधे षष्ठं द्वितीयं दशमं या-
मार्द्धं शुभं स्यात् । गुरौ अशाणि पंचदशौ मुनौ द्वौ अंका नवदश अहयोष्टौ एषां द्वद्वः
एषां संह्ययासमं मितं तद्यामार्द्धं शुभं स्यात् ॥ १९ ॥

शरांगदिग्विष्वदिनेद्रनागैर्भृगावभिन्नानि शुभान्यशंसन् ॥

शशांकविष्वेद्रनृपेद्रियैश्च यामार्द्धकानीह शनो स्वरज्ञाः ॥ २० ॥

धरेति । इह स्वरज्ञाः भृगौ शुक्रदिने शरादिभिरेषां द्वद्वः । एभिः पंचपददशत्रयोदशप-
चदशचतुर्दशाष्टभिरभिन्नान्यविच्छिन्नानि प्रमितानि यानि यामार्द्धकानि शुभानि अशंसन्
कथयन् । शंसुकथने । चपुनरेव स्वरज्ञाः शनौ शशाकादिभिरेषां द्वद्वः एभिरेकत्रयोदशचतुर्दश-
षोडशपंचभिः प्रमितानि यामार्द्धानि शुभानीत्यर्थः ॥ २० ॥

विष्टिः स्याद्धरितालिकार्चनविधाबुत्सर्गजातक्रिया-

वेमेयेषु शिवार्ययोः फलवती हेमे सदैवार्चने ॥

सोपाकर्महुताशनीजलधराचापाकयज्ञक्रिया-

स्वारब्धेऽध्वरकर्मणीष्टयजने भूप्रदाने तथा ॥ २१ ॥

अथ शार्दूलविक्रीडितेन पूजाविशेषादौ विष्टिं शुभामाह—विष्टिरिति । विष्टिर्हरितालिकार्च-
नविधौ भाद्रपदशुक्लतृतीयाहरितालिकाभिधा तस्या व्रतपूजाविधाने सदैव फलदायिनी स्यात् ।
एवमुत्सर्गजातक्रियावैमेयेषु उत्सर्गोनीलोद्वाहः जातक्रिया शिशूनां घृतमाश्वसंस्कार-
क्रिया वैमेयो विनिमयः एषा द्वद्व एषु च पुनः शिवार्ययोः शंभुगौर्यैर्चने पुनर्होमे
पुनरुपाकर्महुताशनीजलधराचापाकयज्ञक्रियासु उपाकर्म प्रथममारभ्यमाणं ध्रावणीकर्म
हुताशनी हेतिका जलधराजलाशयाः कूपादयस्तेषामर्चा प्रतिष्ठा पाकः यजने यज्ञः एषां द्वद्वः
एषां क्रियासु पुनः आरब्धे प्रारंभितेऽध्वरकर्मणि यज्ञकृत्ये तथा इष्टयजने तथा भूप्रदाने
राज्ञा दत्तवस्तुनि फलवती स्यात् । ‘दक्षजाया कुमारी’ इति हैमः ॥ २१ ॥

भद्राविहितकार्याणां नृपभूदेवताज्ञया ॥

नृणां सफल्यत्यर्थं सा वा भर्गसपर्यया ॥ २२ ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे भद्राध्यायस्तुतीयः ॥ ३ ॥

अथानुष्टुभा पूजादिहेतुना विष्टिं शुभामाह—भद्रेति । साविष्टिः भद्रा भद्रायां विहितं निर्मितं

कार्यं येस्ते तेषां नृणां पुतामर्षं पदार्थं सफल्यति सफल करोति । त्रिर्द्विचरणे इति । कथा
नृपो राजा भूदेवता विप्र एतयोराज्ञयादेशेन भर्गसपर्यया शंभुपूजया चेत्यर्थ ॥ २२ ॥

इति श्रीपार्ष्णिमीयगच्छाधीराजभट्टरक्पुरंदरश्रीमहिमाप्रभसूराश्वरचरणसरोरहचवरीकायमान

शिष्यभावरत्नविरचिताया श्रीशिवकालिदाससूतज्योतिर्विंशभरणस्य

सुरबोधिकाया मद्राध्यायस्तृताय ॥ ३ ॥

गच्छे श्रीमहिमाप्रभाख्यसुगुरो श्रीपार्ष्णिमीयाभिधे ।

शिष्य सूरिवरस्य माण्डणसुतो यो भावरत्नाह्वय ॥

माह्वाकुक्षिसमुद्भव सुकनवान् श्रीपत्तने पत्तने ।

छन्दोव्याकरणाभिगास्मरणतोर्लंकारयुक्तामिमाम् ॥ १ ॥

॥ पर्वप्रकरणम् ॥ ४ ॥

सुयोगवत्याश्रितपर्वकाला तिथिर्भवेन्मंगलकार्यहन्त्री ॥

पर्वाण्यथो मंगलमिच्छयेऽहं तच्छुद्धये वच्मि विपर्वदोषात् ॥ १ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः । तत्र प्रथममुपनातिभ्यामाह—सुयोगेति । सुयोगवती शुभयोगयुक्तापि
तिथिर्मंगलकार्यहन्त्री उद्वाहादिकार्यनिष्पत्तिविनाशिनी भवेत् । किंविशिष्टा तिथिराश्रितपर्व-
काला कुद्वादिपर्वरेलायुक्ता अतः कारणादहं पर्वाणि वच्मि वशीमि स्मिर्भयं विपर्वदोषात्
विगतपर्वदोषात् मंगलमिच्छये विवाहादिकार्यनिष्पत्त्यै किंभूतायै तस्यास्तित्ये शुद्धिर्यस्या सा
तच्छुद्धिस्तस्य ॥ १ ॥

कुहू सिनीवाल्यापि रोहिणीविभावादशिते दर्शितमंडले क्रमात् ॥

स्तोमेनुमत्यह्नि च पूर्णिमास्यथो राकारजन्यामुदिते विधाविह ॥ २ ॥

अथ पर्वाण्याह—कुहूरिति । क्रमादनुक्रमेण आदर्शितेऽष्टमंडले दर्शितमंडले च
रोहिणीविभौ श्रेष्ठे सति कुहू सिनीवाली द्वे अपि अभावात्स्ये स्त भवतः । यदुक्तं हेमचन्द्रपादे ।
'सा नटेंदु कुहू दष्टदु सिनीवाली' इति । अथो चपुनरिह विधौ चन्द्राद्वि दिने उदिते
रजन्यामुदिते च सति अनुमनी रासा द्वे अपि पूर्णिमे स्त । यदुक्तं 'वर्गहीने त्वनुमनी
राका पूर्णं निशाहरे इति ॥ २ ॥

गृहस्थयोस्त्ररिमंजयोर्यमिथः स्वरिष्कयो गृहनुपागरोचिपोः ॥

किलेकराशयोः समसप्तमस्ययोर्भवेत्सदेवं ग्रहपर्वमंभयः ॥ ३ ॥

अथ वंशस्थेन ग्रहणमाह—अहिति । किलेति संभावनायां । अत्रारिसंज्ञयोः अत्ता च अरिश्र
अत्ररी तयोः संज्ञा ययोस्तौ तयोर्मृत्युरिपुसंज्ञयोः पुनः स्वरिष्कयोर्धनव्यययोर्मिथः परस्पर-
ग्रहस्थयो राशिस्थितयो राहुतुषाररोचिषोः राहुचंद्रयोः सतो. सदैवं ग्रहपर्वसंभवो ग्रहणपर्व-
संभवो भवेत् । पुनः किंविशिष्टयो राहुचंद्रयोरेकराशयोरेकराशिर्ययोस्तौ तयोः सतोस्तदापि
अथ स्यात् । पुनः किंभूतयो राहुचंद्रयोः सप्तसप्तमस्थयोरुभयतः सप्तमराशिस्थितयोः सतो-
स्तदाप्ययं स्यात् ॥ ३ ॥

अमावसानं दिवसे रजन्यामन्तो यदि स्यात्सितपंचदश्याः॥

तदोपरागो गणितादस्यः स्पष्टः शुभे कर्मणि चापि साध्यम् ॥४॥

अथोपजात्या ग्रहणकालमाह—अमेति । यदि चेद्विषयेऽमावसानं अमावास्याया अंतः-
स्यात् एवं रजन्यां सितपंचदश्याः शुक्लपौर्णिमायाअंतः स्यात्तदा गणितात् गणितमार्गद्विपरागो
ग्रहणं स्पष्टः । किंलक्षण.उपरागः शुभे कर्मण्यरम्यो निधः । अतएव च पुन शुभे कर्मणि
देवाज्ञाते प्राप्यं शांतिककर्म कर्तव्यं । अथवाऽत्र निमित्तार्थे सप्तमी शुभनिमित्त तदवसरे
साध्यं दानं देयमित्यर्थः ॥ ४ ॥

यदंशुदोषेश्वरपर्वसंस्थं भमेव यावन्नहि तावदर्हम् ॥

दिवौकसां यामचतुष्टयं स्याच्छयाग्रहाद्याखिलमंगलेषु ॥ ५ ॥

अथोपेन्द्रवज्रया हुतं भं कियत्पर्यंतं हेयं तदाह—पदिति । यावद्विौकसा देवानां
यामचतुष्टयं मासवदे अंशुः सूर्यो दोषाया रात्रेरीश्वरश्चंद्रस्तयोः पर्वसंस्थ ग्रहणवेलागतं यदं-
नक्षत्रं स्यात्तावत्कालपर्यन्तमेव तन्नक्षत्रमहं योग्यं नहि स्यात् । केपु शयाग्रहाद्याखि-
लमंगलेषु शयो हस्तस्तस्य ग्रहः पाणिग्रहणं तदाद्यानि अखिलानि मंगलानि तेऽपि त्यर्थः ॥५॥

कृत्स्ने विपादे शकलेऽधितुल्ये क्रमाद्वीद्वोर्ग्रहणे सुकार्यम् ॥

कार्यं नगैः ७ पंचभिः ५ र्णवैश्च ४ रामैः सास्यैव मितान्यहानि ॥६॥

अथोपजात्या न्यूनाधिकग्रहणे हेयदिनविवेकतामाह—कृत्स्न इति । रवीन्द्रो कृत्स्ने संपूर्णे
ग्रहणे विबुधैर्नगैः सप्तभिर्मितान्यहानि दिनान्यपास्य विहाय सुकार्यं शुभकृत्यं कर्तव्यम् ।
एवं क्रमात् विपादे विगतः पावश्रतुर्थांशस्तस्मिन् पादत्रये ग्रहणे पंचदिनानि । शकलेऽर्धे-
ग्रहणे चतुर्दिनानि । अधितुल्ये एकपादमिते ग्रहणे त्रिदिनानीति स्पष्टम् ॥ ६ ॥

भुक्तं युतं भोग्यमसाधुना भं दिवौकसा विद्धमथाऽऽहवस्थम् ॥

खपांथयोर्भेदितमंडलं वा ज्ञेयं तदुत्पातहतं ग्रहज्ञैः ॥ ७ ॥

तदोचितं मंगलके तदृशं यदेदुराक्रम्य पुनर्मुनक्ति ॥

आमासपदकं ग्रहयोगगं तत्सद्वृणं केचिदुशन्त्यथक्षम् ॥ ८ ॥

अथ कुराक्राममाह-भुक्तमिति तदेति युग्मम् । ग्रहसमंगलके विवाहादौ तदा उचितं भेदेन । किंविशिष्टं न असाधुना क्रमेण दिवौकसा ग्रहेण भुक्तं गतकाले अथवा युतं वर्तमानकाले अथवा भोग्यं समीपागामिकालं अथवा विद्धं पचसप्तशलाकायत्रे । अथवाऽऽहवस्यं स आमस्थितम् । अथवा खपाययोग्रहभेदितमडले । अथवा तदुत्पातहर्तृ तेषां प्रसिद्धानां दिव्यभौमान्तरिक्षाणामुत्पानस्तदुत्पातस्तेन हत । यदुक्तं । 'कूरैर्युक्तं कूरगन्तव्यमृतं करारक्रान्तं कूरषिद्धं च नेष्टम् । यच्चोत्पातैर्दिव्यभौमातरिसैः पुष्टं तद्वत्कूरलंताहतं च' तदा कदा'यदा इदुराक्रम्य तंत्रक्षत्रं पुनर्मुनक्ति । अथ केचिदाचार्या आमासपदं ग्रहयोगगं ग्रहणसंयोगमात्रं तत्क्षक्षमे आर्क्षं सद्वृणं दोषसहितमुशति वाञ्छन्ति ॥ ८ ॥

१ १ १

हुताशनाग्न्यागशरामिभूमयो युगामिवाणाक्षयमायमेवः ।

धरेन्दुवेदार्णवरामशंभवो वार्यमिरामाधिगता १०० क्षिप्रदाः ३२ ॥ ९

मयोदितास्तारकतारका इमे क्रमेण नासत्यभतः स्वकर्मगाः ॥

भाश्चर्यनिध्यानरुहेतवे तथा वक्ष्ये भूरुपध्रुवसायकानहम् ॥ १० ॥

अथ तारकाणां तारकमन्त्रमाह-हुनेति मयोदितेति युग्मम् । मयानासत्यभतोऽग्निनी नक्षत्राक्रमेण हुताशनादिसंख्याका इमे तारकतारका उदिता वयिता । तारकाणां नक्षत्राणां तारका तारा तारकतारका किंविशिष्टा तारकनारका स्वकर्मगा निजकार्या युगता । स्पष्टमाह-अ. ३ म १ क. ६ रो. ५ मृ. ३ आ. १ पु ४ पु ३ आ. ६ म. ५ पू. २ उ. २ ह ५ नि १ स्वा १ वि ४ ज ४ वृ. ३ मृ ११ पृ ४ उ १ अ ३ घ ४ श १०० पृ २ उ. २ रे ३२ इति । अथ भूरुप १ ध्रुव २ सायकानां ३ । अह तथा तेन प्रहारेण भूरुपादीन् वक्ष्ये वयिष्ये । भावा नक्षत्राणां रूपाण्याहारा ध्रुवा रादपद्याश्च सायका वाणाश्चेति द्वे द्वे मयेव संयोजनत्वात्तान् । वक्ष्ये भाश्चर्यनिध्यान रुहेतवे मासां दीप्तानां चर्य स्वरूपं भाश्चर्यस्य निध्यानं तस्य हेतुस्तरम् ॥ ९ ॥ १० ॥

हर्षानिनाभं च वसंगरूपं क्षुरोपमं ज्योतिर्ग्नः प्रकामम् ॥

कुरंगक्राम मणिना सदृशं निरेतनाकारमथेपुरुषम् ॥ ११ ॥

अथ प्रथमं वाच्यचतुष्टयेन भूरुपमाह-हर्षति रयेति सम्प्रापेति ज्योतिरिति । इहास्मिन् शास्त्रे इति तारापञ्चसंख्यं नक्षत्रमण्डलमुक्तं । इतिनिविं तदाह ज्योतिर्नक्षत्रमग्निन्यादि । अग्निनीभं हरेरस्थस्यानन्तरं-अ. ३३ भा उवाभा यस्य वत् तुरगमुत्तारम् ॥ ५०

वराङ्गरूपं योन्याकाम् । कृ० शुरोपमं मुण्डनोपकरणाकारं । रो० अनः प्रकामं शंकोटोन्यया-
नम् । मृ० कुरङ्गस्य कं मस्तकं मृगस्य मस्तकं तद्वदाभा यस्य तत् मृगमूर्द्धाकारम् । आ० मणि-
ना रत्नेन सदृशं समानं । पु० निकेतनाकारं गृहाकारं पु० इषुरूपं बाणाकारम् ॥ ११ ॥

रथाङ्गशालाशयनोपमानि शय्यासमं दोःप्रतिमं भमुक्तम् ॥

मुक्तात्मकं विट्पुमतोरेणाभे मणिश्रवोवेष्टनतुल्यरूपे ॥ १२ ॥

सकोपकंठीरवविक्रमप्रभं तल्पाकृतीभस्य विलासवत्स्थितम् ॥

शृङ्गाटकव्यक्ति च तार्क्ष्यकेतुभं त्रिविक्रमाभं च मृदङ्गसन्निभम् ॥ १३ ॥

॥ आ० रथाङ्गं चक्रं तद्वदुपमम् । म. शालोपमम् । पू. शयनोपमं मन्चकोपमम् । अत्रैषां द्वे
प्रत्येकं संयोजनात् । उ. शय्यासमम् । ह. दोःप्रतिमं हस्तसदृशम् । चि. मुक्तात्मकं मौक्तिकसद-
ृशम् । स्वा. द्रुमाभं प्रवालाकारं । वि. तोरेणाभं अनयोर्द्वन्द्वे द्विवचनं । अ. मणितुल्यरूपं । ज्ये. श्रवसः
कर्णस्य वेष्टनं कुण्डलं तुल्यम् । अनयोर्द्वन्द्वे द्विवचनं प्रत्येकं योजनीयम् । मू. कोपेन सह वर्त-
मानः सकोपः एवंविधो यः कंठीरवः सिंहस्तस्य विक्रमप्रभं उत्पन्नोद्यमतुल्यम् । पू० तल्पा-
कृति मन्चकाभम् । उ० इमस्य गजस्य विलासवत्स्थितम् । अ० शृङ्गाटकव्यक्ति जलकंदाकारम् ।
तार्क्ष्यकेतुर्विष्णुस्तद्धं श्रवणः त्रिविक्रमाभं विष्णुचरणाकारम् । ध० मृदङ्गसन्निभम् ॥ १२ । १३ ॥

ज्योतिःशताङ्गाङ्गसमानरूपं ततोऽन्यदृशं यमलद्वयाभम् ॥

शय्यासवर्णं सुरजप्रकाममितीह तारापटलस्वरूपम् ॥ १४ ॥

ज्योतिः शतभिषक् शताङ्गो रथस्तस्याङ्गं चक्रं तेन समानरूपं चक्रसदृशं ॥ 'शताङ्गः स्यं-
द्वनो रथः' इति हैमः । ततोऽन्यदृशं पू० यमलद्वयाभं यमलोद्गततरुद्वयसदृशम् । उ० शय्यासवर्णं
तल्पसमानम् । रे० सुरजप्रकामं मृदङ्गसमानमिति । चकाराः पुनरर्थाः ॥ १४ ॥

ज्ञेयाः सदैवोत्तरपार्श्वसंस्था विश्वार्यमांभोजपदिदुभानाम् ॥

द्विदैवतस्यापि च योगतारा बुधैरहिर्बुध्न्यभगादिभानाम् ॥ १५ ॥

अथ तारकतारकाणां स्थानकमाह—ज्ञेया इति । बुधैरहिर्बुध्न्यभगादिभानामुत्तरामाद्रप-
दापूर्वाफाल्गुन्यश्विनीनां च पुनः विधे उत्तरापादा अर्यमा उत्तराफाल्गुनी अंभो नलं पूर्वा-
पादा अनपाद् पूर्वाभाद्रपदा इन्दुम मृगशीर्ष एषां द्वन्द्वः । एषां पुनर्द्विदैवतस्य विशालायाः योगता-
राः ताराणां योग स योगो योगताराः सदैव उत्तरपार्श्वसंस्थाः उत्तरदि-
क्ममीपस्या ज्ञेया इत्यर्थः ॥ १५ ॥

प्राचीनवर्हिः श्वसनाशनाशनध्वजेज्यमित्राग्रजराजयोषिताम् ॥

विलोकनीया ननु मध्यमास्तथा वसूढनः पश्चिमभागसंस्थिताः ॥ १६ ॥

प्राचीति । ननु निश्चितं बुधैः प्राचीनवर्हिरिन्द्रो ज्येष्ठा । श्वसनो वायुः स्याऽऽशनं यस्य स श्वसनाशनः सर्पः स एवाऽऽशनं यस्य स श्वसनाशनाशनो गरुडः ध्वजश्चिन्हं यस्य स श्वसनाशनाशनध्वजो विष्णुः श्रवणः । इज्यः पुष्यः । मित्रोऽनुराधा । अग्रजा विप्रास्तेषां राज्ञा चंद्रस्तस्य योषितः । स्त्रियो नक्षत्राणि । आंसां द्वंद्वः तार्सा । अत्र प्राचीनवर्हादीनामग्रजराज्योपितो नक्षत्राण्येवं समासो घटते तथापि स्वाम्यग्रे नक्षत्रनामस्थापनासुर्नोधत्वादेव वक्ष्यमाणाधिकारेऽपि ज्ञातव्यम् । तथा वसुडुनो घनिष्ठाया मध्यगतास्ताराः पश्चिमभागसंस्थिता विलोकीनीयाः 'द्व्यग्रोभ्यां जातिजन्मजाः' इति हेमः ॥ १६ ॥

पित्र्यंतकोर्षुधूपमानांमाशागता हंसभुवोऽथ तारा ॥
नक्तंचरादित्यहितास्काणामेद्याश्रिता धातुस्थोडुनः स्यात् ॥ १७ ॥

द्वितीया योगतारा स्यात्प्रतीच्युत्तरतारयोः ॥

पश्चिमाकोडुनो या सावशेषाणां यथाप्रति ॥ १८ ॥

पित्र्यमिति । पितरो मया अंतको भरणी उपर्षुघोऽग्निः कृत्तिका पूषं रेवती एषां द्वंद्वः तेषां ताराः हंसस्तस्योन्नवतीति हंसभूमस्तस्याशा दक्षिणा ततो ज्ञेयाः । अथ नक्तंचरो राक्षसो मूलं अदितिः पुनर्षू अहितारका आश्लेषा आंसां द्वंद्वः तासां ताराणां तारा ऐंद्र्याश्रिताः पूर्वादिगता ज्ञेयाः । अथ धातुग्रहण उडुनो रोहिण्या या द्वितीया तारा पुनर्कोडुनो हस्तस्य या पश्चिमा चरमा ताराऽस्ति सा प्रतीच्युत्तरतारयोः पश्चिमदिगुत्तरदिगुत्तरतारयोर्योगतारा संयोगतारा स्यात् । प्रतीच्युत्तरयोरत्र संबंधे पठ्यते । अथाऽवशेषाणां नक्षत्राणां तारा यथाप्रति यथा योग्यं स्थानं ज्ञातव्याः । या एकतारा द्वयोर्नक्षत्रयोस्तारकाणां मध्ये गणनां प्राप्नोति सा योगतारा कथ्यतेऽत्र विस्तरेण ग्रंथान्तरादित्यमित्यर्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥

कुंभीनसा भूमियमा गजामयस्ताना द्वितर्का रसपट्युगग्रहाः ॥

पट्वरोव्योगदिशोकहेलयो भुजंगमेन्द्राः शस्मार्गणेदवः ॥ १९ ॥

॥ अथ काव्यत्रयेण भद्रवक्रांशानाह—कुंभीति । आदिमादश्विनीतो ध्रुवक्रांशका ध्रुवक्राः क्रमेण स्युः । कतिमेत्याकास्तानाह । अ० कुंभीनसाः सर्पाः अष्टौ । 'कुंभीनसाशोविपदाघपृष्ठाः' इति हेमः । भ० भूमियमाः एकविंशतिः । रु० गजाग्रयः अष्टत्रिंशत् । रो० तानाः संगीतशास्त्रप्रामिद्धाः एकोनपंचाशत् । मृ० द्वितर्काः द्विपष्टिः । आ० रसपट् पट्टिः । पु० युगग्रहाः चतुर्नवतिः । पु० पट् च अंचरं च उर्वो च पट्वरोव्ययः पट्वधिकशतम् । अ० अगदिशः सप्ताधिकशतम् । म० अंकहेलयः एकोनत्रिंशदधिकशतम् । पु० भुजंगमेन्द्राः अष्टानत्वारिंशदधिकशतम् । उ० शस्मार्गणेदवः पंचपंचाशदधिकशतमित्यर्थः ॥ १९ ॥

स्वात्यष्टयो रामभुजंगमेदवोऽहंकेन्दवो लोचनमृमिवाहवः ॥

जिनांश्विनो व्योमहुताशनांश्विनो द्यव्याश्विनो मार्गणमार्गणाश्विनः २०

ह० स्वात्यष्टयः सप्तत्यधिकशतं । चि० राममुजंगमेन्दवः त्र्यशीत्यधिकशतं । स्वा०
अर्धकेंदवः अष्टनवत्यधिकशतं । वि० लोचनभूमिबाहवः द्वादशाधिकद्विशतं । अ० जिना-
श्विनः चतुर्विंशत्यधिकद्विशतं । ज्ये० व्योमहुताशनाश्विनः त्रिंशदधिकशतद्वयम् । भू०
घब्ध्याश्विनः द्वाचत्वारिंशदधिकशतद्वयम् । पू० मार्गेणमार्गणाश्विनः पञ्चपञ्चाशदधिकश-
द्वयम् ॥ २० ॥

धरांगदस्त्राश्च युगांगलोचनाः शराद्रिदोषोर्वरसिंधुराश्विनः ॥

नभोरदा तत्वगुणा नगामराः खमादिभाद्रध्रुवकांशकाः क्रमात् ॥ २१

उ० नरांगदस्त्राः एकपष्ठ्यधिकशतद्वयम् । अभि० युगांगलोचनाः चतुःपष्ठ्यधिकशतद्वयम् ।
ध्र० शराद्रिदोषः पञ्चसप्तत्यधिकशतद्वयम् । घ० अंवरसिंधुराश्विनः अशीत्यधिकशतद्वयम् । श०
नभोरदा विंशत्यधिकशतत्रयम् ॥ पू० तत्वगुणाः पञ्चविंशत्यधिकशतत्रयम् ॥ उ० नगामरा
सप्तत्रिंशदधिकशतत्रयम् । रे० खं शून्यमिति ध्रुवांशका ॥ २१ ॥

सौम्या दिशोर्का विशिखाश्च दक्षिणाः शिलीमुखा व्योमधराः कपालिनः ॥

उदग्रसाः पत्ररथायनं ततो हरेर्दिशं वारिधिचीवराधराः ॥ २२ ॥

अथ भसायकलवानाह काव्यत्रयेण—सौम्येति । सदा उडुनोश्विन्यादेर्नेक्षत्रस्य अमी
स्फुटाः बाणलवा स्वाऽपमयोगतारयोः निजक्रातियोगतारयोरन्तरे विचाले स्युरित्यन्वयः ।
अग्रे ते वक्ष्यन्ते । सौम्या उत्तरा दिग् । अ० दिशो दश बाणलवा एवं भ० अर्काः द्वादश ।
क० विशिखा बाणा पंच रो० दक्षिणा दक्षिणादिग्गा शिलीमुखा पंच । मृ० व्योमधराः
दश । ओ० कपालिनः एकादश । पु० उदग् उत्तरादिग्गा रसाः षट् । पु० पत्ररथानां
पक्षिणामयनं मार्गो व्योम शून्यः । आ० हरेर्यमस्य दिशं दक्षिणं यथा स्यात्तथा वारिधिचीवरा
धरा वारीणि वीर्यतेऽस्मिन्निति वारिधिः समुद्रः स एव चविरं वत्स यस्याः सा वारिधिचीवरा
भूः ता धरतीति वारिधिचीवराधराः पर्वता भूधरा सप्त ॥ २२ ॥

सौम्याः खमर्काश्च धनंजयेदवोऽपागीश्वरा द्वाबुदगद्रिवह्वयः ॥

याम्या धरा द्वौ दहना भुजंगमाः शिलीमुखाः पंचलवाः क्रमादतः ॥ २३

म० सौम्या उत्तरदिग्गा ख शून्यः । पू० अर्काः द्वादश उ० धनजयेदवोऽग्निचंद्रास्त्रयो-
दश । ह० अपाग् दक्षिणादिग्गा ईश्वरा एकादश । चि० द्वौ । स्वा० उदग् उत्तरदिग्गा
आद्रिवह्वयः सप्तत्रिंशत् । वि० याम्या दक्षिणाधरा एकः । अ० द्वौ । ज्ये० दहनास्त्रयः ।
भू० भुजंगमा अष्टौ । पू० शिलीमुखा पंच । उ० पंचलवा क्रमादतः ॥ २३ ॥

सौम्या द्वितर्काः स्रगुणा रसाग्नयः खमागमाक्षीणि नगाश्विनो नभः

स्युरन्तरे स्वापमयोगतारयोस्मी स्फुटा बाणलवाः सदोडुनः ॥ २४ ॥

अ० सौम्या उत्तरगा द्वितर्काः द्विपक्षिः । अ० खगुणास्त्रिंशत् । घ० रसाग्रयः पटत्रिंशत् ।
श० खंशून्यं । पू० आगमासीणि चतुर्विंशतिः ॥ उ० नगाश्विनः सप्तविंशतिः । रे० नभः
शून्यं इति बाणलवाः ॥ २४ ॥

| अ० | भ० | क० | रो० | मृ० | आ० | पु० | पु० | श्व० | मं० | पु० | उ० | द० | वि० | स्ता० |
|-------|-------|-------|--------|-----|--------|-------|-------|--------|-----|-------|-------|----|--------|-------|
| ० | ० | १ | १ | २ | २ | ३ | ३ | ४ | ४ | ५ | ५ | ६ | ६ | ६ |
| ८ | २१ | ८ | १९ | २ | १६ | ४ | १६ | १७ | ९ | २८ | ५ | २० | ३१ | १८ |
| ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
| १० | १२ | ५ | ५ | १० | ११ | ६ | ० | ७ | ० | १२ | १३ | ११ | २ | ३७ |
| उत्तर | उत्तर | उत्तर | दक्षिण | द० | दक्षिण | उत्तर | उत्तर | दक्षिण | उ० | उत्तर | उत्तर | द० | दक्षिण | उत्तर |

| वि० | अ० | उ० | मृ० | पु० | उ० | अ० | ध० | ध० | श० | पू० | उ० | रे० | अ० |
|--------|--------|--------|--------|--------|--------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|-----|----|
| ७ | ७ | ७ | ८ | ८ | ८ | ८ | ९ | ९ | १० | १० | ११ | ० | १७ |
| २ | १४ | २० | २ | १५ | २१ | १८ | ५ | १० | २० | २५ | १७ | ० | १७ |
| ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
| १ | २ | ३ | ८ | ५ | ५ | ६२ | ३० | ३६ | ० | २४ | २७ | ०० | |
| दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण | उत्तर | उत्तर | उत्तर | उत्तर | उत्तर | उत्तर | | |

स्फुटो यदा राशिमुखो नभश्चरः सेपुस्तदा भध्रुवकेन सेपुणा ॥
तज्ज्योतिषः स्याद्विभिनत्ति मंडलं समः सभोत्पातमुशंति कोविदाः ॥२५॥

अथ भिन्नमंडले नक्षत्रोत्पातमाह—स्फुट इति । यदा राशिमुखः राशिमुखः
स्फुटः स्पष्टः सेपुः मह इपुणा शरेण वर्तमानो यः स एवविशो नभश्चरो ग्रहः सेपुणा
शरसहितेन भध्रुवकेन समः सट्टशः स्यात्तदा स ग्रहः तज्ज्योतिषस्तदेन ज्योति
स्तज्ज्योतिस्तस्य नक्षत्रस्य मंडलं भिनत्ति कोविदाः पंडितास्तज्ज्योत्पातं नक्षत्रोत्पातमुशंति
कथयंत्येत्यर्थः ॥ २५ ॥

समागमोऽंशान्तरसंस्थयोर्भवेन्मिथोऽयुयोगे च परस्परं तयोः ॥
तद्भोविमर्दे मृधमर्कसंयुता उल्लेखनं भेदयुतिर्विभेदः ॥ २६ ॥

अथ ग्रहनक्षत्रसंगमाधिकारमाह—समेति । अंशान्तरमंस्थयोर्भवेन्मिथोऽयुयोगे
नक्षत्रयोर्मिथः परस्परमंशुयोगे किरणयोगे सति ममागमः संगमो भवेत् । च पुनः परस्परं
तद्भोविमर्दे तयोर्ग्रहनक्षत्रयोर्गीः किरणास्तेषां विमर्दो व्याघ्रोऽनं नस्मिन्मतिः मृधं

युद्धं भवेत् । पुनरर्कसंयुतौ नक्षत्रमूर्ययुतौ सयोगे उल्लेखनं भवेत् । तयोर्विभेदतो
भेदयुतिर्भवेत् ॥ २६ ॥

खगोडुनोर्वा खगयोर्द्वयोर्द्विभेदयोगश्चित्तमृक्षमहम् ॥

नामासपट्टं शुभमंगले स्यादुल्लेखनाभ्यागमगं समाधिम् ॥ २७ ॥

अथ तद्वत् न दृश्यति—खगेति । खगोडुनोर्ग्रहनक्षत्रयोर्वाय खगयोर्ग्रहयोर्द्वयोर्विभेदयो
गाधिन यद्वत् तद्वत् शुभमंगले आमासपट्टं पणामपर्यन्तमहं योग्यं न स्यात् । पुनस्तद्वत्तुल्ये
वनाभ्यागमग उल्लेखनमग युद्धगत च समाधि समाया वर्षस्याधिश्चतुर्थाशस्तत्पर्यन्त मासत्रय
पुनर्वर्षेह न स्यात् । अभ्यागम समरेतिके “पाते रोधिष्युपागमे” इतिहम् । समाधिमिति
फालाध्वनोर्नरेतर्य द्वितीया ॥ २७ ॥

परस्परस्थं च तयोस्नादृतं मासद्वयं यावदुडुद्वयं तथा ॥

मासोरशेषासुसमागमस्थितं क्रियासु मासं यदसाध्वधिष्ठितम् ॥ २८ ॥

परस्परस्थमिति । तयोर्ग्रहनक्षत्रया परस्परस्थं यदुडु बुधस्तदुडु मासद्वयं यावदादृतं
न अगीकृतं न वासु अशेषासु क्रियासु । एव तथा सम गमस्थितं नक्षत्र मासोर्मासयोर्द्वयम् ।
पासाध्वधिष्ठितं क्रूरग्रहाधिनं नक्षत्र मासमिति शेषं योग्यम् ॥ २८ ॥

स्यातां समावर्कविभावीशयोर्भसोमयोर्वार्कभयोरपक्रमौ ॥

स्फुटौ तदायं क्रमसाम्यसंज्ञकं पर्वोदितं यद्यथ पुण्यसिद्धिदम् ॥ २९ ॥

अथक्रातिसाम्यमाह—स्यातामिति । यदिचेत् अर्कविभावीशयो सूर्यचन्द्रयोरपवा मसो
मयोर्वाऽर्कमयोर्वा स्फुटौ समावपक्रमौ स्याता तदा बुधैरपक्रमसाम्यसंज्ञिकं क्रानिसाम्यनामक
पर्व उदितं कथितं । किंविशिष्टं । पुण्येन दानधर्मेण सिद्धिदं पुण्यसिद्धिदम् ॥ २९ ॥

ऐद्रे त्रिभागे च गते भवेत्तयो शेषे ध्रुवपक्रमसाम्यसंभवः ॥

यद्येकरेखास्थितमेशचंडगू स्यातां तदापक्रमचक्रवालके ॥ ३० ॥

अथैकद्वयशया क्रानिचक्रमाह—ऐद्रे इति । यद्येकरेखेति । एकरेखाया स्थितौ च तौ
मेशचंडगू च तौ चन्द्रसूर्या स्याता तदाऽपक्रमचक्रवालके क्रानिचक्रे तयोश्चन्द्रार्कयोरपक्रमसा
म्यसंभव क्रानिसाम्यसंभव स्यात् । कस्मिन्सति ऐद्रे योगे त्रिभागे गते विशतिवर्गीत
इत्यर्थः । च पुनर्भूते योगे शेषे त्रिभागे गते चत्वारिंशत्वर्गीत उपरि इत्यर्थः ॥ ३० ॥

याम्योत्तमप्रागपराश्च तिमो रेखा लिखेदिन्द्रदिशोपमास्यम् ॥

मध्यात्ययोनीद्विषुसं भवकं चक्रं त्विदं ज्योतिषिकैरिदोक्तम् ॥ ३१ ॥

| | | | | |
|----|---|---|---|----|
| | १ | २ | ३ | |
| २ | १ | २ | ३ | १० |
| उ३ | | | | ९ |
| ४ | | | | ८ |
| ५ | ९ | ८ | ७ | |

अथैन्द्रवज्रया तच्चक्रमाह—याम्यइति । सुधी याम्योत्तरा
भागपराश्च तिलो रेखा लिखेत् । पुनरिन्द्रदिशः पूर्वदिग्ध्यात्
मचक्रं राशिमंडलं लिखेत् । किंभूतं भवक्रमम् । पयसि जले
नीडं स्थानं यस्य स पयोनीडो मीनराशिः स मुखं आदिर्यस्य
तदिति । ज्योतिषिकैरिह दं चक्रमपमाख्यं क्रांतिसाम्यनाम
कमुक्तं । ' भं नक्षत्रे मेपादौ ' इति महीपः । ' नीडं स्थाने
खगालये ' इति हैमः ॥ ३१ ॥

निखिंशकुंताहतमस्ति रक्षितुं नरं च धातानलदग्धविग्रहम् ॥

तथा निमग्नं न सरस्वति क्षमः कृतेन सोमापमसाम्यमंगलम् ॥ ३२ ॥

अथोपनात्यास्य दुष्टफलमाह—निखिंशेति । धाता ब्रह्मा निखिंशकुंताहतं तीक्ष्णभङ्ग-
ताडितं तथाऽनलदग्धविग्रहं बन्धिज्वालितदेहं तथा सरस्वति समुद्रे निमग्नं तं एवंविधं नरं रक्षितु
रक्षणाय क्षमः समर्थोऽस्ति न पुनः कृतेन सोमापमसाम्यमंगलं इनसोमयोः सूर्यचंद्रयोरपमसाम्यं
क्रांतिसाम्यं इनसोमापमसाम्यं कृतं विहितं इनसोमामसाम्ये मंगलं येन सः तं नर-
मित्यर्थः ॥ ३२ ॥

पतेदसौ चापमसाम्यजन्मा श्रेयोजनान्यातशकुंतिरूर्ध्वम् ॥

विशालचक्रप्रतिमो यथेवं नेतुं नवाभ्रात्यचिरांशुपातः ॥ ३३ ॥

अथार्यैव पतिरूपतामाह—पतेदिति । वेतिपूर्वार्थात्पक्षांतरेऽसौ अपमसाम्यजन्मा क्रांति-
साम्यसंज्ञातः पातशकुंतिः पातलक्षणपशू उर्ध्वं भूमिं पतेत् । किरुतुं श्रेयोजनान् मंगलाश्रितनरान्
नेतुं गृहीतुमेव । निश्चयेन किंविशिष्टोऽसौ विशालं विस्तीर्णं चक्रमायुधविशेषस्तत्पट्टशः ।
दृष्टान्तेन दृश्यति । यथा नवाभ्रात्यचिरांशुपातः नवानामभ्राणां मेवानामालिः श्रेणित्तरया-
मचिरांशुरनिरममा तडित् तस्याः पात इव मीध्येव विधः । ' चलाशंसाभिरममा ' इति हैमः ॥ ३३ ॥

तत्संभवेपक्रमसाम्यमेवयोरितेय साध्यं गणिनेन तद्विदा ॥

तदंतरे मानदलैक्यतोधिके तद्रूपं कर्मसु भूषणायते ॥ ३४ ॥

अथ प्रातिगणितमाह—तत्संभवेति । तद्विदा देवजेन गणिनेन गणितमार्गेणाप्य
ममाम्यं माप्यं साधनीयं कश्चिन् एतयोः सूर्यचंद्रयोर्मध्यमंभवे प्रातिगणिते इति प्राप्ते मतिः ।
अथ मानं दृष्ट० ममागार्द्धे कौमुदीशोऽधिके तदंतरे तद्रूपं तद्रूपं कर्मसु वार्येषु भूषणायते
भूषणविशेषरति भूषणवदमवर्ति भवति ॥ ३४ ॥

ज्ञेयं ज्ञपाज्योश्च धर्त्यचतुष्टयं पडंघ्रिवाणामनयोर्यदंतरे ॥

जंवालनीद्विभजिचांस्तुसंतपोर्गद्वांतमायैरपि मंगलादितम् ॥ ३५ ॥

अथ गंडान्तयोगमाह—ज्ञेयमिति । सपाव्योर्मानमेधयोरन्तरे विचाले यत् घटीचतुष्टयं एवं
षड्विभाषाणासनयोः षड्अंशयश्चरणा यस्य सपट्विध्रमरो नाणस्य शरस्य असनं नाणासनं घनु
स्तयोर्वृश्चिकघनुयोश्च पुनर्नचाले पंके नीढं स्थानं यस्य स कीटः । इमजिवांसुर्गनरिपुः एत-
त्संज्ञयोः कर्कसहयोरायैराचार्यैस्तद्वघटीचतुष्टयं गंडांतं नाम ज्ञेयम् । किंविशिष्टं गंडांतं
मंगलाहितं शुभकार्येभ्योऽपि निश्चितम् । 'वैर्यहितो निवासुः' इति हेमः ॥ ३५ ॥

दिवौकसोः संयुतिर्दुहंसयोः क्रांत्योर्यदि स्यात्सल्लु वा समानता ॥
गंडांतके मंगलमिंद्रयामयोर्युगं न यावद्विबुधैस्तदादृतम् ॥ ३६ ॥

दिवौकेति । सल्लु निश्चितं यदि दिवौकसोर्ग्रहयोः संयुतिः बापवा इंदुहंसयो
श्चंद्रसूर्ययोः क्रांत्योः समानता स्यात्तदा विबुधैर्गणकैः इंद्रयामयोः सुरपतेः प्रहरयोर्युगं
मासत्रयमितं यावन्मंगलं नादृतं नागोक्तमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

समायनर्तुमासानां संधयोर्वासराः क्रमात् ॥

गजाब्धिद्विधरातुल्याः पुण्या मंगलगर्हिताः ॥ ३७ ॥

अथ संधिगतदिनान्याह—समेति । समा वर्षं अयनं ऋतुः मासः एषां द्वयः एषां संधयोः
संबानयोर्गजाब्धिद्विधरातुल्याः क्रमाद्वासराः स्युः ॥ कोऽर्थः । वर्षमंधयो कालगुणकृष्णद्वादशी-
मारम्य चैत्रशुक्लचतुर्थ्यन्तमष्टौ वासराः । एवमयनसंधयश्चत्वारः । ऋतुसन्धिरेकः । माससंधिरेकः ।
किंविशिष्टाः पुण्याः दानवर्मयोग्याः । पुन किंविशिष्टा मंगलगर्हिताः स्पष्टम् ॥ ३७ ॥

सहस्यतपसोर्मासोरमान्हांशुमतो यदा ॥

सपातमार्यभा पर्वज्ञेयमर्द्धोदयाब्धयम् ॥ ३८ ॥

अथार्द्धोदयामिधं पर्वमाह—सहस्येति । यदा अंशुमतः सूर्यस्याद्दि दिने सहस्यतपसोः
षोडशावयोर्मासोरमावासो स्यात् । किंविशिष्टा अमा सपातमार्यभा पातो व्यतीपातः मामा
सत्यमामावत् मालशमीस्तस्या अर्यः स्वामी विष्णुस्तस्य मं श्रवणः ताम्यां सहवर्नाना मरा
तमार्यभा तदा बुधैर्द्धोदयाब्धयं पर्वं ज्ञेयमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

पञ्चकं पूर्णमासी स्यात्सपातेनेज्यवासरा ॥

मधुमाधवयोःपर्व यदा सेन्द्राग्निभा तदा ॥ ३९ ॥

अथपञ्चक पर्वमाह—ज्ञेति ॥ यदा मधुमाधवयोश्चैत्रवेशास्त्रयो पूर्णिमामो स्यात् । किं-
लगा पूर्णमासी सेन्द्राग्निभा विशाखानशत्रयुक्ता । पुनः किंभूता । सपातेनेज्यशमरा पातो व्यती-
पात इनः सूर्यः इज्यो गुरुः एषां वासरैः सहवर्नमाना सपातेनेज्यवासरा तदा पञ्चकं नाम
पर्वं स्यात् ॥ ३९ ॥

नभस्यापरपक्षस्य पष्ठि सारा शयस्थिते ॥

व्यतीपातयुना चेने सकर्त्ता कपिलाब्धया ॥ ४० ॥

अथ कपिलापत्नीमाह—नभस्येति । नभस्यस्य भाद्रपदस्याऽपरपक्षस्था रुग्णपक्षस्था पत्नी तिथिः कपिलाह्वया स्यात् । किलसणा पत्नी सहअरेण भौमेन वर्तते सारा । पुनः किंभूता । व्यतीपातयुता । च पुनः किंभूता को ब्रह्मा तस्य ज्ञप्तेण रोहिणीनक्षत्रेण सह वर्तते या सा सार्कषा । कस्मिन् सति । इने सूर्ये शयस्थिने हस्तनक्षत्राश्रिने ॥ ४० ॥

अष्टम्यश्चाष्टका ज्ञेया मंगलेऽनिष्टदा बुधैः ॥

सहस्तपःसहस्यानां नभस्यस्यासितप्रभाः ॥ ४१ ॥

अष्टकाष्टमीमाह—अष्टेति । बुधैः सहः मार्गशीर्षः तपः माघः सहस्यः पौषः एष द्वंद्वः एषां नभस्यस्य भाद्रपदस्य चाऽसितप्रभाः रुग्णपक्षान्विता अष्टम्योऽष्टकाभिधा मंगले विवाहादौ नेष्टदा ज्ञेयाः ॥ ४१ ॥

अमायुगादिमन्वादिपक्षसंक्रांत्यनंतिकाः ॥

क्षयाहर्तनवान्नानि चेयं श्राद्धद्विसप्ततिः ॥ ४२ ॥

अथ द्विसप्ततिश्राद्धान्याह—भमेति । इयं श्राद्धानां द्विसप्ततिर्भवति सा कथ्यते । अमा अमावास्याः द्वादशश्राद्धानि । एवं युगादयस्त्रिधयश्चत्वारि । मन्वादयस्त्रिधयश्चतुर्दश । पक्षः श्राद्धपक्षः क्षयेतिथौ तदा प्रतिपदासह षोडश श्राद्धानि । संक्रांतयोद्वादश । अनंतिकास्त्रिधयश्चत्वारि । क्षयाहः मानसपिनरयोर्मृत्युदिनं द्वे कनकं षट् नशास्त्रे द्वे ॥ ४२ ॥

नवम्यूर्जे तृतीयाद्या माघवेमी युगादयः ।

पंचदश्यसिता माघे नभस्ये स्युस्त्रयोदशी ॥ ४३ ॥

अथ युगादितिथीनाह—नवेति । ऊर्जे वार्तिके आद्या शुक्ला नवमी । माघवे वैशाखेऽस्य तृतीया । माघेप्रसिता रुग्णा पंचदशी अमात्रामी । नभस्ये भाद्रपदे त्रयोदशी रुग्णा युगादयोऽमी चत्वारस्त्रिधयः स्युः ॥ ४३ ॥

शुक्ले नवमी चोर्जे द्वादशी तृतीया मघो ॥

नभस्ये तृतीया प्रोक्तमायास्या नभसि स्मृता ॥ ४४ ॥

आषाढी कार्तिकी शुक्ला पंचदश्यथ फाल्गुने ॥

चैत्री चतुर्दशेति स्युर्ज्येष्ठी मन्वंतरादयः ॥ ४६ ॥

आषाढीति—आषाढी पूर्णिमा १० कार्तिकी पूर्णिमा ११ फाल्गुने शुक्ला पचदशी पूर्णिमा १२ चैत्री पूर्णिमा १३ ज्येष्ठी पूर्णिमा १४ मन्वतरादयोऽमी चतुर्दश वेपथ स्यु ॥ ४६ ॥

राकायाः पंचमे पक्षे शुचेः श्राद्धानि षोडश ।

स्यादेष्वध्वस्तुल्यामि पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ४७ ॥

अथ षष्ठश्राद्धान्याह—राकेति । शुचैराषाढस्य राकाया पूर्णिमाया सकाशात् पक्षमे पक्षे कोर्षो भाद्रपदस्य पूर्णिमात् आरभ्य षोडशश्राद्धानि अध्वस्तुल्यानि यज्ञस्तुल्यानि स्यु । एषु श्राद्धेषु पितॄणां पूर्वजानां दत्तमक्षयं स्यात् ॥ ४७ ॥

माघोर्जमाधवेपानां पूर्णिमाः स्युस्त्वनंतिकाः ॥

वसन्ते शरदि श्राद्धशुभेऽहनि नवान्नके ॥ ४८ ॥

अथान्तिकास्तिथीराह—माघेति । माघकार्तिकैवशाखाश्विनमासानां पूर्णिमा अनंतिका स्यु । तु पुनर्वसन्ते शरदि ऋतौ शुभेऽन्हि दिवसे नवान्नके नूतनपान्यनिर्मिते श्राद्धे स्त ॥ ४८ ॥

मघादिमासेषु भवन्ति भानोः संक्रातयो मेघमुखाः क्रमात्स्यात् ॥

मासो विसंक्रांतिरथाधिमासो मासो द्विसंक्रांतिरसौ क्षयाख्यः ॥ ४९ ॥

अथेन्द्रवज्रया संक्रातिन्यूनाधिकमासानाह—मघेति । चैत्रादिद्वादशमासेषु भानोर्मेघ-
शुक्ला संक्रातय स्यु । क्रमात् यो मासो विसंक्राति संक्रातिरहित । अथवा द्विसंक्राति-
संक्रातिद्वयसहित स्यात्सोऽसौ मासोऽधिमास क्षयाख्यश्च स्यात् । कोर्षोऽसंक्रातिको-
मासोऽधिक । द्विसंक्रातिक क्षय इत्यर्थ ॥ ४९ ॥

यदैदवो मार्गनु सौरमासाद्भवेद्विसंक्रांतिरसौ लघीयान् ॥

स योऽधिमासो रदनैर्दलाब्धैर्ज्ञेयो विधोर्मास इहांशुमासैः ॥ ५० ॥

अथोपजात्या कतिमासैरधिको मास आयाति तदाह—यदेति । ननु निश्चित यो मासो
विसंक्रातिरदैवो मासश्चाद्रो मास सौरमासाच्छवीयानतिशयेन लघुर्भवेत् । इह सोऽमी विज्ञे
मासोऽंशुमासैः सौरमासैराधिमासो ज्ञेयो बुधैरिति शेष । विंशत्यैरांशुमासैः रदनैर्दन्तैर्दन्ता
रथैर्दन्तैः सार्द्धद्वात्रिंशन्मितैरित्यर्थ ॥ ५० ॥

सौराद्यदा चांद्रमासो गरीयान्मासो द्विसंक्रांतिरसौ क्षयाख्यः ॥

स यस्तदा स्यात्क्षितिवेदरूपैरन्दैर्मितैर्वा कचिदंकचैर्द ॥ ५१ ॥

अथ कतिवर्षे क्षयमास आयाति तदाह—सौरेति । यदा यश्चांद्रमासः सौरमासाद्रीयान-
तिशयेन गुरुद्विसंक्रांतिर्भवेत्तदा सोऽसौ मासः क्षयाख्यः स्यात् । कैः कृत्वा सितिवेदक-
पैरेकचत्वारिंशदधिकशतेन मितैरैवैर्वर्षा कचित्कालेऽकचंद्रैरेकोनविंशत्यामितैर्वा ॥ ११ ॥

चैत्रादिमासादधिमासकालवानूर्जादिमासत्रयऊनमासकः ॥

मासोऽन्यथातोक्तिरियं भवेदतो नेत्याह कश्चिन्नियमं न वालिशः ॥५२॥

अथेन्द्रवेशयाऽधिकक्षयमासनियममाह—चैत्रेति । चैत्रादिमासादधिमासकालवानधिक-
मासोऽष्ट एतद्वाऽधिका भवतीत्यर्थः ॥ ऊर्जादिमासत्रयऊनमासकः क्षयाख्यः स्यात्
एतद्व्य क्षयतां यांतीत्यर्थः ॥ कश्चिदिति । नियमेन नाह न्यूते । इतीति किं । मासो मासस्ये
यमुक्तिरन्यथा न भवेत्त । द्वौ नकारौ प्रकृत्यर्थं सूचयतः । अन्यथा भवेदित्यर्थः । अतः कारणात्स
वालिशो मूढः । अथवेयमुक्तिरन्यथा न भवेत् । कश्चिदिति पूर्वोक्तं नियमेनाह । अतः स
वालिशो न अपि तु भवेदेवेत्यपिशब्दार्थः ॥ १२ ॥

त्रिखेदुभिर्विक्रमभूपतेर्भिते शाकेन्वितीह क्षयमासको भवेत् ॥

अन्यः स्वकालाब्दगणेन हायनेऽधिमासयुग्मं क्षयमासवत्यतः ॥५३॥

अथोपजात्या क्षयमासेऽधिकमासद्वयमाह—त्रिखेति । यथा विक्रमभूपतेस्त्रिखेन्दुमित्यवि-
कशतेन मिते शाके गते सति अत्रैकचत्वारिंशदधिकशतवर्षपरिपूर्णजातत्वात्क्षयमासका
जातोऽस्ति । अयं विद्यमानकालिदासापेक्षया दर्शितदृष्टांतः प्रोक्तः । तथाऽत उक्तक्षय-
मासात् पुनरग्रे इतिप्रकारेण स्वकालाब्दगणेन निजकालगणनया । कौर्षेः चत्वारिंशद-
धिकशतेन मिते हायने वर्षेऽन्यः क्षयमासको भवेत् भविष्यतीत्यर्थः । इहाऽस्मिन् क्षय-
मासयति वर्षेऽधिमासद्वयं स्यात् । यस्मिन्वर्षे क्षयमासः स्यात्तस्मिन्वर्षेऽधिकमासद्वयं
निश्चयेन स्यादित्यर्थः । 'गणः प्रथमसंख्ययोः समूहे सैन्यभदे' इति महीपः ॥ १३ ॥

श्रीसूर्यसिद्धांतमतोद्भवाकांक्षास्थौ तदा तावधिकक्षयाख्यौ ॥

मासौ ग्रहज्ञैर्गणितं तथान्यत्साध्यं सदा यद्यपि तद्ग्रहाद्यम् ॥ ५४ ॥

अथेन्द्रयज्ञयानयोः साध्यस्थानं दर्शयति—श्रीसूर्येति । यद्यपि ग्रहाद्यं गणितमन्यत्सा-
ध्यं तथापि ग्रहज्ञैस्तदा तौ अधिकक्षयाख्यौ मासौ साध्यौ कस्मात् श्रीसूर्यसिद्धांतमतोद्भवा-
कात् । श्रीवराहमिहिरकृतसिद्धांतगणितसूर्यात् ॥ १४ ॥

स्थूलं सदा ब्राह्ममतं निरुक्तमादित्यसिद्धांतमतं च सूक्ष्मम् ॥

भाद्यादिकं सूक्ष्मतरादसूक्ष्मं सूक्ष्मं मतं स्थूलत एव सिद्धम् ॥ ५५ ॥

अथ ब्राह्मसूर्यसिद्धांतयोर्मतभेदमाह—स्थूलमिति । बुधे सदा ब्राह्ममतं स्थूलं निरुक्तम् ।
च पुनरादित्येति । सूर्यसिद्धांतमतं सूक्ष्मं निरुक्तम् । पुनर्भाद्यादिकं भगणादिकं सूक्ष्मतरात्
असूक्ष्ममिति शयेन सूक्ष्मं न भवतीत्यर्थः । अतः कारणात् स्थूलत एव सूक्ष्मं मतं सिद्धम् ॥ १५ ॥

अतोऽनिशं संक्रमणेशुमालिनास्तियौ सदा मूहमविधानंसाधने ॥

सौरं मतं शस्तमथान्यनिर्णये स्थूलं च भेन्यग्रहसंक्रमेष्वेपि ॥५६॥

अथोपजात्या सौरब्राह्मयोर्ब्राह्मस्यानमाह—अत इति । अनिशं निरंतरमशुमालिनः सूर्यस्य संक्रमणे तियौ तथा मूहमविधानसाधने स्पष्टगणितसाधने सदा सौरं मतं शस्तं शुभम् । अथान्यनिर्णये स्थूलकार्ये च पुनर्भे नक्षत्रसाधने पुनरन्यग्रहसंक्रमेषु सूर्यव्यतिरिक्त-ग्रहसंक्रमेष्वपि स्थूलं ब्राह्मं मतं शस्तमित्यर्थः ॥ ५६ ॥

मासि क्षये चाधिकमासि नो हिता व्रतोपयामक्षयसप्ततंतुजा ॥

उत्सर्गभूनेत्रभिपेचनादिका क्रिया भवेद्धर्मवतीह सिद्धिदा ॥५७॥

अथ क्षयाधिमासे हेयमाह—मासीति । क्षये मासि अधिकमासि च विषये क्रिया नो हिता होता । कथंभूता क्रिया । व्रतं नियमः उपयामो विवाहः क्षयो गृहं सप्ततंतुर्ज्ञः र्षां द्वे एभ्यो जायते इति । तज्जा पुनः किंभूता क्रिया । उत्सर्गभूनेत्रभिपेचनादिका उत्सर्गो नीलोद्वाहादिः भूनेता राजा एतयोरभिपेचनादिकाऽभिपेकपूर्वा । पुनरिह क्षयाधिकमासे धर्मवती क्रिया सिद्धिदा भवेत् । 'वसतिः' शरणं क्षयः' इतिसंस्तरः 'सप्ततंतुश्च वितानं बहिरध्वरः' इति च हेमः ॥ ५७ ॥

आसां पराश्रानपरा हि नाडिका संक्रांतिकालान्मिहिरस्य षोडश ॥

पुण्याः सदाभ्यर्णवती घटी स्मृता तस्यातिपुण्या खलु या भवन्ति सा ॥५८॥

अथेद्ववंशया रविसंक्रमणपुण्यकालमाह—आसामिति । तस्य मिहिरस्य संक्रांतिकालात् परा अत्रेतनाश्च पुनरनपराः पूर्वाः षोडश नाडिकाः पूर्वापरभेदात् द्वात्रिंशन्मिता वक्ष्यः पुण्याः दानादिधर्मकर्तव्ययोग्याः खलु निश्चितं भवति । पुनरासां पूर्वापरघटीनां मध्ये याऽभ्यर्णवती समीपवती साऽतिपुण्या स्मृता ॥ ५८ ॥

दलं गतेरंशुमतोऽयं मंडलं निजेशमागेन युतं कलादिकम् ॥

पष्ठ्याहतं सुक्तिहतं घटीमुखं वृषप्रियं संक्रमकालकोदरम् ॥ ५९ ॥

अथोपजात्या संक्रमकालकोदरं साधयति—दलयिति । अंशुमतः सूर्यस्य मंडलं संक्रमणमंडलं अथ तद्गतदलमर्द्धं अथ तन्निजेशमागेन स्वकीयैकादशमागेन युतं तदा कलादिकं भवति तत् पष्ठ्या हतं पष्ठिघटिकाभिर्गुणितं पुनस्तदुक्तिहतं स्पष्टगत्या विभाजितं तदा यल्लब्धं तत्घटीमुखं घटीपलादिकं संक्रमकालकोदरं संक्रमकालक्रमध्यं नाम पर्वं वृषप्रियं धर्मवृद्धमं भवति 'धर्मः पुण्यं वृषः श्रेयः' इति 'गुणिताहते' इति च हेमपष्ठकादे । महेश्वरोपि । 'आहते गुणितेऽपि स्यात्ताडिते नाणकेऽपिच' इति ॥ ५९ ॥

खरद्युतेः संक्रमपुण्यनाडिकाः, स्वराशिभोगद्युहता विभाजिताः ॥

दिवोक्सः स्पष्टजवेन तत्फलं नाड्यादिपुण्यं ग्रहसंक्रमोदरम् ॥६०॥

अथ चंद्रादिग्रहसंक्रमोदरमाह—खरोति । सरद्युतेः सूर्यस्य संक्रमपुण्यनाडिकाः संक्रमपुण्यकालशटिकाः द्वात्रिंशन्मिताः स्वराशिभोगद्युहताः चंद्रादिग्रहस्य निजराशि-भोगदिवसगुणिताः दिवौकसश्चंद्रादिग्रहस्य स्पष्टंजेन स्पष्टगत्या विभाजिताः यष्टयं तत्फलं नाड्यादि ग्रहसंक्रमोदरं परं पुण्यं पुण्यक्रियायं भवति । ग्रथान्तरे मध्यं यथा । 'नाड्यो रामगुणा ३३ रवेरय विधोः पल्लोः पलैर्युग द्वयं २।२६ भौमस्याव्विपलैर्युता नव ९।४ विदो युक्ताः पलैः स्वाश्विभिः ॥ पण्णाड्यो ६।२० ऽष्टगजा ८ गुरोरय भृगोर्नन्दाः पलैरष्टभिः ९।८ पुण्याः स्यु खनृपाः १६० शनैरुभयतो राश्युक्तयोः संक्रमे' इत्यर्थः ॥ ६० ॥

निशियगो यदि भास्करसंक्रमो दिनयुगं जगदुर्वृपवत्सलम् ॥

परदिनं विबुधा रजनीदलाद्भवति संक्रमणं च तदा परम् ॥ ६१ ॥

अथ द्रुतविलंबितेन संक्रमे कालविवेकतामाह—निशियेति । यदि भास्करसंक्रमो निशि यगो मध्यरात्रिवर्तो भवेत्तदा बुधाः दिनयुगं वृषवत्सलं धर्मप्रियं जगदुः कथयामासुः । च पुनर्मानोः संक्रमणं रजनीदलान्मध्यरात्रात्परममेतत्नं भवति तदा विबुधाः परदिनं वृषवत्सलं जगदुः ॥ ६१ ॥

द्युमणिसंक्रमतोऽचलमे भवेद्धरिपदं पडशीतिमुखं स्मृतम् ॥

द्वितनुमेऽयनके मृगकर्किणोर्विपुवदेव तुलाधरमेपयोः ॥ ६२ ॥

अथ हरिपदादिष्वर्ष्याह—द्युमणीति । अचलमे स्थिरराशौ द्युमणिसंक्रमतः सूर्यसंक्रमणात् हरिपदं नाम पर्व भवेत् । द्वितनुमे द्विस्वभावराशौ रविसंक्रमतः पडशीतिनाम पर्व स्मृतं । मृगकर्किणोः सूर्यसंक्रमात् अयनके स्तः । तुलाधरमेपयोः सूर्यसंक्रमात् विपुवदेव निश्चितं स्यात् । 'तुल्यनक्तदिने काले विपुवद्विपुवं च तत्' इति हैमः ॥ ६२ ॥

रसयमैर्धनुषो लवके मिते भुजयमैर्दिनमध्रसौकसः ॥

धृतिमिते जितुमस्य च योपितः शतमखैः पडशीतिमुखाव्हयम् ॥ ६३ ॥

अथ पडशीतिमुखं स्पष्टयति—रसयमेरिति । धनुषो द्विस्वभावधनुराशिसंक्रान्तेः रसयमैः पञ्चविंशत्या मिते लवकेऽंशे दिन पडशीति मुखाव्हयं पर्व स्यात् । एवमध्रसौकसोऽध्रसौ घनरसो जलं तस्मिन्नोकस्थानं यस्य स तस्य मीनराशेर्भुजयमैर्द्वोविंशत्यामिते लवे दिनं पडशीतिमुखाव्हयं पर्व स्यात् । च पुनः जितुमस्य मियुनस्य धृतिमितेऽष्टादशमिते लवे दिनं प० । पुनर्योपितः कन्यायाः शतमखैर्द्वैश्रुतुर्दशमिते लवे दिनं प० ॥ ६३ ॥

ऋतुसमान्यथ यान्यपराण्यहः कलदृशः स्युरहान्यपि षोडश ॥

ऋतुसमं पडशीतिमुखाश्रितं तदपि यत्कथितं च मनीषिभिः ॥ ६४ ॥

अथैतत्पर्वदिनमाहात्म्यमाह—ऋत्निति । मनीषिभिः पंडितैः कलदृशं रन्याया अपराणि

यानि षोडशाहानि कथितानि यत् पडशीतिमुखाश्रिनमर्हन् च कथिन तान्यहानि क्रतुम-
मानि तदहश्च क्रतुमर्षं यज्ञतुल्यानि स्युरित्यर्थः ॥ ६४ ॥

अवितुलास्यमथैत्ययनांशकान्वितरविः स यदा विषुवद्दिनम् ॥

मकरकीटमुखं च यदा तदायनदिनं तदहो यदहःस्मृतः ॥ ६५ ॥

अथ विषुवदादि स्पष्टयति—अवीति । अहो इति वितर्के यदा विषुवत्स्याच्च पुनर्यदा
यथाशयुक्त सूर्यो यदहर्भकरकीटमुखमेति तदा तदायनदिनं स्मृतमित्यर्थः ॥ ६५ ॥

पितृभशौच्यवसुधमरोडुजाः कुयमवन्हियुगांग्रिमुखोदयाः ॥

इह तदर्कसमाः स्युरहो यदा यदजपादवदुक्तमहस्तदा ॥ ६६ ॥

अर्थ हरिपद स्पष्टयति—पितृभेति । अहो इति वितर्के यदा पितृमं मया शौच्य बहिर्भं
कृत्तिका वमवो घनिष्ठा द्वचमरौ द्विदेवौ विशाखा एषा द्वंद्व एभ्यो जायन्ते इति जा कुयम-
वन्हियुगाङ्गिमुखोदया एकद्वित्रिचतु पादमुखोदया अर्कसमा स्यु । कोऽर्थः । मवानक्षत्रस्य
प्रथमचरणमुखे उदय स्थिरराश्युदय । कृत्तिकाना द्वितीयपादे स्थिरराश्युदय । घनिष्ठया
तृतीयपादे स्थिरराश्युदय । विशाखायाश्चतुर्थपादे स्थिरराश्युदय । सिंहवृषकुम्भश्रिकाः
स्थिरराश्युदया अर्कसमा द्वादशसंख्यामिना इह यदहस्तदानदहरजपादवन् विष्णुपदेन तुल्य
हरिपदसप्तसुक्तमित्यर्थः । अर्थात् स्थिरसनात्पादेद्वादशं यदवस्तदहर्हरिपदमज्ञ भवति अज-
पादवन् । अत्र वत्प्रत्यय आश्रितपदार्थमेव ब्रूते । यथोक्त हेमसूरिभिश्च 'पौषस्यैषा सह-
स्यवन्' इति ॥ ६६ ॥

सुकृतकालमपागयनादिगं हरिपदादिगतं च तुलाजयोः ॥

तदनु मध्य इते विदुरुत्तरे मुनिवराः पडशीतिमुखेऽयने ॥ ६७ ॥

अथायनादिविशेषगतं सुकृतकालमाह—सुकृतेति । मुनिवरा अपागयनादिगं दक्षिणा-
यनादिगतं कर्कसक्रातावादिगनमाद्या षोडशघटिका समय सुरुक्तकाल पुण्यकालं विदु
अवधारयन्ति । अपुनरेव हरिपदादिगतं वृषसिंहवृश्चिककुम्भमक्रातिपन्नाद्या षोडशघटिका
सुकृतकालं विदु । मुनस्तदनु पश्चात्तुलाजयोस्तुलामेययोर्मध्ये सुरुक्तकालं विदु । कोऽर्थः ।
तुलामेयमक्रातिफालात्प्रागष्टौ घटिका परतश्चाष्टौ एव षोडश घटिका मध्यसमयमिति ।
पुनरुत्तरेऽयने मकरसंक्रातो इते प्राप्ते सति सुकृतकालं विदु । कोऽर्थः । मकरसंक्रातिफाला-
दग्रिमा षोडशघटिका पुण्यकालं प्रथमास्तु नेति । पुन पडशीतिमुखे द्विस्त्वमात्रराशौ इने
प्राप्ते सति । कोऽर्थः । मियुनकन्याघनुर्मानसक्रातिषु अग्रिमाः षोडशघटिका पुण्य-
कालं विदु ॥ ६७ ॥

अयनयोरिष्टराममिताः क्रमाद्वृत्तमा जयुरुत्तरयाम्ययोः ॥

निजमया च युता वियुता घटीरनगतागतसंक्रमकालयोः ॥ ६८ ॥

अथोत्तरदक्षिणायनयोर्वर्षेषु कृतकालमाह—अयनेति ॥ मुनिवराः नभगता अनगताः
वर्त्तमाना इत्यर्थः । अगता एष्या अनगतागतानां संक्रमकालयोरुत्तरयाग्ययोरयनयो
संक्रमात् क्रमेण इपुराममिताः पंचत्रिंशन्मिता घटीर्वृषतमा अतिशयेन धर्मवत्यो नयुः ।
कंपमृताः घटीः । निगमया निगराशिसंक्रांतिज्वायया युताः उत्तरायणे च पुनर्विद्युता-
दक्षिणायने ॥ ६८ ॥

घोरोष्णगोष्वाक्ष्यमृतांशुवासरे संक्रांतिसारे च महोदरी विदि ॥

मंदाकिनी मंदतमामराचिंते मिश्रोशनस्यर्कसुते च राक्षसी ॥ ६९ ॥

अथेन्द्रवंशया द्वादशसंक्रांत्यधिकारमाह—घोरोति । उष्णगौ रविवारे संक्रांतिघोरानाम
भवेत् । एवममृतांशुवारे चंद्रवारे ध्वांसी । च पुनरारे मंगलवासरे महोदरी । पुनर्विदि बुध-
वारे मंदाकिनी । अमराचिंते गुरुवारे मंदतमा । उशनसि शुक्रवारे मिश्रा । अर्कसुते शनि-
वारे राक्षसी ॥ ६९ ॥

घोरोग्रभे ध्वाक्ष्यनिशं लघूडुजा मंदाऽचरे चंचलभे महोदरी ॥

मंदाकिनी मैत्रभजा च मिश्रभे मिश्रा भवेदारुणभे च राक्षसी ॥ ७० ॥

अथ नक्षत्राश्रितसंक्रांतिसंज्ञामाह—घोरोग्रेति । उग्रभे क्रूरनक्षत्रे घोरा भवेत् । एवं लघू-
डुजा क्षिप्रनक्षत्रे जाता ध्वांसी । अचरे स्थिरभे मंदा । चंचलभे चरनक्षत्रे महोदरी ।
मैत्रभजा मृदुनक्षत्रे जाना मंदाकिनी । मिश्रभे साधारणनक्षत्रे मिश्रा । दारुणभे तीक्ष्णनक्षत्रे
राक्षसी अनिश सदेति ॥ ७० ॥

मंदाधरादेवगणानवत्यतो मंदाकिनी भूमिभुजो महोदरी ॥

मलिम्लुचानंत्यभुवोऽपि राक्षसी मिश्रा पशून्नेव पतत्रिणः कुजान् ७१

अथोपजात्या मंदादिसंज्ञायाः फलमाह—मंदेति । मंदामंक्रांतिर्धरादेवगणान् विप्रसमूहान्
पति रक्षति । अतो मंदाकिनी भूमिभुजो भूपानवति । महोदरी मलिम्लुचान् चौरानवति । राक्षसी
अत्यंमुक्त्रं डालानवति । मिश्रा पशून् गवादींश्च पुनः पतत्रिणो विहंगान् कुजान्
वृक्षानवति ॥ ७१ ॥

विशोऽनिशं ध्वाक्ष्यतिभद्रभाजः करोति घोरांघ्रिभुवोऽथ संज्ञा ॥

भवारतो यस्य रवेरिता या सा संक्रमस्योक्तफलप्रदा स्यात् ॥ ७२ ॥

विशोऽति । अनिशं सदा ध्वांसी विशो वैश्यांनयति भद्रभागोऽतिमुल्लान्वितान् करोति ।
घोरा अंघ्रिभुवः शुद्धानवति भद्रभाजः करोति । अथ यस्य रवेः संक्रमस्य भवारतो नक्षत्रात्
वारान् या संज्ञा इता प्राप्ता । कोऽर्थः । या संज्ञा वारे सैव नक्षत्रेऽपि । यथा रविवारे घोरा
उग्रनक्षत्रे घोरा एकीभूता स्यात्तदा शुद्धानवति । एव सर्वापीनि सा उक्तफलप्रदा स्यात् ।

“विट् प्रवेशे नृवैश्ययोः” इतिहैम । मद्रशब्दः सुखवाची । ‘शांतं जालव्यदत्याद्यं’ । मद्रं मद्रमि-
शब्दप्रभेदे प्रोक्तोस्ति ॥ ७२ ॥

यामे निहंत्यर्णवमेखलाभुजं संक्रांतिराद्येऽबुधिचीवरामरान् ॥

अहर्दले चापि विशोऽपराणहके शूद्रग्रजानस्तामितेऽशुमालिनि ॥ ७३ ॥

अथ प्रथमादिप्रहरे संक्रातिफलमाह—यामइति । आद्ये यामे प्रहरे संक्रातिः अर्णव एव
खला यस्याः सा भूमिस्तां भुनक्तीति अर्णवमेखलाभुजानलोकस्तं हन्ति ॥ च पुनरहर्दले दि-
र्द्धेऽबुधिचीवरामरान् भूदेवान् विप्रान् हन्ति । पुनरपराणहके दिनतृतीयमागे विशो वैश्यान्
हन्ति । अस्तमितेऽस्तगतं शुमालिनि सूर्ये सति शूद्रग्रजान् हन्तीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

निहन्ति रात्रेः शिविजालिकादिकानर्द्धं महारात्रविशातकांतरे ॥ -

संक्रांतिरंशोर्नरतांगमर्दिनः काले नरान् वल्लवकाशन्नूपसः ॥ ७४ ॥

निहन्तीति । रात्रेरर्द्धशोः सूर्यस्य संक्रातिः शिविजालिकादीन् भिल्ललुव्यकादिकान्
हन्ति ॥ पुनर्महारात्रवीभातकांतरेऽर्द्धरात्रप्रभातयोरंतरे विचाले भरतांगमर्दिनः
शैल्युपना-
पेतान् हन्ति । उपसः प्रभातस्य काले वल्लवकान् गोपालान् नरान् हन्ति ननु निश्चितम् ॥ ७४ ॥

स्यात्तैतिले नागचतुष्पदाख्ययोः सुप्तस्य रात्र्यंतकरस्य संक्रमः ॥

विष्टो निविष्टस्य रवे गरे तथा सवालनाख्ये वणिजे बुधैः स्मृतः ॥ ७५ ॥

अथतैतिलादिकरणे सुप्तादिरविमंक्रातिमाह—स्यात्तैतिले इति । तैतिले नागचतुष्पदाख्य-
गरेतत्करणत्रये सुप्तस्य रात्र्यंतकरस्य सूर्यस्य मंक्रमः संक्रातिः स्यात् । एवं विष्टो मद्रायां
तथा वरे गरे सवालनाख्ये वणिजेऽस्मिन् करणपंचके निविष्टस्य आसीनस्य रवेः संक्रमो बुधैः
स्मृतः ॥ ७५ ॥

ऊर्ध्वस्थितस्यां शुमतोऽथ कौलवे किंस्तुन्नके स्याच्छकुनौ क्रमादयम् ॥

धान्यार्थवृष्टिष्वपि संक्रमो बुधैरनिष्टमध्यातिशुभः प्रकीर्तितः ॥ ७६ ॥

ऊर्ध्वस्थितस्येति । अथ कौलवे किंस्तुन्नके शकुनौ एतत्करणत्रये ऊर्ध्वस्थितस्यां शुमतौ
विरयं संक्रमः स्यात् । बुधैरयं संक्रमो धान्यार्थवृष्टिषु सस्यमूल्यवर्णेषु क्रमादनिष्टमध्या-
तिशुभः प्रकीर्तितः । कीडर्थः । सुप्तरविसंक्रमोऽर्धवर्णधान्येऽप्यनिष्ट महर्ध्वधान्यवृष्टयापार
क्रमकः । एवं निविष्टः सप्तः । तथोर्ध्वः श्रेष्ठ इति । ‘अर्धः पूनाविधौ मूल्ये’ इतिहैमः ॥ ७६ ॥

जघन्यभेऽहस्करसंक्रमो बुधैः सदेवलैः पंचदशक्षणः स्मृतः ॥

बृहत्सु पंचागमतुल्यदैवतः समानभे त्रिशदभिन्नतक्षणः ॥ ७७ ॥

अथ वंशस्थेन संक्रातिमुद्धर्तनियममाह—जघन्येति । सदेवलैर्दैवजनाभिर्मानहिर्बुधैर्नान्य-
संज्ञानशत्रेऽहस्करसंक्रमः पंचदशक्षणः पंचदशगुहर्तनमितः स्मृतः । पुनर्बृहत्तंज्ञानशत्रेण पंचागम-

तुल्यदैवतः पंचचत्वारिंशन्मुहूर्तमितदैवतः स्मृतः । पुनः समानमे समसंज्ञनक्षत्रे त्रिंशदभिन्नत-
त्क्षणस्त्रिंशताभिन्नस्तुल्यस्तत्क्षणः स एव क्षणस्त्रिंशन्मुहूर्तमितः । 'क्षणो मुहूर्त उत्सवः "पर्व्या-
पारवैकल्यं' चेति लिङ्गानुशासने । इत्यर्थः ॥ ७७ ॥

जघन्यमे धान्यमनूष्णगूढयो महर्घमासासमपीनसंक्रमः ॥

समं समर्क्षं च समर्घमन्यमे विशेषतो वा कुरुतेऽथ तद्युतिः ॥ ७८ ॥

अयास्मिन् धान्यमूल्यविवेकमाह—जघन्यमिति । जघन्यमे जघन्यसंज्ञनक्षत्रेऽनूष्णगूढयो
द्वितीयोपलक्षितचन्द्रोदयोऽपि पुनरिनसंक्रमः सूर्यसंक्रम आमासं मासपर्यन्तं धान्यं महर्घं महा-
नर्घं मूल्यं यस्य तत् बहुमूल्यं कुरुते । च पुनः समर्क्षं समसंज्ञनक्षत्रे चन्द्रोदय इतसंक्रमश्च
सममूल्यं धान्यं कुरुते । एवं पुनरन्यमे बृहत्संज्ञनक्षत्रे समर्घमल्पमूल्यं कुरुते । युतयोश्चन्द्र-
रव्योर्युतिः संयोगो दर्शतिथिरित्यर्थः विशेषतः पूर्वोक्तं कुरुते । जघन्यमे विशेषतो महर्घमित्यादि
कुरुते 'महाघो छावकांडके महामूल्ये' इति हैमः ॥ ७८ ॥

यदैकवारे युतिरिदुहंसयोर्मिथो नरा यांति च हेलिसंक्रमः ॥

क्षयं नृपाश्चेति सतीनपर्व चेत्तदा शराग्रैः कर्वालधारया ॥ ७९ ॥

अप दर्शरविसंक्रांत्योरेकवारे फलमाह—यदैकवार इति । यदा एकवारे इदुहंसयोश्च
सूर्ययोर्युतिर्दर्शतिथिरित्यर्थः हेलिसंक्रमः सूर्यसंक्रांतिरा स्यात् । कोऽर्थः । यस्मिन् वारे स्वे-
संक्रमणं तस्मिन्नेव वारेऽभावात् स्यात्तदा मिथः परस्परं नराः क्षयं नाशं यांति । च
पुनश्चेद्यदि इति पूर्वोक्ते सति तस्मिन्नेवैकवारे इनपर्वे सूर्यग्रहणं स्यात्तदा नृपाः शराग्रैः
कर्वालधारया तरवारिधारया मिथः क्षयं यांति । यतः 'निर्णंद्ववारइरविसंक्रमइतिर्णि
अमावसि होइ । सप्परले जोगिन किरइ जीवदवरलोकोइ । इति काकटं । इदुहंसयोर्युतिशब्देन
दर्शतिथिः कथ्यते । यदाहुर्देमसूरयः 'दर्शः सूर्येन्दुसंगमः' इति । यतो दर्शतिपावेव
चन्द्ररविसंयोग इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

दिनं सपत्र्यायनयानसंक्रमं न पर्वदग्धं हि च मंगलोचितम् ॥

/ तदेव यत्सोभयपार्श्ववासरं नमश्चराभ्यागमकालयद्भवेत् ॥ ८० ॥

अप विवाहादौ ग्रहसंक्रमादि दिनं निषेधयति—दिनमिति । हीनिनिश्चिनं । अयनमेव
आयनं मार्गः पत्रिणां निहंगमानामायनं पत्र्यायनं ज्योम तस्मिन् यानानि विमानानि येषां ते
ग्रहास्तोषां संक्रमाः संक्रमणानि तैः सह वर्तेते तत् सपत्र्यायनयानसंक्रमं यत् दिनं च पुनः
पर्वदग्धं दिनं यत् पुनः सोभयपार्श्वयुतं ग्रहसंक्रमत उपययतः पार्श्वं दिनं तेन युक्तं दिनं यत्
पुनर्नमश्चराभ्यागमकालयद्भवेत् यत्तदेव दिनं मंगलोचिनं न प्रवेदित्यर्थः ॥ ८० ॥

पर्वाणि चान्यानि बहून्ययादराद्विचक्षणैरागमधर्मशास्त्रतः ॥

ज्ञेयान्यशेषोत्सवकर्मदानान्येवं विवर्ज्यानि सदेव मंगले ॥ ८१ ॥

अयोपजात्पोषसहारमाह—पर्वणीति । अयैव विचक्षणैर्बुधैरादरादागमधर्मशास्त्रतोऽन्यानि बहूनि पर्वणि ज्ञेयानि किंभूतानि । अशेषोत्सवसमस्तकार्यक्रीडादानि । पुनर्मंगले मदेव वर्ज्यानि ८ ।

दिने दिने पर्वकुर्योगसंचयो भवेच्च शुद्धिर्घटतेऽपि मंगलम् ॥

पदे पदे वारभक्षयोगजा तदिष्टयोगोदयतः शिवाय यत् ॥ ८२ ॥

अथ वशस्येनाह—दिने इति । दिनेदिने पर्वकुर्योगसंचयो भवेच्च पुन पदे पदे वारभक्षयोगजा वारभक्षदिनयोगजाता शुद्धिर्निर्दोषतापि घटते यद्धेतोस्तन्मंगल इष्टयोगोदयत ईप्सितयोगोदयत शिवाय कल्याणाय सुखाय भवेदित्यर्थ ॥ ८२ ॥

अनेकदोषैरपि सौम्ययोगो न हन्यतेऽनेकगुणैः कुर्योगः ॥

ग्राह्याः सदा ये च गुणा बुधैर्यक्रियास्वसौम्याः खलु वर्जनीयाः ॥ ८३ ॥

अपोपजात्या सुयोगकुर्योगयोर्ब्रह्माह—अनेकेति । अनेकदोषैः सौम्ययोगो न हन्यते अपि तु पुनरनेकगुणैः कुर्योगो न हन्यते सदा बुधैर्यक्रियासु ये गुणास्ते ग्राह्या अंगीकर्तव्या । न पुनर्येऽसौम्यास्ते खलु निश्चित वर्जनीया इत्यर्थ ॥ ८३ ॥

तद्यैः कुर्योगैरिति सौम्ययोगो न हन्यतेऽसत्कथितं यदेकः ॥

कादंबरीविदुगणः करीपलेशं यथा दुष्यति नेति कश्चित् ॥ ८४ ॥

अथात्र कस्पचिन्मते दूषयति—तद्यैरिति । कश्चिदेक इत्याह तदसत् कथितं व्यर्थोदित । इतीति किं तदाह । यैः कुर्योगे सौम्ययोगो न हन्यते यथा कादंबरीविदुगणो मदिराविदुसमूह करीपलेश शुष्कगोमयलव न दुष्यति सद्दूषण न करोतीत्यर्थ ॥ ८४ ॥

एको गुणो दोषगणं समेत्य स्वाहाप्रियं स्वामतिहेतिवन्तम् ॥

निगूहतीवामलगव्यविदुमूर्तिं तदिष्टा बहवो गुणाः स्युः ॥ ८५ ॥

अथ बहुदोषोऽरूपगुण परिहरन्नाह—एक इति । एको गुणो दोषगणमेत्यप्राप्य स्वा मतिं निगुणरूपा निगूहति गुहसवरणे गुणैरुपधायालुदुगहेतौ स्फुरे इति दीर्घ नाश प्राप्नोतीत्यर्थ । कइवामलगव्यविदुरिव यथा निर्मलघृतादिबिंदु स्वाहाप्रिय बन्धिमत्येतिवन्तमतिशयज्वालायुक्त प्राप्य स्वा मूर्तिं गूहति पूर्ववत् बन्धिसाङ्गवतीत्यर्थ । तस्मात्कारणाद्बहवो गुणा इष्टा स्युः । दोषमवाहेत्यत्र मवाहशब्दः समूहवाची यथास्मिन्नेव ग्रये वक्ष्यते नमवाहः समुद्रो जलराशित्वात् । ' स्वाहाप्रायी प्रियास्य च ' इति हेम ॥ ८५ ॥

दोषैरुदेशो गुणसंनिपातमतो दहत्यत्र न संशयोऽस्ति ॥

धनंजयाशो वनराज्यगौघमिवागुणांगोऽपि विवर्जनीयः ॥ ८६ ॥

अथबहुगुणोऽप्येकदोषाशस्यापि त्याज्यतामाह—दोषैरेति । दोषैरुदेशो गुणसंनिपातगुणोव दहति मस्मीरुरिति धनजयाशब्द । यथा बन्धिलो वनराज्यगौघ वनश्रेणि वृक्षसमूह दहति । अत्र संशयो नास्ति । अत्र पारणादगुणाशोऽपि विवर्जनीयो बुधेति शेष ॥ ८६ ॥

गुणागुणव्रातसमानताश्रयाद्यथाऽशिवार्थं किल मंगलाजनः ॥

आधारकक्षौद्रसमानताश्रयादतोऽदनादेत्यधिका गुणा वरम् ॥ ८७ ॥

अविघ्नमस्तु । अथ गुणदोषयोः समानतामपि निषेधयति—गुणेति । किलेति संभावनायां । जनोऽशिवार्थं दुःखहेतुमेति प्राप्नोति कस्मात् गुणाश्चागुणाश्च तेषां व्रातः समूहस्तस्य समानता तुल्यता तस्या आश्रयः स्थानं सेवनं वा यस्मिन् तत् तस्मादेवंविधान्मंगलान् । निदर्शनमाह यथा जन उपद्रवं प्राप्नोति कस्मात् आधारं धृतं कं जलं क्षौद्रं मधु एषां समानताश्रयात् अदनात् समभागमसणात् । अतःकारणादधिका गुणाः वरं शुभं गुणाः वरमित्यत्र बहुवचनमेकवचनं युक्तम् । यतो वचनभेदो भवेत् । पुनर्विभक्तिभेदो न यथा वेदाः प्रमाणमित्यर्थः ॥ ८७ ॥

आयुः पुरा भीमसुताधवादयोऽगुणव्रजोपासितमंगलामराः ॥

एकोऽगुभान्येव कुयोगभावतो नृपातदोषोऽपि वरः क्रियास्वतः ॥ ८८ ॥

अथैतदेव दृष्टातेन दृढयति—आयुरिति । पुरा पूर्वं भीमसुता दमयंती तस्या धवो भर्ता नलराजः स एव आदौ तेषां ते भीमसुताधवादयो नृपा अगुभान्यमंगलान्येवाऽऽयुः प्रापुः । छुडि या प्रापणेऽत उति रूपं । कथंमृता भीमसुताधवादयः । अगुणव्रजे दोषसमूहे उपासिता आश्रिताः मंगलामरा उद्धाहदेवा येस्ते अतो हेतोः कुयोगभावत एको दोषोऽपि तर्जुः रिकाचक्रादुत्पन्नदोषः क्रियामु वरः श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ ८८ ॥

पर्वाण्यमानीह सदापवर्जनैः श्रीविक्रमार्केण विनाडिकं प्रति ।

तद्दोषबोधाय तथापि सत्कृता विदुः सदा सत्कृतिना ह्यमृन्नि च ॥ ८९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विदाभरणे कविशालिदासोदिते पर्याप्त्यायश्रुतः ॥ ४ ॥

अधोपसहारद्वारेण श्रीविक्रमार्कं वर्णयति—पर्याण्येति । सदा श्रीविक्रमार्केण विनाडिकं प्रति यस्याः पठितमभागं प्रति पूर्वं अमानि ज्ञातं कैरपरर्जनैर्दानैः । कथंभूतेन विक्रमार्केण । सत्कृतिना पठितेन च पुनस्तथापि सदा सत्कृता पठिता इहास्मिन् पराधिकारेऽमृन्नि पर्वाणि विदुः अन्वयार्थेति । कस्मै तद्दोषबोधाय । तेषां पर्वाणां दोषस्तेषां बोधाय ज्ञानाय हीति निश्चितम् ॥ ८९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विदाभरणे श्रीशालिदासोदिते पर्याप्त्यायश्रुतः ॥ ५ ॥

सिद्धिमन्त्रविनिर्माणा श्रीविक्रमार्कदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य

मुख्येधियाया पर्वाप्त्यायश्रुतं समाप्त ॥ ५ ॥

श्रीमहिमाप्रभाह्वाना मुरीशाना मरस्वनी ।

पुनस्तु प्राणिना शश्वदक्षयाज्ञतकरिनी ॥ १ ॥

॥ ग्रहगोचरप्रकरणम् ॥ ५ ॥

वदामि फलमंगिनामहं तदंगगोचरोदितम् ।

असाधुशुभकर्मणामथो न येन फलविभ्रमो भवेत् ॥ १ ॥

अथ पंचमाध्याये आसप्तकं दुरध्वगालंदस्तत्र प्रथमं ग्रहगोचरफलसंधानमाह—वदामी-
ति । अथो अन्तरमहं तत् अंगगानां ग्रहाणां गोचरात् राशिविशेषात् उदितं प्रादुर्भूतम् ।
अथवा ग्रहगोचरे कथितं फलं वदामि कथयामि येन कारणेनांगिनां प्राणिनां फलविभ्रमः
फलसंशयो न भवेत् । किंभूतानां प्राणिनाम् । असाधूनि च शुभानि च कर्माणि येषां ते
तेषामित्यर्थः ॥ १ ॥

यमेज्यकुजहेलिभार्गवज्ञतारकधवाः खतः क्रमात् ॥

नता भगणभाज ईरिता भ्रमंति विधिना स्ववर्त्मगाः ॥ २ ॥

अथ शन्यादीनां भ्रमणविधिमाह—यमेज्येति । खतः आकाशात् क्रमिण नताः नन्नाः
धोवस्थानस्थिताः भगणा द्वादशराशयस्तात् भ्रमंतीति भगणभौजः स्ववर्त्मगाः निजमार्गा-
न्तो विधिना कालेन ईरिताः संतः यमः शनिः इज्यो गुरुः कुजो भौमः हेलिः सूर्यः मार्गवः
शुकः शो बुधः तारकाध्वश्रद्धः एषां द्वंद्वः एते भ्रमंति । 'विधिवत्कथं च दैवैव प्रकारे
कालकरूपयोः' इतिहेमः । 'शनो ब्रह्मण्यश्च यमः स्थिरः' इतिहेमशेषकोशः । इत्यर्थः ॥ २ ॥

तनुभ्रमणमंवराय नः स भुंजति च यस्य सत्वरम् ॥

महद्भ्रमणमुर्विपीठतो भवेदनष्टकालके नभम् ॥ ३ ॥

अथ ग्रहाणां लघुमहद्भ्रमणभेदमाह—तन्विति । यस्य ग्रहस्य उर्विपीठतो भूमिपीठतस्त-
नुभ्रमणं लघुभ्रमणं भवेत्सोऽन्वराय नोऽग्रहोऽनष्टकालेन महत्कालेन मे राशिं भुंजति च पुन-
र्यस्य महत्स्य महद्भ्रमणं भवेत्स ग्रहः सत्वरं स्तोककालेन मे राशिं भुंजति भुनक्ति ।
भुज्यते इति भुनः भुनइवाचरतीति भुंजति इति प्रयोगसिद्धिः । अन्यथा भुंजतिप्रयोगो वि-
बुधगम्यः ॥ ३ ॥

विधोर्भवति सांध्यहोदयं सदैकभजमध्यभोगकम् ॥

विदोऽक्षयमतुल्यवासरा सवित्र्युशनसोस्तथैकमाः ॥ ४ ॥

अथ ग्रहाणां राशिमोगकालप्रमाणमाह—विधोरिति । विधोऽश्रद्धस्य सांध्यहोदयं
सपादेन युग्मं भजमध्यभोगकमिति भाद्राशोः सकाशाज्जायत इति तज्जं मध्यमभोगकं भवेत् ।
सपाददिनयुगलं सामान्यतो विधुमुक्ते इत्यर्थः । मनेत्यत्र अर्यवशाद्विभक्तिपरिणामः । एवं
विदो युधरयाक्षयमतुल्यवासराः भजमध्यभोगकाः स्युः । तथा सवित्र्युशनसोः रविशुक्रयोरेकमाः

एकमासो भजमध्यमोगको भवेत् । अहोद्वयमित्यत्राशाब्दिकमतत्वादहोद्वयमहोद्वयमित्यपि स्यादेवमग्रेऽपि कविना रत्नं रत्नं च प्रोक्तमस्ति ॥ ४ ॥

युगं क्षितिभुवोऽथ मासयोरुपवृद्धिर्भूमिर्मिता गुरोः ॥

अगोर्धृतिमिताश्च मासकाः खवन्हिभिस्तुभ्ररोचिपः ॥ ५ ॥

युगमिति । क्षितिभुवो मंगलस्य मासयोर्द्वयं भजमध्यमोगकम् । अथ गुरोर्गोष्पतेरुपवृद्धिर्वा अग्रयश्च कुर्भूश्च ताभिरुयोदशभिर्मिता मासकाः भजमध्यमोगकम् । पुनरगो राहोर्धृतिमिता मासकाः भजमध्यमोगकम् । पुनरशुभ्ररोचिपः कृष्णकांतिः शनेः खवन्हिभिस्त्रिंशतामिता मासकाः भजमध्यमोगकम् । स्थुरितियुग्मम् ॥ ५ ॥

निजद्युनिशवृत्तगो ग्रहोऽनिशं प्रवहवायुनेरितः ॥

प्रयात्यपि गतिं पृथग्विधामचंचलचलोच्चहेतुना ॥ ६ ॥

अथैषा गतिहेतुमाह—निजेति । निजद्युनिशवृत्तगो निजाहोरात्रमंडलगतो ग्रहोऽनिशं निरंतरं प्रवहनामवायुना ईरितः प्रेरितः सन् पृथग्विधां भिन्नविधामपि गतिं प्रयाति । किंभूतेन प्रवहवायुना अचंचलचलोच्चहेतुना मन्दोच्चवलोच्चकारणेनेत्यर्थः ॥ ६ ॥

समा ब्रजिनगातिवेलिता चरा चरतरा दिवौकसः ॥

गतिर्भवति मंदसंज्ञिका सदेति च कृशैव सप्तधा ॥ ७ ॥

अथ ग्रहाणां सप्तधागतिमाह—समेति । समा तुल्या गतिः १ ब्रजिनगा वक्रगतिः २ अतिवेलिता अतिवक्रा गतिः ३ चरा गतिः ४ चरतरा गतिः ५ मंदसंज्ञिका मंदा गतिः ६ कृशा गतिः ७ दिवौकसो ग्रहस्येत्यमुना प्रकारेण सप्तधा गतिर्भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥

गत्या समं पत्रस्थायनायनः स्वमध्यगत्या स्फुटया चरत्यथ ॥

धुरात्रवृत्ते विबुधैः समा गतिर्ज्ञेया यदा तस्य हि यो दिवौकसः ॥ ८ ॥

अयोपनात्मा गतीना लक्षणमाह—गत्येति । अथ यदा पत्रस्थानां पक्षिणामयनं मार्गो व्योम तस्मिन्नयनं मार्गो यस्य स ग्रहो धुरात्रवृत्तेऽहोरात्रमंडले स्वमध्यगत्या निजमध्यमगमनेन समं सद्यः स्फुटया स्पष्टया गत्या चरति गच्छति हि युक्तं तदा बुधैस्तस्य दिवौकसो ग्रहस्य समा गतिर्ज्ञेया ॥ ८ ॥

अत्यल्पगत्यांबरपांथ एति गतिर्यदाधिष्ठितमे विलोमाम् ॥

वक्रा गतिः स्यात्तमपास्य राशिं राशौ गते वक्रतरातिगत्या ॥ ९ ॥

अत्यल्पेति । यदाधिष्ठितमे आक्रांतराशौ अंबरपांथो ग्रहोऽत्यल्पगत्याऽतिमुष्मगत्या विलोमां पश्चाद्गामिनीं गतिमेति प्राप्नोति तदा ग्रहस्य वक्रा गतिः स्यात् । अथातिगत्या तं राशिमपास्यातितराशिं त्यक्त्वा राशौ गते पाश्चात्यराशौ प्राप्ते ग्रहे सति वक्रतरातिगत्या वक्रा गतिः स्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥

ग्रहोऽतिवेगेन यदा स्वमार्गमाक्रांतमे गच्छति यश्चरोक्ता ॥

तदा गतिस्तस्य विहाय राशिं तमेप्यमे चातिचरा गतिज्ञैः ॥१०॥

ग्रह इति । यदा यो ग्रहोऽतिवेगेनाक्रांतमे संश्रितराशौ स्वमार्गं निजमार्गं गच्छति तदा गतिज्ञैस्तज्ज्ञैस्तस्य ग्रहस्य गतिश्चरा उक्ता । च पुनर्ग्रहस्तं राशिमाश्रितराशिं विहायैप्यमे आगामिकराशौ गच्छति तदा गतिज्ञैस्तस्यातिचरा गतिरुक्ता ॥ १० ॥

वक्त्री पुनस्तत्र स चेन्नभोगस्तदातिचारी चरतीह मार्गी ॥

स्वमध्यगत्यूनजवेन मंदो ज्ञेयः कृशो यः स गतिक्षयत्वात् ॥११॥

वक्त्रीति । चेद्यादि स नभोगो ग्रहस्तत्र राशौ वक्त्री इह मार्गी संश्ररति गच्छति तदाऽतिचारी कथ्यते । अथ ग्रहः स्वमध्यगत्यूनजवेन निजमध्यमगतिहीनवेगेन मंदो ज्ञेय इति लक्षणाया मंदा गतिरुक्ता । अथ यो ग्रहो गतिक्षयत्वात्कृशः स कृशो ज्ञेय इति लक्षणाया कृशा गतिरुक्ता ॥ ११ ॥

वक्रातिचारैर्वरगाश्चरंतो ददत्यलं लल्लपराशराद्याः ॥

आक्रांतराशेरमनंत हीति फलं न लब्धद्रकवेधसत्याः ॥ १२ ॥

अथ ग्रहाणां वक्रातिचारे फलं निषेधयति—वक्त्रेति । अलमित्यवधारणे हीतिविशेषार्थे । अंतरगा ग्रहा वक्रातिचारे चरंतो गच्छन्त आक्रांतराशेः फलं न ददति न समर्पयति । इति लल्लपराशराद्या ऋषयोऽमनंत अगुः । किंभूता लल्लपराशराद्याः द्रं गमनं तस्य कः प्रकाशस्तस्य वेधः द्रकवेधः अर्थात् ग्रहाणां गतिप्रकाशवेधः लब्धः प्राप्तश्चासौ द्रकवेधश्च लब्धद्रकवेधस्तस्मिन् सत्याः सत्यभाषिणः । ‘द्रभयं गमनं क्षुद्रम्’ इत्यादिद्वयस्वरूपे सौमरिकः । सूर्यमित्रवाद्यमित्रब्रह्मात्मयमकेकेषु प्रकाशवक्त्रयोश्चापि इतिरानशेखरः । अमनंतैत्यत्रात्मनेपदं द्रकेतिपदं बुधेऽश्रित्यं । वक्रातिचारे संहिताया—यथा ‘विलोमगत्या यदि वातिगत्या प्रयानि यो राशिमततमेप्यम् । हित्वा तदीयं गगनेचरोऽसौ दद्यात्फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥१॥

वक्रातिचारेण गृहातरेऽपि स्थितो ग्रहः पूर्वफलप्रदः स्यात् । देशातरे कार्यमशाद्रतो हि स्वदेशधर्मं न जहाति मर्त्यः ॥ २ ॥

यदा ग्रहोऽयं समुपैति राशिं तदा तदीयं स फलं ददाति । पीतादिवर्णेन समागमे हि वर्णं सितस्त्वन्मयतामुपैति ॥ ३ ॥

यावति यो वक्रगतेर्दिनानि भवेत्स वक्रो यदि वातिचारः ॥ दशांशतुल्यानि दिनानि तेषां दद्यात्फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥ ४ ॥

त्रयोदशार्कः क्षितिनश्च सप्त सप्तं बुधः पंच दिनानि शुक्र । वक्त्री गुरुः पूर्वफलप्रदः स्यादेकादशैवेति जगौ बराहः ॥ ५ ॥

मासं शनीज्यौ कुनभागेवौ तु पक्षं दशाहानि च सोमसूनुः । ददाति वक्त्री फलमाद्यराशेः केषांचिदेवं न मत बहूनाम् ॥ ६ ॥ इत्यर्थः ॥ १२ ॥

एकमासो भजमध्यभोगको भवेत् । अहोद्वयमित्यत्राशाब्दिकमतत्वादहोद्वयमहोद्वयमित्यपि
स्यादेवमत्रेऽपि कविना रत्नं रत्नं च प्रोक्तमस्ति ॥ ४ ॥

युगं क्षितिभुवोऽथ मासयोरुपबुधकुभिर्मिता गुरोः ॥

अगोर्धृतिमिताश्च मासकाः खवन्हिभिश्शुभ्ररोचिपः ॥ ५ ॥

युगमिति । क्षितिभुवो मंगलस्य मासयोर्द्वयं भजमध्यभोगकम् । अथ गुरोर्गोष्पतेरुपबुधो
अग्रयश्च कुर्भूश्च ताभित्त्वयोदशभिर्मिता मासकाः भजमध्यभोगकम् । पुनरगो राहोर्धृतिमिता
मासकाः भजमध्यभोगकम् । पुनरशुभ्ररोचिपः कृष्णकृतिः शनेः खवन्हिभिस्त्रिंशतामिता मासकाः
भजमध्यभोगकम् । स्युरितियुग्मम् ॥ ५ ॥

निजद्युनिशवृत्तगो ग्रहोऽनिशं प्रवहवायुनेरितः ॥

प्रयात्यपि गतिं पृथग्विधामचंचलचलोच्चहेतुना ॥ ६ ॥

अथैषा गतिहेतुमाह—निजेति । निजद्युनिशवृत्तगो निजाहोरात्रमंडलगतो ग्रहोऽनिशं निरंतरं
प्रवहनामवायुना ईरितः प्रेरितः सन् पृथग्विधां भिन्नविधामपि गतिं प्रयाति । किंभूतेन प्रवह-
वायुना अचंचलचलोच्चहेतुना मन्दोच्चलोच्चकारणेनेत्यर्थः ॥ ६ ॥

समा ब्रजिनगातिवेलिता चरा चरतरा दिवौकसः ॥

गतिर्भवति मंदसंज्ञिका सदेति च कृशैव सप्तधा ॥ ७ ॥

अथ ग्रहाणां सप्तभागतिमाह—समेति । समा तुल्या गतिः १ ब्रजिनगा वक्रगतिः २
अतिवेलिता अतिवक्रा गतिः ३ चरा गतिः ४ चरतरा गतिः ५ मंदसंज्ञिका मंदा गतिः ६
कृशा गतिः ७ दिवौकसो ग्रहस्येत्यमुना प्रकारेण सप्तधा गतिर्भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥

गत्या समं पत्ररथायनायनः स्वमध्यगत्या स्फुटया चरत्यथ ॥

द्युरात्रवृत्ते विबुधैः समा गतिर्ज्ञेया यदा तस्य हि यो दिवौकसः ॥ ८ ॥

अथोपनात्या गतीना लक्षणमाह—गत्येति । अथ यदा पत्ररथानां पक्षिणामयन मार्गो
व्योमं तस्मिन्मयत्तं मार्गो यस्य स ग्रहो द्युरात्रवृत्तेऽहोरात्रमंडले स्वमध्यगत्या निजमध्यगत्यानेन
समं सदृशं स्फुटया स्पष्टया गत्या चरति गच्छति हि युक्तं तदा द्युरेस्तस्य दिवौकसो ग्रह-
स्य समा गतिर्ज्ञेया ॥ ८ ॥

अत्यल्पगत्यांवरणां एति गतिर्यदाधिष्ठितमे विलोमात् ॥

वक्रा गतिः स्यात्तमपास्य राशिं राशौ गते वक्रतरातिगत्या ॥ ९ ॥

अत्यल्पेति । यदाधिष्ठितमे आक्रान्तराशौ अंवरणांयो ग्रहोऽत्यल्पगत्याऽनिसुक्ष्मगत्या
विलोमां पश्चाद्गमिनीं गतिमेति प्राप्नोति तदा ग्रहस्य वक्रा गतिः स्यात् । अथातिगत्या तं
राशिमपास्याश्रितराशिं त्यक्त्वा राशौ गते पश्चात्त्यराशिं प्राप्ते ग्रहे सति वक्रतरातिगत्यानेन
वक्रा गतिः स्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥

ग्रहोऽतिवेगेन यदा स्वमार्गमाक्रांतमे गच्छति यश्चरोक्ता ॥

तदा गतिस्तस्य विहाय राशिं तमेप्यमे चातिचरा गतिज्ञैः ॥१०॥

ग्रह इति । यदा यो ग्रहोऽतिवेगेनाक्रांतमे सश्रितराशौ स्वमार्गं निजमार्गं गच्छति तदा गतिज्ञस्तज्ज्ञैस्तस्य ग्रहस्य गतिश्चरा उक्ता । च पुनर्ग्रहस्त राशिमाश्रितराशिं विहायैप्यमे आगामिकराशौ गच्छति तदा गतिज्ञैस्तस्यातिचरा गतिरुक्ता ॥ १० ॥

वक्त्री पुनस्तत्र स चेन्नभोगस्तदातिचारी चरतीह मार्गी ॥

स्वमध्यगत्यूनजवेन मंदो ज्ञेयः कृशो यः स गतिक्षयत्वात् ॥११॥

वक्त्रीति । चेद्यदि स नभोगो ग्रहस्तत्र राशौ वक्त्री इह मार्गी सश्ररति गच्छति तदा गति-
चारी कथ्यते । अथ ग्रह स्वमध्यगत्यूनजवेन निजमध्यमगतिहीनवेगेन मंदो ज्ञेय इति लक्षणया
मदा गतिरुक्ता । अथ यो ग्रहो गतिक्षयत्वात्कृशः स कृशो ज्ञेय इति लक्षणया कृशा
गतिरुक्ता ॥ ११ ॥

वक्त्रातिचारैर्वरगाश्चरंतो ददत्यलं ललपराशराद्याः ॥

आक्रांतराशेरमनंत हीति फलं न लब्धद्रकवेधसत्याः ॥१२॥

अथ ग्रहाणां वक्त्रातिचारे फलं निषेधयति—वक्त्रेति । अलमित्यवधारणे हीतिविशेषार्थे ।
अवरगा ग्रहा वक्त्रातिचारे चरतो गच्छन्त आक्रांतराशे फलं न ददति न समर्पयति । इति
ललपराशराद्या ऋषयोऽमनंत जगु । किंभूता ललपराशराद्या द्र गमन तस्य क प्रका-
शस्तस्य वेध द्रकवेध अर्थात् ग्रहाणां गतिप्रकाशवेध लब्ध प्राप्तश्चासौ द्रकवेधश्च लब्ध-
द्रकवेधस्तस्मिन् सत्या सत्यभाषिण 'द्रभयगमनक्षुद्रम्' इत्यादिद्व्यक्षरकोपे सौमरिक ।
सूर्यमित्रवाद्यमिब्रह्मात्मयमवेकिपु प्रकाशवक्त्रयोश्चापि' इतिराजशेखर । अमननेत्यत्रात्म-
नेषद् द्रकेतिषद् बुधैश्चित् । वक्त्रातिचारे सहिताया यथा 'विलोमगत्या यदि वातिगत्या
प्रयानि यो राशिमतीतमेप्यम् । हिता तदीय गमनेचरोऽसौ दद्यात्फलं पूर्वग्रहे यदुक्तम् ॥१॥

वक्त्रातिचारेण गृहातरेऽपि स्थितो ग्रह पूर्वफलप्रद स्यात् । देशांतर कार्ययशास्तो हि
स्वदेशधर्मं न नहाति मर्त्य ॥ २ ॥

यदा ग्रहोऽप्य समुपैति राशिं तदा तदीय स फलं ददाति । पीनादिवर्णेन समागमे हि
वर्णं सितस्त्वन्मयतामुपैति ॥ ३ ॥

यावति यो वक्त्रगतेर्दिनानि भवेत्स वक्त्रो यदि वातिचार ॥ दशांशतुल्यानि दिनानि तेपा
दद्यात्फलं पूर्वग्रहे यदुक्तम् ॥ ४ ॥

त्रयोदशार्कं क्षितिजश्च सप्त सप्त मुख पच दिनानि शुक्र । वक्त्री गुरु पूर्वफलप्रद
स्यादेकादशैवेति जगौ वराह ॥ ५ ॥

मास शनीज्यौ कुम्भार्गवौ तु पञ्च दशाहानि च सोमसूनु । दद्यानि वक्त्री फलमाद्यराशे-
केपाधिदेन १ मन बहूनाम् ॥ ६ ॥ इत्यर्थ ॥ १२ ॥

एवं शरांगाश्च जिना गुणार्का वियच्छराः स्वाब्धिधरा ग्रहजैः ॥

क्रमेण धाराजमुखग्रहाणां घक्षाः सदा वक्रगतेर्निरुक्ताः ॥ १३ ॥

अथ भौमादिग्रहपंचकस्य वक्रगतिदिननियममाह—एवमिति । सदा ग्रहैरेवं क्रमेण धाराजमुखग्रहाणां भौमादिग्रहाणां वक्रगतेः शरादिमिता घक्षा वामरा निरुक्ताः प्रोक्ताः । कोऽर्थः । भौमस्य वक्रगतेः शरांगाः पंचसप्ततिर्वासराः । बुधस्य वक्रगतेर्जिनाश्चतुर्विंशतिर्वासराः । गुरोर्वक्रगतेर्गुणार्कास्त्रयोविंशत्यधिकशतं वासराः । शुक्रस्य वक्रगतेर्वियच्छरा गगनवाणाः पंचाशन्वासाः । शनैर्वक्रगतेः स्वाब्धिधराश्चत्वारिंशदधिकशतं वासरा इत्यर्थः ॥ १३ ॥

शरांवरागा द्विनवाहितास्का सुरेपवो ह्यभियमाश्च वासराः ॥

तेषां स्वभुक्त्याननमार्गकाश्रिताः स्मृता बुधैरूर्ध्वमतोऽथ वक्रगाः १४

अथैषां मार्गदिननियममाह—शरेति । बुधैस्तेषां भौमादीनां पंचानां स्वभुक्तिर्निजसंक्रमितभोगराशिस्तस्या आननं मुखं संक्रमणप्रारंभो यस्यासौ मार्गकश्च तमाश्रिताः प्राप्ताः स्वभुक्त्याननमार्गकाश्रिता शरादिमिताः वासराः स्मृताः । कोऽर्थः । भौमस्य निजराशिसंक्रमणमुखादारभ्य मार्गे भवा मार्गकाः वासराः शरांवरागाः पंचाधिकसप्तशतानि भवंति । एव बुधस्य द्विनव द्वात्रिंशतिर्वासरा मार्गकाः । गुरोराहेतास्काः अष्टसप्तत्यधिकशतद्वयं वासरा मार्गकाः । शुक्रस्य सुरेपवत्त्रयस्त्रिंशदधिकपंचशतानि वामरा मार्गकाः । शनैरह्यभियमाः अष्टात्रिंशदधिकशतद्वयं वासरा मार्गका इति । अथ चेद्यदि अतएव तस्मान्मानादूर्ध्वगते वक्राः ॥ स्मुरित्यर्थः ॥ १४ ॥

स्वकालमार्गांतरकाधिकश्रेण्मंदो व्रजेदंशुमतो ग्रहोऽस्तम् ॥

ऊनो निजैः काललवैरमंदस्तदान्यथा चाभ्युदयं प्रयाति ॥ १५ ॥

अथैषामस्तोदयमाह—स्वकालेति । मंदो ग्रहो गुरुः शनिश्च मंदौ गुरुशनी इति उच्येति यः संज्ञात्वात् । अंशुमतः सूर्यात् स्वकालभागांतरकारिको निजकालांशांतराधिकस्तदा गुरुः शनिश्चास्तं व्रजेत् । यदा अमंदश्चाद्रो भूः शुक्रो भौमश्च ये तेऽमंदः निजैः काललवैः सकालांशैरूनो हीनस्तदा मंदो विधुरः शुक्रो भौमश्चास्तं व्रजेत् । न पुनरन्यथा पूर्वोक्तविपर्यये कोऽपि यदा सूर्यस्वकालांशान्तरहीनश्चेत्तदा गुरुः शनिश्चोदयं प्रयाति । सूर्यो निजकालांशैरधिकश्चेत्तदा चंद्रो बुधः शुक्रो भौमश्चोदयं प्रयानीत्यर्थः ॥ १५ ॥

दिवाकराः सप्तधरा गुणोर्व्यो हरा ग्रहा त्राणधरा ग्रहाणाम् ॥

कालांशका मार्गवतामिलोना अभी क्रमाद्वक्त्रतामथाञ्जात ॥ १६ ॥

अथ ग्रहाणां कालांशकानाह—दिवेति । अज्ज्ञात् चंद्रात् मार्गवतां मार्गिणां ग्रहाणां क्रमेण दिवाकरादयः कालाः स्युः । कोऽर्थः । मार्गिणश्चंद्रस्य दिवाकरा द्वादशवाद्यशकाः । मार्गिणं गलस्य सप्तधराः सप्तदश मार्गिबुधस्य गुणोर्व्येस्त्रयोदश मार्गिगुरोर्दश एकादश मार्गिशुक्रस्य

ग्रहाः नवौ मार्गिशनैर्विंशतिधराः पचदश कालाशका इति । अथ वक्रवृत्ता ग्रहाणां क्रमेण ह्यलोना इत्यादि
मिस्तया ऊना एकोना अमी निजनिनकालाशका स्युः । कोर्य । वक्रिणो भौमस्य षोडशका-
शका । एव वक्रिबुधस्य द्वादश । वक्रिगुरोर्दश । वक्रिशुक्रस्याष्टौ । वक्रिशनेश्चतुर्दशेति ॥ १६ ॥
महीभुवोप्यंवरहेलयो नृपा वियद्गुणा व्योमचराः षडग्रयः ॥

देवौकसां पाशभृतोऽस्तवासरा दिगाश्रिता ज्ञानिभिरत्र कीर्तिताः ॥ १७ ॥

अथ दशस्थेन भौमादीनामस्तदिननियममाह—महीति । ज्ञानिभिरत्र महीभुवो भौमादि
देवौकसां ग्रहाणामस्तवासरा अवरहेल्यादयः पाशभृतो वरुणस्य दिगाश्रिता पश्चि-
दिगाश्रिता कीर्तिता । स्पष्टं तु भौमस्य अवरहेलयो विंशत्यधिकशत पश्चिमदिगाश्रिता
भस्तवासराः । एवं बुधस्य नृपा षोडश । गुरोर्वियद्गुणास्त्रिंशत् । शुक्रस्य व्योमचरा नव ।
ताने षडग्रयं षट्त्रिंशत् ॥ १७ ॥

क्रमेण तेऽष्टेपुरसैरगाग्निभिर्दृग्दिरामैर्विधुसायकाक्षिभिः ॥

प्राच्यां दिनैरंकसुरैरयोदिताः पश्चाद्भ्रजंत्यस्तमयं पुनर्ग्रहाः ॥ १८ ॥

अथोपजात्या भौमादीनामुदितदिननियममाह—क्रमेणेति । १. क्रमेण ते भौमादयः पच
ग्रहा अष्टेपुरसादिभिर्दिनैः प्राच्यां पूर्वस्यामुदिता सतोऽप्य पश्चात् पुनर्ग्रहा अस्त
व्रजन्ति । कोर्य । भौम पूर्वस्यामष्टेपुरसैरष्टपनाशदधिकपञ्चशतोर्दिनरुदित पश्चादस्त याति ।
एव बुधोऽगाग्निमि सप्तत्रिंशदिनैः पश्चात् । गुरुर्दृग्दिरामैर्द्वामस्यत्रिकशतत्रयेण दिने ५० ।
शुक्रो विधुसायकाक्षिभिरैकपचाशदधिकशतद्वयेन दिने ५० । शनि पूर्वं यामुदित पश्चाद्
कसुरैरेकोनचत्वारिंशदधिकशतत्रयेण दिनैरस्त याति ॥ १८ ॥

वक्रोदितावष्टजिनाश्च देवा घञास्ततस्तिष्ठत एवमग्र्याम् ॥

अस्तं यमाश्वा रदना व्रजेतां तावुद्गमं काव्यविदो प्रनीच्याम् ॥ १९ ॥

अथेन्द्रवज्रया वक्रोदितशुक्रबुधयोरस्तोदयदिननियममाह—वक्रइति । काव्यविदो शुक्र-
बुधौ वक्रोदितौ वक्रवृत्तौ उदयं प्राप्नोः अष्टजिना अष्टचत्वारिंशदधिकशतद्वयं देवास्त्रयस्त्रिंशत्
घञाश्च गता सतस्ततस्तस्या दिशि पूर्वस्या तिष्ठतो वसतः पश्चादैर्द्व्या पूर्वस्यामेवास्त व्रजेता ।
अपुन शुक्रबुधौ अस्तानन्तरं यमाश्वा द्वासप्ततिर्वसरा रदना द्वात्रिंशद्द्वामरा गता मन्त प्र-
तीच्या पश्चिमायामुद्गममुदयं व्रजेता । कोर्य । शुक्र पूर्वस्यां वक्रोदितादागम्य अष्टचत्वारिं-
शदधिकशतद्वयमितेषु गतेषु पुन पूर्वस्यामेवास्त याति । अस्तदिनादागम्य द्वामप्रतिदिनपु गतेषु
शुक्र पुनः पश्चिमायामुदयं याति । एव बुधोऽपि स्वमानेनेति । अथ विशेषः । भौमादयः सर्वे
ग्रहाः पूर्वस्यामुदयं याति पश्चिमायामस्त याति पुन शुक्रबुधौ पूर्वस्यामुदयमस्त पश्चिमाया
चोदयमस्त यात इति ॥ १९ ॥

१ क्रमेण भूतर्करैरिति कविपात्रे दृश्यते । अथ ग्रहाणामुदयः ।

अवक्रवक्रास्तमयोदयानां मानं यतः स्थूलतयैतदुक्तम् ॥

प्रत्यक्षमश्रांतमृतेऽवबोधेऽनेनानुवेलं न हि गोचरस्य ॥ २० ॥

अथोपजात्यैतन्मतं दृढयति—अवक्रेति । हीति निश्चितं । अवक्रवक्रास्तमयोदयानां समवक्रास्तमयोदयानां ग्रहाणामेतन्मानं स्थूलतया उक्तं । यतः कारणादवबोधे, ज्ञाने गोचरस्यानेन मानेन कृते विनाश्रांतं निरंतरमनुवेलं समयं प्रति प्रत्यक्षं नास्ति ॥ २० ॥

वक्रा दिवौका निजवक्रघर्षैर्यस्तस्य पूर्वोदितमध्यराशेः ॥

भोगादनल्पो ननु राशिभोगो ज्ञेयोऽयमुत्पातहतो ग्रहज्ञैः ॥ २१ ॥

अथेन्द्रवज्रयोत्पातलक्षणग्रहमाह—वक्राति । यो वक्रा वक्रवान् दिवौकाः ग्रहो निजवक्रघर्षे पूर्वोदितमध्यराशेर्भोगादनल्पो महान् तदा ननु निश्चितं ग्रहज्ञैस्तस्य, ग्रहस्यायं राशिभोग उत्पातहतो ज्ञेयः । दिवि गगने ओको गेह यस्य स दिवौकाः । दिवौकाः प्रपोदरादित्वाच्छब्दप्रभेदोऽपि ॥ २१ ॥

निजास्ततोऽहानि पुरातनोर्वागूर्ध्वं शिशुः स्यादुदयोर्दिवौकाः ॥

स्वास्तद्युवेदांशमितानि सद्भिरुक्तस्तदुक्त्याश्रितगोमनोभिः ॥ २२ ॥

अथोपजात्या ग्रहाणां दयोदस्यामाह—निजेति । निजास्ततः स्वास्तमयादर्वाक् पूर्वं दिवौका ग्रह पुरातनं वृद्धः स्यात् । पुनरुदयादूर्ध्वमुपरि शिशुः स्यात् । कियत्कारणं स्वास्तद्युवेदांशमितानि निजास्तमयादिनानां चतुर्थभागप्रमितान्यहानि दिनानि एतावत्कालमिति कालाध्वनोरिति द्वितीया इति सद्भिरुक्तं । किंभूतेस्तदुक्त्याश्रितगोमनोभिस्तेषां ग्रहाणामुक्तिस्तयाश्रितं गो. वाग् मनश्चित्तं येषां ते तैरित्यर्थः ॥ २२ ॥

सदोपधीशोऽस्तमयादिनैकमेकं स्मृतो बालपुराणकायः ।

अगोरहो दर्शनमिदुहेल्येर्ग्रहेऽथ केतोर्दिनविंशतिः स्यात् ॥ २३ ॥

अथ विशेषमाह—सदोपधीश इति । सदा उपधीशश्चोऽस्तमयादिनैकमेकं बालपुराणकायः सः । उ. द. विंशतिः स्यात् अस्तमयादिनैकमेकं । अथ पुनरहो दर्शनमिदुहेल्येर्ग्रहेऽथ केतोर्दिनविंशतिः स्यात् । योर्ग्रहेऽहणेऽहं एकं दिनं पूर्वापरत्वेनाहमर्द्धदृष्टो बालः । केतोर्दर्शने दिनविंशतिर्बालपुराणकायः ॥ २३ ॥

केचिज्जस्त्वं किल दारकत्वं मितानि वा कालल्लेखनिजेः स्यात् ।

अहान्यथो वासनयेतिषसैर्विथेर्जगुः कालगतेर्ग्रहस्य ॥ २४ ॥

अथ प्रकारांतरमाह—केचिदिति । विजेति संभावनायाम् । बालगनेरसंगतस्य ग्रहस्य निजेः कालल्लेखमितान्यहानि यावत् जस्त्वं वृद्धत्वं दारकत्वं बालत्वं स्यात् । अथो वा यथे पनदशभिर्विथेस्त्रयोदशभिर्वितान्यहानि जस्त्वं बालत्वं स्यादिति वामनया भावनया केचिद्बुधा जगुः ॥ २४ ॥

एकैर्भोगोऽष्टशती कलाः स्यात्सपादधिष्यद्वयमेकशः ॥

भोगो ग्रहाणां भयुगांशपादः सदैकभोगे च नवांशकाः स्युः ॥२५॥

अथ ग्रहाणां राशिभोगमाह—एकेति । ग्रहाणामेकैर्भोगे एकनक्षत्रभोगोऽष्टशती अष्टा-
नां शतानां समाहारेऽष्टशती कलाः त्रयोदशंशं विंशतिः कलाः स्युः । सपादधिष्यद्वयमे-
कचरणसाहितनक्षत्रद्वयमेकराशिभोगः स्यात् । च पुनः सदैकभोगे एकभोगे राशिभोगे
भयुगांशपादः सपादनक्षत्रद्वयं नवांशकाः स्युरित्यर्थः ॥ २५ ॥

भुक्तौपधीशप्रमदांघ्रिराशेरिता नवासा ननु राशयः स्युः ॥

अथादिभाच्छेपमिता नवांशा ज्ञेया ग्रहाणामिति राशिभोगाः ॥२६॥

अर्थ विशेषत आह—भुक्तइति । ननु निश्चितं । अथ आदिभादभिवनीतो भुक्ता ओपधी-
शप्रमदानां नक्षत्राणामहश्चरणा येन स चासौ राशिश्च तस्माद्राशेरिताः प्राप्ताः नवमिराप्ताः
छन्वा ग्रहाणां राशयः स्युः । अथ पुनः शेपमिताः शेपनक्षत्रचरणमिता ग्रहाणां नवांशा ज्ञेया
इति राशिभोगाः ॥ २६ ॥

शरीरिणश्चंडवृणीतरांशुर्यत्रस्थितो जन्मनिभे स राशिः ॥

अज्ञातजन्मद्युभकालजंतोः प्रसिद्धनामाक्षरतो जनेर्वा ॥ २७ ॥

अथ मनुजानां राशिमाह—शरीरिणइति । शरीरिणो मानवस्य स राशिर्भवेत् । स कः
जन्मनि भे यत्र भे यस्मिन् राशौ चंडवृणिः सूर्यस्तत्पाद इतरांशुः शीताशुश्रंद्रः स्थितो
भवेत् । वा इति पक्षांतरेऽज्ञातजन्मद्युभकालजंतोरविदितजन्मदिननक्षत्रसमयो यस्य स
चासौ जंतुर्मुन्यस्तस्य जनेर्जन्मसमयादारभ्य प्रसिद्धनामाक्षरतः ख्यातनाम्न आदिव्यंजनतो
राशिः स्यात् ॥ २७ ॥

क्षीणौपधीशारयमांशुमालिनः पापाः सदान्ये खचराश्च साधवः ॥

नभश्चराणामिह येऽपि राशयः स्मृताः खलानां विबुधैस्साधवः ॥२८॥

अथ खलसौम्यग्रहानाह—क्षीणौपधीशेति । सदा क्षीणौपधीशः क्षीणश्रंद्रः आरो मौमः
यमः शनिः अंशुमाली सूर्यश्चैते पापाः क्रूराः अन्ये बलौ चंद्रः बुधः शुक्र गुरुश्च खचरा साधवः
सौम्याः । इह खलानां ग्रहाणां येऽपि राशयः विबुधैस्ते राशयोऽसाधवोऽसौम्याः स्मृताः ॥२८॥

पंचाननाख्यो हि यथेभचके पंचाननाख्योऽस्ति तथा भचके ॥

एनं हरिः पालयितुं क्षमोऽस्य कृतं तदित्येतदगारमाद्यैः ॥ २९ ॥

अथ नर्गेनद्वारेण सूर्यस्य सिंहगृहं स्यादयति । अथ सिंहराशौ तत्स्वादिने च वर्ण-
यति—पंचाननाख्यइति । हीति विशेषार्थे गया इभचके गनयूथे पंचाननाख्यः सिंहोऽस्ति
तथा भचके राशिसमूहे पंचाननाख्य सिंहराशिस्ति अतो हरिः सूर्य एव सिंहराशौ पालयितुं

क्षमोऽस्मि । अत्र शब्दवत्त्वात् हरिरेव हरिं पालयितुं क्षमो नान्यः इति हेतोराद्यौर्विबुधैरस्य सूर्यस्यैतदगार सिंह कृतम् ॥ २९ ॥

मिहादिचक्रार्द्धपती रविः स्याद्विलोमकीटादिभखंडपोऽब्जः ॥

पतंगधामासुविधं तमीशः स्थातुं कुलीरे त्वंकरोदगारम् ॥ ३० ॥

अथ रवि-न्द्रयोः पण्णां पण्णा राशीनां स्वामित्वमाह—सिंहति । रविः सिंहादिचक्रार्द्धपतिः स्यात् । कोऽर्थः । सिंहः कन्या तुला वृश्चिकः धनुः मकरः एषां पतिः सूर्यः । अपाब्जश्रृंगो विलोमकीटादिभखंडपः विलोमगणनया कर्कादिराशिस्वामी स्यात् । कोऽर्थः । कर्कः मिथुन वृषः मेषः मीनः कुंभ इति । अथ वर्णनद्वारेण चंद्रस्य कर्कगृहं स्थापयति । तुरित्यवधारणे तमीशश्रृंगः कुलीरे कर्कराशौ अगारं गेहमकरोत् कृतवान् । किं कर्तुं पतंगस्य रवेर्वाप्तौ गृहस्य आसुविधं सामस्त्येन समीपं स्थातुं । अत्र यः पाठः एकः प्रोक्तः द्वितीयः ह्यकरोदगारं । अत्र हे तमीश इति वाच्यं । तृतीयस्तु चकरो रजं चेति । अत्राहं तमीश उरजं गृहं चकरोमि स्मेति शेष तथैव ॥ ३० ॥

उच्चोच्चमार्गे चरतां ग्रहाणां बुधाननानामवनेरिन्दोः ॥

प्रतिष्ठितान्यालयतः पुराणैर्द्विजैरथोकांसि यथाक्रमेण ॥ ३१ ॥

पंड्यविभयो रसाभवो भृगुर्धृत्भशांकराब्जयोः ॥

यशाजितुमयोर्विदीथरोऽनुगो भवति कर्किणो भयः ॥ ३२ ॥

भगो नखरहेतिनायकः शरासनवनालयाग्नयः ॥

गुरुस्तिमिर्गिरिजो बुधैः स्मृतः कलशनक्रभेश्वरः ॥ ३३ ॥

अथ शेषग्रहाणां राशिगृहाभ्याह—उच्यते । पुराणैर्द्विजैरथोक्ताक्रमेणेन्द्रोः सूर्यं भृगुवाराग्नयतो गृहस्थभार्याणि गृहाणि प्रतिष्ठितानि कथितानि । येषां बुधानानां पुराणगुणानां ग्रहाणां । अने स्थे मन्त्राणां उच्चोच्चमार्गे चरतां गच्छतां । कोऽर्थः । बुधा दीनो बुधगुरुभौमगुरुजनीनः सूर्यादिमहादिपङ्क्तृहाणि प्रोक्तानि । अथ विदोमेव चंद्रादिकर्कादिपङ्क्तृहाणि । यथा सूर्यस्य सिंह-तुला-पण्णाभिधुने शुक्रस्य तुला-वृश्चिके मंगलस्य मेष-वृश्चिके । रजं शस्त्रमेति ह्यः ॥ ३३ ॥

क्रमादजभगोमृगावलाकुलीरनिमित्तोलिराशयः ॥

हंसः स्तुभ्य तुंगनंजिनास्तद्विमितराशयो नत्ताः ॥ ३४ ॥

शुक्रो मकर कर्कश्र वृषस्यावला कन्या मीनश्च गुरो कुर्भर कर्को मकरश्च शुक्रस्य
तेर्मिर्मन कन्या च शनेस्तौलिराशितुल्य मेघश्च उच्चनीचौ ॥ ३४ ॥

न कल्पितमगोश्च मंदिरं महर्षिभिर्नुचमुच्चकम् ॥

तथा शिखिन आकृतेस्तयोगेर्गतेरनियमादभावतः ॥ ३५ ॥

अथ राहुकेत्वोरुच्चनीचाभावमाह—नकल्पितमिति । महर्षिभिरगो राहोस्तस्या शिखिन के-
गोश्चोच्चकमनुचक मंदिरं च न कल्पितं न कथितं कस्मादनियमादनित्येन राहुकेत्वो-
त्कृते शरीरस्य गतेर्गमनस्याभावन इति ॥ ३५ ॥

तथाप्युदितमास्पदं वशा त्वगोर्मिथुनमुच्चमस्रभम् ॥

अनुचमपरैस्तोऽस्तभं कुलादिकमिदं शिखावतः ॥ ३६ ॥

अथ मतातरमाह—तथेति । तु पुनस्तयाप्यपरैर्द्वैरगो राहोर्वशा कन्या आस्पदं गृह-
बुद्धित प्रोक्तं पुनरस्य मिथुनगृहमुच्च अस्तभं धनूराशिभवनमनुच । शिखावत केतोरत क-
न्यातौ मिथुनतौ धनुतौऽस्तभे सप्तमं कुलादिक गृहादिक प्रोक्त । कोऽर्थः । निजं मीनम-
न आदिशब्दात् धनुरुच्चं मिथुनं नीचं प्रोक्तमिति ॥ ३६ ॥

कमासुरमगं पुराणगा विदुः स्वरविदोऽहिविग्रहम् ॥

तमोमयमिह स्वकर्मणा सदेति च कभेदवानयम् ॥ ३७ ॥

अथ राहुकेत्वोर्भेदमाह—कमेति । स्वरविदं पुराणगा आसुर इमश्चपलाक्षितं क मस्तक-
रागु राहुं विदुः । च पुनरहिविग्रहं सर्पशरीरं तमोमयं तम स्वरूपं केतुं विदुः । इतीह
लोकेऽयं ग्रहः स्वकर्मणाऽमृतपानापराधेन सदा कभेदवान् यस्य शरीरस्य भेदयुक्तः ।
वृषक् मस्तकं पृथगन्यत् 'मूर्ध्नचित्ते जले काये' इत्यादिकशब्दार्थः ॥ ३७ ॥

सदागमपुराणसंहितास्वयं किल खगो विधुंतुदः ॥

शिखीगणितभुक्तिदर्शनात् प्रसिद्ध इति तथ्यमस्यपि ॥ ३८ ॥

अथास्यप्रमाणतामाह—सदेति । किलेति भावनाया । अयं विधुंतुदो राहु शिखी केतु
लग्न आगमा वेदा पुराण संहिता एतासु गणितं राश्यादिभुक्तिर्गतिः कलादिरेषा दर्शनात्सदा
प्रसिद्ध इति तथ्यं सत्यमस्यपि । उक्तं च । प्रायः सदा दानफलानि पुना भवन्ति तत्त्वाद्युचरं
निमित्तम् । सदैव तान् केचिदुदाहरति नवग्रहानप्यपरे मुनीन्द्रा ॥१॥ हिरण्यमर्गो भुवनमिस्रभु
सप्रेव वारानसजगुगादौ । उत्पातरूपाच्छिखिनोगुमिन्दो पातं च मप्रेव मनोग्रहा स्युः ॥२॥
न गोचरे नापि विग्रहनाथौ भयो निरुक्तग्रहशास्त्रजैः । स्वर्मानुकेत्यो सदसत्फलमस्तीति
नल्पति च केचिदेवम् ॥३॥ गच्छाधिपत्यं न दिनाविपत्यं न गोचरस्थानवलाचरेण । होरादशाया
च तथाष्टवेगे नथापि मूढा प्रवदन्ति राहुम् ॥४॥ न दृष्टमन्यत्र फलाच्चित्तं तमस्तथापि वाध्यं
कचिदीरितं यत् । अनुक्तमात्रं नहि तद्विरोधकं विभिन्नवाक्येऽपि समानदोषतः ॥ ५ ॥ ए-

भौमः हरीज्यः रंद्रपूज्यो गुरुः तुषारभाश्रद्ध एते भानोर्मित्राणि स्युः । हंसजः मूर्यात्मजः
शनिः क्षितः शुक्र एतौ अहितौ अरी अन्यो बुधः समः । अथ विषोऽश्रद्धस्य रेविविदौ सूर्य-
बुधो सुहृदौ मित्रे अन्ये समाः । चंद्रस्य वैरी नास्ति । अथासृजो मंगलस्य असितभः
कृष्णप्रमः शनिरुशना शुक्रः एतौ समौ बुधोऽरिः अन्ये सुहृदौ मित्राणि । अर्धेदुसुवो बुधस्य
सोमोऽभिघातिर्वैरी अमृग् भौमः ऐनिः शनिः भिषणो गुरुरेते समाः अन्वौ सखायौ मित्र । अथ
१ वासवगुरोरिंद्रगुरोर्वृहस्पतेः कविज्ञौ शुक्रबुधौ अहितौ यमः शनिर्मध्यः समः अंशुः सूर्यः
हृजो मंगलश्रद्धमा एतेऽनीष्टा अतिमित्राणि । अथ भृगोः शुक्रस्य सौम्यो बुधः असितः
शनिः एतो सुहृदौ रवौऽप्यन्योन्यौ शत्रू त्रिदशबंधो गुरुः कुज एतौ समौ स्तः । अथ
यमस्य शानेः गुरुर्मध्यः समः भृगुजः शुक्रः चंद्रसुतो बुध एतो मित्रे अपरेऽरयः
ताव्र इति ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मूर्तेरथो सविधकेंद्रयुगानुगाश्च तात्कालिका इति सभाजनवंत उक्ताः ॥
तज्ज्ञैर्मिथोऽन्यगृहगा अभिघातयोऽतः सर्वत्र राशिवलये द्विजवर्त्ममार्गाः ।

अथ तात्कालिकग्रहाणां भैत्रीचक्रमाह—मूर्तेरिति । अथ तज्ज्ञैर्द्विजवर्त्म पक्षिमार्गो नम-
स्तस्मिन् मार्गो येषां ते द्विजवर्त्ममार्गा ग्रहास्तत्कालिकाः जन्मादिसमयभवाः मूर्तेर्लघात्
सविधकेंद्रयुगानुगाः पूर्वाश्रयान् समीपकेंद्रयुग्मगताः । कोऽर्थः । धन २ सहज ३ सुहृ ४
द्वयगताः लघयाय १२ ११ कर्म १० भवनगताः मिथः परस्परं सभाजनवंतो मित्राणि
उक्ताः । कस्मिन्सर्वत्र राशिवलये अतः परमन्यगृहगा अभिघातयः शत्रवः उक्ताः । आलिंग्य
कुशलादिपृच्छा सभाजनं कथ्यते । यतः “आनन्दनत्वाप्रच्छन्नं स्यात्सभाजनमित्यपि”
इति हेमः । अभिमानिरभिघातिश्चेति शब्दप्रभेदे साधुसुंदरगणयः ॥ ४२ ॥

शक्त्यत्रिदेवलवराहविरोचनाद्या मित्रादिकं त्रिगुणभावभृतां ग्रहाणाम् ॥
श्रुक्त्यन्वितं वभणुरप्यपैरदो यदुक्तं निसर्गजनितं तदयुक्तिमत्स्यात् ॥ ४३

अथ सद्रुक्त्या मतानि निषेवयति—शक्त्येति । शक्त्यत्रिदेवलदयः त्रिगुणभाव-
भृतां ग्रहाणां मित्रादिकं मित्रसमशत्रुरूपं तदन्विधं युक्त्यन्वितं वभणुर्जगुः । अपि पुनर-
पैर्येत् मित्रादिकं निसर्गजनितं स्वभावजातं न पुनस्तात्कालिकमित्युक्तं तदयुक्ति-
मत् न युक्तिमत्स्यात् ॥ ४३ ॥

ज्ञेयः स्वकीयनिलयोच्चसुहृद्गृहस्थोऽवकी शचीरमणबु-
द्धिसहाययुक्तः ॥ धिष्ण्यान्वितो मृधजयी स बली
ग्रहेंद्रो यो गोचरादिभवपूर्णफलप्रदः स्यात् ॥ ४४ ॥

अथ फलदायिग्रहमाह—ज्ञेयइति । यो ग्रहेंद्रो गोचरादिभवपूर्णफलप्रदः स्यात् ।
ग्रह एवंविधो ज्ञेयः । स्वकीयेति । स्वकीयनिलयोच्चसुहृद्गृहस्थः निनमवनस्थः उच्चमवनस्थः मित्र-

भवन्स्थः अवकां मार्गस्थः शचीरमणः पौलोमीपतिरिन्द्रस्तस्य बुद्धिसहायः प्रधानो गुरुस्तेन युक्तः धिष्यन्निनः शुक्रयुक्तः मृषजयो संग्रामे जयं प्राप्नोति बली ग्रहयुद्धे उत्तर-
चारी ग्रहो बली इति ॥ ४४ ॥

योऽनुच्चगोऽरिकुलगोऽर्कविलुप्तदीप्तिः पातंग्यसृक्ति-
मिरदीप्तियुतो विवेगः ॥ सुस्थानगोऽपि खचरो वि-
फलो भचक्रे स्यात्साहितोऽहितखलग्रहवर्गवान्सः ॥ ४५ ॥

अथ विफलग्रहमाह—यस्येति । यः सुस्थानगः शुभस्थानकगतोऽपि खचरो ग्रहो भचक्रे नक्षत्रमंडले एवंविधः स्यात् । योऽनुच्चगो नीचमवनगतः अरिकुलगः शत्रुपृष्ठगतः “समोदव-
सितं कलम्” इतिहेमः । अर्कविलुप्तदीप्तिरस्तंगतः पातंगिः सूर्यस्यापत्यं शनिः । अमृग-
मौमः तिमिराणामंधकाराणां दीप्तिर्ज्वलनमर्थशक्त्या विनाशो यस्मात् स तिमिरदीप्तिः सूर्य-
एभिर्युक्तः विगतो वेगो यस्यस मंदः साहितः शत्रुग्रहसाहितः अहितः शत्रुः खलग्रहः
पापग्रहः एषां द्वंद्वः एषा वर्गः यद्बर्गोऽस्यास्तीत्यहितखलग्रहवर्गवान् । स ग्रहो विफलो
निष्फलः स्यात् ॥ ४५ ॥

ककसहोत्थकसून्वहितावलालयवृषाव्हयकर्मफलागमाः ॥

व्यय इतीनमिताः किल भावता निगदिता विबुधैरुदयात्क्रमात् ॥ ४६ ॥

अथ द्रुतविलंबितेन द्वादशभवनान्याह—ककेति । किलेति सत्ये विबुधैरुदयात्क्रमात्
क्रमेण इनमिता द्वादशभिर्मिता भावानां भावो भावता निगदिता प्रोक्ता । इतीति किं तदाह ।
ककेति । कःकायस्तनुभवनं १ कःधनं तद्वहनं २ सहोत्थःसहजभवनं ३ कं सुखभवनं ४
सुतुः सुतभवनं ५ अहितो रिपुभवनं ६ अवला जायाभवनं ७ लयो मृत्युभवनं ८ वृषो
धर्मभवनं ९ कर्मभवनं १० फलागमः आयभवनं ११ एषा द्वंद्वः एते व्ययभवनं १२ ‘मूर्ध्नि
चित्ते जले काये मुखे ब्रह्मणि मारुते । कामे लभे सुवर्णे च कशब्दो द्रविणेऽध्वनि’ १
इत्यनेकार्धध्वनिमन्त्री ॥ ४६ ॥

सहजलाभविपक्षनभःस्थितो जनिमतो निखिलार्थसुखप्रदः ॥

भवति विध्यत एव न चेद्रविवृषसुतांत्यशगेर्वियमेग्रहेः ॥ ४७ ॥

अथ ग्रहाणां फलमाह तत्र प्रथमं रविफलं—सहेति । चेद्यदि नियमैः शनिरहितैः वृषसु-
तांत्यशगैः वृषो धर्मः नवमं भवनं ९ एवं सुतः पंचमं जन्मं द्वादशं ११ श सुखं चतुर्थं ४
एषु गतैर्ग्रहेःरविर्न विध्यते एव तदा रविर्ननिभनो नन्मराशितः सहजलाभविपक्षनभः स्थितः
वृत्तौ ३ कादश ११ षष्ठ ६ दशम १० भवनास्थितो निखिलार्थसुखप्रदो भवति ॥ ४७ ॥

असमहत्येरिखांगवलायगो हिमगभस्तिरनिष्टहरो ग्रहेः ॥

द्रविणारिष्कगोवृषनाशगेर्यादि न विध्यत इंदुजवर्जितेः ॥ ४८ ॥

अथ चंद्रफलमाह—असमेति । यदि चतु इंदुजेन बुधेन वर्जितैर्विब्रह्मैः द्रविणं धनं द्वितीयमवनं २ एवं रिष्कं द्वादशं १२ कं सुख चतुर्थं ४ गौर्बुद्धिः पंचमं ५ वृषो धर्मः नवमं ९ नाशो मृत्युरष्टमं ८ एषां द्वंद्वः एषु गतैर्ग्रहैर्हिमगमास्तिश्रंदो न विध्यते तदा चंद्रोऽनिष्ट-हरः सुखदायी स्यात् । किंभूतश्रंदः असमा विपमा हेतयः अत्राणि यस्य सोऽसमहेतिः कामः जायामवनं ७ अरिः पष्ठं ६ खं दशमं १० अंगं प्रथमं १ वलं पराक्रमस्तृतीयं ३ आय एकादशं ११ एषां द्वंद्वः एषु गतः ॥ ४८ ॥

सहजशत्रुफलागमगो भतः सहजमित्रफलागमदो ग्रहेः ।
भवति विद्धघनो न हि जन्मनो यदि कुजोऽत्यतपःप्रतिभास्थितैः ॥ ४९ ॥

अथ भौमफलमाह—सहजेति । यदि अत्यं द्वादशं १२ तपः नवमं ९ प्रतिभा बुद्धिः पंचमं ५ एषु स्थितैर्ग्रहैर्विद्धो घनः शरीरं यस्य स विद्धघनः कुजो भौमो न भवति तदा कुजः सहजाः सहोदराः मित्राणि तेषां फलागमदो लाभदायी भवति । किंभूतः कुजः जन्मनो जन्मसंबन्धिनो भतो राशितः सहजस्तृतीयमवन ३ शत्रुः पष्ठं ६ फलागम आय एका-दशं ११ एषु गतः ॥ ४९ ॥

घनसवित्र्यरिकालखलाभगो विबुधुतः शुभकृद्वितमीश्वरैः ।
मतिपराक्रमधर्मधनात्ययव्ययगतैर्न स्वैर्यदि विध्यते ॥ ५० ॥

अथ बुधफलमाह—धनेति । यदि वितमीश्वरेश्रंद्राहिनैर्मतिः पंचमं ५ पराक्रमस्तृतीयं ३ धर्मो नवमं ९ घनः शरीरं प्रथमं १ अत्ययो मृत्युरष्टमं ८ एषु भवनेषु गतैर्ग्रहैर्विबुधुतो बुधो न विध्यते तदा बुधः शुभकृत् स्यात् । कर्मभूतो बुधः घनं द्वितीयमवनं २ सवित्री मातु चतुर्थं ४ अरिः पष्ठं ६ कालो मृत्युरष्टमं ८ खं दशमं १० लाभ एकादशं ११ एषु भवनेषु गतः ॥ ५० ॥

द्रविणलाभवृषस्मरधीस्थितो द्रविणलाभवृषस्मरधीप्रदः ।
यदि न विद्ध इहेंद्रगुरुर्ग्रहैर्व्ययविनाशविक्रमनीरगैः ॥ ५१ ॥

अथ गुरुफलमाह—द्रविणेति । इह व्ययो द्वादशं १२ विनाशोऽष्टमं ८ संदशम १० विक्रमस्तृतीयं ३ नीरं चतुर्थं ४ एषु भवनेषु गतैर्ग्रहैर्न विद्धस्तेंद्रगुरुः द्रविणं धनं तथा लाभः वृषो धर्मः स्मरः कंदर्पः घौर्बुद्धिरेषा द्वंद्वः एतान् प्रददातीति द्रविणलाभवृष-स्मरधीप्रदो भवति । किंभूत इहेंद्रगुरुः द्रविणं घनमवनं २ लाभ एकादश ११ वृषो धर्मो नवमं ९ स्मरः कामो जायामवनं ७ घौ बुद्धिः पंचमं ५ एषु भवनेषु स्थितः ॥ ५१ ॥

व्ययलयातनयायतपःस्थितो यदि न विद्धतनुर्गुचरेः स्वदः ॥
अहितबुद्धिलयास्तपुराम्बस्कनुवलायगतैरसुरार्चितः ॥ ५२ ॥

अथ शुक्रफलमाह—व्ययेति । यदि अहितः पठं ६ बुद्धिः पंचमं ५ लयोऽष्टमं ८ अंस्तं सप्तमं ७ पुरं शरीरं प्रथमं १ अंबरं दशमं १० क्रतुर्यज्ञः उपलक्षणया धर्मो नवमं ९ बलं तृतीयं ३ आय एकादशं ११ एषु गतेर्युचरैः खेटोर्विद्धा तनुः शरीरं यस्य सोऽमुराचिनो शुक्रो न तदा शुक्रः स्वदो घनदायको भवति । किलक्षणः शुक्रः व्ययो द्वादशं १२ लयोऽष्टमं ८ आतनयं सुतमवनं गयीदिकृत्य 'आइमयादाया' कोऽर्थः । प्रथमं १ द्वितीयं २ तृतीयं ३ चतुर्थं ४ पंचमं ५ आय एकादशं ११ तपो नमं ९ एषु स्थितः । तपः शब्दोऽकारांतोऽप्यस्ति । अथवा खरि परे शरीरे विसर्गलोपो वा एवं नमःशब्दादिष्वग्रे ऊहार्म ॥ ५२ ॥

शानिरथायबलासहजस्थितो यदि नभ्रादभिधातिगणापहः ॥

भवति विद्धपुरो जनुषः खगैर्विरविभिर्धिषणांत्यतपःस्थितैः ॥ ५३ ॥

अथ शनिफलमाह—शानिरिति । यदि विरविभिः सूर्यरहितैर्धिषणा बुद्धिः पंचमं ५ अंत्यं द्वादशं १२ तपो नवमं ९ एषु स्थितैः खगैर्विद्ध पुर शरीरं यस्य स विद्धपुरः शनिः तदा शनिः अभियातिगणापहः शत्रुसमूहघातको भवति । किंविशिष्टः शनिर्जनुषो जन्मतो भवनात् राशेः सकाशात् आय एकादशं ११ बलं तृतीयं ३ असहनः शत्रुः पठं ६ एषु स्थितः ॥ ५३ ॥

अनुगलाभजिघांसुनभःस्थितो निखिलसौख्यकरो हि विधुंतुदः ॥

व्ययसुतांध्वरभावनिशांतगैर्यदि न विध्यत एव नभश्चरैः ॥ ५४ ॥

अथ राहुफलमाह—अनुमेति । यदि व्ययो द्वादशं १२ सुतं पंचमं ५ अध्वरो यज्ञो नवमं ९ एषां भावानां निशांतगैर्ग्रहगतेर्नभश्चरैर्मंदैर्विधुंतुदो राहुर्न विध्यते तदा राहुर्हि निश्चित निखिलसौख्यकरो भवति । किलक्षणो राहुः अनुगः सेवकस्तृतीयं ३ लाम एकादशं ११ अमिनिवाभुर्वैरी पठं ६ नभो दशमं १० एषु भवनेषु स्थितः । 'धामागार निशांतं च' इतिहेमः ॥ ५४ ॥

शिखिनं प्राहुरगोरपरेऽगुवद्वनमवाह शरैः प्रामिते बुधाः ।

नवलवेऽपि चरंतमनारतं जगति सर्वजनातिहितोदयम् ॥ ५५ ॥

अथ केतुफलमाह—शिखिनामिति । बुधाः शिखिने केतुमनुवद्वान्तुल्यमाहुः । अपि पुनरपरे आचार्या अगोराहोर्वनमवाहः समुद्राः शराः चतुःपंचाशत् ५४ एभिः प्रामिते नवलवे नवांशके चरतं गच्छतं शिखिनं केतु जगति भुक्तेऽनारत निरंतरं सर्वजनातिहितोदयं सर्वलोकपीडाकरमाहुः । कोऽर्थोऽश्विनीमाचतुर्दशे नक्षत्रं चित्रा तस्या द्वितीयपादे यदाग्र राहुरायानि तदा रोहिणीशकटेष्वोत्प्रातो भवन्ति विलोममार्गेण अष्टनक्षत्रं पुनर्नसुयावत् ॥ ५५ ॥

परकुले गमनं निशि साहसं हतिगमः क्रियते न तेरीस्थितिः ।

जनपदांतस्यानमनिष्टेर्नखरेण शकुंत्ययनायनैः ॥ ५६ ॥

अथानिष्टग्रहे करणीयं निषेधयति—परोति । शकुन्तीनां पक्षिणामयनं मार्गो यस्मिन्-
स्तद्वचोम तस्मिन्नयनं येषां ते तैर्ग्रहैरनिष्टदेः कृत्वा नरवरेण निशि रात्रौ परकुले परगृहे
गमनं न क्रियते । पुनः साहसं हठात् हविगमो हृत्य हरणाय गमनं न क्रियते । एवं
तरीषु मौषु स्थितिरुपनिष्टता न पुनर्जनपदांतरयानं देशांतरप्रयाणमिति ॥ ९६ ॥

खगवरे नरदेवानिभालनं वरतरं रुधिरे प्रविदारणम् ।

अखिलशास्त्रविबोधनमिदुजे बलिनि मंत्रिणि दोर्महणव्रतम् ५७

अथ यस्मिन्वारे यत्करणीयं तदाह—खगति । खगवरे रविवारे नरदेवानिभालनं भूप-
दर्शनं वरतरं श्रेष्ठतरं स्यात् । रुधिरे यौमे प्रविदारणं छिन्नकर्म वरतरं । इदुजे बुधेऽखिल-
शास्त्रविबोधनं समस्तशास्त्रज्ञानं वरतरं । बलिनि बलयुक्ते मंत्रिणि गुरौ वारे दोर्महणव्रतं
पाणिग्रहणव्रतं वरतरं स्यात् । ‘रुधिरं धुसूणे रक्ते रुधिरौ व्रणीसुते’ इति हैमः ॥ ९७ ॥

दितिजमंत्रिणि यानमलं भवेदसितगुर्वलवानथ दीक्षिणे ॥

कृतिभिरप्युदिता निखिलाः क्रिया हरिणलक्ष्मणि वीर्यवतीष्टदाः ॥ ५८

दितिजेति । दितिजमंत्रिणि दैत्यप्रवान शुक्ले यानं भवेत् । अथ दीक्षिणे दीक्षितनराय
दीक्षणे दीक्षाया वा असितगुः शनिर्बलवान् स्यात् । अथ कृतिभिः पंडितैर्वीर्यवति बलयुक्ते
हरिणलक्ष्मणि भंद्रे निखिलाः क्रिया इष्टदा उदिताः प्रोक्ताः । अलमित्यवधारणे ॥ ९८ ॥

उचितमैन्दवमंगभृतां बलं बलिनि चैव विलोकयितुं पदं ॥

पदमशेषसुकर्मगणे सदा स्युरुडुपे बलिनोऽखिलखेचराः ॥ ५९ ॥

अथ चंद्रबन्धे विशिनष्टि—उचितमिति । अंगभृता देहिनां बलं विलोकयितुं पदं पदं
पदेपदे ऐन्दवं चंद्रमंबंधि बलं उचिनं योग्यं । च पुनस्तदेवाह बलिनि बलयुक्ते उडुपे
भंद्रे सति अखिलखेचराः सौम्यग्रहाः अशेषसुकर्मगणे समस्तशुभकार्यसमूहे सदा बलिनः
स्युः । अखिलखेचरा इत्यपिण्डः ॥ ९९ ॥

विषमखेटनिकायफलार्णवं तरितुमिदुबलोत्कटवेडया ॥

अनुदिनं धवलांशुबलं नरः क्षम उपास्यमतोऽस्ति विशेषतः ॥ ६०

विषमेति । नरः इदुबलमेव उत्कट उत्कटा वेडा तरी तथा इदुबलोत्कटवेडया कृत्वा
विषमा खला क्रूरा ये खेटाम्नेषा निकाया गृहशब्दपर्यायत्वात् भावार्तेषा फलेमेव
अर्णवः समुद्रस्तं तरितुं क्षमोऽस्ति । अतः कारणात् अनुदिनं दिने दिने विशेषतो
धवलांशुबलं चंद्रबल उपास्यं सेवनीयं ‘निकायः पद्ममंथयोः’ इति हैमः ॥ ६० ॥

सदोदितं चंद्रमसः प्रधानं बलं बुधैः कर्मसु वाखिलेषु ॥

अमोदरेहर्नवकेन चांद्रं तत्रैव ताराबलमप्यतीष्टम् ॥ ६१ ॥

१ दीक्षणे । २ बलिनि किंखेचरा इत्यपिण्ड इति दृष्टं तत्र किंलिनि मिथ्ययोरनि वाच्यम् । ३ अमोदरे
पाठः सुष्ठुतरो भाति । ४ मयमोष्टम् ।

अधोपनात्या क्षीणधंद्रे ताराबलमाह—सदोदितमिति । सदा बुधैरासिलेषु कर्ममु
चंद्रमसौ बलं प्रधानं उचितं कथितं वेति पक्षांतरे । अयोदरेऽमावास्याया उदरे मध्येऽहर्नवके
कोऽर्थः । अमावास्यातिथेः प्राक्कालिनचतुष्कं पश्चाद्दिनचतुष्कं । अमातिथिना सह नवदिनानि
एषु चांद्रं बलं न कथितं । अपि पुनस्तत्राहर्नवके ताराबलमेवातीष्टमतिशयेन शुभम् ॥६१॥

तारा भवेद्युर्जनिभादतोभात्रवेति शश्वदशमात्र सौम्याः ॥

त्रिपंचसप्त प्रविहाय सर्वाः शरीरिणां मध्यफला तथाद्या ॥६२॥

अथ शुभाशुभतारामाह—तारेति । शश्वत् सदा ताराः जनिभाज्जन्मनक्षत्रात् । पुनर्द-
शमाङ्गात् नक्षत्रात् । अत्रानुक्तादपि एकोनापि एकोनविंशतिनमनक्षत्राच्च नवसंख्याया
भवेद्युः । त्रिर्नव सप्तविंशतिरित्यर्थः । तासु त्रिपंचसप्ततृतीयार्धचमीसप्तमीताराः विहाय सर्वा-
स्ताराः शरीरिणां सौम्याः शुभाः तथा आद्या प्रथमा तारा मध्यफला स्यात् ॥ ६२ ॥

राजा हि तारेयबलेन राज्ञो बलादशीतद्युतिरुष्णभासः ॥

सर्वे नभोगा बलिनो बली स्याद्बलंत्यगुः स्वाद्बलतो बलीयान् ॥ ६३ ॥

अथ ग्रहबलेन बलिग्रहमाह—राजेति । होति विशेषार्थे तारेयबलेन तारासंबन्धिवलेन
राज्ञो चंद्रो बली स्यात् । राज्ञश्चंद्रस्य बलात् अशीतद्युतिः सूर्यो बली स्यात् । उष्णभासः
सूर्यस्य यदात् सर्वेण बलेन नभोगा ग्रहा बलिनो भवंति । अगुः राहुः स्वाद्बलतो निन-
लात् बलीयान् बलिष्ठः स्यात् ॥ ६३ ॥

ददाति पीयूषघनो नराणामसौ फलं धीधनधर्मगो भात् ॥

असाधु वा साधु फलेन तुल्यं स्ववर्चितांग्रेरपि वर्द्धमानः ॥६४॥

अपोपेद्रवज्जया चंद्रस्य शुभाशुभफलमाह—ददातीति । भात् जन्मराशितो धीर्बुद्धि-
पंचमं १ घनं द्वितीयं २ घर्मा नवमं ९ एषु राशिषु गतः पीयूषघनोऽमृतमयदेहश्रो-
वर्द्धमानः शुद्धात्मनो नराणां साधुकलं ददाति । किमुतं फलं स्ववर्चितांग्रेः स्वभावेन
स्वर्गाय आधारे आधेयोपचारान् तैरिर्वर्तो अंगो पादौ यस्य स तस्य गुरोः फलेन तुल्य ।
यथा पंचमद्वितीयनवगादागो गुरुः शुभ इति वेति पक्षांतरे यदासौ क्षीणश्रद्धस्तदा पंचमो हि-
तीयो नवमश्रद्धो असाधुकलं ददाति ॥ ६४ ॥

शक्तिस्तुपारांशुफलं परेषां दिवौकसां वस्तुफलं प्रकलयम् ॥

शक्त्या हि वस्तुत्वमर्थेति मात्रा यथोष्णशक्त्येव तन्न नपात्स्यात् ॥६५॥

अधोपनात्या सर्वग्रहेषु शक्तिरूपेण चंद्रफलमाह—शक्तिरिति । तुपारांशुकलं व-
फलं शक्तिराधेयः रुच्यने परेषामन्येषां दिवौकसां ग्रहाणां फलप्राप्त्यर्थं प्रकल्प्यं प्रस्त-
नोय । अथ हि यतो मात्रा किंचित्पदार्थस्य शक्त्या वस्तुत्वं वस्तुभावेति प्राप्नोति । अ-
वस्तु आभारः वस्तुत्वमाधेयः यत्रायेवमज्ञानवशात्प्राप्त्यापि मदावोभ्युपमितमवतत्वात् ।

नहि षट्त्वं विना घटोत्पत्ति । दृष्टातमाह ययेति । उष्णशक्त्यैव तनूनपात् अग्निः स्यात् । यत्रोष्णत्वं तत्र बन्धिरिति मात्रापरिच्छेदे । 'अश्रावयवे द्रव्ये मानेऽल्पे कर्णमूष्णे । काल-
वृत्ते' इति हेम ॥ ६९ ॥

अतो विलम्बेऽखिलकर्मराशावहस्करांश्चौरितदीप्तिर्वीर्यम् ॥

प्राप्ताखिलाभ्रायनपौरुषेऽपि विलोकनीयं सततं सुधीभिः ॥ ६६ ॥

अयातोऽवश्यं वर्द्धमानचन्द्रबलादाननामाह—अत इति । अतः पूर्वोक्तिशक्तिहेतुत्वात् सततं सदा सुधीभिर्विलम्बे राशिचक्रेऽहस्करस्य सूर्यस्याशुभिः किरणैरीरिता प्रेरिता दीप्तिर्वीर्यस्य स वर्द्धमानचन्द्रस्तस्य बलं वीर्यं विलोकनीयं कस्मिन् अखिलकर्मराशौ समस्तकार्यसमूहे । कथं-
मृते विलम्बे प्राप्ता अखिला समस्ता अभ्रयानां ग्रहास्तेषां पौरुषं बलं येन तत्तस्मिन्नपीति ॥ ६६ ॥

अनन्तरं दोर्ग्रहतो नराणामालोकयेत्तारकराजवीर्यम् ॥

अपास्य सीमन्तनिषेककृत्यमर्वागतस्तच्च नितंविनीनाम् ॥ ६७ ॥ ✓

अथ चन्द्रबलग्रहणे विवेकतामाह—अनन्तमिति । सुवीर्यराणां दोर्ग्रहतो विवाहादनन्तरं तारकराजस्य चन्द्रस्य वीर्यं बलमालोकयेत् । चपुनरतः पाणिग्रहणादर्वाक् नितंविनीनां स्त्रीणां तच्चन्द्रबलमालोकयेत् । किंत्वा सीमतकर्म 'अग्रहणी' इति भाषाया । निषेककर्म गर्भाधानकर्म द्वे द्वे प्रत्येक्योजनात् । अपास्य विहाय सीमतगर्भाधानकर्मणो भर्तुर्न स्त्रियास्तु चन्द्रबलं विलोकनीयमित्यर्थः । कर्मशब्दोऽकारातोऽप्यस्ति ॥ ६७ ॥

पतिंवरोल्लङ्घ्य वराय दद्यात्स्वकर्मवत्सप्तपदाचलं च ॥

सौभाग्यमष्टांगमतस्ततस्तद्योज्यं खगाद्युत्पफलं तदर्थे ॥ ६८ ॥ ✓

अथ कन्यावरयोः पूर्वापरचन्द्रबलग्रहणे हेतुमाह—पतिंवरेति । पतिंवरा कन्या सप्त-
पदाचलं चतुर्भुजवर्तनानतरं । अयातोऽश्मानमारोहययुत्तरतोऽग्नेर्दक्षिणपदेन स्वागुष्ठं गृह्णामीत्यादिगृह्योक्तं धान्यानिर्भित्तमप्युज्ज्वल्य उल्लङ्घ्य अतिक्रम्य वराय भर्त्रेऽष्टांगं सौभाग्यं दद्यात् । यतः 'पादौ वर्णौ शिरो बाहू कनो नासाक्षिणी तथा । ललाटं मुणगस्त्रीणामेव-
मष्टांगमुच्यते' । वीटससौभाग्यं स्वकर्मवत् निजकर्मवत् । चपुनः । ततः कारणाद-
तोऽस्मिन्तदर्थं तस्याः कन्यायाः अर्थो भर्ता तस्मिन् भर्तारं यत् खगाद्युत्पफलं योज्यमिति ॥ ६८ ॥

पाणिग्रहांगादिविधौ नृनार्योः पित्रोरदश्रुद्रमसो विचिंत्यम् ॥

राशौ बलं नेतुर्गारकाणां तथानुगानां च युधि ध्वजिन्याः ॥ ६९ ॥

अथ चन्द्रबलविलोकनीयस्यानमाह—पाणिग्रहेति । पाणिग्रहांगादिविधौ विवाहमागम-
कार्यविधाने नृनार्यो वरवध्वो पित्रो राशौ अदश्रुद्रमसो वः विचिंत्यम् । च पुनरगा-

रक्षाणां नेवः स्वामिनो राशौ चंद्रबलं विचिंत्यं । तथा युवे संग्रामे ध्वजिन्याः सेनाया
अनुगानां स्वामिना राशौ चंद्रबलं विचिंत्यम् । अनुगः स्वामीसेवकयोरित्यनेकार्थः ॥६९॥

न दोहदस्यामृतपिंडसारं भिक्षोरुपात्ताध्वरदैवतस्य ॥

सहस्रचंद्रव्रतकर्तुराद्यैसाधु वा साधु न चिंतनीयम् ॥ ७० ॥

अथ : चंद्रबलस्यानवलोकनीयस्थानमाह—नदोहदस्येति । अमृतस्य पिंडोऽयं यस्य
सोऽमृतपिंडश्चंद्रव्रतस्य सारं बलं दोहदस्य दोहदस्य साधु वासाधु न चिंतनीयम् । एवं
भिक्षोर्योगिनश्चंद्रबलं न चिंतनीयं । एवं उपात्ताध्वरदैवतस्य गृहीतयज्ञदेवस्य भारव्यक्तक
र्तुश्चंद्रबलं न विचिन्तनीयम् । पुनः सहस्रचंद्रव्रतकर्तुः चतुरशीति ८४ तमे वर्षे सहस्रचंद्रव्रतमुत्त
मत्कारकस्य चंद्रबलं न चिन्तनीयं आद्यैः पंडितैरिति ॥ ७० ॥

नरेषु भूपंचनवद्वितर्कदिगम्यगावधीभहरेन तुल्याः ॥

क्रमेण भानामविपूर्वकाणामनूष्मभासः किल कालसंज्ञाः ॥ ७१ ॥

अथोपेन्द्रवज्रया कालचंद्रमाह—नरेष्विति । किलेति सत्ये नरेषु पुरुषेषु क्रमेणाविपू
र्वकाणां मेपादीनां भानां राशीनां भूपंचादिभिस्तुल्या मिता अनूष्मभासश्चंद्राः कालसंज्ञाः स्तु ।
कोऽर्थः । मेपराशेर्नरस्य भूरेको जन्मचंद्रो घातकः । एवं वृषस्य पंचमश्चंद्रः । मिथुनस्य
नवमः । कर्कस्य द्वौ द्वितीयः । सिंहस्य तर्को पष्ठः । कन्याया दिक् दशमः । तुलाया
अम्यस्तृतीयः । वृश्चिकस्य अगाः पर्वताः सप्तमः । धनुषोऽब्धिः समुद्रश्चतुर्थः । मकरस्य ह्रस्व
अष्टमः । कुम्भस्य ह्रस्वः शिव एकादशः । मीनस्य इनाः सूर्याः द्वादशः एषां वृद्ध
एभिस्तुल्याः ॥ ७१ ॥

रूपाह्यगांकांगुणागमाश्चिदिगीश्वरेषूपमकैरभिज्ञाः ॥

मेपादिकानां विधवो वशासु ज्ञेयाः सदा कालकलार्तिदा वा ॥ ७२ ॥

अथोपनात्या स्त्रीणां काण्डचंद्रमाह—रूपेति । वेति स्त्रीपक्षे वशासु स्त्रीषु मेपादिकानां
राशीनां रूपादिभिरभिज्ञास्तुल्या । विधवश्चंद्राः सदा कालो यमस्तस्य कला निध्यानं सह
णादिरूपं तद्वत् आर्तिदा । पीडाकरा ज्ञेयाः बुधैरितिशेषः । रूपेति । मेपस्य रूपं एकः ।
वृषस्य अहिरष्टमः ८ मिथुनस्यागाः सप्तमः ७ कर्कस्य अंको नवमः ९ सिंहस्य अंगं पष्ठः
६ कन्याया गुणास्तृतीयः ३ तुलाया आगमाश्चतुर्थः ४ वृश्चिकस्य अश्विनो द्वितीयः २ धनुषे
दिग् दशमः १० मकरस्य ईश्वर एकादशः ११ कुम्भस्य ह्रस्वः पचमः ९ मीनस्य ऊष्मकते
द्वादशः एषां वृद्धः एभिस्तुल्याः ॥ ७२ ॥

वधप्रवेशे युधि यानगेहक्रियाविवाहेषु हलप्रवाहे ॥

नृपाभिपेकाभरणान्धृत्योगनिष्ठः स्यात्किल कालचंद्रः ॥ ७३ ॥

अथोपेन्द्रवज्रया यत्र स्याने कालचंद्रो हेयस्तदाह—वधिवति । किलेति भावनायां वधू-
पुनर्युधि संग्रामे पुनर्योनगेहक्रियाविवाहेषु पुनर्हलप्रवाहे पुनर्नृपाभिषेकः आभरणास्य
अस्त्रस्य च धृतिधारणं तयोर्नृपाभिषेकाभरणास्त्रधृतयोः एषु कालचन्द्रोऽनिष्टदः
स्यात् ॥ ७३ ॥

राज्ञोऽजपूर्वेऽथ कालमहादेकैकवृद्ध्या गदिताः क्रमेण ॥

विद्धिऽप्यहेल्यारसुरेज्यमंदाः शरीरिणां राशिषु कालसंज्ञाः ॥ ७४ ॥

अथोपजात्या शेषपद्महाणां कालसंज्ञामाह—राज्ञ इति । अप अजपूर्वेषु मेपादिराशिषु
राज्ञश्चंद्रस्य काल गेहात् क्रमेणैकैकवृद्ध्या विद्धुः बुधः चिन्म्यः शुक्रः हेलिः सूर्यः आरो भीमः
सुरेज्यो गुरुः मंदः शनिश्चेति शरीरिणां कालसंज्ञाः गदिताः । कोऽर्थः । यस्य यस्य नरस्य
यावत्संख्याकः कालचंद्राः शिस्तस्मादेकैकवृद्धिः कर्तव्या । यथा मेपादाशौ नन्मचंद्रो घातस्तस्य
द्वितीयो बुधो घातः । एवं तृतीयः शुक्रश्चतुर्थो रविः । पंचमो भीमः । षष्ठो गुरुः । सप्तमः
शनिश्चेति कालसंज्ञाः । एवं यथा धनुराशेः पुरुषस्य चतुर्थं कालचंद्रस्तस्य पंचमो बुधः का-
लसंज्ञा इत्येवमेकैकवृद्ध्या सर्वेऽपि ज्ञातव्याः ॥ ७४ ॥

नमश्चरः संक्रमतः स्वतोऽर्वाक् स्वभोगराशं शमितैरहोभिः ॥

अधिष्ठितर्वादिपि चैव्यराशेरलं फलं यच्छति मूर्तिमत्सु ॥ ७५ ॥

अथोपेन्द्रवज्रया ग्रहस्यागामिकराशिफलमाह—नमेति । नमश्चरो ग्रहा स्वतः संक्रमतो
स्तेमानराशिस्थाऽर्वाक् पूर्वं स्वभोगराशं शमितैर्नमोगराशेस्त्रिशमितैरहोभिर्दिनैराधिष्ठित-
रात् आक्रातराशेः सकाशाच्चैव्यराशेरगामिकराशे फलं शुभमशुभं मूर्तिमत्सु नरेषु यच्छति
इति । विशेषार्थस्त्वयं सूर्यो गंतव्यराशेः प्राक् पंच दिनानि फलदः स्यादेवं भीमोऽष्ट-
दिवसान् । बुधः सप्त दिनानि शुक्रः सप्त दिनानि चंद्रो त्रयत्रय राहर्गतव्यराशे पूर्वं
त्रैमासान् शनिः पञ्चासान् गुरुर्मासद्वयं फलदः स्यादिति ॥ ७५ ॥

यद्वाशिगा स्याद्युतिः प्रमार्गयोर्जनस्य तद्वाशिवतोऽशिवं भवेत् ॥

यस्याणु विंशं ग्रहणं तयोर्हि ग्रहस्य तस्यैव तमोवृतस्य च ॥ ७६ ॥

अथोपजात्या युतिग्रहगानिकारे विवेकमाह—यद्वाशीति । अत्रमार्गयोर्ग्रहयोर्युतिः
संयोगः । यद्वाशिगा यद्वासी राशिश्च त गच्छतीति यद्वाशिगा स्यात् । सचासी राशिश्च
यद्वाशिस्तद्वाशिवतो जनस्याशिवमशुभं भवेत् । च पुनस्तयोर्ग्रहयोर्हि संयोगे यस्य ग्रहस्या-
णु विंशं सूक्ष्मं मंडलं भवति तस्य तमोवृतस्य तमसाच्छादितस्य ग्रहणं भवति ॥ ७६ ॥

चलत्रय वैर्य वरगोऽशुभेतरौ राशिर्धनाद्यात्मजधर्मगः समः ॥

प्रात्यो मदांत्यात्ययवारिगोऽधमो राशेर्भवेन्नामवतश्च जन्मनः ॥ ७७ ॥

अथ ग्रहणसमये वर्तमानचन्द्रराशि शुभाशुभमाह—वलेति । ग्रहणसमये नामवृत्त पुरुषस्य जन्मनो राशौ सकाशात् बल तृतीय ३ आय एकादश ११ वैरी पष्ठ ६ अवर दशम १० एषु गतो राशिरशुभेतर शुभो ग्राह्य । पुनर्ज्ज्वन द्वितीय २ आद्य प्रथम १ आत्मन सुत ५ वष ६ धर्मो नवम ९ एषु गतो राशि समो ग्राह्य । पुनर्मेद सप्तम ७ अत्यो द्वादश १२ अत्ययोऽष्टम ८ वारि चतुर्थ ४ एषु गतो राशिरषमो भवेदिति ॥ ७७ ॥

शुभःशुभाय ग्रहणाच्छरीरिणां समश्च साधारणकामसिद्धये ॥

इहाधमोऽनिष्टफलाय पार्वणो राशिर्भवेदाग्रहणं युतेरिति ॥ ७८ ॥

अथैतादृशराशिना फलमाह—शुभेति । इह लोके शरीरिणा पार्वणि भव पार्वणो ग्रहणगतराशिर्ग्रहणाच्छुभ शुभाय स्यात् । च पुनरेव सम साधारणकामसिद्धये भवेत् । पुनरधमोऽनिष्टफलाय भवेत् । इत्यनेन प्रकारेण भौमादीना युते सकाशात् आग्रहणमयमर्थो ग्राह्य । युतेरारम्य आग्रहण ग्रहणपर्यंत तेन युद्धादिग्राह्यमित्यर्थ ॥ ७८ ॥

खगेरिस्तासाधुफलं जनेन तदर्चयायत्तदितं वरेण्यम् ।

सदौपधिक्षानविधानहोमापवर्जनेभ्योऽभ्युदयाय वा स्यात् ॥ ७९ ॥

अधोपेन्द्रवज्रया ग्रहाणामनिष्टफले शातिल्लानमाह—खगेति । यदा जनेन कर्तृपदेन यत् खगेनेरित प्रेरितमसाधुफलमनिष्टफलमित प्राप्त तदा तद्वया श्रद्धया तदर्चयत् तद्गृहपूजनेन तदशुभ वरेण्य श्रेष्ठ स्यात् । केभ्य सदौपधीभिर्भग्योपधीभि स्नानविधान होम २ अपवर्जन दान ३ एभ्य इति ग्रहकूपयाम्युदयाय वा स्यादिति पाठांतरम् ॥ ७९ ॥

काश्मीरयष्टीमधुपञ्चकैलामनःशिलोशीखसंतदूतिभिः ॥

सदारुभिः स्यादहिते खरांशौ निमज्जनं नु किल कर्मसिद्धये ॥ ८० ॥

अधोपजात्यानिष्टसूर्ये शातिल्लानमाह—काश्मीरोत्ते । विद्येति सत्ये । खरांशौ सूर्ये हितेऽनिष्टे सति नु पुरुषस्य कर्मसिद्धये ईप्सितमाप्तये मज्जन स्नान स्यात् । कामि काश्मी केसर पुष्प यष्टी मधु मनीत पयस्कस्तकविशेष । कमलफल कमलकाकडी । एत एतच्ची प्रतीता मन शिला 'मनशिल' इतिषायाया उशीर वीरणीमूल वसतद्वृत्ति पाटला एताभि किंप्रताभि सदारुभिर्देवदारुसहितानि । कोऽयं । एता ओषधीनलमृतकुमे निक्षेप्य स्ना कर्त यमित्यर्थ । 'स्नेहदृढ महादारु मदा दान्व्य च दारु च' इतिनिर्दिष्ट 'पाटलाया तु स्या' वसंतदूती स्यात् ' इतिनिर्दिष्ट ॥ ८० ॥

सपंचगव्यैः स्फटिकेमदानत्रिपत्रमुक्तांबुजमुक्तिशंखैः ॥

तुपारभास्याप्लवनं नृपाणामुक्तं हि तुष्ये विषमे ग्रहज्ञैः ॥ ८१ ॥

अपानिष्टघटे शानिस्नानमाह—सपंचेति । तुपारभासि च्छ विषमनिष्टे सति निश्चि ग्रहज्ञै नुष्ये तोषाय नृपाणा रात्रामप्लवन स्नानमुक्त रयिन । पंचगव्यादिसहोर्नेन पंच

मव्यं गार्दुवं १ दवि २ वृत् ३ विट् ४ मूत्रं ५ स्फटिको दण्डेदः इभदानं गजपदः त्रिपत्रको
विल्वः मुक्ताफलं अंबुजं कमलं शुकिशंखौ प्रतीतौ एभिः ॥ ८१ ॥

स्याच्चंदनं श्रीफलं हिं ग्लौकं श्यामा बलामां स्यरुणप्रसूनैः ॥

हीवेरं चापेयजयांकुराब्जैः स्नानं कुदायादकृताशिवघ्नम् ॥ ८२ ॥

अथेन्द्रवज्रयानिष्टे शौभे शांतिस्नानमाह—स्याच्चन्दनेति । चंदनादिभिः स्नानं कोभूमे-
र्होयादः पुत्रो यौमस्तेन कृत्वाशिवं हंतीति । कुदायादकृताशिवघ्नं मौमकृतोपद्रवहरं स्यात् ।
चंदनं मलयजं श्रीफलो विल्वः हिं ग्लौकः आपवीविशेषः श्यामाः म्रियंगवः बला बलबीजः
मासिः मरुमांसिः अरुणप्रसूनानि रक्तपुष्पाणि एषां द्वंद्व एभिः । किंभूतैः हीवेरं बालकं चापेयं
नागकेशरं त्रपांकुरा औद्रपुष्पकिसलयः एभिराब्जैर्युक्तैः नागपुष्पं मतं नागं केशरं नागकेशरं ।
चापेयं नागकिंमूलकं कनकं हेम कांचनं १ इति निबंदः । औद्रपुष्पं नुजपा इति हेमः ॥ ८२ ॥

सहेममूलाक्षतमौक्तिकेयैर्गोरोचनक्षौद्रफलैः सगव्यैः ॥

हिताय साद्रिर्विषमे नराणां निमज्जनं चांद्रमसायने स्यात् ॥ ८३ ॥

अथोपजात्या बुधे शांतिस्नानमाह—सहेमेति । चांद्रमसायने बुधे विषमेऽनिष्टे संति नरा-
णामेभिः सह मज्जने हिताय स्यात्तदाह गोरोचनं गोपितं क्षौद्रे मधु फलं मृदममीढलं
फलं एभिः किंभूतैरेभिः सगव्यैः पंचगव्ययुक्तैः । पुनः किंभूतैः । सहेममूलाक्षमौक्तिकेयैः हेमं
नागकेशरं मूलं पुष्करमूलं अक्षता लज्जा मंगलतंदुला लानास्य पुनरक्षता इति हेम । शौक्ति-
केयं मुक्ताफलं एभिः सह वर्तमानैः पुनः किंभूतैः साद्रिः जलैः सह वर्तमानैः ॥ ८३ ॥

सिद्धार्थयष्टीमधुनारिमालतीप्रसूनयूथीप्रसवैः सपल्लवैः ॥

रिष्टं यदीज्याद्विषमस्थितादितं शिवाय येस्तेष्वरुहं निमज्जनम् ॥ ८४ ॥

अथानिष्टगुरौ शांतिस्नानमाह—सिद्धार्थेति । यदि चेत् येनैरेर्विषमस्थितात् क्रूरस्थितात्
इज्याद्विरुद्धैः सखाशात् रिष्ट कष्ट इति प्राप्तं तेषु नरेषु शिवाय निमज्जने प्रोक्तं किंभूतं निमज्जनं
अरुहं न विद्यते रुद्रं जन्म कष्टोत्पत्तिर्यस्मात्तत् । अपवारुहं दूर्वारहितं हरितालिरुहा पोटा
इति हेम । सिद्धेयैः श्वेतसर्पः यष्टीमधु प्रतीतं नीरं बालकं मालतिप्रसूनानि जातिपुष्पाणि
यूथीप्रसवाः मागधीपुष्पाणि एभिः किंविशिष्टैः सपल्लवैः पल्लवयुक्तैः ॥ ८४ ॥

ना शंखैरलाफलमूलकुंकुमैः सपुंडरीकैः शिलया समन्वितैः ॥

कवीरितानिष्टविघातहेतवे स्नायादनब्जैरिति कश्चिदाह वा ॥ ८५ ॥

अथानिष्टे शुके शांतिस्नानमाह—नाशमिति । नाशुरूपः कविना शुकेण ईरितं प्रेरितमनि-
ष्टमशुभं तस्य विघातहेतवे स्नायात् । कैः सपुंडरीकैः श्वेतकमलमहितं शिष्टया मनःशिल्या
समन्वितैः । शंखं नलपयोयत्नाद्बालकं एलाफलं प्रतीतं मूलं पुष्करमूलं कुंकुमं काशमोरः एषा
द्वे एभिः वा इति पक्षतरे वञ्चिदन्वैरित्याह कमलानि विहाय स्नायादिति कथयति ॥ ८५ ॥

बलांजनश्यामतिलैः सलाजैः सरोद्रजीमूतशतप्रसूनेः ॥

यमानुजादासमनिष्टमुग्रं विलीयते मज्जनतोऽप्यशेषम् ॥ ८६ ॥

अयेंद्रवज्यानिष्टे शनौ शांतिस्नानमाह—बलेति । यमस्यानुजो लघुधाता शनिस्तस्मा-
दाप्तं प्राप्तमुग्रं दारुणमशेषं समस्तं विलीयते नाशं प्राप्नोति कर्तुःक्तिः । कस्मात् मज्जनतः स्नानात्
कैः बला बलवीजः अंजनं कृष्णसौवीरं श्यामतिलः कृष्णतिलः एषां द्वंद्वे एभिः किंविशिष्टैः
सलाजैः द्रोहिसहितैः पुनः किंमूतैः सरोद्रः 'रोहीढो इति भाषा' जीमूतः मुस्ता शतप्रसूनाः 'सूरा
इति भाषा' एषां द्वंद्वे एभिः सहवर्त्तमानैस्तैः 'शतपुष्पामिशिवोपा' इति निबंठुः ॥ ८६ ॥

सलोध्रगर्भेण मदेभदानैरणींबुदश्रीफलपर्णवर्णैः ॥

हेरदभद्रं विपमायुजातं शरीरिणामाप्लवनं सदूर्वैः ॥ ८७ ॥

अथोपजात्यानिष्टे राहौ शांतिस्नानमाह—सलोध्रगर्भेणेति । आह्वयनं स्नानं शरीरिण-
विपमायुजातं दुष्टराहुजातमभद्रं कष्टं हेरत् । कैः अर्णैः जलपर्यायत्वाद्वाहलकं अंबुदो मुस्ता
श्रीफलपर्णानि मिलेयवत्राणि वर्णं पुंस्पर्णं 'वर्णं लोहितचंदनं' इति हेमः । एषां
द्वंद्वः एतैः किंमूतैः लोध्रः प्रतीतः लोध्रो गर्भे मध्ये यस्य स लोध्रगर्भः अपवा गर्भः पनम
कंदक इत्यपि एणमदः कस्तूरी इमदानं गनमदः एभिः सहवर्त्तमानैः पुनः किंमूतैः सदूर्वैः
दूर्वासहितैः ॥ ८७ ॥

शिखामृदार्तितिलपत्रिकाब्दसारंगनाभीभमदांबुरोद्वैः ॥

निपेयतीहाविकमृत्रमिश्रैः स्नानं नुराढ्यैः करकामृताभ्याम् ॥ ८८ ॥

अथानिष्टे केनौ शांतिस्नानमाह—शिरोपेति । इह लोके स्नातुर्नरस्य शिखामृदार्ति-
केतुपीडा निपेयति निराकरोति कैः तिलपत्रिका रक्तचंदनं 'रतानणी इति भाषा' रजन
तिलपर्णिका' इति हेमः । अब्दो मुस्ता सारंगनाभिः कस्तूरी इममदो गनमदः अंबु वाहकं
सरोद्र एषां द्वंद्वः एभिः किंविशिष्टैः आविकमृत्रमिश्रैः मेघमृत्रसंयुक्तैः पुनः किंमूतैः करक-
'घनोपलस्तुकरकः' इति हेमः । अमृता शुद्धची आभ्यामादयेषुक्तैः ॥ ८८ ॥

कर्तव्यमिलिख्यजोशरीरकपूतिकाष्ठैः ससर्पभक्षोद्रशर्माद्रदूर्वैः ॥

तसंतद्वती स्यात् विपमे नराणां भाढर्या युतेर्मज्जनमिष्टदं स्यात् ॥ ८९ ॥

संपंचगव्यैः स्निग्धस्नानमाह—तिलांबुजेति । सूर्योपरान्ते सूर्यग्रहणे विपमेनिष्टे

शारभास्याप्लवनमप्युत्तयात् । कैः तिलः अंजुनं कमठं उशीरकं वीरणीमृ-
मज्जनमिष्टदं शुद्धे शांतिस्नानमास्यां द्वंद्वे एभिः किंविशिष्टैः सर्पभक्षपनानामौषधियुक्तैः
देवदारु माय नृपाणां दूर्वा शतपर्वाका आभिः सह वर्त्तते तैः पुनः किंमूतैः

पायः शमीकोकनदेरनिष्टे विधूपरागे तिलदारुवर्णैः ॥

सिद्धार्थदूर्वामधुकालमैयैरनिष्टनाशाय तु मज्जनं स्यात् ॥ ९० ॥

अथानिष्टे चंद्रग्रहणे शांतिस्नानमाह—पायइति । अनिष्टे विधूपरागे चंद्रग्रहणे मज्जनमनिष्टनाशाय स्यात् । कैः पायोः जले पर्यायत्वाद्बालकं शमी केशव्री कोकनदं रक्तकमलं तु पुनः तिलाः दारु देवदारु वर्णं काशमीरं एषां द्वंद्वः एतैः पुनः सिद्धार्थः श्वेतसर्पपः दूर्वा मधुकालमयै नागकेशरं एषां द्वंद्वः एभिः ॥ ९० ॥

मिथः कदूर्वांबुजसर्पपाख्यैर्द्वयोर्युजावास्मुखग्रहाणाम् ॥

सपंचमृत्पलवपंचगव्यैरनिष्टदायां स्नपनं वरं स्यात् ॥ ९१ ॥

अथोपद्रवजयानिष्टदायां ग्रहयुतौ शांतिस्नानमाह—मिथइति । मिथः परस्परं आरमुत्प्राणां भौमादिपंचकस्य मध्ये द्वयोर्ग्रहयोर्युतौ स्योगेऽनिष्टदायां सत्यां स्नपनं स्नानं रं शुभकृत्स्यात् । कैः कं जलपर्यायत्वाद्बालकं दूर्वा अंबुजं कमलं सर्पपाः एषां द्वंद्वः एभिः कर्मैः पंचवर्णमृत्तिका पंचवर्णपल्लवाः पंचगव्यं एषां द्वंद्वः एभिः सहवर्तमानैः ॥ ९१ ॥

दोषाशमीपद्मकशंखपुष्पीवत्सांकुराभ्रांकुरहेमपृष्णैः ॥

सदा ससिद्धार्थकचंदनाव्जैर्निमज्जनादेति नरः सुशांतिम् ॥ ९२ ॥

अथोपजात्या सामान्यतः शांतिस्नानमाह—दोषेति । सदा नरो निमज्जनात् सुशांतिमेति प्राप्नोति कैः दोषा हरिद्रा शमी केशव्री पद्मकं कमलफलं तरुविशेषश्च शंखपुष्पी प्रतीतं त्सांकुरा गुडव्री आभ्रांकुरा आम्रपल्लवाः हेमपुष्पं नागकेशरं एषां द्वंद्वः एभिः किंविशिष्टैः सिद्धार्थः श्वेतसर्पपः कं बालकं चंदनं मलयजं अठनं पद्मं एभिः सह वर्तमानैः । इति नवग्रह-शांतिस्नानाधिकारः ॥ ९२ ॥

अर्कत्रिवहद्भुमनेमिशालापामार्गबोध्याद्रिवनस्पतीभ्यः ॥

शम्यार्द्रदूर्वाकुथतः क्रमेण होमोचिताः स्युः समिधो ग्रहाणाम् ॥ ९३ ॥

अथेन्द्रवज्रया नवग्रहाणां होमेषानान्याह—अर्केति । क्रमेण ग्रहाणां सूर्यादीनां होमो चिताः समिध एषांसि स्युः । सूर्यस्यार्कात् अर्कवृत्तात् समिध एवं चंद्रस्य त्रिवहद्भुमात् पलाशवृत्तात् । भौमस्य नेमिशालात् खदिरवृत्तात् बुधस्यापामार्गात् 'अवाढ इतिपापा' । गुरोर्बोधेः पिप्पलवृत्तात् शुकस्याद्रिवनस्पतेरुदुंबरवृत्तात् एषां द्वंद्वः एभ्यः । शनेः शमीतः राहोराद्रिदूर्वातः केतोः कुथतः कुशात् एभ्यो वृत्तेभ्यः सरलानि सुस्निग्धानि पद्यो-कमानमितानि इंधनानि ग्राहाणि इति ॥ ९३ ॥

हुत्वा स्वर्गानां समिधस्तथाज्यं चरुं स्थितानुक्तफलानि मंत्रैः ॥

निजागमोक्तैरपि पूजनं च दानं सुभद्राय ततो विदध्यात् ॥ ९४ ॥

अथोपनात्या ग्रहाणां पूननेदानाधिकारमाह—इत्येति । ततः स्नानानंतरं खगानां पूजनं दानं च सुमद्भायं सुखाय विदध्यात् कुर्यात् । किं कृत्वा समिधं पश्यामि तथा आज्यं चरुं उक्तफलानि च हुत्वा हवनं विधाय कैर्निनागमोक्तैः स्वशाखावेदोक्तैर्मन्त्रैरिति ॥ ९४ ॥

नृणां सिताऽध्व्या गलवद्धचीवरा लवेतराधस्यवती सुलक्षणा ॥
दुष्टे विवस्वत्यपवर्जनोचिता सगोस्तनीतंदुलहर्म्यदक्षिणा ॥ ९५ ॥

अथ प्रथमं सूर्यदानमाह—नृणामिति । नृणां दुष्टे विवस्वति सूर्ये सति सिताध्व्या गौरपवर्जनोचिता दानाय हिता स्यात् । किंविशिष्टाध्व्या गलवद्धचीवरा कृतबद्धवस्त्रा पुनः किंभूता लवेतरमस्वेतरं बहु ऊधस्यं सौरमस्यास्तौति बहुदुग्धवती । पुनः किंभूता सुलक्षणा दोषरहिता । पुनः किंभूता गोस्तनी द्राक्षा तंदुलाः प्रतीताः । हर्म्यं गृहं एषां दक्षिणासहिता । उल्लाध्व्या रोहिणी इतिहैमः । गौरसः सौरमूषस्यम् इति च ॥ ९५ ॥

शंखं समुक्तं कलधौतजं द्विजे सरोहिणीस्तन्यमनन्यदक्षिणम् ॥
दद्यादनिष्टे किल रोहिणीविभौ सतंदुलावारसितोपलं सदा ॥ ९६ ॥

अथ चंद्रदानमाह—शंखमिति । किलेति सत्यनिष्टे रोहिणीविभौ चंद्रे सति सदा नरो द्विजे विभे शंखं दद्यात् । किंविशिष्टं शंखं समुक्तं मुक्ताफलसहितं पुनः किंभूतं शंखं कलधौतजं रजतमयं पुनः किंभूतं सरोहिणीस्तन्यं गोदुग्धसहितं । पुनः किंभूतं शंखं तंदुलाः प्रसिद्धाः आधारं घृतं सितोपला शर्करा एताभिः सहवर्तमानं । पुनः किंभूतं शंखं अनन्यदक्षिणं न विद्यतेऽध्व्या दक्षिणा यस्मिन् सतत् रजतदानमेव देयमित्यर्थः । 'स्तन्यं पुंसवनं पयः' इतिहैमः । ननु द्विजेऽत्राधिकरणं कथं तदाह । ननु यस्मै दत्ता रोचते धारयते वा तत्संप्रदानमिति । तदुक्तं विद्यानंदेन वाशब्देन वाशब्दस्य व्यवस्थावाचित्वात् । ब्राह्मणस्य ददाति । ब्राह्मणे ददात्यपि स्पादेव रुचेरप्रयोगे राज्ञो रोचते मृगया न मंत्रिण इत्यादौ पश्याम्येवमदर्शनात् । विस्तरे च विद्यते राज्ञो रोचते घृतमित्यप्यदयोऽपि तदेतच्च निर्धारितं महामाध्यक्षे चरणे रिति वक्ष्यमाणाधिकारेऽपि ज्ञातव्यम् ॥ ९६ ॥

वृषोऽरुणो भूमिभुवाऽपवर्जनेऽहितस्य शुल्बादयविपाणसंयुगः ॥
संभूरिचंद्रोऽरुणचीवरं तु वा शस्तो हि गोधूमशुल्बाज्यवन्नृणाम् ॥ ९७ ॥
अथ भूमिदानमाह—वृष इति । अहितस्यानिष्टस्य भूमिभुवो मंगलस्यापवर्जने दाने नृणामिच्छां गौः शस्तः शुभः श्रेष्ठः । किंविशिष्टो वृषः शुक्लेन तांश्रेणादयं स्वनिव

। अथ बुधस्य दानमाह—सगैरिकेति । नरेण विदो बुधस्य तुष्टये संतोषाय आदिने किमे गोदेया दातव्या । किंभूता गौः सगैरिकाः स्वर्णसहिता । पुन किंभूता अन-
गौरविग्रहा श्वेतशरीरा । पुन किंभूता शोणप्रभापीनकुचा रक्तप्रभपुष्टस्तनी । पुनः किंभूता
हरिद्रला नीलकटा वाऽथवा रुचिर देयं चीर चूडा सीसं च तद्वद्वा । कातिर्यस्य तच्चोरभं
तच्च चीर वस्त्रं च चीरमचोर नीलवस्त्रं । यद्धेमोनेकार्थं 'चीर वाससि चूडायो जोस्तने
सीसपत्रके' इति । किंविशिष्ट चीरमचोरं सप्तार्पणं सर्वपतैलसहितं । पुनः किंभूतं सूक्यं
कगुसहितम् ॥ ९८ ॥

— सुपीतचीरं सुस्वदितेऽवरे ददाति योऽवन्यमराय वाऽवरे ॥

। स नैति गांगेयवरं च पुस्तकं नीवारगव्यद्विदलान्नशर्करा ॥ ९९ ॥

अथागुरुदानमाह—सुपीतचीरमिति । अवरे अनिष्टे सुस्वदिते गुरौ सति य पुरुष
एतानि ददाति कस्मै अवन्यमराय भूदेवाय द्विजाय तान्याह सुपीतचीरं शुभपीतवस्त्र
गांगेयवरं शुभस्वर्णं पुस्तकं नीवारा वनघ्रीहय गव्यं घृणादि द्विदलान्न कणकादि शर्करा
एताश्च वेति स पुरुषोऽवरमशुभं नेति न प्राप्नोति ॥ ९९ ॥

कर्तुं कविं सौम्यतरं द्विजन्मने वलक्षभं वाहमकुप्यदक्षिणम् ॥

दद्यात्सितात्यार्तिमना नरोऽथवा मत्स्यडिकाज्यार्जुनचैलतंडुलान् ॥

। अथ कविर्दानमाह—कर्तुमिति । सितस्य शुक्रस्यार्तिः पीडा तयार्ति पीडिते मनो
यस्य स सितार्त्यार्तिमना नरो द्विजन्मने विप्राय वाह धोटक दद्यात् । किंकुं कविं शुक्र
सौम्यतरं शुभतरं विदधातु किंभूतं वाह वस्त्रम् श्वेतप्रभं । पुन किंभूतं वाह । अकुप्य दक्षिणा
भस्मिन् स त । अथवा मत्स्यडिका काणित रक्तखड्ग भाज्य घृत अर्जुनचैल श्वेतवस्त्र तंडुला
एषा द्वे एतान् दद्यात् ॥ १०० ॥

सजातरूपाद्विप्रमानुगो भवेच्छयामार्जुनीदानत ऐनिरार्तिहत् ॥

कृष्णांशुकायस्तिलतैलदानतोऽप्यनिष्टहा वा जनिभाद्धि देहिनाम् १०१

अथ शनिदानमाह—सजातरूपेति । हीति निश्चित । देहिना नृणां जनिभात् जन्मसाद
विप्रमानुगो दुष्टराशिस्थित एवैव ऐनि श्यामार्जुनीदानत कृष्णसुरभीदानत आर्तिहत् पीडा-
हरो भवेत् । किंभूतात् श्यामार्जुनीदानत सजातरूपात् स्वर्णसहितात् वेतिपसातरे शनि-
कृष्णांशुकं कृष्णवस्त्र अथ लोह तिष्ठतेलानि एषा द्वे एषा दानतोऽनिष्टहाऽनिष्टघातको
भवेत् ॥ १०१ ॥

ककायदौस्थोपशमाय देहिनां सुसप्तघान्योपलसारशीर्षकेः ॥

अपूरितस्यादिभुवि प्रदेशनं शूर्पस्य नीलांबरदक्षिणं भवेत् ॥ १०२ ॥

अथ राहुदानमाह—ककायेति । देहिना राहुक मस्तकेमेव काय शरीरे यस्य स क-
कायो राहुस्तस्य दौस्थोपशमनाय शूर्पस्य प्रस्फोटनस्य प्रदेशनं भवेत् । वस्त्रिन् । आदि-

भुवि अग्रजन्मनि विधे । किभूतस्य सूर्यस्य सुसप्तधान्यानि उपलस्यारं लोह-
शीर्षकं लागलिकलं एषा द्वेष्टे एभिः प्रपूरितस्य किभूतं प्रदेशनं नीलांबरस्य दक्षिणं
यौस्मस्तत् नीलांबरदक्षिणं 'प्रदेशनविसर्जने' इतिहैमः । 'लोहे गिरिसारं शिलासारं'
इतिहैमः ॥ १०२ ॥

दद्यादजं हाटकभूमिदक्षिणं केतूदये वा विपमानुगे भतः ॥

केतौ जनेर्जन्मवतो द्विजातये तमस्यपीत्याह स बादरायणः ॥ १०३ ॥

अथ केतुदानमाह—दद्यादिति । जन्मवतो नरस्य जनेर्मतो जन्मराशितो विपमानुगे कू-
रते केतूदये सति स नरोऽजं नागं दद्यात् । कस्मै द्विजातये त्रिप्राय किभूतमनं हाटकभू-
मिदक्षिणा यस्मिन् स तं स्वर्णभूदक्षिणं । वास्पवा केतौ विपमानुगे सति एतद्वाने द्वय ।
अपि पुनः तमसि राहौ विपमे सत्यपि एतद्वानं देयमिति बादरायणः कृष्णद्वैपायनश्चापराह
'कानीनो बादरायण' इतिहैमः ॥ १०३ ॥

आरेनयोर्विद्वमर्मिदुधिष्ययोस्तारं विदः कर्बुरमिद्रमंत्रिणः ॥

मुक्ताफलं धार्यमयश्च तुष्टये यमस्य लाजावलयं किलान्ययोः १०४

अथ तुष्टे नवग्रहे धार्यमाह—आरइति । जनेन आरेनयोर्मौमसूर्ययोस्तुष्टये विद्वमं धार्यं ।
एवं इंदुधिष्ययोश्चंद्रशुक्रयोस्तारं कूप्यं विदो बुवस्य कर्बुरं स्वर्णं इंद्रमंत्रिणो गुरोर्मुक्ताफलं
यमस्य शनैरयो लोहं अन्ययो राहुकेत्वोस्तुष्टये लाजावलयं लाजावर्तः रलयोरैक्यत्वात् ।
'विराट्जोराजपट्टोराजवर्त' इतिहैमः । रावटोमणिइति माया ॥ १०४ ॥

तदर्चनादादिजदेववंदनाछेयस्कथाकर्णनतो मखेक्षणात् ॥

होमाजपादागमपाठदानतो न पीडयंत्यंगभूतः खगामिनः ॥ १०५ ॥

अथ संहारमाह—तदेति । अंगभूतः प्राणिनः खगामिनो ग्रहा न पीडयंति कस्मिन्
तदर्चनाद्वहपूजातः पुनरादिनदेववंदनात् द्विमेववंदनात् । पुनः श्रेयस्कथाकर्णनतः शुभकयो
श्रवणात् । पुनर्मखेक्षणात् यज्ञदर्शनात् । पुनर्होमात् पुनर्गमात् मणवपूर्वमपनान् पुनः आग-
पाठदानतः ॥ १०५ ॥

समाष्टकापत्यभस्वैर्वीर्यं प्रकीर्तितं तज्जनकस्य शश्वत् ॥

इतानुगच्छीभस्वपांथवीजमादेशिभिस्तत्कमितुस्तथैव ॥ १०६ ॥

स्वमंत्रजाप्यार्चनहोमदानकप्राप्तानुकूल्या हरिवर्त्मचारिणः ॥

अनेककर्मार्थकदा भवन्त्यमी परावरेषामपि कर्मसाक्षिणः ॥ १०७ ॥

इति श्रीकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे ग्रहगोचराध्यायः पंचमः ॥ ५ ॥

अथैषजात्या सर्वेषां ग्रहाणांमरिष्टनिवर्तकं शांतिप्रकारमाह—स्वमंत्रेति । हरिवर्त्म आ-
काशं तच्चारिणः सेटाः किंभूताः परावरेषा-टच्चनीचजातीनां प्राणिनां कर्म शुभाशुभं त-
त्साक्षिणः । पुनः किंभूताः स्वमंत्राः तत्तद्ब्रह्ममंत्रास्तेषां जाप्यं जपः तयार्चनं च होमश्च
दानकं च तैः प्राप्तं आनुकूल्यं येषांते तथामूताः संतं अनेकेषां कर्मणां अर्थ एव अर्पकः फलं
तत्प्रदा भवन्ति । ग्रहाः सर्वेषां प्राणिनां सर्वेषु कर्मसु जपादिभिः पूजिताः सर्वारिष्टनाशका
अनेकेषां सर्वसुखसमर्पकाश्च स्युरिति, मावः ॥ १०७ ॥

इति श्रीपैणिनीयमच्छाधिराजभट्टारकपुरंदरश्रीमहिमाप्रमसूरीश्वरचरणसरोरुहचवरीकयमान

शिष्यभावरत्नविरचिताया श्रीकविकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य

मुख्योपध्यायः ग्रहगोचराध्यायः पंचमः समाप्तः ॥ ५ ॥

वक्रवालमिमारूढो भरडाव्हो महाबली ॥

क्षेत्रपालः सुखायास्तु राकापक्षमृता सताम् ॥ १ ॥

॥ उत्पातप्रकरणम् ॥ ६ ॥

—ॐॐॐॐॐॐ—

श्रेष्ठः स्वपांथविहिताशुभमेति तावदुत्पातमेप्यति यदाथ तदीरितं स्यात् ॥
च्छांतितोऽशुभफलाय न तद्भुवेऽहमुत्पातरूपफलशांतिविधानतोऽस्तः

अथ ग्रहगोचरकथनानन्तरं तेभ्य उत्पाता नायतेऽनो वसनातिलकेन उत्पाताध्यायसंग्रहमाह—
श्रेष्ठ इति । अयानन्तरं यदा लोकः स्वपाथविहिताशुभं ग्रहकृत्कष्टमेति प्राप्नोति तावत्तत्कष्टात्
अपमं क्रौकस्तदीरितं तेन ग्रहेण श्रेष्ठितमुत्पातं प्रकृतेरन्यत्त्वमुत्पातस्त्रिंशः ग्रहर्शवैष्टत दिव्यं
। स्कानिर्वानपवनपरिवेषगवर्षपुरेद्रवापादि आंतरिक्ष भौम स्थिरमचमेप्यति गमिष्यति तदुत्प-
त्तं शांतिविधानात् अशुभफलाय न स्यादतः कारणादहं तदुत्पत्तनं भुवे । कस्मात् हेतो-
रुत्पातस्य रूपं स्वरूपं तस्य फलं तस्य शांतिविधानतः शांतिरुरणेहोः । यत्र
दिव्यांतरिक्षादिनिमग्नानि दृष्टा निमित्तानि शुभाशुमानि ॥ वदन्नदुर्गस्य शुभाशुभत्वं महन्-
राप्नोति समामु भीमान् ॥ १ ॥ अतोऽहमुत्पातगणानपीह यथा स्वबोधं क्रियतोऽपि वक्ष्ये ।
श्रेष्ठ्यप्रबोधाय विदग्धतुष्ट्यै जनस्य मृपस्य च विस्मयाय ॥ २ ॥ युद्धं ग्रहाणां परिवेषद-
हकेतुदया वैकुण्ठमिदुमान्त्रो- ॥ ग्रहोपरागं प्रतिमास्करश्च दिव्या विकाराः कथिता मुनीन्द्रैः ॥ ३ ॥
॥ दिव्याः ॥ 'संध्याप्रवेकनकचञ्चलानि तारापानस्ताशाशनिरेकालनगानि च । निर्गन्त-

क्तकरका रुक्मा निपातो नीहारशक्रचनुपीति नमःसमुत्थाः ॥ १ ॥ इति अतिरिक्ताः ॥ 'मेदो भुवः प्रप-
 तनं ध्वजतोरणानां गधर्वसंज्ञितपुरो घुरणीप्रकपः । अर्चासु मंगचलनादि हुताशकोपः शाखा तरोः
 पतति वायुपतिप्रचंडः ॥ ५ ॥ मधुकुण्डलं निविशत्यकस्माद्विशतिं गेहं च कपोतकाद्याः ॥
 विपीलिकाश्चेनशिवाग्निपक्षिभ्योगोमृगाणां च कुत्रा विकाराः ॥ ६ ॥ इति भौमाः इत्यादि ॥ १ ॥
 यस्यालयस्य सहसा पतनं यदा स्यादत्तारमेति शरणस्थवशा तदारम् ॥
 ✓ धिष्ण्ये प्रवाणपतनं तनुते त्वपत्ये मांघं दरिद्रमनुवेलनिशांतशब्दः ॥ २ ॥

अथ प्रथमं भौमोत्पातं बुग्रहगंतोत्पातमाह—यस्येति । यदा यस्य नरस्यालयस्य गेहस्य प-
 तनं सहसा स्यादिति स्यात्तदा रं स्यादिति शरणस्यो गृहस्यस्तस्य वशा महिला अत्तारं मृत्युमेति ।
 तु पुनर्यदा धिष्ण्ये गेहे प्रवाणपतनं बहिर्द्वारप्रकोष्ठपतनं स्यात् प्रवाणः प्रवाणार्जितं बहि-
 र्द्वारप्रकोष्ठके इति हेमः । तदाऽपत्ये संताने मांघं रोगं तनुते विस्तारयति । पुनरनुवेलं समये
 निशांतशब्दो भणकारूपो दरिद्रं तनुते ॥ २ ॥

सीमंतिनी विकृतिमत्प्रसवा स्वभोक्तुर्दास्यां मयाय बडवा
 बहुला स्वगोप्तुः ॥ काली च कालभटभीतिविमुक्तये वा
 तच्छावदर्शनमथातुं च तस्य वै स्यात् ॥ ३ ॥

दिवस इत्यर्थस्तस्य समये श्रावणमासस्य दिनसमये चतुर्थे पक्षे प्रहरेषु क्रमेण प्रसूता प्रसूति-
गताऽऽर्जती वडवा क्रमेण प्रथमे द्वितीये तृतीये चतुर्थे गृहपतिं गृहिणीसुताभ्यान् निहन्ति इति । च
पुनर्हरो । सिंहराशौ उष्णमस्य सूर्यस्य समये सिंहराशिगतसूर्ये सति दोग्ध्री । सुरभिः प्रसूता
वडवावदनिष्टदा च पुनस्तपसो मावस्य समये पुनर्ज्वनो बुधवारस्य समये मावमासे बुध-
वारे च काली महिषी प्रसूता वडवावदनिष्टदा इति । 'अध्यायां पुनरर्ज्वती' इति । हेम-
शेषकोशे ॥ ४ ॥

भावी तदापि करमे कलभं करिण्या ज्ञेयं प्रसूयत
इति शुविमौ नभस्य ॥ चक्रव्ययो नरपतेर्यदि
भूमिदेवे तद्दानमास्ति तदुपप्लवशांतयेस्तः ॥ ५ ॥

अथ भाद्रपदादौ हस्तिनीमृत्तिस्वरूपमाह—भावी इति ॥ नभस्य भाद्रपदे करमे
हस्तनक्षत्रे शुविमौ सूर्ये सति यदि चेत् करिण्या हस्तिन्या कलभं प्रसूयते । कलभंशब्दस्य
पुष्टिगवर्द्धिगत्वाद्भ्रमं कर्मोक्तौ प्रथमैकवचनं तदापि निश्चितं नृपतेर्नृपस्य चक्रव्ययः
सैन्यविनाशो भावी भावितास्ति अतः कारणात्तदुपप्लवशांतये कलभनन्मोपद्रवोपशमनाय
भूमिदेवे द्विजे तद्दानं तस्य कलभस्य दानमास्ति इति ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

गेहं यदा करट्कौशिकगृध्रफेस्येन द्वितालुकक-
पोतपतत्रिणः स्यात् ॥ नाशं विशन्ति ससमग्रशि-
वैणनेत्रा नो चेत्तदुद्वसमगारपतेः प्रयाति ॥ ६ ॥

अथ कृतगृहप्रवेशकाद्युत्पातमाह—गेहमिति ॥ करटो द्विकः 'युकारिः करटो द्विक' इति
हेमः । कौशिकोद्वकः पृथो दुरदृग् 'समलो' इति भाषा ॥ फेरुर्नवुकः श्येनः पत्नी 'संचिणो' इति
भाषा । द्वितालुको द्विनिवृहः सर्पः कपोतः पारावतः एते पञ्चत्रिणो गेहं विशन्ति तदागारपते-
र्गृहस्वामिन एणनेत्रा मृगाक्षी स्यात्तदा सा नाशं मृत्युं याति कथंभूना स्त्री सा 'समग्रशिवा'
समस्तकल्याणेन सह वर्तमाना । चेत् यदि स्त्री नास्ति तदा तदृहमुद्वसं प्रयाति ॥ ६ ॥

संजायते कुलपतिः किल वामद्वरः कोष्ठे कुलस्य मधुजालमसह्यपिडं ॥
स्तम्भप्रवालजननं यदि वा तदा वा दारिद्र्यमेति कुरादिविहंगनीडम् ॥ ७ ॥

अथ गेहे मधुपिडादिजननमाह—संजायत इति । कुलस्य गेहस्य कोष्ठे यदि वामद्वारो
वस्तीकं संजायते वाऽपवा मधुजालं मधुपिडः । 'स्तम्भप्रवालजननं' मृगायां नाव-
प्लवाः । अथवा कुरादिविहंगनीडं उक्तोशादिपक्षिकुलायः संजायते किञ्चिन् विमाच्यते
तदा कुलपतिर्गेहस्वामी असह्य पीडा यस्मिन्मृगास्यकष्टं दारिद्र्यमेति प्राप्नोति ॥ ७ ॥

शृंगाणि चेद्वि पतन्ति च शालमोलेः पृःशालशालवि-

स्तकरका रुजसां निपातो नीहारशक्रानुपीति नमःसमुत्थाः ॥ ४ इति अतिरेताः ॥ 'मेदो मुखः प्र-
त्तनं ध्वजतोरणानां गंधर्वसंज्ञितपुरो धरणीप्रकंपः । अर्चासु मंगचलनादि हुताशकोपः शाखा तरोः
पतति वायुरतिप्रचंडः ॥ ५ ॥ मधुकमलं निविशत्यक्स्माद्विशंति गेहं च कपोतकांक्षा ॥
पिपीलिकाश्चैनशिवाग्निपक्षिश्चमोमृगाणां च कुंजा विकाराः ॥ ६ ॥ इति भौमाः इत्यादि ॥ १ ॥
यस्यालयस्य सहसा पतनं यदा स्यादत्तारमेति शरणस्थवशां तदारम् ॥

✓ धिष्ण्ये प्रघाणपतनं तनुते त्वपत्ये माद्यं दारिद्र्यमनुवेलनिशांतशब्दः ॥ २ ॥

अप प्रयमं मौमोत्पातेषु अहगतोत्पातमाह—यस्येति । यदा यस्य नरस्यालयस्य गेहस्य प-
तनं सहसा सति स्यात्तदाऽरे सति शरणस्थो गृहस्थस्तस्य वशा महिला अत्तारः मृत्युमेति ।
तु पुनर्यदा धिष्ण्ये गेहे प्रघाणपतनं बाहिर्द्वारप्रकोष्ठपतनं स्यात् 'प्रघाणः प्रघणा इति दा बाहि-
र्द्वारप्रकोष्ठे' इति हैमः । तदाऽपत्ये संताने माद्यं रोगं तनुते विस्तारयति । पुनरनुवेलं समये
विशानशब्दो भणकारूपो दारिद्र्यं तनुते ॥ २ ॥

सीमंतिनी विकृतिमत्प्रसवा स्वभोक्तुर्दास्या? मयाय बहुला

✓ बहुला स्वगोप्नुः ॥ काली च कालभटमीति विमुक्तये वा

तच्छावदर्शनमथानु च तस्य वै स्यात् ॥ ३ ॥

अप्रस्तुतिवैकृतमाह—सीमंतिनीति । विकृतिमान् विकलांगवान् प्रसवो कालो यस्या-
सा विकृतिमत्प्रसवा सीमंतिनी स्त्री स्वभोक्तुर्विनपतेरामयाय रोगाय स्यात् ॥ एवं च बट-
पाऽरेनी बहुला धेनुः, काली महिषी च विकृतिमत्प्रसूतिः सती स्वगोप्नुः निजस्वामिन
आमयाय स्यात् । अथ वा इति पश्चात्तरे प्रमूतेरनुपश्चात् तच्छावदर्शनं तेषां कालानां विलो-
कनं तस्य पुत्रस्य काष्ठप्रदो यमस्तत्मादोऽस्ति तस्य विमुक्तये यममयमोगाय वै निश्चिद्वै
स्यात् । 'बहुला तु सुरम्यां नोलिषे लयोः' इति हैमः । यतः 'प्रसवविकारे स्त्रीणां द्वित्रिपदं
प्रभूति समसूतेर्वा । एनातिरिक्तकाले स्वदेशबुलसंशयो भवति ॥ १ ॥ बटवोद्रे महिषी गोदस्तिनी-
षु यमलोद्रे धरणमेषां पगमाभाप्युतिः फलं शान्तिं श्लोत्री च गणोक्तौ ॥ २ ॥ नायः परस्य देशेऽपु
त्यक्त्यस्ता हितार्थिना । तर्पयेद्य द्विनन् कामैः शान्तिं चैवात्र कारयेत् ॥ ३ ॥ अनुप्यदा-
स्वयुष्यस्त्यक्तव्याः परस्मिण् । नगर स्थापिनं युयमन्यया नाशयति ते ॥ ४ ॥' इत्या-
दिवराहमिहिराकि ॥ ३ ॥

१ साकांशुकालसमये नभसः प्रसूता नन्वर्वनी गृहपतिं

गृहिणी सुतार्थान् ॥ यत्सुकमादिति चतुर्षु निदंति

दोग्ध्री ह्युष्मभस्य तपसो ब्रवतश्च काली ॥ ४ ॥

अथ बटपादेना कालविशेषगननमूतिरूपमाह—साकांश्विति । अनु निश्चिनं नभस
भरणस्य सद अर्वागुना मूर्धकिरणेन वर्तमानः साकांशु रात्र्यां वा न सूर्ययुक्तः ॥ ३ ॥

दिवस इत्यर्थस्तस्य समये श्रावणमासस्य दिनसमये चतुर्थे पक्षे प्रहरेषु क्रमेण प्रसूता प्रसूतिं गताऽर्ज्वती वडवा क्रमेण प्रथमे द्वितीये तृतीये चतुर्थे गृहपतिं गृहिणीसुतार्थान् निहति इति । च पुनर्हरीं सिंहाराशौ उष्णमस्य सूर्यस्य समये सिंहाराशिगतसूर्ये सति दोष्प्री सुरभिः प्रसूता वडवावदनिष्टदा च पुनस्तपसो माघस्य समये पुनर्ज्वतो बुधवारस्य समये माघमासे बुध-
वारे च काली महिषी प्रसूता वडवावदनिष्टदा इति । 'अध्याया पुनर्ज्वती' इति । हेम-
शेषकोशे ॥ ४ ॥

भावी तदापि करमे कलमं करिण्या ज्ञेयं प्रसूयत
इति शुविभौ नभस्य ॥ चक्रव्ययो नरपतेर्यदि
भूमिदेवे तद्दानमस्ति तदुपप्लवशांतयेऽतः ॥ ५ ॥

अथ भाद्रपदादौ हस्तिनीप्रसूतिस्वरूपमाह—भावी इति ॥ नभस्ये भाद्रपदे करमे हस्तनक्षत्रे शुविभौ सूर्ये सति यदि चेत् करिण्या हस्तिन्या कलमं प्रसूयते । कलमशब्दस्य पुर्णिगवर्णिगत्वाद्वा कर्मोक्तौ प्रथमैकवचनं तदापि निश्चितं नृपतेर्नृपस्य चक्रव्ययः सैन्याविनाशो भावी भवितास्ति अत कारणात्तदुपप्लवशांतये कलमजन्मोपप्लवोपशमनाय भूमिदेवे द्विजे तद्दानं तस्य कलमस्य दानमस्ति इति ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

गेहं यदा करटकौशिकगृध्रफेल्श्येनद्वितालुकक-
पोतपतत्रिणः स्यात् ॥ नाशं विशन्ति ससमग्रशि-
वैणनेत्रा नो चेत्तदुद्रसमगारपतेः प्रयाति ॥ ६ ॥

अथ कृतगृहप्रवेशकाद्युत्पातमाह—गेहमिति ॥ करटो द्विकः 'शुक्वारि-करटो द्विक' इति हेमः । कौशिकोदकः गृध्रो दूरदृग् 'समली' इति भाषा ॥ फेरुर्मेवुक श्येन पत्रो 'सौचाणो' इति भाषा । द्वितालुको द्विजिवहः सर्पः कपोतः पारावतः एते पतत्रिणो गेहं विशन्ति तद्गगारपते-
र्गृहस्वामिन एणनेत्रा मृगाक्षी स्यात्तदा सा नाशं मृत्युं याति कथंभूता स्त्री सा समग्रशिवा समस्तकल्याणेन सह वर्तमाना । चेत् यदि स्त्री नास्ति तदा तद्गृहमुद्धतं प्रयाति ॥ ६ ॥

संजायते कुलपतिः किल वामलूरः कोष्ठे कुलस्य मधुजालमसह्यपिडं ॥
स्तंभप्रवालजननं यदि वा तदा वा दारिद्र्यमेति कुरादिविहंगनीडम् ॥ ७

अथ गेहे मधुपिडादिजननमाह—संजायते इति । कुलस्य गेहस्य कोष्ठे यदि वामलूरो वस्मीकं संजायते वाऽथवा मधुजालं मधुपिडः 'स्तंभप्रवालजननं स्पृणाया ज्ञान-
पल्लवाः' । अथवा कुरादिविहंगनीड उक्तोशादिप्रसिद्धायाः संजायते विहंगेति निभाव्यते तदा कुलपतिर्गेहस्वामी असह्य पीडा यस्मिन्तदशक्यकष्ट दारिद्र्यमेति प्राप्नोति ॥ ७ ॥

भृंगाणि चेद्भुवि पतन्ति च शालमौलेः पृःशालशालवि-

शिक्षापतनं यदा स्यात् ॥ संजायते सुरसमान-
बले तदयं ऽकस्माद्धि तद्गुणपरोऽत्र न संशयोऽस्ति ॥ ८ ॥

अथ दुर्गशीर्षादिपतनदोषमाह—शृगाणीति । चेद्यादि शालमौले प्राकारशीर्षात् 'शृ-
गाणि कपिशिर्षाणि भुवि भूमौ पतति न पुनर्यदा पू शालो नगरीवृक्ष पू शालविशेष
नगरीप्राकारप्रतीकस्तयो पतनं स्यात्तदाऽकस्माद्धि निश्चितं तदुक् तस्या नगर्या भोक्ताऽपरो
राजा संजायते । कस्मिन् सति सुरसमानबले तदयं तस्या नगर्या अयं स्वामी तद्वयं
स्मिन्नत्र सशयो नास्ति । अकस्माच्छब्दं पूर्वान्वयेऽपि योज्य । 'प्रतीलि विशिखा समा' इति हेम ।
शाखायगेऽकस्माद्दृष्टाणा निदिशेद्रणोद्योगं । हसने देशभ्रश रुदिते च व्याधिबाहुल्यं ॥ १ ॥
राष्ट्राविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीवकुसुमिते बाले । वृक्षात्क्षीरस्त्रावे सर्वद्रव्यसमो भवति ॥ २ ॥
सद्यो बाहननाश सत्राम शोणिते मधुनि रोगा । स्नेहे दुर्भिक्षमय महद्भय निश्चिते सलिले ॥ ३ ॥
शुष्कविरोहे बीर्षास्तसक्षय शोषणे च विरुजाना । पतितानामुत्थाने स्वय भय देवजनि
ते च ॥ ४ ॥ पूजितवृक्षे ह्यनृतो कुसुमफल नृपवधाय निर्दिष्ट । धूमस्तस्मिन् बालापव
भवेन्नृपवधायैव ॥ ५ ॥ सर्पसु तरुषु जल्पसु वापि जनसमूहो विनिर्दिष्ट । वृष्टाणा पैकुले
दशभिर्मसै फलविपाक ॥ ६ ॥ लग्नपधूपानरपूजितस्तच्छत्रं निधायोपरि पादपस्य कृत्वा
शिर्ष रुद्रनपोऽत्र कार्यो रुद्रम्य इत्यत्र पङ्क होम ॥ ७ ॥ इति दृष्टवैरुत । वराह
निहिरोक्तम् ॥ ८ ॥

चेच्छासनासनमरिष्टनिशाटनाख्यकेकाकपोतपतता
सहसा भ्रमन्तुः । एकस्तदाविरिह शासनकामहा-
निस्तिष्ठत्यहिर्भवाति यस्य च तस्य तद्वत् ॥ ९ ॥

अथ निजामनोपविष्टवाकादिदोषमाह—चेच्छासनेति । अरिष्ट वाक । निशाटना
ख्योक्तं केका मयूर कपोत एषा पतता पक्षिणा द्वे एषा मध्ये एका विरिहो यस्य
तु पुरुषस्य शासनासन्माज्ञाया आसनमुदिश्व सहसा भ्रमन् सन् इहासने तिष्ठति च पुनस्तद्वत्
तिष्ठति तदा तस्य पुरुषस्य शासनकामहानि राक्षा वाछिन्नमयो भवति । उपार्दयंशमन
मारुत्य निनाज्ञामाविष्टरोति तच्छासनामन केकाशब्द आकारातोऽपि मयूरवाचा । उत्तम ।
'केका भार्गवि तद्वाचि मुदले जमनिन् त्रिया । गीत्रतत्रानरीताभ्रपर्णापि तद्विदेतयो' इति
ह्यपुष्टिपन्नके 'केका केकातुकावप्यनितमिह सदा श्रूयन्ते निशरीणा' इति शृगादशतयेऽपि
अन्यथा इत्येतेन उद्योगो भवेत् ॥ ९ ॥

यस्यासनस्य शयनस्य च जातु भगो यानस्य वा भवाति
यस्य तदयं भगः ॥ अत्रातमात्महिततृप्तिभिर्गिन्यकम्मात्
कार्यं द्विजे तदपवर्जनमात्मशाय ॥ १० ॥

अथासनादिमगदोषमाह—यस्येति । जातु चेद्यस्य पुंसस्य आसनस्य पादपीठस्य चकस्य च यानस्य वाहनस्य वा अकस्मात् भगो विनाशो भवति तदा तदयमग-
 षामासनादीनामर्थः । स्नामी तदयस्तस्य भगो विनाशो भवति । इति हेतोरश्नात् निरतर-
 त्स्थितितुकिर्भिनैस्तद्रूपवर्जनं । आसनशय्यावाहनानां दानं द्विजे विप्रे कार्यं कर्तव्यं कस्मै
 तत्प्रशय आत्मेने शः सुखमात्मश तस्मै ॥ १० ॥

दृष्टे च । पुष्करकुटे ज्वलिते कदाचिद्द्रष्टुर्भवेच्छमनपूः-

॥ पदवीप्रयाणं ॥ स्यान्मातरिश्चपदवीज्वलिते तथा च
 ॥ द्रष्टुं नेति भवितव्यवशादकस्मात् ॥ ११ ॥

अथ जलाशयादौ सजातज्वालाया द्रष्टुर्दोषमाह । दृष्टे इति । कदाचिदकस्मात्
 वितव्यवशात् पुष्करस्य जलस्य कुटे गेहं कोटश्च तस्मिन् कूपादिजलाशये इत्यर्थः । पुष्कर-
 टे इत्यपि पाठः । ज्वलिते दग्धे दृष्टे सति द्रष्टुं पुंसस्य शमनपू-पदवीप्रयाणे यमनगरी-
 र्गस्थानं भवेत् ॥ जलवैकृतं यथा । अपसरणं नदीनां नगरादचरेण शून्यतां कुरुते । शोष-
 णशोष्याणामन्येषां वा ज्वालादीनां ॥ १ ॥ स्नेहासृग्मास्रवहा सकलकलुषा प्रतीपगाश्चपि ।
 रक्षकस्यागमनं नरा कथयति पुष्पासात् ॥ २ ॥ ज्वालाधूमकाया रुदितोत्क्रुष्टानि चैव
 पाना । गीतप्रजल्पितानि च जनमरकायोपदिष्टानि ॥ ३ ॥ सलिलेत्पत्तिरखाते गर्धरसवि-
 र्यये च तोयानां । सलिलाशयविकृतो बामहङ्ग्य तत्र शातिरिय ॥ ४ ॥ सलिलविकारे
 र्गोत्पूजा वरुणस्य वारुणमंत्रे । तरेव च जपहोम शममेव पापमुपयाति ॥ ५ ॥ इति
 क्ष्यमाणजलवैकृतेऽपि ज्ञेयः ॥ तथाच पुनर्मातरिश्वा वायुस्तस्य पदवी मार्गो व्योम तस्मिन्
 ज्वलिते दग्धे दृष्टे सति द्रष्टुर्नरस्य यमनगरीप्रयाणं न स्यादिति न द्वौ नकारौ प्रकृत्यर्थं
 एष्यत । ज्वलितौ दग्धमास्करौ इति । पुष्कर द्वीपतीर्थे हि । खगरागौ । ग्रधातरे ।
 सूर्यास्ये सेफले काडे शुभाग्रे खे जलेऽबुदे इति हेम ॥ ११ ॥

गेहे गृही भवति यस्य यदोदकुम्भीभंगः सवैति सहसा

नुरल्लिजराल्याः । भंगो भयं त्रमरजातमपास्क्रोपं जीव-

स्वहानिरथ मथनभाण्डभंगः ॥ १२ ॥

अथ जलेकुम्भादिभगे दोषमाह—गेह इति । यस्य नुरस्य गेहे यदा सहसा उद-
 रस्य कुम्भी उदकुम्भी उदकस्य उदगादेश कुम्भी पुच्छील्लिजं जलकलशस्तस्य भगो भवति ।
 ॥ पुनरल्लिजराणां मणिकानामात्री श्रेणि ऊर्ध्वमेवैकोपरि न्यस्तमणिकश्रेणिः 'कुतरवेड' इति
 नापा तस्या भगो भवति तदा स गृही त्रमरान्नुड्वाद्रूपाज्जातमपास्क्रोपं भयमेति प्राप्नोति ।
 मयवा मथनमाडभगो मथन्या भगो भवति तदा जीवस्वहानिर्नरस्य द्रव्यस्य च हानिर्भवति ॥ १२ ॥

भोगी कपोतवल्लिमुग्वकमैथुनं वा यः पश्यंतीदृश-

दर्द्धविमध्य एति । शार्दूलसंगमवराहकसंगमं स
गोपत्यपत्यनगरीतनिवासमाशु ॥ १३ ॥

“अथ कपोतादिमैथुनदर्शने दोषमाह—भोगी इति । यो भोगी पुरुषोऽङ्गीत्यपि पाठः ।
कपोतः खलिमुक् काकः प्रतीतः एषां मैथुनं पश्यति । वा पुनः शादूलसंगमो व्याघ्रमैथुनं
वराहकसंगमः सूकरमैथुनं एतयोः समाहारस्तत् पश्यति स पुरुष आशु शीघ्रं गवां किरणानां
पतिः सूयस्तस्यापत्यं यमस्तस्य नगरी संयमनी तस्यां इतः प्राप्तो निवासो येन स यमनगरी-
निवासिलोकस्तं अथवा इतः प्राप्तश्चासौ निवासो निलयस्तमेति मृत्युं प्राप्नोतीत्यर्थः । किय-
त्कालेनेहुशरद्वेविमध्ये चांद्रवर्षाद्धर्मध्ये पण्मासमध्ये । वराहको मयूरः । एतयोर्मैथुनदि-
त्यप्यर्थो विभाव्यते ॥ १३ ॥

स्यादेकदृष्टसुसलिकासरयोरगाणां पातस्तदूर्ध्वचरतां
यदि यस्य मुंडे । तस्यामयाप्तिरतिदुष्कवती तदा-
तत्स्पर्शोऽपि वा भवति देहभृतो रुज्ज्जो ॥ १४ ॥

अथ मूर्ध्नि स्थितकाकादिदोषमाह—स्यादेकोति । यदि यस्य नरस्य मुंढे मन्त्रे
एकद्वयं काकः मुसलिका पक्षी सरतः कृकलासः उरगः सर्प एषां द्वेष्टे एषां पातः स्यात् ।
निभूतानामेषां उर्ध्वं चरतामूर्ध्वं गच्छतां तदा तस्य नरस्य आमयाप्तिः रोगमाप्तिर्भवति ।
निभूता आमयाप्तिः । अतिदुष्पवती दृष्टं काकगतिं वर्ताति दुष्कां दुःखं तदस्यास्तीति
गाददुःखयुक्ता अतिदुःखवतीत्यपि पाठः । वा पुनरतत्पक्षोऽपि तेषां काकादीनां स्पर्शानमपि
देहभूतो मनुष्यरोगो रज्जे रोगाय भवति । रज्जं तस्यै रज्जे इति रज्जना इति शब्दप्रवेशः ।
पातः । 'यन्मूर्ध्नि काको निवसत्यवस्मान् स पानि नाशं परमापन्नं वा । योपिच्छिरस्थोऽव-
पुणं कुंभस्थिते द्विके स्याद्वनमर्गनाम । भिजादपटं चेतनयस्य मृत्यु रत्नस्य लब्धिर्पदि हन्ति
चंद्रं' इति ॥ आरुह्य कायेन शिष्टप्रदेशमुत्पत्य गानि मनिमूर्धंशायी । नरस्य नाशाय
स यावत्तस्य प्रयानि चेद्वाभरस्तदानीं ॥ १ ॥ मूर्ध्नेत्यङ्गमाच्छाद्ये यद्विषये पतत्यम-
शीघ्रमुपैति पीडा । यस्यायं यं यन्निताशिरम्यं पतत्यमावप्यतिष्ठन्मोनि ॥ २ ॥ इति
संहितायां ॥ १४॥

गर्जेद्यदांधुस्मरायतनस्थली वा श्रोतोऽपि तापमति-
वेदनमंधुकर्ता ॥ नाशं तदा सविधमेति च वासभंगं
स्थानेयमप्यादितसंहतिकोपहेतुम् ॥ १५ ॥

१. अथ वृषादिगमने रोपमाह—गर्जोदिति । यदायुः वृषाज्जायतममयती देवतूरः
मिता खोमे नदी अपि गर्जेत्तदापुत्रतां शक्यति पाठः । वृषमार्गो अग्निरोऽनं नापमिति

प्राप्नोति च पुनर्नाशमेति सविधं समीपवर्तिनं वासभगं चेति । स्थाने भवं स्थानेयं निवास-
स्थानमपि अहितसहतिकोपहेतु रिपुसमूहकोपकारणमेति । खोतो निर्झरिणी इति हेम ॥ १५ ॥

घनरसनिधिचीराकंपने देशभंगो भवति चपलमुल्का-
पातदिग्दाहयोश्च ॥ अमितकलहमन्दे कालगे ग-
र्जिते वा वननिधिरसनायौ याति शत्रूत्थदोषम् ॥ १६ ॥

अथ मालिनीवृत्तेन भुक्पनादिदोषमाह—घनेति । घनरसा जलानि तेषा निधि समुद्र
स एव शीवर वस्त्र यस्या सा भुमिस्तस्या कंपने भवपने पुनरुल्कापातदिग्दाहयोरु-
ल्कापाते दिग्दाहे च सति चपल शीघ्रं देशभंगो भवति । उल्का पञ्चविधा उल्का १
धिष्ण्या २ ऽशानि ३ विद्युत् ४ तारा इति ॥ उल्कापक्षेण फल तद्गच्छिष्याशनिभिस्त्रिभि पक्षे ॥
विद्युदहोमि पद्मभिस्तद्वत्ताराविपाचयति ॥ १ आसा लक्षण सहितातो ज्ञेयं । दिशा दाह
पीतोऽग्निवर्णोऽस्त्रश्च नेष्ट सहितात फल ज्ञेय हेमवर्ण शुभ इति । वा पुनरकाल्ये प्रावृ-
द्धवर्जितेऽब्दे मेघे सति वनाना जलाना निधि समुद्र स एव रसना मेखला यस्या सा
भुमिस्तस्या अर्थ स्वाभी भूषति शत्रूत्थदोष रिपुसन्नातदोष याति प्राप्नोति । किंविशिष्ट
शत्रूत्थदोष । अमितकलहममितो भूरि कलहो राटिर्यस्मिस्तदिति । ‘वन घनरसो यादो
निवासोऽमृत’ इति हेम ॥ १६ ॥

भवति मुकुरनाशो हानये त्योजसो वा प्रहरणपरिभंगः
संगरे भंगलब्धौ ॥ अवनिपतिस्कस्मादातपत्रस्य भंगे
मरणमिह वरूथिन्यत्ययं चेति केतोः ॥ १७ ॥

अथ दर्पणाद्विनाशे दोषमाह—भवतीति । हि निश्चित मुकुरनाशो दर्पणविनाशयि-
तुरोजसो बलस्य हानये नाशाय भवति वा पुन प्रहरणपरिभंगोऽस्त्रभग संगरे सम्रामे
भंगलब्धौ पराजयप्राप्तये भवति । च पुनरकस्मादातपत्रस्य छत्रस्य भंगे विनाशो सति
इह नगरेऽग्निपनिर्नृपो मरणमेति प्राप्नोति । पुन केतो पताकाया भगे सति वरूथिनी
सेना अत्यय क्षय प्राप्नोति । यत ‘शक्रध्वनेर्द्वीलस्तभट्टारप्रयातभगेषु । तद्वत्कपाटतोरण
वेतूना नरपतेर्मरणम्’ ॥ १७ ॥

जलदरसविवृद्धिं यात्यकाले स्रवंती यदि कुविभुरकस्मा-
त्प्रत्यनीकापदं च ॥ भवति जनरुज्जोऽभोऽवध्यकोष्ठः
सदैव कमलविहितखातो दृष्टकावर्तमध्यः ॥ १८ ॥

अथाकाले नदीपूरादां दोषमाह—जलदेति । यदि खनी नदी अजाने नद्यस्य मेगस्य
रसा जलानि तेषा विवृद्धि जन्मपूर यानि तदाकस्मान् कुविभुर्भूषति प्रत्यनीकापद शस्त्रान
निपद यानि प्राप्नोति । अपुन सदैव अममा जन्मेनाक्य कोष्ठो यस्य स सदा नद्यभूतकोष्ठ

एवविष कमलार्थं जलार्थं विहितं कृतं खातं विविशिष्टं कमलविहितखातं । दृष्टं कस्य नलस्य आवर्तो भ्रमो मध्ये यस्य स दृष्टवार्तमध्यं । कोऽर्थः । देवसातादौ जलभ्रमणं भवति तदा जनरुजे लोमरोगाय स्यात् । 'आवर्तं पयसा भ्रमः' इति । 'क्षीरं पुष्करमेवपुष्पकमलान्यापः पयः पाप्वसी' इति हैमः ॥ १८ ॥

त्रमरममरमूर्तेर्हति भंगस्त्वकस्माद्भवति तदुप-
सर्पे सर्पणे लोकभूतेः ॥ अचरणशरणानामार्तये
श्रोत्रियाणां वसुवितरणमेधानां च देवाश्रुपातः ॥ १९ ॥

अथ प्रतिभाभगादौ दोषमाह—त्रमरोति । अमरमूर्तेः प्रतिबिम्बस्य भगोऽङ्गरमान्त्रमरं नृदेव राजानं हति । पुनस्तदुपसर्पे तस्या मूर्तेश्चलने सति लोकभूतेर्जनश्रियं सर्पणं गमनं हानिर्भवति । चपुनर्देवाश्रुपातो देवमूर्तिनेत्रात् स्रवदश्रुजलमार्तये पीडायै भवति । केषां अदृष्ट्यास्तस्य चरणभेजं शरणं रक्षको येषां तेषां विष्णुचरणभक्तानां वैष्णवनामित्यर्थः । पुनः श्रोत्रियाणां वेदपाठकानां पुनः वसुवितरणे घनदाने मेधा बुद्धियेषां ते तेषां दातृणां 'शरणं रक्षणे मेहे वधरक्षकयोरपि' इति हैमः । यतः प्रतिभावेष्टनं । अनिमित्तचलनभगस्त्वेदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि । लिंगार्चयितनाना नाशाय नरेन्द्रेदेशानां ॥ १९ ॥ मुष्वा देवविकारं शुचिपुरोधास्त्रयहोषितं स्नानं । स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत् प्रतिभा ॥ २ ॥ इत्यादि सारं तायाः । इति भौमोपातां विशेषतो ग्रंथातरादवसेया ॥ १९ ॥

वियति यदि स्वरांशोदृश्यते विंशत्युगममुदितमर-
मिलेशो जायते मण्डलेऽन्यः ॥ निजपरिवृटनाशादिदु-
र्विचित्र्यं वा सति निजनरपाले तत्र राजा तदान्यः ॥ २० ॥

अथ दिव्योत्पातेषु प्रथमं रविचन्द्रयोर्मन्त्रिर्विचित्र्यदोषमाह—वियतीति । यदि वियति गगने स्वरांशो सूर्यस्य विंशत्युगमं विचित्र्यमुदितं प्राप्नोदयं दृश्यते तदा राज्ञि मन्त्रिणं देशे निजपरिवृटनाशात् स्वस्वामिनाशतोऽन्योऽपर इलेशो भूमौशो राजा जायते । वा पुनः रिदुर्विचित्र्यं व्योम्नि दृश्यते तदा निजनरपाले मति तत्र देशेऽन्ये राजा भवति ॥ २० ॥

नभसि समरकाले सेट्योरेति राशिः प्रतिभयमनु
यस्तद्राशिभागस्थदेशाः ॥ गजरथहयहेपाकीर्णकौतूहले-
भ्यः परजनपदपेभ्यो याति संग्राममाशु ॥ २१ ॥

अथ ग्रहयुद्धदोषमाह—नभसीति । यदा नभसि व्योम्नि सेट्योर्मिहयो राशिः समरकाले युद्धमभ्यसेति प्राप्नोति तदाऽस्तु पश्चात् यः राशिभागनवाशाग्नेषु स्थिता ये देशाः राशिर्गो नवभागो वृमेचक्रे यत्र भगो देवा स्थितस्तेषां न य ये जनपदाः सेट्युनि

तराशौ स्थितास्ते देशा आशु शीघ्रं प्रतिभयं भयानकं संग्रामयन्ति । इणो रूपं प्राप्नुवन्ति ।
किम्यः । जनपदा देशा जना वा तान् पातन्ति । जनपदेषां परे च ते जनपदेष्वं शत्रुभू-
पास्तेभ्यः । किमृतेभ्य एभ्यो गजरथहयहेपाभिराकीर्णं कौतूहलं एषां तेभ्य इति ॥ २१ ॥

गदितगगनमागद्गगनाभेदयोगेऽविरलगदकृता-
तिर्णयते लोकशोकः ॥ जलदपटलगमैरावती-
दीप्तिपाते व्रजति दस्युकाले लोकपालात्मजा हि ॥ २२ ॥

अथ नक्षत्रभेदयुतो दोषमाह—गदितोति । गदितः प्रोक्तश्चासौ गगनमागद्गगनयोर्न-
क्षत्रयोर्भेदयोगश्च तस्मिन् नक्षत्रभेदयुतो सत्यां लोकशोको जनानां खेद एव ते वृद्धि-
प्राप्नोति । किमृते लोकशोकः । अविरला निविडगदेन रोगेण कृता आतिः पीडा यस्मिन्
सः । वा पुनर्हि निश्चित अकालं जलदपटलगमान्मववटामध्यादेरावतीदीप्तिपाते विद्युत्तजःपाते
पाते प्रजा लोको लोकपालाद्वृषादरं भयं व्रजति प्राप्नोति । तदिदेरावतीविद्युदिति हेमः ।
भ्रमोत्तरार्द्धे संलग्नत्वाद्गगनोत्पातः प्रोक्तः ॥ २२ ॥

गवि हयकुमितांशे १ । १७ यस्य याम्यः पृषक्ते द्रुहिणम-
शकटं साङ्गाशयुग्माधिकोऽसौ ॥ भवति भुवनभीतिं व्यो-
मगोऽपीति भित्वा मृजति विधुयमारा लोकनाशं मृजन्ति ॥ २३ ॥

अथ दिव्योत्पत्तिः रोहिणीशकटवेधमाह—गवीति । वृषराशौ हयकुमितांशे सप्तदशमि-
तेश्चे गते सति १ । १७ यस्य ग्रहस्थ याम्यो दक्षिणगतः पृषक्ते बाणः साङ्गाशयुग्मा-
धिकोऽस्ति शकटसहितं साङ्गायाधिको भवति । तदासौ व्योमगो ग्रहो द्रुहिणमं व्रह्मणा भिन्नं
रोहिणी तस्य शकटं भित्त्वा भुवनभीतिं मृजति । अपि पुनरिति पूर्वोक्तबाणवक्तव्यतायां
१२७ ॥ सत्यां विधुश्चन्द्रो यमः शनिरारो भौमश्चेत् लोकनाशं मृजन्ति बाणे पृषक्तेविशिखी
इति हेमः । यतः 'रोहिणीशकटमर्कनन्दनो' यदि भिनत्ति रुविरोऽथवा शिखी । किंवदामि
मन्त्रिणसागरे जगदशेषमुपयाति संलयम् ॥ २३ ॥

व्रजति दिवि शिखी यद्युद्रमं देवयोगादविरलमनुपु-
च्छाशागता देशभागाः ॥ किल कलकलमन्य यांति
नश्यन्ति देशा जलदविहितपीडानेकसस्योनपीडाः ॥ २४ ॥

अथ केतुवैकृतमाह—व्रजतीति । किलेति सत्यं यदि देवयोगादिवि व्योमि शिखी
केतुवैकृतमपुदं व्रजति अनु पश्चात्तदा तत्पुच्छाशागता तस्य केतोः पुच्छदिग्गता देशा
नश्यन्ति ध्वं गच्छन्ति अन्ये देशा अविरलं गाढं कलकलं कोलाहलं यांति प्राप्नुवन्ति । किमृता
देशाः । जलदेन विहिता कृता पीडा तथाऽनेकसस्येरूनं हीनपीडं स्थानं येयुते । यतः 'इदमेव'

यावन्ति दिनानि केतुस्तत्तुल्यमासान् फलमस्य वाच्यं । वर्षाणि मासैरफलोदयोऽसौ न्हस्वोऽ-
तिमूर्खोऽधिरकालदृष्टः ॥ २४ ॥

विधुविधुरुस्नेत्राव्याधयोगोऽन्तरिक्षे भवति भुवनपीठे
ब्राह्मकल्पांतहेतुः ॥ ध्रुवहरिपदरुंधत्यंशुमात्रीक्षणे यो
न भवति तदभिज्ञोच्चारमायाति सोऽस्म ॥ २५ ॥

अथ चन्द्रलब्धकनक्षत्रयोयोगे दोषमाह—विधिवति । अंतरिक्षे ज्योति विधुश्चन्द्रः विधुरु-
स्नेत्रा चंद्रमृगाक्षी नक्षत्रमित्यर्थः । तदेव व्याधः यंत्रराजे लुब्धकसंज्ञानक्षत्रं प्रोक्तं तयोश्च-
न्द्रव्याधनक्षत्रयोयोगो भुवनपीठे ब्राह्मकल्पांतहेतुः संसारप्रलयकारण भवति । पुनर्यदा ध्रुव
उत्तानपादनः हरिपदो विष्णुपदानि अरुंधती अक्षमाला अंशुमाता सूर्यमाता आसां
द्वंद्वे आसामीक्षणे विलोकने यो नरोऽभिज्ञो ज्ञाना न भवति तदा स पुरुषोऽंशं शीघ्रमन्तारं
कालमायाति कालो जगद्भक्त इत्युक्तत्वात् । यतः ‘ अरुंधती ध्रुवं वैव विष्णोस्त्रीणि पदानि
च । आयुर्होना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमंडलम् ’ ॥ २५ ॥

न दृश्यते येन विभा नरच्छविर्यदैति मृत्योर्लपनं च सत्वरं ॥
स वै भ्रुवर्तगतविष्णुपत्रयघोणारसंज्ञाग्रविलोकनं तथा ॥ २६ ॥

अथ छायापुरुषादिवैततमाह—न दृश्यते इति । यदा येन नरेण नरच्छविः पुरुष-
च्छाया विभाविशेषशोभायुक्ता न दृश्यते तदा वै निश्चितं स पुरुषः सुत्वरं मृत्योर्वमस्य
लपनं मुक्तमेति मरणं प्राप्नोति । तथैव भ्रुवर्तगतं विष्णुपत्रय घोणाग्रं नासिकाग्रं रसनाग्रं
निष्ठाग्रमेर्षां विलोकनं वर्तव्यं यदा न दृश्यते तदा मरणं । यतः ‘ चतुर्ष्वर्षयः पुरुषं
यंत्रं वायुपुराणतं । फलमयित्वापरि न्यमेत्यादत्तच्छीर्षमधिषु ॥ १ ॥ सूर्योदयक्षणे सूर्यं
पृष्ठे दृष्ट्वा ततः सुधी । स्ववरायुर्विनिश्चेतु निमज्ज्याया विशेषयेत् ॥ २ ॥ पूर्णच्छायां पश्ये-
त्तदा तदा वर्षं न पंचना । वर्षाभावे तु पंचत्वं वर्षं त्र्यंशदशभिर्भवेत् ॥ ३ ॥ एतां पुरुषींशकषे-
शार्धनासाश्रये क्रमान् । दशाष्टसप्तषण्ण्यैरवर्षैर्मरणं दिशेत् ॥ ४ ॥ पणमासान् त्रिषते
नाशे शिरसश्चिरुत्तराय वा ॥ ग्रीवानाशे तु मामेनं दशादशे च हस्तये ॥ ५ ॥ मांस्त्रे दृश्ये
मृत्युर्दिशे समभिर्भवेत् । यदि छायाह्वय पर्येयमपार्धं तदा मनेत् ॥ ६ ॥ इति यंत्र-
प्रयोगेण छायापुराणे ज्ञेय ॥ प्रसारानरेण विद्यया वि छायापुरुष इति योगशास्त्रे ॥ रोहिणी-
शशमृच्छम महापणमरज्ञे । ध्रुवं च न यदा पश्येद्वैर्यं स्यात्तदा मृति ॥ १ ॥ अथवा ।
अरुंधतीमित्यादि ॥ अरुंधती मंशजिह्वा ध्रुवी नामाग्रमुत्पद्यते । नाग विष्णुपद-
प्रोक्तं ध्रुवी स्थान्मातृमंडलं ॥ १ ॥ इति विद्या योगशास्त्र । भ्रुवर्तगतमित्यत्र द्वयोर्गोदे हस्ते हस्ते
यवरत्नमित्यस्य हेमचन्द्रस्य पंचमोऽव्याख्यानः । उन्माराग्ने वकारव्ययनागपः स्यन्तौ
पुनर्गन्तमिति सिद्धं ॥ उक्तं च । रत्नं श्वेतवर्णं वै हारि अत्र च वंशिनः ॥ इति अत्र मनुष्य-
प्रपञ्चवर्णने ॥ १ ॥ इति हेमद्रुणाश्रये ॥ २६ ॥

यदा ससभ्यः सहसाऽऽहिताग्नेरत्ता तदा शाम्यति गार्हपत्यः ।

पत्न्या भवेच्चांगभृतामपि द्राग्दुःस्वप्नमुत्पातहितं विर्चित्यम् ॥२७॥

अथोपजात्या यज्ञात्प्रागग्न्यादिवैकृतमाह—यदेति । यदा गार्हपत्यस्तृतीयोऽग्निः ससभ्यः सम्यसंज्ञचतुर्थसाहितः शाम्यति निर्वाणं गच्छति तदा आहिताग्नेरग्निहोत्रिणः पत्न्याः स्त्रियाः सहसाऽत्ता विनाशः स्यात् । च पुनः दुःस्वप्नमपि द्राक् सत्त्वरमंगभृतां प्राणिनामुत्पातहितं दोषकरं विर्चित्य ज्ञेयमिति । याज्ञिकाः पंचाग्रयः स्मृताः । एको दक्षिणोऽग्निः अर्द्धचंद्राकारोऽयं दक्षिणदिक्स्थितः । द्वितीय आहवनीयश्चतुरस्रोऽयं । तृतीयो गार्हपत्यो वर्तुलाकारोऽयं । चतुर्थः सम्यः निष्कर्मरुं द्वौ वर्तुलौ ४ पंचम आवसथ्य ९ इति ॥ स्वप्ने श्वमश्यमाणश्च गृध्र-काकनिशाचैः ॥ ऊह्यमानं खरोष्ट्राद्यैर्यदा पश्येत्तदा मृतिः ॥ १ ॥ रश्मिभिर्मुक्तमादित्यं रश्मियुक्तं हविर्भुजं ॥ यदा पश्येद्विपद्येत तदेकादशमासतः ॥ २ ॥ वृक्षाग्रे कुत्रचित्पश्येद्गंधर्वनगरं यदि । पश्येत्त्रेताम् पिशाचान् वा दशमासेन तन्मृतिः ॥ ३ ॥ इत्यादियोगशास्त्रे होमाचार्याः ॥ २७ ॥

जनो यदैत्पद्भुतसंभवं स व्रतोपयामाध्वरकर्मपूर्वं ॥

आरभ्य कर्मेति तदैति हास्यं भुक्त्वानु तद्भुक्तिमुपास्यमेतत् ॥२८॥

अथ प्रारब्धकार्ये उत्पातसंभवहेयतामाह—जन इति । यदा जनोऽद्भुतसंभवमुत्पातोद्गममेति प्राप्नोति किं कृत्वा व्रतोपयामाध्वरकर्मपूर्वं कर्म आरभ्य तदा स जनो हास्यमेति प्राप्नोति । ति कारणान्तद्भुक्तिं भुक्त्वा तस्योत्पातस्य भोगनिजकालपर्यंतं विहाय अनु पश्चान् एतन् कर्म उपास्यं सवनीयमिति ॥ २८ ॥

अन्ये रथोत्पातादिनेऽपि कार्यं न मंगलं स्वागमभेदमत्रैः ॥

उक्तौ पथीस्नानविधेश्च होमादुत्सर्गतः शान्तिमुपैति लोकः ॥ २९ ॥

अथोपसंहारेण शान्तिमाह—अन्यैरिति । अथ अन्यैरपि पुरुषैरुत्पानदिने मंगलं न वर्तते । अथोत्पातः, उत्सर्गतः, स्वागमभेदः, न, शान्तिमुपैति, कस्मात्, उक्तौ पथीस्नानविधेश्च होमाच्च स्वागमभेदमत्रैर्निनशास्त्राभेदमत्रैश्चेति ॥ २९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विदाभरणे उत्पाताध्यायः षष्ठः ॥ ६ ॥

इत्याद्य उत्पाता ज्ञेयाः ॥ निनर्तुप्रमवा उत्पातास्तु न दोषाय स्युः । यनः ॥ वज्राशनिमहो-कंपसंध्यानिर्वातनि स्वना । परिवेपरजोवूमरक्ताकारस्तमनोदयाः ॥ १ ॥ द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहवहुपु-ष्पफलोद्गमाः । गोपसिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाघवे ॥ २ ॥ तारोल्कापातकलुषं कपिलाकैंदुमंडलं । अनग्निज्वलनहस्तोटधूमरेण्वनिलाहतं ॥ ३ ॥ रक्तपद्मारुणं सांध्यं नमः क्षुब्धार्णवोपमं । सरितां चानुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥ ४ ॥ शक्रायुषपरीवेषविलुब्धश्चाविरोदणं । कंपोद्धर्तन-वैकृत्यं रसनं दरणं सितिः ॥ ५ ॥ सरोनद्युदपानानां गृह्यन्वर्नरणप्लवाः । सरगं चाद्रिगेहानां

वर्षासु न भयावहं ॥ ६ ॥ दिव्यस्त्रीभूतगंधर्वविमानाद्भुतदर्शनं । ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं
 च दिवांबरे ॥ ७ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु । सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि
 स्मृताः ॥ ८ ॥ शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणां । रसोयस्यादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥ ९ ॥
 दिशो धूमांधकाराश्च सनमोवनपर्वताः । उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥ १० ॥
 हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनं । कृष्णांजनाभमाकाशं तारोल्कापातपिंजरम् ॥ ११ ॥
 चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोजाश्वमृगपक्षिषु । पत्रांकुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥ १२ ॥
 इति स्वर्तजाः शुभाः ॥ उन्मत्तानां च या गाथा शिशूनां यच्च भाषितं । स्त्रियो यच्च प्रभाषिते
 तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥ १३ ॥ पूर्वं चरति देवेषु पश्चाद्व्रजति मानुषान् । नाचोदिता वाण
 वदति सत्या हेया सरस्वती ॥ १४ ॥

इति धार्पणिमीयगच्छाधिराजमद्यरकपुरदरश्रीमहिमाप्रमसूरीश्वरचरणसरोरुहचचरीकायमान
 शिष्यभावरत्नविचिताया श्रीकविकालिदासकृतज्योतिर्विदामरणस्य
 सुखबोधिवायामुत्पाताध्याय षष्ठः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ संस्कारप्रकरणम् । ७

अथाहमाधानविधानतो मतेर्लपामि धारामरभूमिभृद्विशां ॥

स्वकीयकर्मोदितधर्मकीर्तनैर्मनीषिणां संस्कृतिकालनिर्णयान् ॥ १ ॥

अथोत्पातज्ञानानेनतरं पुरुषः शुभाशुभं समीक्ष्य योग्यव्यवहारमार्गं ब्रजति व्यवहारस्तु गर्भ
 शानादारभ्य भवत्यतो वंशस्थेन गर्भाधानादिसंस्काराध्यायसंधानमाह—अथेति ॥ अथ मार
 १८ आध्यायविधानतो गर्भाधानविधित आरभ्य संस्कृतिकालनिर्णयान् संस्कारसमयनिश्चयार्थं ॥
 'कपयामि' । कर्मनीषिणां बुद्धिमत्ता धारामरभूमिभृद्विशां विनशात्रिवरैरयानां मते कर्मवृत्तेषु
 कीयकर्मेषु उक्तं उक्ता कविना वा ये वर्ण्येतेषां कीर्तनं संकथनं येषु ते ते स्वकीय
 दितधर्मकीर्तनैः ॥ १ ॥

इयादजोदर्शनकाले नरो वशामहःपंचकमर्कसत्वनं ॥

वेहाय युग्मासु विभावरीषि विद्या योग... इयादिति । सुदायादकलातिक्रमवान् ॥ २ ॥
 गोपजात्या गर्भाधानदोने यमसुदिनाहर्गमिं हारो... इयादिति । सुदायादकलातिक्रमवान्
 कलातिस्पृहायुक्ती नरो रवेर्दर्शनकालो ह ॥ ३ ॥

त्रिविष्टपारीज्यादिने प्रशस्तं दिने गुरोश्चांद्रमसायनस्य ॥

दाक्षायणीकांतदिने क्वचित्स्यादाधानदानं प्रथमं वशायां ॥ ३ ॥

अथ प्रथमाधानदाने वारानाह—त्रिविष्टपेति । वशाया स्त्रियां प्रथममाधानदानं प्रशस्तं शुभं स्यात्कस्मिन् त्रिविष्टपारीज्यादिने त्रिविष्टपस्य स्वर्गस्य आधारे आवेयोपचाराद्देवानामरयो देव्यास्तेषामीज्यः पूज्यः शुक्रस्तस्य दिने शुक्रवारे पुनर्गुरोर्दिने चांद्रमसायनस्य बुधस्य दिने क्वचिदाष्टायणीनां तारकाणां कांतः चंद्रस्तादिनेऽपि ॥ ३ ॥

धाराधरारूढतमीशदारा सकाशनाह्याभरणांत्यतारा ॥

सयातुभा सोमशुर्धादुवामा नाधानदाने हि वरा पुरंध्याः ॥ ४ ॥

अथाधानदाने वर्ज्यनक्षत्राण्याह—धाराधरेति । हि निश्चितं पुरंध्याः स्त्रियाः आधानदाने धाराधरारूढतमीशदारा धाराधरो मेघस्तमारूढ इन्द्रः 'संक्रंदनासंडलमेघवाहनाः' इति हेम-वचनात् ॥ तस्य तमीशदारा चंद्रकलत्रं ज्येष्ठा न वरा न श्रेष्ठा इत्यर्थः । किंभूता धाराधरारूढतमीशदारा को वायुरशनं भक्षणं यस्य स काशनोऽहिस्तस्य मं अश्लेषा अह्याभरणः सर्प-भूषणः शंभुरार्द्रा अंत्यतारा रेवती एताभिः सह वर्तमाना । पुनः किंभूता यातुनो र-क्षसो मं मूलं तेन सह वर्तते सयातुभा । पुनः किंभूता उग्राणि उग्रसंज्ञमानि शुचि-रग्निस्तार्येदुवामा कृत्तिका एताभिः सह वर्तते या सा सोमशुर्धादुवामा ज्येष्ठाश्लेषार्द्रा रेवतीमूल-मघापूर्वात्रयकृत्तिका एता नेष्टाः ॥ ४ ॥

पश्येत्तमिस्त्रेशवलं युवत्या निपेककर्मण्यणुशोणितायाः ॥

राशौ ससोमप्रमदोत्थत्रीजे शृंगारयोऽन्याहवभावभाजि ॥ ५ ॥

अथाधाने राशिचलमाह—पश्येदिति । निपेककर्मणि आधानदानविधौ र्पती युवत्या-स्तरुणस्त्रिया राशौ तमीशवलं चंद्रवलं पश्येत्समीक्षेत । किंभूताया युवत्या अणु स्तोत्रं शो-णितमृततृप्तन्नरुधिरं यस्याः सा तस्या अणुशोणितायाः रजोदर्शनाद्बहुदिवसे षोडशे दिने वाणु-शोणिता त्वी भवतीत्यर्थः ॥ किंभूते राशौ सोमप्रमदा नक्षत्राणि ताभ्य उत्पं बीजं वीर्यं तेन सह वर्तते ससोमप्रमदोत्थत्रीजे । पुनः किंभूते राशौ शृंगारयोनिः कंदर्पस्तस्याहवभावं संभ्रामभावं मनतीति शृंगारयोऽन्याहवभावभाक् तस्मिन् पुरुषराशौ इत्यर्थः ॥ ५ ॥

पर्वादिजश्राद्धदिनेषु भीरोर्भवत्यभद्राय निपेककर्म ॥

रिक्तासु भैम्यां भवतुल्यघसे पोष्णे सचंद्रे विवले निजाये ॥ ६ ॥

तथाष्टमी दृष्ट्युतिर्भघस्रजा वेला च संध्योर्दिनदोषयोर्बुधेः ॥

स्वमध्ययामद्वयकालचारिणी विगर्हिताधानविधौ विभावरी ॥ ७ ॥

अथाधानविधौ श्लोकद्वयेन पर्वादिनि निषेधयति—पर्वेति ॥ पर्वादिषु निषेककर्म गंधो-धानद्वयं भीरोः स्त्रिया अमद्राय दुःखाय भवति ॥ पर्व अमावास्यादि आदिनानां पितृणां

नृयोपितोर्जन्मदिनं वराननां न कामयेदर्भकगर्भपुष्टये ॥
नरोदये चोदयगौरसाधुभिर्ब्रह्मांशगे तूदयभागनेतरि ॥ ८ ॥

तनुल्लभगते ॥ ८ ॥
 धिलभतो वारिवृषोपलब्धिगे. सोम्यैरसौम्यैररिविक्रमायगे ॥

विधोः ससौम्ये च शुभाय चोद्गमे व्रजेदपत्याय नरो नितंविनीम्॥९

विधौ ससाम्य च शुभाय चोद्दिष्टं प्रवृत्तं दत्तं । नरो निनविनीं स्त्रीं प्रजेःसगं कुर्यात्
अथाधानविधौ शुभलक्षणं दर्शयति—विलम्बति । नरो निनविनीं स्त्रीं प्रजेःसगं कुर्यात्
कर्म शुभायापत्त्याय शुभपुत्राय वै सौम्यग्रहं दत्त्वा विभूते सौम्यविग्रहस्तनुमवनतो
यानि चतुर्थं ४ वृषो नवमं ९ उवर्गं शुद्धिं पंचमं ५ 'मिश्राविष्टपत्र' इति हेम ॥
एषां ह्येते एषु गते पुनरसौम्यं सौम्यं विभूतेरसौम्यरां पष्ठं ६ विष्णुमृत्तीयं ३ आय
एकादशं ११ एषां ह्येते एते ॥ पुन कस्मिन् समाम्ये शुभग्रहमहितं विधौ चद्रे उद्दिष्टं
प्राप्नुते सति ॥ ९ ॥

काव्यारगुर्वशुमदिदुभास्करिज्ञलमपेदूष्णमरीचयः रुमात् ॥

काव्याखण्डशुभादुमास्कराक्षरान्तरं ॥ ११० ॥
 आधानमासात्तिलमासपालकाः पुष्पंत्यमी गर्भकला स्फुटद्वना ॥ ११० ॥
 अथ गर्भस्य दशमासानां पत्नीनाह—वाच्यति । किञ्चेति मत्स्य आधानमामादमी
 वाच्याया भ्रूणान् मासपात्रा मासभूमिनो गर्भकला शुक्रानि भृष्टं नयति । वायु शुक्र
 प्रपमाधानमामग्यामी १ एव आरो यौगे त्रिनायमामग्याना २ मूत्रनीयमामग्यामी ३ अ
 मृत्युश्रुतुर्गमामग्यामी ४ इति पचममाग्यामी ५ नागवग्यापत्य भूमिनि दानि

मृमासस्वामी ६ जो बुवः सप्तममासस्वामी ७ लग्नपति. आधानकाललग्नपतिर्गर्भाष्टममास-
स्वामी ८ इंदुनेवममासस्वामी ९ उष्णमरीचि सूर्यो दशममासस्वामी १० किंभूता गर्भकलाः
स्फुरन्धना. लसद्वर्धमानगर्भापिंडविशेषाः ॥ १० ॥

मासेश्वरे राजनि शक्तिशालिनि त्विष्टैर्ग्रहेष्टघने च साधुभिः ॥

नराख्यराशाबुदये लवानुगे वदन्ति तत्कर्मविधिं मनीषिणः ॥ ११ ॥

अथाधानविधाने मासेश्वरादिवलप्राह्यतामाह—मासेति । मनीषिणः पंडितास्तत्कर्मविधिं
गर्भाधानकार्यविधानं वदन्ति कथयन्ति कस्मिन् मासेश्वरे शक्तिशालिनि बलयुक्ते सति तु पुनः
राजनि चंद्रे शक्तिशालिनि सति पुनरिष्टैर्ग्रहेश्च पुन साधुभिः सौम्यग्रहेष्टघने विद्यो-
किततनुभवने सति पुनर्नराख्यराशौ मिथुनकन्यातुलाकुम्भघनु.पूर्वाब्दमकरोत्तरार्द्ध चैते नररा-
शयः लग्ने लग्नानुगे नराशगते सति ॥ इति गर्भाधानसंस्कारः प्रथमः ॥ ११ ॥

स्वजातिधर्मादृतमार्गतो वरं स्वकालगं पुंसवनं च कीर्तितं ॥

मासादिगर्भेऽगमितेऽष्टमेऽथवा सीमंतकर्म स्वकुलक्रमाद्वा ॥ १२ ॥

अथपुमवनभीमंतयोः नर्माह—स्वजातीति । आदिगर्भं बुधैः स्वकालगं पंचममासप्राप्तं
पुंसवनं पंचममासीसङ्गक प्रकीर्तितं पंचमे मासे विधेयमित्यर्थः ॥ किंभूत पुंसवनं स्वजातिधर्मा-
दृतमार्गतो निजजातिधर्मांगीकृतमार्गेण वर श्रेष्ठं । पुनरादिगर्भे बुधैः स्वकुलक्रमान् सीमंतकर्म
आग्रहणीकृत्यं प्रकीर्तितं कस्मिन् गमिते षष्ठेऽथवाऽष्टमे मासे ॥ १२ ॥

सर्वसहायोनिपतंगमंत्रिणां वाराः पुरंध्रीधृतगर्भसंस्कृतौ ॥

शस्ता विभद्रा हि विनष्टशीतभा श्वत्तुर्दशीपक्षतिपातवर्जिताः ॥ १३ ॥

अथैतयोर्वारशुद्धिमाह—सर्वमिति । पुरंध्रीधृतगर्भसंस्कृतौ स्त्रीधृतगर्भसंस्कारे पुंसवने
सीमंते चेत्यर्थः । सर्वसहा भूमिस्तस्या योनिर्जन्म यस्य स भौम पतंगः सूर्ये मन्त्री गुरुरेवा
द्वेष्टे एषा वाराः शस्ता शुभा प्रोक्ता । विंशता वारा विभद्रा विष्टिरहिता पुन किंभूता
वाराः विनष्टशीतभा नष्ट क्षयं गत शीतभो हिमाशुश्रूषे यस्या साध्याशती विगता नष्ट-
शीतभा येभ्यस्ते आमावासीरहिता इत्यर्थः । 'मा नष्टेऽनुकला कुह' इति हेमः ॥ पुनः किंभूता
वाराः श्वत्तुर्दशी पक्षतिः प्रतिपत् पातो व्यनीपात एभिर्जिताः ॥ १३ ॥

अधोक्षजादित्यपुरंदरार्चितक्रव्यादभार्यामग्मातृतारकाः ॥

प्रकीर्तिताः पुंसवने स्फुरत्कलाः सीमंतकर्मण्यपि कामदा बुधेः ॥ १४ ॥

अथनयोर्नक्षत्रशुद्धिमाह—अधोक्षजातिः । पुंसवने मीमन्कर्मण्यपि बुधैः रवोऽग्न्यादितारकाः सि-
द्धिदाः प्रकीर्तिताः । अधोक्षजा निष्पु श्रवण आदित्यो हग्न पुरंदरार्चिता गुरु पुष्य
क्रव्यादो रक्षो मूल भार्गो नाना नक्षत्रागमर्ग स्वामी पट्टो मृगशिरः अमरमाता पुनर्नक्षत्र इति ।
किंभूता एतास्तारा स्फुरत्कलाः अमृप्रविण्णाः । इति पुमवनसंस्कारे द्वितीयः ॥ १४ ॥

शक्तिर्विंशां शूद्रजनस्य सप्तमे सीमंतकृत्यं च जगाद मास्यलं ॥

पौष्णेऽपि तत्कर्म कुमारहारितो न मेनिरेऽन्ये श्रुतिधर्मदृष्टयः ॥१५॥

सीमते ऋषिमतमाह—शक्तिरिति । अलं निश्चितं शक्तिर्ऋषिर्वैश्यानां तु पुनः शूद्रविंशं शूद्रमनुष्याणां सीमंतकृत्यं सप्तमे मासि जगाद कथयामास ॥ 'विद्वज्ज्वेशे नृवैश्ययोः' इति हैमः । च पुनः कुमारहारीतः ऋषिः पौष्णेऽपि रेवत्यामपि तत्कर्म सीमंतकार्यं जगाद अन्ये श्रुतिधर्मदृष्टयो वेदधर्मद्वयारस्तत्कर्म न मेनिरे ॥ १५ ॥

खलेतरैर्व्यत्रहितांत्यभावगैर्हैरमित्रायसहोत्थगैः खलैः

त्रिकोणकेंद्रायगते पुरोधसि स्मृतं च सीमंतविधानमंगतः ॥ १६ ॥

अथ सीमंतविधाने लग्नशुद्धिमाह—खलेति । अंगतो लग्नाद्यत्रहितांत्यभावगैर्विगतता अत्ता सृत्पुनरष्टमः ८ अहितः षष्ठः ६ अंत्यो द्वादशः १२ मावा एभ्यस्ते व्यत्रहितांत्यभावगैः अष्टमषष्ठद्वादशभाववाजितैः खलेतरैः सौम्यग्रहैः च पुनरमित्रायसहोत्थगैः आमित्रः षष्ठः ६ आय एकादशः ११ सहोत्पस्तृतीयः ३ एतद्भावगतैः खलग्रहैः कृत्वा पुनस्त्रिकोणे नवमे पंचमे भवने केंद्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमभवने आये एकादशे भवने गते पुरोधसि गुरोः सति सीमंतविधानं स्मृतं धुधैरिति शेषः । इति सीमंतसंस्कारः स्तृतीयः ॥ १६ ॥

जन्यन्वथो दारकजन्मर्नाति वार्कैरभिन्नेऽहानि जातकर्म ॥

श्रावान्हि वा साधुदिनेशंदर्ध्यं नामान्तमाद्येऽपि दिने तदुक्तम् ॥१७॥

अथ जन्मवृत्त्यमाह—जन्यन्वति । अधानतर दारकजन्मर्नाति सुतजन्मप्राप्ते जन्यन्हि जन्मदिने तज्जातकर्म बालजन्मकार्यं नामात नामपर्यंतमुक्तं धुधैरिति शेषः ॥ वस्मिन् अर्के सूर्यैराभिन्ने द्वादशेऽहानि इत्यर्थः ॥ अथवा श्रावान्हि श्रवणं श्रावस्तदन्हि पुत्रजन्मश्रुतदिनेऽथवा साधुदिने सौम्यग्रहवारदिने वा अथवा आद्ये रविवारेऽथवा आद्ये जन्मदिने ॥ १७ ॥

खरोग्रसाधारणभान्यमेपु चिरायुपे नाम च जातकर्म ॥

शुभोदये कंटकगेऽथ सूनोर्धिष्ये गुरो वा खलु बोधने स्यात् ॥१८॥

अथ जातकर्मणि नक्षत्रादीन्याह—खरोग्रेति । खरमज्ञानि उग्रमंशानि मातारणमज्ञानक्षत्राणि विहाय अन्यमेपु इतरमेपु पुन शुभोदये शुभग्रमे कंटकगे वैद्वगंतं धिष्ये शुभं गुरो वा सति खलु निश्चितं सुतो वाऽऽस्तस्य जातकर्म चपुनर्चोरेण व्यवहारप्रवर्तकज्ञानं देवदत्त इत्यादि नाम स्यात् ॥ बोधनेऽत्र निमित्तापे सप्तमी ॥ कर्म चिरायुपे दीर्घजीविताय ॥ इति जन्मसंस्कारश्चतुर्थः ॥ १८ ॥

आजन्ममासांतमदुष्टवारे चोक्तेषु भेष्विदुबले शिशोर्भे ॥

केचिज्जर्णामविधानमेतत्प्रधानमृद्ववपद्यजाता ॥ १९ ॥

अथ नामविधानं मतांतरमाह—आजन्मेति । केचिन्मुनयः ऊरून्वा वेश्याः पद्याः शूद्राः
एषां जातौ सगोत्रे एतत् प्रधानं नामविधानं जगुः कथयामासुः । केषु आजन्ममासांतं जन्म-
मासमारभ्य उक्तेषु कथितनक्षत्रेषु पुनरदुष्टवारे पुनः शिशोर्बालस्येदुबले चंद्रबलयुक्ते मे
राशौ सति ॥ १९ ॥

षट्कर्मणो बाहुभुवोत्थवार्यैर्नामोदितं वर्णचतुष्टयाढ्यं ॥

सत्र्यक्षरं हारि विशस्त्रिवर्णं द्विवर्णवच्छौद्रमतोऽत्यजेऽन्यत् ॥ २० ॥

अथ विप्रादीनां नामविवेकतामाह—षट्कोति । आर्यैः षट्कर्मणो विप्रस्य बाहुभुवः
ध्रुवस्य वर्णचतुष्टयाढ्यं सत्र्यक्षरयुक्तं चतुरक्षरयुक्तं त्र्यक्षरयुक्तं वा नाम हारि मनोहरं उदितं
प्रोक्तं । एवं अथवा पुनः विशो वैश्यस्य त्र्यक्षरं पुनः शौद्रं नाम द्विवर्णवत् द्विवर्णयुक्तं
पुनरतोऽस्मादत्यजेऽन्यनामेति । विशेषस्तु ग्रंथांतरादवसेयम् ॥ २० ॥

स्थिरोदये चापघटज्ञभांशके युते च वा विष्म्यविदिद्रूपजितैः ॥

विलोकिते नाम निगद्यते शिशोरसद्ग्रहालोकनयोगवर्जिते ॥ २१ ॥

अथ नामकथिते लग्नशुद्धिमाह—स्थिरोदयइति । शिशोर्बालकस्य नाम निगद्यते
कथ्यते पित्रेति शेषः । कस्मिन् स्थिरलग्ने पुनश्चापो धनुराशिः घटस्तुजाराशिः इत्युबस्य
मे राशी कन्यामिथुने एषां राशीनामंशे । किंभूते स्थिरोदये नवांशके च विष्म्यः शुक्रः विद्रुबः
इंद्रपुनितो गुरुरेभिर्युतेऽथवाऽसद्ग्रहालोकनयोगवर्जिते दृष्टग्रहविलोकनयोगपरित्यक्ते ॥ २१ ॥

यस्यैद्रभं जन्मनि यातुधानभं जंतोरं वा हि भुजंगभं भवेत् ॥

गंडांतकं वा यमघंटतारकं यमालयं याति न संशयोऽत्र सः ॥ २२ ॥

अथ ज्येष्ठामूलजातापत्ये दृष्टफलमाह—यस्येति । यस्य जंतोः शिशोः जन्मनि इंद्रमं
ज्येष्ठापत्या यातुधानभं मूलं वा भुजंगभमश्लेषा वा गंडांतकं वा यमघंटतारकं भवेत् अं
नरो यमालयं मरणं याति एति अत्र संशयो नास्ति ॥ २२ ॥

नक्तं चरज्योतिरनंत्यपद्मं विनामकृत्यं प्रविधाय बालकं ॥

परित्यजेदाश्वथ हायनाष्टकं तदाननं वा न विलोकयेत्पिता ॥ २३ ॥

अथमूलं जातपुत्रे कथ्यमाह—नक्तमिति । पिता हायनाष्टकं यावत् बालकमाशु शीघ्रं
परित्यजेत् । किञ्च वा विगतं नाम यस्मात्तत् विनाम नामराहितं सूतिकर्म प्रविधाय कथंभूतं
नक्तं चरज्योतिर्मूलं तस्यानंत्यपद्मं चतुर्वचरणं विहायान्यत्रिकचरणानां वा पश्चांतरे पिता
तदाननं तस्य पुत्रस्य सुखं न विलोकयेत् ॥ २३ ॥

पितुः सवित्र्या विभवस्य चापदो मूलादिपादाः क्रमतस्तदग्रं यः ॥

भवंति नाशाय शिशोर्भुजंगभे प्रतपितेत्कलमंत्यपादतः ॥ २४ ॥

अथ मूले जातपुत्रे फलमाह—पितुरिति । मूलादिपादात् मूलप्रथमपादान् क्रमनः तद्द्वयो मूलचरणाः शिशोर्बालकस्य पित्रादिकानां विनाशाय भवति । कोऽर्थः । मूलप्रथमपादे जातशिशुः पितुर्नाशाय भवति ॥ द्वितीयपादनः शिशुः सवित्र्या मातुर्नाशाय भवति । तृतीयोऽध्विजः शिशुर्विभवस्य संपदो नाशाय चतुर्थोऽध्विजः शिशुरापदो नाशाय शुभाय भवतीत्यर्थः ॥ भुजंगभेऽश्लेषायामेतत्फलमंत्यपादतः प्रतीपं विपरीतं । कोऽर्थः । अश्लेषाया अंत्यपादे जातः शिशुः पितुर्नाशकः एवं तृतीयो मातुर्द्वितीयो घनस्य प्रथमपादः शुभाय इति ॥ २४ ॥

विडौजसो जन्मनि भस्य जंतोर्द्विजिह्वहाराफलवत् फलं स्यात् ॥

शतौषधीमज्जनहोमदानात्किलैतदुक्ताखिलदोषशान्तिः ॥ २५ ॥

अथ ज्येष्ठाफलमाह—विडौजेति । जन्मनि विडौजस इन्द्रस्य तक्षत्रस्य ज्येष्ठायाः फलं द्विजिह्वः सर्पस्तस्य ताराऽश्लेषा तद्वत्फलं स्यात् ॥ कस्य जंतोर्नरस्य किलेति तदुक्ताखिलदोषशान्तिः तेषु मूलादिनक्षत्रेषु उक्ताऽखिला दोषास्तेषां शान्तिरूपशमनं स्यात् । कस्मात् शतौषधीमज्जनहोमदानात् स्पष्टमिति ॥ २५ ॥

प्रतिष्ठिताख्यस्य शिशोः शुभान्हि त्रयीतनोऽन्वयथा विरिक्ते ॥

भवेन्नवांदोलकपंजरस्य निबंधनं मांघनिमीलनाय ॥ २६ ॥

अथ पालणकबंधनमुहूर्तमाह—प्रतिष्ठितेति ॥ शिशोर्बालकस्य मांघनिमीलनाय रोगनाशाय नवांदोलकपंजरस्य निबंधनं भवेत् । कस्मिन् शुभान्हि शुभदिनेऽपि त्रयीतनो सूर्यस्यान्हि दिनं विरिक्ते रिक्तातिथिर्जने किमुतस्य शिशोः प्रतिष्ठितान्वयस्य प्रतिष्ठिता स्यापिना आख्या नाम यस्य स तस्य ॥ २६ ॥

सदागतित्वाष्ट्रद्वितीयभेषु ध्रुवेषु चांदोलनिबंध उक्तः ॥

सदेवदोषज्ञहरीनभेषु व्युग्रोदयापर्वविपातकालः ॥ २७ ॥

अपांदोलकबंधने नक्षत्रशुद्धिमाह—मंदानि । आंदोलनिबंध उक्तः ध्रुवशिनि शेषः । येषु मंदानि तिर्थायुः स्यातीत्यष्टा पित्रादिनि पुनर्वसुः दंड्यः पुष्यः एषु नक्षत्रेषु पुनर्वसुषु ध्रुवमज्जनक्षत्रेषु कर्मक्षत्रेषु सदेवदोषज्ञहरीनभेषु देवदोषज्ञौ देवदोषाभिवर्जौ हरिर्बिष्णुः श्रवणः इन्द्रः सूर्यो हस्त एभि मरु वर्तते तानि तेषु किमुत आदोऽनिबंधः व्युग्रोदयापर्वविपातकालः विगता उग्रार्द्र ईश्वरान् उग्रो जन्म यस्याः सा विष्टिः पक्षाणि विधाना व्यनीपातादिरने यामात्म विष्टि व्यनीपातपारहित इत्यर्थः ॥ 'ध्रुवोऽग्रो ध्रुवोऽग्रो च सोममर्गो' इति ह्येवः ॥ २७ ॥

विचितयेदोलकपेटकेऽस्मिन्ननुदिशो हंसकगवृत्तज्ञानं ॥

दिशो हरेर्मान्यय पंच पंच मध्ये ततः सप्त बुधः क्रमेण ॥ २८ ॥

अथांदोलके नक्षत्रस्यापनमाह—विंचितयेदिति ॥ बुधः पंडितो हंसकरावृत्तर्हातः सूर्यनक्षत्रा-
क्रमेण हरेरिंद्रस्य दिशः पूर्वतः पंच पंच मानि अस्मिन् दोलकपेटके ॥ चतुर्दिशो विंचितये-
त्ततः पुनर्मध्ये सप्तमानि स्थापयेत् ॥ २८ ॥*

इंद्राशमृक्षं शयने शुभं भवेद्यमाशमामाय कपाशमामदं ॥

यज्ञाशमत्रेति सुखाय भं शिशोरंतर्गतं तस्य च दोलबंधने ॥ २९ ॥

अथ पूर्वादिस्थमफलमाह—इंद्रेति ॥ इति पूर्वोक्तप्रकारेण दोलकबंधने दोलकनक्षत्रस्यापने
स्थितमृक्षं वर्तमानं च नक्षत्रमिंद्राशं पूर्वदिग्गतं भवति तदा तस्य शिशोः शुभं भवेत् । एवं
यदि यमाशं दक्षिणं तदामाय रोगाय । यदि कं जलं पातीति कंषो वरुणस्तमश्नुते इति
तदाशं पश्चिमगतं तदाऽऽमदं रोगदं । यदा यज्ञाशमुत्तरदिग्गतं तदाऽत्रे मरणाय यदि अंत-
र्गतं पेटकमध्यगतं तदा सुखाय भं भवेदिति ॥ २९ ॥

दोलेन पोतश्चरभेतरोदये वनाश्वयं११मा७रांग६वियं०त्रिकोणैः ॥

सौम्यैरसौम्यैराहितायवीर्यगैश्चांदोलितः काममियादलं नृपः ॥ ३० ॥

अथ दोलके लग्नशुद्धिमाह—दोलेनेति ॥ पोतो नृपः बालो राजा च दोलेन पालनके-
रांदोलितो किंचन क्रियाकरणात् काममभीष्टमियात् प्राप्नुयान् ॥ ततो वसंतादौ शुभमुहूर्ते
दोलखेलनमपि नृपस्य सुखाय अत एतदपि संलग्नं प्रोक्तमलमित्यर्थः । कैश्चरभेतरोदये
स्थिरलग्ने सौम्यैर्ग्रहैः कृत्वा । किंविशिष्टे वनं जलं चतुर्थं ४ आय एकादशं ११ मारः
हर्षं सप्तमं ७ अंगं षष्ठं ६ वियद् गगनं दशमं १० कोणं नवपंचमं ९।९ एषु गतैः
शुनरसौम्यैः खलैः किंविशिष्टैरसौम्यैः अहितं षष्ठं ६ आय एकादशं ११ वीर्यं तृतीयं ३
॥ गतैरित्यर्थः ॥ ३० ॥

निशांततो निष्क्रमणं प्रवीणेः मूनोरथो मासि मिते चतुर्भिः ॥

प्रकीर्तितं सद्ग्रहवासरे वा सौरे दिने सौम्यतिथावभीष्टम् ॥ ३१ ॥

अथ बालकस्य निष्क्रमणमाह—निशांततेति ॥ अथानंतरं प्रवीणैर्बुधैः मूनोः सुतस्य
वेशांतता गृहात् निष्क्रमणं निर्गमनमभीष्टं कमनीयं प्रकीर्तितं ॥ कस्मिन् चतुर्भिर्मिते मासि
निः सद्ग्रहवासरे वा रवेर्दिने वा सौम्यतियो ॥ ३१ ॥

गदाग्रजश्वेतरुचीनमित्रत्रिविष्टपेज्यादितिदसपूष्णां ॥

धिष्येषु सनुर्वहिरोकसोऽर्कं पश्येत्स्वपुष्ट्यै ननु वासवे च ॥ ३२ ॥

अथ निष्क्रमणे नक्षत्राण्याह—गदेति ॥ सुनिश्चितं सनुः पुत्र ओकसो गृहाह-
र्कं पश्येत् सूर्यदर्शनं कुर्यादित्यर्थः । कस्यै स्वपुष्ट्यै बालकपुष्टिताये केपु गदाग्रजे
पुंजुः श्वरगः श्वेतरुचिश्वरो मृगशीर्ष इनो हस्तः मित्रोऽनुराधा त्रिविष्टपेज्यो नाकपूज्यो

गुरुः पुष्यः अदितिः पुनर्वसुः दक्षोऽश्विनी पूषा रेवती एषां द्वंद्वे एषां धिष्ण्येषु च पुनर्वासे
धनिष्ठायां ॥ ३२ ॥

अन्नादनं मासि रसैरभिन्ने सूनोस्तदासन्नगमासयुग्मे ॥

पुत्र्या भवेच्चात्र विदर्शपूर्णाभद्राजयापक्षतयः प्रदिष्टाः ॥ ३३ ॥

अथ बालस्यान्नप्राशनमाह—अन्नेति ॥ सूनोः रसैरभिन्ने पक्षे मासि अन्नादनं भवेत् ।
चपुनः पुत्र्यास्तदासन्नगमासयुग्मे तस्य पक्षमासस्य उभयत आसन्नगौ समीपगतौ मासौ तयो-
युग्मे पंचमे सप्तमे इत्यर्थः । पुनरत्र विदर्शेति । विगताः दर्शोऽमावासी पूर्णास्तिथयः जयस्ति-
थयः पक्षतिः प्रतिपत् याभ्यस्ता एताः प्रदिष्टाः कथिताः अन्याः शुभा इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

संतोर्भकान्नाशनकर्मणींदुज्जदेवबंधोशनसामहानि ॥

विमित्रमैत्राख्यलघुध्रुवाणि श्रवःश्रविष्ठादितिभानि चाहुः ॥ ३४ ॥

अथान्नाशने वारनक्षत्राण्यमाह—संत इति ॥ संतो बुधाः अर्भकान्नाशनकर्मणि एतानि
शुभान्याहुः । इंदुश्रद्धः विद् बुधः इंदुबंधो गुरुः उशना-शुक्रः एषा द्वंद्वे एषामहानि चपुनर्व-
गतौ मित्रोऽनुराधा एभ्यस्तानि एवंविधानि मैत्राख्यनक्षत्राणि लघुसंज्ञानि ध्रुवसंज्ञानि श्र-
वणः श्रविष्ठा धनिष्ठा अदितिः पुनर्वसुः एतानि भानि च ॥ ३४ ॥

मित्रर्क्षमुष्णांशुदिनं च पष्ठमन्नाशने मंजु जगाद कश्चित् ॥

वीक्ष्योदितं तेन नवान्नशुद्धिं तत्रान्नमेत्यात्ययमेति पोतः ॥ ३५ ॥

अथान्न ऋषिमन्माह—मित्रेति । कश्चिन्मंजु शुभं यथा भवति तथाप्राशने मित्रर्क्षम-
राषां उष्णांशुदिनं रविवारं पष्ठं तिथिं च जगाद कथयामास । पोतो बालकोऽन्नमेत्य भुक्त्वा
त्ययं नाशमेति प्राप्नोति । किंभूतमन्नं तत्र तेन ऋषिणा नवान्नशुद्धिं वीक्ष्य उदितं कथितं । अ-
प्राशननवान्नयोरेकमुद्गृह्णत्वात्तत्र नवान्नशुद्धयेत्यया उक्तं अन्नप्राशनविधौ नेत्यर्थः ॥ ३५ ॥

प्रेसांत्यपुण्यात्ययकेंद्रगो रविस्तनोति चित्रं पृथुके रसात्मजः ॥

पित्तं च मंदस्तनुते प्रभंजनं कृशः किल ग्लौर्हि तथा दग्दिताम् ॥

अन्नाशने लग्नफलमाह—प्रेसेति ॥ बुध्यं इति युग्मं ॥ अन्नप्राशनेऽन्नादेन तनुनो लघ्नां
सर्वत्र योज्यं । रविः पृथुके बालके चित्रं बुद्धं तनोति 'पिथ स्यात्तांडुरं कुट्ट' इति हेम । किं
रविः प्रेक्षा बुद्धिः पंचमं ५ अंत्यं द्वादशं १२ युग्मं नवमं ९ अत्ययः अष्टमं ८ केंद्रं १।१।१।
एतन्नाशनेऽपि एवं रसात्मजो भोगः पित्तं तनोति चपुनर्वसुः जनिः प्रभंजनं यायुं तनोति
कृशः क्षीणो ग्लौर्हो दग्दितां तनोति । हि पात्रपूजने किल भावनायाम् ॥ ३६ ॥

बुध्यै बुधो ग्रीष्मपतिरायुषे भृगुभोगाय सारंगकलंकमृच्छिशोः ।

तत्स्यो भवेत्सर्वकलःकलाचदोऽनृच्छिबुधश्चात्रिगोन्नकाशने ॥ ३७ ॥

बुधै इति ॥ बुधस्तत्स्थः पूर्वोक्तप्रेक्षादिमवनस्थितः सन् शिशोर्बालस्य बुधै मतये भवति ।
एवं गोप्पतिर्गुरुरायुषे जीविताय भूयुः शुक्रो भोगाय सारंगभृत् कलंकभृच्चंद्रः सर्वकल.संपूर्ण-
कलावान् सन् कलौषदो विज्ञानादिकलादायको भवेत् । तस्य इति सर्वत्र योज्यं । यदि च
पुनर्विधुरत्ररिगोस्ताष्टमं ८ अरिः पष्ठं ६ एतयोर्गोतास्तकृत् मरणकारको भवेदिति ॥ ३७ ॥

अथ व्यतीतैकसमस्य सूनोरुशांति वर्षद्वयकालशुद्धं ॥

चौलं निजान्वायविधिक्रमेण विदूषणे मासि सदन्त्यभिज्ञाः ॥ ३८

अथ चौलकर्माह—अथेति ॥ अद्यान्तरं अभिज्ञा दैवज्ञा निजान्वायविधिक्रमेण
भजवंशविधानानुक्रमेण सूनोः सुतस्य चौलं मुंडनमुशति बांछति । कस्मिन् विदूषणे दूषण-
इति मासि पुनः सदाह् शुभवारे किंभूतस्य सूनोर्व्यतीताशतिकांता एका समा वर्षं यस्मिन्स-
स्य कियंत चौलं वर्षद्वयकालशुद्धं वर्षयुग्मकाले शुद्धं ॥ ३८ ॥

शेसौ जरावत्यतिचारगेऽनृजौ मृगेऽस्तगे लेयगतौ गुरौ हरेः ॥

गुरौ हरेरस्तगते विरोधिनां चौलादिसंस्कारविधिर्ह्यनादृतः ॥ ३९ ॥

अथ गुरुशुक्रदोषे चौलं निषेधति—शिशोर्विति ॥ शिशौ बालके चौलादिसंस्कारविधि-
नादृतो नांगीकृतो बुधैरिति शेषः । कस्मिन्सति हरेरिद्वयस्य गुरौ जीवे शिशौ बालके जरावति
द्वेऽतिचारगे चारमतिक्रातेऽनृजौ वक्त्रे मृगे मकरराशिगतेऽस्तगते सिंहराशिगते सति
पुनर्हरेरिद्वयस्य विरोधिना द्विपा दैत्याना गुरौ शुक्रेऽस्तगते सति ॥ ३९ ॥

मास्यन्दि भे जन्मवतश्च जन्मनो न मंगलं मंगलकृत्सदा भवेत् ॥

केलाद्यपत्यस्य तदेव मंगलं पुरुक्रियं शौत्रयमभीष्टदं न यत् ॥ ४० ॥

अथ मासादीन् दूषयति—मासीति ॥ सदा जन्मवतः शिशोर्जन्मनो मासि अन्दि
भे राशौ च मंगलं चौलादिसंस्कारविधानं मंगलं न भवेत् । किलेति सत्ये । यद् यस्मात्
आद्यापत्यस्य प्रथमसंतानस्य तदेव मंगलमभीष्टदं कामदं न भवेत् । किंभूतं मंगलं शौत्रयं शुक्रे
ज्येष्ठमासि भवं कृत्यं वा पुनः किंभूतं पुरुक्रियं पुरुष्यसी क्रिया यस्मिस्तत् । 'भूर्यदं
पुरु रिकरं' इति हैम ॥ ४० ॥

चलांशुमद्रोपतिभानि दासं धिष्ये सहस्रांशकशीतभासोः ॥

सपौष्णचित्राणि सदा प्रवीणाःक्षौरे जगृह्यादृतसौम्यतारे ॥ ४१ ॥

अथ चोले नक्षत्राण्याह—चलांशुमदिति ॥ सदा प्रवीणा. पडिताः क्षौरे एतानि नक्षत्राणि
जगुरुचुस्तान्याह । चलानि चलमंज्ञानि अंशुमान् सूर्यो हस्तः गोपतिर्विषतिर्गुरुः पुष्य-
एतानि पुनर्दास्यमश्विनो सहस्रांशकं सहस्राक्ष इष्टो ज्येष्ठा शीतमाश्रद्धो मृगशीर्ष एतयोर्भ-
धिष्ये नक्षत्रे किंभूतान्येतानि सपौष्णचित्राणि रेवतीचित्रायुक्तानि किंविशिष्टे क्षौरे आदृत-
सौम्यतारे आश्रितशुभतारके ॥ ४१ ॥

सद्भिर्विरिक्तास्तिथयो विपर्वा विपष्ठयमापक्षदलेंदुघस्ताः ॥

भवारयोगाखिलशुद्धिवत्यः क्षुरक्रियायामुदिता विभद्राः ॥ ४२ ॥

अथात्र पर्वादीनि प्रतिपेधाति—सद्भिरिति ॥ सद्भिर्बुधैस्तिथय उक्ता उदिताः कस्य क्षुरक्रियायां किमूतास्तिथयः विरिक्ता रिक्तातिथिर्वर्जिताः पुनर्विपर्वाः पर्ववर्जिताः पुनः किमूता विगता पण्ठी अमावासी पक्षदलमष्टमी इंदुघस्तः पूर्णमासी याम्यस्ता विपष्ठयमापक्षदलेंदुघस्ताः । पुनः किमूताः भवारयोगाखिलशुद्धिवत्यः मानि वारा योगा एषामखिलया समस्तप शुद्ध्या युक्ताः पुनः किमूताः विभद्राः विष्टिरहिताः ॥ ४२ ॥

स्याद्गोचरेणाष्टकवर्गकेण वा चेद्दृश्यते शुद्धिरिहोक्तकालवत् ॥

गंडांतसंध्यासमयौ तमस्विनीमपास्य भद्राकरणं सुखार्थकृत् ॥ ४३ ॥

अथात्र गोचरशुद्धिमाह—स्यादिति ॥ चेद्यादि गोचरेणाष्टकवर्गकेण वा इह उक्तकालस्य सौरकर्मोक्तकालवत्पुनः शुद्धिरित्यते तदा भद्राकरणं मुंडनसुखार्थकृत् । किंरुत्वा गंडांतसंध्यासमयौ तमस्विनी रात्री चापास्य हित्वा ॥ ४३ ॥

त्रिकोणकेंद्रस्वगतैरपापैः पापैरमित्रायपराक्रमस्थैः ॥

शुभोदये चान्यगते च केतो गदंति चूडाकरणं कृत्तार्द्राः ॥ ४४ ॥

अथात्र उक्तशुद्धिमाह—त्रिकोणोति ॥ यतीन्द्राः पंडितमुखाः चूडाकरणं मुंडनं वदन्ति । केः शुभोदये शुभलभे त्रिकोणं नव ९ पंचमं ५ वेदं १॥४॥७॥१० एवं धनं त्रितीयं ३ पाः भवन्ते गतैरपापैः सौम्यैः पुनरमित्रं पष्ठं ६ आय एकादशं ११ पराक्रमस्तृतीयं ३ त्रिभिः पापैः ललप्रहेः यत्रा पुनरन्यगते उक्तेभ्योऽन्यस्यानगते केतो सति ॥ ४४ ॥

पित्तं पतंगो मृतिमसृगद्वादजः कृशः कंटककोणसंस्थः ॥

लयं यमो यच्छति पंगुभावं गलामयं ग्लोर्वपने शिशूनाम् ॥ ४५ ॥

शेषास्ताराः शस्ता इति बहुवचनात्पाठश्च साधुः ॥ 'चपुन' पञ्चम पञ्चममेवाहर्दिनं शस्त
किं कृत्वा विरुद्धतारा त्रिपञ्चसप्तमादितारामपास्य हित्वा ॥ ४६ ॥

व्रते मृतौ चानुदितेऽपि तीर्थे क्षौरं निदेशान्नरदेवतायाः ॥

द्वैजादिने चाध्वरदीक्षणे भे घनंजयाधानविधौ वरं स्यात् ॥ ४७ ॥

अथ मुहूर्त विनापि व्रतादौ क्षौरमाह—व्रते इति ॥ अनुदितेऽनुक्तेऽपि भे नक्षत्रे दिने च
एषु क्षौरं वरं स्यात्तानाह ॥ व्रते व्रतविषये मृतौ मरणे तीर्थयात्राया नरदेवताया भूपस्य
निदेशादादेशात् द्वैजात् विमसवधिनिदेशान् अध्वरदीक्षणे यज्ञदीक्षाया घनजयाधानविधौ
अग्न्याधानकर्माणि दिने इति ॥ ४७ ॥

कर्मन्दिनां पक्षविरामघस्ते स्याद्ब्रह्मचर्याहितपावकानां ॥

सत्यां सदा मुंडनमप्यशुद्धौ चतुर्विधेनोवयसापहं च ॥ ४८ ॥

अथ संन्यासिकादीनां क्षौरमाह—कर्ममिति ॥ कर्मदिनां संन्यासिना ब्रह्मचर्याहि
तपावकानां ब्रह्मचारिणामभिहोत्रिणा पक्षविरामघस्ते पक्षात्तदिनं पूर्णिमाऽमावासी च एतयो-
मुंडनं स्यात् ॥ कस्या शुद्धिरहिते पुन सत्या विधवाया सदा मुंडनं स्यात् ॥ कि-
भूतं मुंडनं चतुर्विधेनोवयसापहं चतुर्विधमोघातादिपापावस्थानाशकं यय शब्दोऽकारातो-
ऽपि अथवा समासेऽकारात्त्वम् ॥ ४८ ॥

क्षौरैर्दवाहर्द्युतिवारभेषु मासे नुरुक्तेष्ववदन्नथार्याः ॥

केशातकर्मज्यभृगूदयस्थे सौम्यायने षोडशहायनस्य ॥ ४९ ॥

अथ षोडशवर्षस्य केशातकृत्यमाह—क्षौरैर्द्विति ॥ अथानतर आर्या आचार्या
षोडशहायनस्य षोडशवर्षकस्य नूनरस्य केशातकर्म केशशुद्धार्थमवदन् जगुः । कस्मिन्
केषु ईज्यभृगूदयस्थे गुरुशुक्रलमास्थिते सौम्यायने उत्तरायणे उक्तेषु कथितेषु क्षौरै-
र्दवाहर्द्युतिवारभेषु क्षौरैः कतिधिवारनक्षत्रेषु ऐदवाहेन चाद्रदिनेन युक्तवारनक्षत्रेषु समासे
हसातशब्दस्याऽकारात्त्वमनित्य तेनैर्दवाहर्द्युतिरित्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ ४९ ॥

वर्षे त्रिभिः प्रदरकाडमिते मिते वा संतः शिशोःश्रवणवेधविधानमाहुः ।

मासेषु फाल्गुनमधूर्जसहस्यकेषु काव्येद्रमंशुदयवत्स्वसितान्यपक्षे ॥ ५० ॥

अथ वसततिलकेन कर्णवेधमाह—वर्षे इति ॥ सतो विबुधा शिशोर्वालस्य श्रवणवे
धविधानं कर्णाकीर्णकृत्यमाहुः । कस्मिन् केषु त्रिभिर्मिते वर्षे प्रशस्ता प्रदरा बाणा प्रदर-
काडा काडशब्दः प्रशस्तार्थस्तेर्मिते वा पञ्चमे इत्यर्थः ॥ फाल्गुनो मधुश्चैत्र उक्ते
कार्तिक सहस्य पैष एषु मासेषु किमूनेषु मासेषु काव्य शुक्र उद्रमजी गुरु
नयोरुदयवत्सु शुक्रनीवोद्रमयुक्तेषु असितान्यपक्षे शुक्रपक्षे इत्यर्थः ॥ ५० ॥

आदित्यभे मृदुलघुश्रुतिवासवेषु भिद्याच्च सद्गगनमार्गदिनेषु शश्वत् ॥

कर्णौ शिशोर्गुरुलभृषितकंठजामारिक्तेतराखिलशशांकदिनेषु सूच्या ५१

अथ कर्णवेधे नक्षत्रादीनाह—आदित्येति ॥ सुधी शश्वत् सदा सूच्या प्रोक्त-
धातुशलाकया शिशो कर्णौ भिद्यात् उत्कीर्णयेत् । वेपु आदित्यमे हस्तनक्षत्रे मृदु-
संज्ञानि लघुसंज्ञानि श्रुति श्रवणो वासवं धनिष्ठा एषु पुनः सप्तगनमार्गदिनेषु शुभग्रहवारे
पुन गरलभूषितकठ शमुस्तस्माज्जायते इति तज्जा विष्टिरमावासी रिक्तास्तिथय
आम्य इतरा आखिला समस्ता शशाकदिनश्च द्वंद्व एषु ॥ ५१ ॥

कश्चिद्दोदयत ईस्तिमुत्तराणां तेन त्रये लपदिह श्रुति-
वेधकर्म ॥ अर्वागसाध्विति शिशोर्वचनं च कृष्टिः
सहस्रवर्णगदितोक्तिविलोकनत्वात् ॥ ५२ ॥

अथ मतातरमाह—कश्चिदिति ॥ कश्चिद्विधिः पठित इति वचनमलपत् । इतीति किं
इदोदयतो दतोद्गमादर्वाक असधु तन हेतुना इह दतोद्गमे सति श्रुतिवेधकर्म ईरितं प्रोक्त
कस्मिन् उत्तराणा त्रये नक्षत्रेषु कस्मात् सहस्रवर्णगदितोक्तिविलोकनत्वात् ॥ ५२ ॥

संवेधयेच्छ्रवणमैद्यनते खराशौ योगे शुभेऽमृतमयूखवले च पौरे ॥
शीर्षोदयेमरपुरोधसि सद्यसाद्भिः श्रोत्राश्रितैर्व्यशुभयोगानिशामनैश्च ॥ ५३ ॥

अथ वर्णवेधे लप्रादीनाह—संवेधयेदिति ॥ सुधी श्रवण कर्ण संवेधयेत् भिद्यान् कस्मिन्
सति ऐन्द्रघनते पूर्वाण्हे खराशौ सुये च पुन शुभे योगे पुनरमृतमयूखवले चद्रवले शी-
र्षोदये पौरे लग्ने । शीर्षोदयास्तु मिथुनसिंहवह्न्यातुलाश्रिककुमा कथ्यते । अमरपुरो-
धसि गुरो शीर्षोदयलग्नगते इत्यर्थः ॥ गन वै कृत्वा श्रोत्राश्रिते तृतीयै १ कादश ११
गते सद्यसदि सद्रहै कथभूतै सद्यसदिव्यशुभयोगानिशामनै 'ईक्षण तु निशामन'
इति हेम ॥ ५३ ॥

घोणामयोदगयने विषमे कुमार्या वर्षे सुवारतिथियोगविलग्नलम्बैः ॥

✓ भिद्यान्तु लब्धचलमैत्रचरैर्विकर्षैर्भैराद्यपक्षवति राजानि चादियामे ५४

इति श्री कविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे मध्यमेस्काराध्यायः ॥ ७ ॥

अथ कुमार्या घ्राणवेधमाह—घोणामिति । अथानतरं सुधी कुमार्या घोणा घ्राण भिद्यान्
वेधयेत् 'घ्राण घोणा विकूणिका' इति हेमः । कस्मिन् विषये वर्षे पुनरुदगयने पुनराद्यपक्षवति
शुक्रपक्षयुक्ते राजानि चद्रे पुनरादियामे प्रथमग्रहरे पुन कै कृत्वा सुवारतिथियोगविलग्नलम्बैः
शुभवारः शुभातिथे सुयोग शुभविलग्न एभिर्लग्नयुक्ते 'लग्न विलग्न मेपादि' इति ॥ शब्दप्रभेदः ।
पुनर्लघुसंज्ञानि अचलानि स्थिरसंज्ञानि मेघसंज्ञानि चरसंज्ञानि एतेर्भेदक्षत्रे किंभूतेर्नक्षत्रे
विकर्षे रोहिणीवर्जिते ॥ ५४ ॥

इति श्रीपणिनीयगच्छाधिराजभट्टारकपुरदर्यामादमाप्रभमूर्तिश्वरचरणपुरोदहचचरोवायमान

पिथभावरन्विरचिताया श्रीकविकालिदासकृतज्यानिर्विदाभरणस्य

सुखवाधिकायाम् 'यसस्काराध्याय' समम् ॥ ७ ॥

उपवीतप्रकरणम् ८ ।

जनितोऽथ निपेकतोऽष्टमे रशनाबंधनमग्रजन्मनाम् ।

श्रुतिधर्मविदो हि हायने जगदुर्वाक्षमितेऽपि वा गिरे ॥ १ ॥

अथैतत्संस्कारकथनानंतरमुपनयनसंस्कारो घटतेऽतो वेतालीयेनोपवीताध्यायस-
वानमाह—जनित इति ॥ अथानंतरं हि निश्चित श्रुतिधर्मविज्ञा विबुधा जनितो जन्मतो
निपेकतो गर्माधानतो वाऽष्टमेऽष्टमिते पंचमेऽपि हायने वर्षे द्विजन्मना विप्राणा रशनाबंधन
जगदु कस्मै गिरे विद्यायै पठनायेत्यर्थः ॥ रशनाबंधन तु विप्राणा मौजीबंध क्षत्रियाणा
धनुर्ज्याबंधो वैश्याना मौर्वीबंध इति विशेष शास्त्राज्ज्ञेयः ॥ २ ॥

शरदामगदच्चतुष्टये कुसुराणामपि पंचमाब्दतः ।

सुनिरासुरिरष्टमे व्रतं समये कश्चिदरं वटोरिते ॥ २ ॥

अथात्र मतातरमाह—शरदामिति ॥ अर निश्चित आसुरिर्मुनि कुसुराणा भूदेवाना वि-
प्राणा पंचमाब्दतः पंचमवर्षादारभ्य शरदा वर्षाणा चतुष्टये मौजीबंधनमगदजगद । अपि
पुन कश्चिदष्टमे समये वर्षे इति प्राप्ते सति वटोर्माणवकस्य व्रत रशनाबंधन जगद ॥ २ ॥

वरमर्णवचीवराभुजां व्रतमेकादशमे च हायने ।

सुसमीकविधानतेजसे खलु पष्ठेऽत्र न विभ्रमो भवेत् ॥ ३ ॥

अथ क्षत्रियाणा व्रतमाह—वरमिति ॥ खलु निश्चित अर्णव एव चीवर यस्या सा
भूमिस्ता भुजंतीति भुजस्तेषा क्षत्रियाणा एकादशेन मयिते इति एकादशम अन्यद्वात्र
मदप्रत्ययस्याविपयत्वात् एकादशम इति न स्यात् । तस्मिन् पष्ठे च हायने वर्षे व्रत धनुर्ज्या-
बंधन वर श्रेष्ठ स्यात् । कस्मै सुसमीकविधानतेजसे सत्रामकार्यवर्षाय अत्र विभ्रमः सशयो
न भवेत् ॥ ३ ॥

उपवीतविधानकं विशामलमर्कप्रतिमे विपश्चितः ।

अपि पण्यफलाप्तये भवेदवदन्वा व्रतमष्टकेऽब्दके ॥ ४ ॥

अथ वैश्याना व्रतबंधनमाह—उपवीतेति ॥ अल निश्चित विपश्चित पंडिता विशो वैश्याना-
मुपवीतविधानक व्रतबंधनमवदन्नकथयन् । कस्मिन्नर्कप्रतिमे द्वादशेऽब्दके वर्षे कस्मै पण्यफ-
लाप्तये विक्रेयफलप्राप्तये 'पणितव्यं तु विक्रेय पण्य सत्यापन' इति हेम । वा पश्चातरे-
अष्टमे वर्षे व्रत भवेत् ॥ ४ ॥

कुभुजामपि सप्तमाब्दतोऽर्कसमापदकमुदीरितं व्रते ।

यवनासुरिदेवलोक्तिभिर्विबुधैराचितसंमितेर्विशाम् ॥ ५ ॥

अथ व्रतबंधे श्रुपिमतमाह—कुमुजामिति ॥ यवनासुरिदेवलोकिमरेषामृषीणामुक्तिमि
कृत्वा विबुधैः कुमुजां श्रवियाणां विशां वैश्यानामपि सप्तमाब्दतः सप्तमवर्षादकसमापत्वं
सावनसूर्यसमानवर्षपट्कं व्रते ईरितं प्रोक्तं किंभूतैर्विबुधैराचितसप्तमैः पूर्णमसैः ॥ ५ ॥

तरणावलकेशदिग्गतेऽमरदित्युद्धववंदितोद्गमे ।

जगुर्तरभागसंयुते व्रतबंधस्य विधिं मुनीश्वराः ॥ ६ ॥

अथोत्तरायणादौ व्रतबंधमाह—तरणेति ॥ मुनीश्वराः व्रतबंधस्य विधिं जगुः कस्मिन्नलके-
शादिग्गते उत्तरायणे सूर्ये पुनरमरा देवा दित्युद्धवा दैत्या आम्त्यां वंदितौ गुरुगुप्तौ
अनयोरुद्गमे उदिते सति किंभूते तरणौ अंतरभागसंयुते सायनांशसहिते ॥ ६ ॥

निजतुंगभतोऽगमस्थिते हरिगे वक्रिणि वातिचारिणि ।

नमुचेरहिताचिते शिशौ व्रतबंधो न पुराणविग्रहे ॥ ७ ॥

अथ गुरुदोषे व्रतबंधं निषेधति—निजेति ॥ व्रतबंधो न भवेत् कस्मिन् निजतुंगमतो
निजोच्चराशितोऽगमस्थिते सप्तमराशिस्थिते हरिस्थे सिंहस्थे वक्रिणि वातिचारिणि वा
शिशौ बाले वा पुराणविग्रहे वृद्धे वा नमुचेर्दैत्यस्याहित इन्द्रस्तेन अचिते गुरौ सति, ॥ ७ ॥

दितिजेज्यतमीशयोरपीतरकामाय च वृद्धबालता ।

निगमस्मृतिकर्मतो भवेदुपवीतस्य विधानके वटोः ॥ ८ ॥

अथ शुक्रचंद्रयोर्वृद्धबालत्वे व्रतं निषेधति—दितिर्जाति ॥ दितिजानां ईज्यः पूज्यः शुक्रः
तमीशश्चंद्रः अनयोर्वृद्धबालता वटोर्माणवकस्य उपवीतस्य विधानके निगमस्मृतिकर्मतो
भेदस्मृतिकार्यति इतरकामाय धर्मनाशाय भवेदित्यर्थः ॥ ८ ॥

सितिकंपनकालतो व्रतं नभसस्तारकपातकालतः ।

न विदुर्ग्रहर्तोऽशुचंद्रयोरगभिद्यामयुगाश्रितं बुधाः ॥ ९ ॥

भूकंपनादौ देवे मासत्रये व्रतबंधं निषेधति—सितिर्जाति ॥ बुधाः सितिकंपनकालतो
भूकंपकालत नभस आकाशात् तारकपातकालतस्तारापतनकालात् अंशुचंद्रयोश्चंद्रार्कयो-
र्ग्रहतो ग्रहणाच्च व्रतं न विदुः अगमिर्दिद्रस्तस्य यामयुगाश्रितं द्विमहराश्रितं मासत्रयं
यावदिति ॥ ९ ॥

प्रथमामररुंडमूर्तिभृद्गने केतुरुदेति चेत्तदा ।

व्रतकृत्यमसिद्धिलब्धिवत्स्मृतमाहायनमागमांवकैः ॥ १० ॥

अथ केतुद्वये वर्षपर्यंतं व्रतबंधं निषेधति—प्रथमेति । चेद्यदि गमने केतुरुदेति उदय
प्राप्नोति किंभूतः केतुः प्रथमामराः पूर्वदेवा देव्यास्तेषां रुंडमूर्तिरिव रुंडमूर्ति विमर्शति प्रथमा-
रुंडमूर्तिमृद रुंडशब्दः प्राकृतो रोडनोडवो इति भाषा । तदा आगमार्थनर्कवैदा एषांनकानि

नेत्राणि एषां तैर्वेदचतुर्भिर्वेददर्शनैर्वेदपाठकैराहायनं आह मर्यादायां वर्षपर्यन्तं व्रतकृत्यं
व्रतकार्यं असिद्धिद्विवक्तं फलद्विविशून्यं स्मृतम् ॥ १० ॥

क्षयमास्यधिमास्यकालजस्तनयित्नुपलपातभाग्यतौ ।

व्रतमेत्य वटुः पुनर्भवेदवकीर्णी च विलुप्तहायने ॥ ११ ॥

अथ क्षयमासादौ व्रतं निषेधति—क्षयेति ॥ वटुः व्रतमेत्य व्रतबन्धनं प्राप्य पुनरवकीर्णी-
संहितव्रतो मेव 'व्रतव्रतोऽवकीर्णी स्यात्' इति हेमः ॥ क्षयमासि अधिमासि अधिकमासे पुनः
अकालजः प्रावृत्कृतं विना जातश्चासौ स्तनयित्नुर्मेघश्च तस्योपलपातः करकाणां पातस्तं
भजतीति भाक् स चासौ ऋतुश्च तस्मिन् पुनर्विलुप्तहायने यस्मिन् वर्षे बृहस्पतेर्वत्सरे संमक्र-
मणद्वयं स्यात्तल्लुप्तवर्षं तस्मिन् ॥ ११ ॥

गुरुसंक्रमद्युग्मवत्समा गदिता सा ननु लुप्तसंज्ञिका ।

विबुधैरहिता व्रते तु याऽधिसमा गीष्पतिसंक्रमोद्दिशता ॥ १२ ॥

अप लुप्ताधिकवर्षलक्षणमाह—गुर्विति ॥ ननु निश्चितं विबुधैः सा समा लुप्तसंज्ञिता
ोक्ता या गुरुसंक्रमद्युग्मवत्समा गुरुसंक्रमणद्विकयुक्तं वर्षं स्यात् । पुनः साऽधिसमाऽधिकर्ष
पाद्याः गीष्पतिसंक्रमोद्दिशता गुरुसंक्रमणरहितं वर्षं स्यात् ॥ १२ ॥

स्वमदप्रतिभायधर्मगं धिषणं चातिबलं जगुर्वुधाः ।

घनकर्मबलाभियातिगं स्ववलीतार्चमिहर्क्षतो वटोः ॥ १३ ॥

अथ राशिगतगुरोः फलमाह—स्वमदेति ॥ इह व्रतवधे बुधा वटोर्विषणं गुरुं अतिबलं सानुकूलं
जगुः अगुः ऊचुः ॥ चातिफलमित्यपि पाठः ॥ किंभूतं गुरुं ऋतुतो जन्मराशितः एवं घनं द्वितीयः
१ मदः सप्तमः ७ प्रतिभा विद्या पंचमः ९ आय एकादशः ११ धर्मो नवमः ९ एषा द्वंद्वे एषु
शिषु गतं जन्मराशित एतत्संख्याप्राप्तो गुरुः शुभ इति पुनर्वुधा घनः प्रथमः १ धाम
शमः १० बलं तृतीयः ३ अभियोगिः शत्रुः पञ्चः ६ एषा द्वंद्वे एषु राशिषु गतं गुरुं स्वव-
लेना निजपूजोपहारेण इता प्राप्ताऽर्चा पूजा येन त स्ववलीतार्चं सानुकूलं जगुः अनुकूलं
ति शब्दप्रमेदः ॥ १३ ॥

तनुतेऽर्चितकोऽप्यरं वटोर्जनिराशोर्हिबुकात्ययांत्यगः ।

धिषणो रश्नानिवंधने वृजिनं दंडधरार्तिसंभवम् ॥ १४ ॥

तनुते इति ॥ धिषणो गुरुररमत्यर्थमर्चितकोऽपि धूमितोऽपि वटो रश्नानिवंधने मौजिवंधे वृजिनं
क्रमर्पसामर्थ्याद्दुःखं पापं वा तनुते विस्तारयति । किंभूतो धिषणो जनिराशोर्नन्मराशितो हिबुकं
तुर्थः ४ अत्ययमष्टमः ८ अंत्यं द्वादशः १२ एषा द्वंद्वे एतद्वाशिगतं किंभूतं वृजिनं
धरार्तिसंभवं यमपीडानातं 'दंडवरोऽकैसूनु' इति हेमः ॥ इति राशिगतगुरुफलम् ॥ १४ ॥

यदा व्यतीताष्टमस्य राशेर्वदोरनिष्टो भवतींद्रमन्त्री ।

तमर्चयित्वा हि तदा विधेया व्रतक्रिया बुद्धिमतां वरिष्ठैः ॥१५॥

अथोपेन्द्रवज्रया न्योतिते गुरुपूजामाह—यदेति ॥ यदा व्यतीताष्टमवर्षस्य वदोःराशेः
नन्मराशेरिंद्रमन्त्री अनिष्टो भवति तदा बुद्धिमतां वरिष्ठैर्वरैः पंडितैर्व्रतक्रिया हि निश्चितं विधेया
कर्तव्या किं कृत्वा तं गुरुमर्चयित्वा ॥ १५ ॥

सदा सपर्या द्विगुणातिदुष्टे शस्ता गुरावादिभुवामर्पीदौ ।

तथा नृपाणां त्रिगुणा विशां सा चतुर्गुणात्मीयबलिक्रियार्हा ॥१६॥

अथोपजात्या दुष्टगुरुचंद्रयोर्विमादीनां पूजाधिक्यमाह—सदेति । सदा गुरौ इदौ
चंद्रेऽप्यतिदुष्टे सति आदिभुवां द्विमानां द्विगुणा सपर्या पूजा शस्ता प्रोक्ता तदा नृपाणां
त्रिगुणा पूजा विशां वैश्यानां सा पूजा चतुर्गुणा । किंभूता सपर्या आत्मीयबलिक्रियार्हा निम-
पूजाविधानयोग्या ॥ १६ ॥

यदातिदुष्टोऽमरधीसहायो द्विपारिगो मासि मधौ तिमिस्थे ।

तदा दिवानेतरी वा निबंधः पट्कर्मणां स्यात्खलु मेखलायाः ॥१७॥

अथ दुष्टगुरौ चैत्रादौ व्रतबंधमाह—यदेति ॥ यदाऽमरधीसहायो गुरुतिदुष्टो दुष्ट-
तरो द्विपारिगः सिंहाराशिगतो भवेत्तदा खलु निश्चितं पट्कर्मणां विप्राणां मेखलाया मीण्या
निबंधः स्यात् । कस्मिन्मधौ चैत्रे मासि दिवानेतरी सूर्ये तिमिस्थे मीनराशिस्थिते वेति ॥१७॥

न गोचरे दृश्यत एव शुद्धिस्तदाष्टवर्गेण विलोकनीया ।

यदा व्रतस्योभयतो न मित्रे चैत्रे भवेन्नरीरनिकेतनस्थे ॥ १८ ॥

अथ व्रतबंधे गोचरादिशुद्धिमाह—न गोचरति ॥ यदा गोचरे ग्रहगोचरे व्रतस्योपनयनस्य
शुद्धिर्न दृश्यते तदाष्टवर्गेण शुद्धिर्विलोकनीया । यदा उभयतो गोचराष्टकवर्गाम्यां शुद्धिर्न
तदा चैत्रे मासे मित्रे सूर्ये सति शुद्धिर्भवेत् । किंभूने सूर्ये नीरानिकेतनस्थे नीरे जले निकेतन
गृहे यस्य स मीनस्तद्वाशिरपिते ॥ १८ ॥

न शक्तिनीने जगदुस्तपस्ये पराशराद्या रशनानिबंधं ।

न शुक्रसंज्ञे जितुमाश्रिते च न पौषमास्यूपमकरे मृगस्थे ॥१९॥

अथात्र श्रुतिमतमाह—न शक्तीति । पराशराद्या ऋषयोः रशनानिबंधं नगदुः कथयामासु
कस्मिन् शक्तिनि मीने इने सूर्ये सति पुनस्तपस्ये फाल्गुने मासे शुक्रसंज्ञे ज्येष्ठमासे पौषमासे
पुनर्जितुमाश्रिते मितुनराशिगते मृगस्थे मकरस्थे चोपमकरे सूर्ये सति ॥ १९ ॥

हंसेऽजगे हारितदेवलादयो व्रतक्रियारंभमलं न येनरे ।

व्यासादयो धर्मविदोऽनिशं व्रतं वदन्ति तस्मिन्किल माधवाश्रिते ॥२०॥

पुनर्मतांतरमाह—हंस इति ॥ अल भृशं हारितदेवलादय ऋषयो व्रतक्रियारंभं न मेनिरे
नागीचक्रुः कस्मिन् अग्रे मेघराशिगते हंसे सूर्ये । किल निश्चितमनिशं निरंतरं धर्मविदो
व्यासादयो व्रतं वदन्ति कस्मिन् तस्मिन्मेघराशिगते सूर्ये किंभूते तस्मिन्माधवाश्रिते वैशा-
खमासमाप्ते ॥ २० ॥

व्रतं गिरे मासि तपस्यपि स्याच्चिरायुपे फाल्गुनसंज्ञके च ।

वैशाखमध्वोरखिलार्थसिद्धौ शुक्ले शुचौ गोऽर्थदरिद्रतायै ॥ २१ ॥

अथ माघादौ व्रतवधकदमाह—व्रतमिति ॥ अपि निश्चितं तपसि माघे मासि व्रतं गिरे
विद्याप्राप्तये स्यात् ॥ चपुन. फाल्गुनसंज्ञके मासि व्रतं चिरायुपे दीर्घजीविताय स्यात् ॥
पुनर्वैशाखे चैत्रे च व्रतमखिलार्थसिद्धये समस्तपदार्थसिद्धये स्यात् ॥ पुन. शुक्ले ज्येष्ठमासे
शुचौ आपादमासे व्रतं गोऽर्थदरिद्रतायै गो सरस्वती अर्थो द्रव्यं अनयोर्दरिद्रताऽभा-
वस्तस्यै स्यात् । कस्य बटोरिति शेषः ॥ २१ ॥

माघास्यमासामुपवीतकृत्ये स्यादादृतं पट्टकमपि प्रियं न ।

तदादिजानामुदितं तदेवाऽत्रिणोत्तराशायनगं परेषाम् ॥ २२ ॥

अथ मतांतरमाह—माघेति ॥ आदिजानां विप्राणामुपवीतकृत्ये माघास्यमासा माघ-
मशुक्लमासानां यत् पट्टमादृतमंगीकृतमपि प्रियं न स्यात्साधरणत्वात् । अत्रिणा ऋ-
षिणा तदेव माघादिपट्टमुत्तराशायनगमुत्तरदिगयनगतमुदितं प्रोक्तं केषां परेषामितरेषां
सन्निपादीनाम् ॥ २२ ॥

मासं बटोरजिनदंडकमेखलानां केचिदुधा वितरणे वरमामनन्ति ।

दर्शावधिं सकलधर्मविदो वदन्ति मासं च षोडशकलेंदुवतीविरामम् ॥ २३ ॥

अथ वसततिलकया चर्मदंडमौजीधारणे मतांतरमाह—मासमिति । केचिद् बुधाः बटो-
रजिनदंडकमेखलानां चर्मदंडमौजीनां वितरणे दाने दर्शावधिमभावात्प्राप्तं मासं
वरं श्रेष्ठमामनन्ति कथयन्ति ॥ चपुन. सकलवेदविदोऽखडवेदपारगाः षोडशकलेंदुवती समस्त-
कलायुक्तचंद्रयुक्ता पूर्णिमा तस्या विरामपर्यंतं मासं वरं वदन्ति—अजिनेति । यत्
उक्तं 'मेखलामनिन दंडमुपवीतं च नित्यशः ॥ कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु
धारयेत् ॥ १ ॥ अर्धधनमधःशय्या भैक्षचर्या गुरोर्हित' इति ॥ २३ ॥

सदा वरं काश्यपिकामराणां मधावृतौ मेखलबंधकर्म ।

मधौ निदाघे किल बाहुजानां विशां भवेत्प्रावृषि वा निदाघे ॥ २४ ॥

अथोपेन्द्रवज्रया वसन्तादौ विप्रादीनां व्रतवधमाह—सदोति ॥ काश्यप्यो एव काश्यपिका
भूमिस्तस्या अमरा देवा विप्रास्तेषां मेखलबंधकर्म मौजीकार्यं मधौ वसते ऋतौ सदा वरं श्रेष्ठं

भवेत् “ काश्यपीपर्वताधारा ” इति हैमः ॥ एवं बाहुजानां सत्रियाणां मेखलाकार्यः मघौ वसते
निदधि ग्रीष्मे वा पुनर्विशां वैश्यानां प्राचृषि वर्षाकाले निदाधे ग्रीष्मे वा ॥ २४ ॥

व्रतं सिते सद्भिरुदीरितं वा राजा भवेत्पंचकलावशेषः ।

पक्षे सिते यावदपीति तावत्सितेऽसिते त्रैवृणिना प्रदिष्टम् ॥ २५ ॥

अथोपजात्या शुक्लकृष्णपक्षयोर्व्रतबंधं दर्शयति—व्रतेति ॥ सद्भिर्बुधैः सिते पक्षे व्रतमुदी-
रितं प्रोक्तं च पुनर्यावत् पंचकलावशेषोऽवशेषपंचकलामात्रो राजा चंद्रो भवेत्तावत्कालं त्रैवृणिना
आपिणा सितेऽसिते वा पक्षे व्रतं प्रदिष्टं प्रोक्तम् ॥ २५ ॥

रिक्तात्रये निस्तृतियाजयादये सप्तमपक्षतिपूर्णिमामे ।

गलग्रहः स्यात्तमपास्य शंखो व्रते सदाहोभयचांद्रपक्षौ ॥ २६ ॥

अथ व्रतबंधे गलग्रहं निषेधति—रिक्तेति ॥ सदा निरंतरं गलग्रहः स्यात् । कस्मिन्
रिक्तात्रये चतुर्थीनवमीचतुर्दशीतिथौ किंभूते रिक्तात्रये निस्तृतीयाजयादये तृतीयां विनाष्टमी-
त्रयोदशीयुक्ते पुनः किंभूते रिक्तात्रये सप्तमपक्षतिपूर्णिमामे सप्तमी प्रतिपत् पूर्णिमाऽमावा-
स्याभिः सह वर्तते यत्तत्तस्मिन् सदा शंखो मुनिस्तं गलग्रहमपास्य हित्वा व्रते उभयचांद्रपक्षौ
शुक्लकृष्णचांद्रपक्षौ आह वदति ॥ २६ ॥

घसा दिगीशोष्विनपदस्य १०।११।५।१२।६।३। भिन्नाःशस्ता

व्रते चेह सदादिपक्षे । कार्णा मिता द्यक्ष ५ दिगं १०ग ६

रामे ३ स्नेकपक्षेष्वविरुद्धमेतत् ॥ २७ ॥

अथ व्रतबंधे दशम्यादितिथीन् दर्शयति—घसाइति ॥ सदा निरंतरमिह व्रते आदिपक्षे
शुक्लपक्षे घसाः दिवसाः शस्ताः प्रोक्ताः । किंभूता घसाः दिग् १० दश ईशा एकादश
११ इषवः पंच ५ इना द्वादश १२ पद ६ त्रयः ३ एषा छंदे एभिरभिन्नास्तुल्याः दश-
म्यैकादशीपंचमीद्वादशीपष्टीतृतीयातिथय इति । पुनः कार्णाः कृष्णपक्षमवाः घसाः शस्ताः ।
किंभूता घसाः द्व २ छ ५ दि १० गंग ६ रामे ३ मिताः द्वितीया पंचमी पष्टी तृतीया
इति । अनेकपक्षेषु बहुश्रममतेषु एतदुक्तमविरुद्धं सर्वेषां संमतमिति ॥ २७ ॥

भवोद्भवायामयनर्तुसंध्योर्गलग्रहे पर्वणि मंदवारे ।

क्रांत्योः समत्वेऽशुमदक्षमत्रोर्व्रतं वयोस्त्ययदं कुर्योगे ॥ २८ ॥

अथ व्रतबंधे विष्ट्यादीन् निषेधति—भवोद्भवायेति ॥ व्रतं वयोस्त्ययदं मृत्युदं स्यात्
वेस्मान् भवादीश्वरादुद्भवो यस्याः सा मद्रा तस्यां पुनरयनर्तुसंध्योः अयनसंधौ मृत्युसंधौ
पुनर्गलग्रहे पुनः पर्वणि पुनर्मंदवारे पुनरशुमदक्षमत्रोः अनुमाश्र कश्चमर्ता च तयो
सूर्यचंद्रयोः क्रांत्योः समत्वे पुनः कुर्योगे ॥ २८ ॥

गुरुशनोगारकराजपुत्रा ज्ञेयाः क्रमेणागमपाः प्रवीणैः ॥

निजागमेशाहनि मेखलाया वंधस्तदाचारकरो निरुक्तः ॥ २९ ॥

अथ वेदस्वामिन आह—गुर्विति ॥ प्रवीणैः पंडितैः क्रमेण गुर्वदय आगमपा ज्ञेयाः ॥ ऋग्वेदस्य गुरुः स्वामी यजुषः शुक्रः साम्नो मीमः अथर्वणो बुध इति वेदपाः ॥ मेखलाया वंधस्तदाचारकरस्तेषां विप्रादीनामाचारकृद्भुक्तः कस्मिन् निजागमेशाहनि निजनिज-वेदपतिदिवसे ॥ २९ ॥

द्विजौ हरीज्यास्फुजितौ च राजात्तरांशुमंतौ विदथोपधीशः ॥

स्ववर्णखेटान्धुपवीतकर्म स्वधर्मदं वै तदसंभवत्वात् ॥ ३० ॥

अथ गुर्वादीनां वर्णसंज्ञामाह—द्विजा इति ॥ हरीज्यः इन्द्रपूज्यो गुरुश्च आस्फुनिच्छुक्रश्च तौ द्विजौ विप्रौ स्तः । चपुनराराशुमंतौ आरश्च अंशुमांश्च तौ मौमसूर्यौ राजौ क्षत्रियौ स्तः । राट् राजौ इति द्विवचनं ॥ अथ पुनरोपधीशश्चंद्रो विट् वैश्यः स्यात् । वै निश्चितं स्ववर्णखेटान्हि निजवर्णग्रहदिने उपवीतकर्म स्वधर्मदं निजधर्मदं स्यात् । यया विप्राणां विप्रसंज्ञगुरुशुक्र-दिने व्रतकार्यं निजधर्मदं स्यात् । पुनस्तदसंभवत्वात्तयोर्विप्रादिवर्णगुर्वादिवर्णयोर्योगस्याभावात् किंकर्तव्यं तदाह अग्रेतन्काव्ये ॥ ३० ॥

सर्वागमेष्वर्कगुरुशनोब्जा व्रतार्थदाः स्युस्त्वथ सामगानां ।

राज्ञां धराभूर्विदथर्वगानां तत्सिद्धिदश्चोरुभुवामिह स्यात् ॥ ३१ ॥

सर्वेति । सर्वागमेषु अर्कः गुरुः उशनाः शुक्रः अब्जश्रृंग एते व्रतार्थदाः व्रतेऽर्थदायकाः स्युः ॥ अथ तु पुन. सामगानां सामवेदानुगामिनां राज्ञां क्षत्रियाणां धराभूर्भूमिस्तत्सिद्धिदस्तस्य व्रतस्य सिद्धिदायकः स्यात् । चपुनरेवमिह ऊरुभुवां वैश्यानां विट् बुधस्तत्सिद्धिदः स्यात् । किंभूतानां वैश्यानामर्थवेदानामर्थवेदानुगानामिति ॥ ३१ ॥

विषविषामरणाहिभगोष्मकृन्निर्ऋतिमारुतमारमणोडुपु ॥

ससुरवर्द्धकिमेपु भवेद्वद्वेर्ब्रतमृचो विधये श्रुतिकर्मणः ॥ ३२ ॥

अथ द्रुतविलम्बितेन ऋग्वेदव्रतनक्षत्राण्यह—विपेति । श्रुतिकर्मणो वेदकार्यस्य वदोर्माण-वकस्य ऋचो विधये ऋग्वेदविधानाय व्रतं भवेत् । केपु विषं जल पूर्वापादा विषामरण कंठे काल आर्द्रा अहिराश्लेषा भग. पूर्वाफाल्गुनी ऊष्मकृतसूर्यो हस्तः निर्ऋतिर्मूलं मारुतः स्वातो मा लक्ष्मीस्तस्या रमणो विष्णुः श्रवण एषा द्वंद्वे एतदुडुपु किंभूतेष्वेपु सुरवर्द्धकिर्देवसूत्रधार-स्तस्य भं चित्रा तेन सह वर्तते यानि तानि ससुरवर्द्धकिमानि तेषु 'विषं जले क्ष्वेदे' इति हैम ॥ ३२ ॥

अलमलोललघुत्रिदशेंद्रसूर्भगहिमांशुहिमांशुमृगीदृशः ॥

ननु वदोर्यजुषो व्रतबंधने मुनिवैरुदिताः श्रुतिपारगैः ॥ ३३ ॥

अथ यजुर्वेदप्रतनसत्राण्याह—अलमिति ॥ ननु निश्चितमलमित्यवधारणे श्रुतिपारंगैः वेदपारमार्तैर्मुनिवरैर्वेदोप्यजुषो व्रतबंधनेऽलोलादितारा उदिताः प्रोक्ताः ॥ अलोलाणि स्थिरसंज्ञानि लघुसंज्ञानि मानि त्रिदशेन्द्रसूः सुरपातिमाताऽदितिः पुनर्वसुः भगः पूर्वाफाल्गुनी हिमांशुः श्रद्धेः मृगशीर्ष एषां द्वंद्वे एषां हिमांशुमृगीदृशश्रद्धेभार्यास्तारा इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

प्रथमभासुरैरिविभूतिभृद्धिपणभोत्तरमेनवसूडुषु ॥

ननु समेत्य हि सामवदुर्व्रतं श्रुतिरसं श्रुतिसंभवमश्नुते ॥ ३४ ॥

अथ सामवेदप्रतनसत्राण्याह—मयमेति ॥ हि युक्तं सामवदुः सामवेदाध्ययनार्थं वदुः प्रथममादिषेण व्रतमेत्य प्राप्य सततं निरंतरं श्रुतिरसं कर्णपुटस्वादमश्नुते प्राप्नोति ॥ प्रथमं अग्निनी असुरैरी विष्णुः श्रवणः विभूतिं मस्य विभति इति विभूतिभृत् शिव आर्द्रा धिपणो गुरुस्तद्वं पुष्यः उत्तरमानि उत्तरात्रयं इनः सूर्यो हस्तः वसवो धनिष्ठा एषां द्वंद्वे उडुषु । किंभूतं श्रुतिरसं श्रुतिसंभवं वेदघोषसंज्ञातम् ॥ ३४ ॥

बलनिषूदनजिद्रथकाश्यपीश्वसनमित्रसवित्रिनवैद्यभैः ॥

सवसुभामखर्दकिभैः स्मृतं व्रतमथर्ववदौ पटुबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥

अथाथर्ववेदप्रते नसत्राण्याह—वद्येति । पटुबुद्धिभिरथर्ववदौ अथर्ववेदमाणवके त्रतं स्मृतं कथितं कैः बलनिषूदन इन्द्रस्तं जितवान् इति तस्मिन्नरुदः 'वज्रिजिह्वजतुंड, इत्यभिधानं वितामणिवचनात् ॥ स एव रथो यस्य तेन रमते वा इति बलनिषूदनजिद्रथो विष्णुस्तस्य भं श्रवणः काश्यपी अदितिः पुनर्वसु श्वसनोऽनिलः स्वाती मित्रोऽनुराधा सविता सूर्यो हस्त इनैवैद्यो इनः सूर्यस्तस्यापि देवत्वात्तद्वैद्यो अग्निनी एषां द्वंद्वे एभिः किंभूतैः सवभिः । वसुभं धनिष्ठा अमरखर्दकिभं चित्रा आभ्यां सह वनेते यानि तानि ते ॥ ३५ ॥

मुक्त्वादिभं कचिदिहादृतमांत्यमेत्रेऽथोवाहते व्रत-

विधौ यजुषां च साम्रां ॥ नांगीकृतं त्रिदशदोष-

यिदृक्षमांत्योपांत्यर्क्षमाहृतमृचामसदस्त्यपीति ॥ ३६ ॥

अथ वसंततिलकेन मन्त्रांतरमाह—मुन्येति । अपि निश्चितमिति असत् अस्ति इतीति किं तदाह यजुषां साम्रां च वेदानां व्रतविधौ इह नसत्रेषु कचिदांत्यमेत्रे रेवत्यनुगधे मुक्त्वा आदिभमग्निनी आदृतं कचिदादिभं मुक्त्वा आत्यमेत्रे आहते । अथो वा ऋचां वेदानां व्रतविधौ त्रिदशदोषवितर्क्षे देवदोषदशनसत्रमग्निनी नांगीकृतं कचिन् आत्योपांत्यर्क्ष उत्तगमा द्रपदांशगीकृतमिति । आत्यमेत्रेऽथो वा इत्यत्र एकारान्तद्विवचनाने संधिकार्यं केषांचिन्मना श्रितत्वाङ्गमेव । यतो ग्रहहृत्तो केचिन्मणी वेत्यादौ अमंश्रिमनिपेवं वर्णयन्ति तदयुक्तं वदन्ते नोपमार्थेन सिद्धत्वात् । मणि इवेऽद्रिग्रामेनाहस्तिपात्रित्यादावसंधिदर्शनाद्य ॥ अन्ये तु यथा दर्शनां संधिममंषि वेज्जन्ति मणि इव दंपतीव गेहमीव मर्जन्तेति हेममृरिभिः स्वयं नांगीकृतं मताश्रितं नु दर्शिनं च संधिकार्यं अतो वक्ष्यमाणाविवारेऽपि ज्ञेयम् ॥ ३६ ॥

पौष्णोदिरारमणकैरविणीशर्गधवाहाख्यवस्वमखर्द्धकिभेषु केचित् ॥

गार्हपत्यं सकलवेदविभेदगानां ब्रह्मेज्यमादिभ्युतेषु धरामराणाम् ॥३७

पुनर्मतांतरमाह—पौष्णेति । केचिद्विधाः सकलवेदविभेदगानां सर्ववेदमेदानुगामीनां
रामराणां विप्राणां पौष्णादिभेषु व्रतमाहुः । पौष्णं रेवती इन्दिरा लक्ष्मीस्तस्या रमणो विष्णु
वणः कैरविणीश्चन्द्रो मृगशीर्षं र्गधवाहाख्यो वायुः स्वाती वसवो धनिष्ठा अमरवर्द्धकिर्म
न्ना एषां द्वेदे । एषु किंभूतेषु ब्रह्मो रविर्हस्तः ईज्यं पुष्यः आदिममश्विनो एषा द्वेदे
भिर्युतेषु ॥ ३७ ॥

सनिजवेदविभुन्यथ न व्रतं भधवमंडलखंडनमंडले ।

पणफरालयतत्परभावगे घनगृहान्निजवेदविभौ भवेत् ॥३८॥

अथ हृतविलंबितेनास्तंगते वेदविभौ तनुमावादिगते च व्रतं निषेधति—स निजेति ॥ भधवो
। सप्रस्वामी चंद्रस्तस्य मंडलस्य खंडनः सूर्यस्तस्य मंडले भधवमंडलखंडनमंडले सूर्यमंडले
केभूते सनिजवेदविभुनि निजनिजवेदस्वामिना सह वर्तते यत्र तस्मिन् स्वेदविभौ अस्तंगते
इति व्रतं न स्यादित्यर्थः । वेदविभावयेति पाठोऽपि त्रिलिंगत्वाद्युक्तः ॥ अथ पुनर्मनगृहा-
नुमवनतः पणफरालयतत्परभावगे निजवेदविभौ सति व्रतं न भवेत् ॥ द्वितीय २ पंचम ९
षष्ठमै ८ कादश ११ भावानां पणफरालयसंज्ञा इति तत्परभावास्तेभ्यः पणफरालयेभ्यः
ररा अग्रेतना भावास्तृतीय ३ षष्ठ ६ नवम ९ द्वादशा १२ आपोऽस्त्रिमसंज्ञा इति बृहज्जातके
प्रोक्तं ॥ पणफरालयाश्च तत्परभावाश्च ते तेषु गते इति ॥ ३८ ॥

सपुरपुष्करकर्ममदैकभःश्रुतिपतिः कुरुते व्रतकामिनं ॥

व्रतविलब्धकलं च निजस्तनोः सुमतिलब्धभुजं मतिलब्धिगः ॥३९॥

अथ तनुमावादिगतवेदपतेः फलं वर्णयति—सपुरेति ॥ निजः श्रुतिपतिर्वेदस्वामी व्रत-
कामिनं व्रतेच्छुं बद्धं व्रतविलब्धकलं व्रतात् विशेषेण लब्धाः प्राप्ताः कला ज्ञानरूपा येन स तं
एषविषं कुरुते । विलब्धफलमिति पाठः विभूषफलमित्यपि पाठः । किं विशिष्टः श्रुतिपतिः तनोः
प्रथममवनात् सपुरपुष्करकर्ममदैकभः पुरं शरीरं प्रथमं १ पुष्करं जलपर्यायत्वाच्चतुर्थं ४
कर्म दशमं १० मदः सप्तमं ७ एषां मध्ये एकमेन एकतरतात्कालिकलप्रराशिना सह वर्तते
यः स च पुनर्मतिलब्धिगः पंचममवनतो निजः श्रुतिपतिः सुमतिलब्धभुजं नरं कुरुते शुभ-
मत्या लब्धं यद्गतादि तद् मुनक्तीति सुमतिलब्धभुक् तं ॥ ३९ ॥

अनिमिपानिमिपद्विपदार्चितौ द्विपदगारगतौ विरतिप्रदौ ।

श्रुतिपवर्णविभू च निजौ तु वा विरतिगावपि तौ विरतिप्रदौ ॥४०॥

अथ व्रते गुरुशुक्रयोर्वेदवर्णस्वामिनोश्च फलमाह—अनिमिपेति ॥ द्विपदगारगतौ षष्ठा-
मावास्थितौ अनिमिपा देवाः अनिमिपद्विपंतौ दैत्याः अनयोर्द्वे एभिर्द्वितौ पूजितौ गुरुः—

विरतिप्रदौ मृत्युदायकौ भवेतां । वा तु पुनः निजौ श्रुतिवर्णाविभू वेदस्वामिर्बर्णस्वामिनौ विरतिगौ
अष्टममावस्थितौ तदा विरतिप्रदौ मृत्युदायकौ स्तः ॥ तु पुनस्तावपि गुरुशुक्रावपि विरतिगौ
मृत्युदौ स्तः ॥ ४० ॥

कुलिशभृत्सचिवे घनगे सिते मंतितापोऽनुगते भववेऽथवा ।

कविलवेऽखिलतर्कचरो भवेच्छ्रुतिपथि द्रुहिणाद्यनुगे व्रती ॥ ४१ ॥

अथ व्रते गुरुशुक्रचंद्राणां शुभफलमाह—कुलिशेति ॥ व्रते मौज्यादिचारकः श्रुतिपथि
वेदमार्गेऽखिलतर्कचरः समस्तवेदविचारगामी भवेत् । किंमृते श्रुतिपथि द्रुहिणाद्यनुगे ब्रह्मादि-
देवानुगामिनि कस्मिन् कुलिशभृदिद्रस्तस्य सचिवे गुरौ घनगे तनुमावगे सति पुनः सिते
शुके मंतितापोनुगते पंचमनवममावगे भववे चंद्रे अथवा कविलवे शुक्रनवांशे सति ॥ ४१ ॥

भगलवेऽथ कृशोऽञ्जलवे जडः कुजलवे कुमना जलवे बुधः ।

धिषणाधिष्ण्यलवेऽध्वरकृद्भुवति मातृमुखो हरिजांशके ॥ ४२ ॥

अथ व्रते सूर्याद्यंशानां फलमाह—भगेति ॥ बटुर्भगलवे सूर्यनवांशे कृशो दुर्बल-
भवति । एवमञ्जलवे चंद्रांशे जडो मूर्खः कुजलवे भौमांशे कुमना विमनस्कः जलवे बुधनवांशे
बुधः पंडितः धिषणाधिष्ण्यलवे गुरुशुक्रनवांशेऽध्वरकृत् यज्ञकर्ता हरिः सूर्यस्तस्माज्जायते इति
तज्जः शनिस्तस्य नवांशे मातृमुखो मूर्ख इति ॥ ४२ ॥

प्रथमदेवपुरोधसि वा गुरौ द्विजविभावसदन्वितमंडले ॥

अहितकालकुले कुलकालकृद्रवाति दंड्यसदंशगतेऽपि च ॥ ४३ ॥

अथ व्रते ब्रूतमहयुक्तशुक्रगुरुचंद्राणां फलमाह—मथयेति ॥ दंडी व्रती कुलकालकृत्
अन्ययनाशको भवति कस्मिन् प्रथमदेवा दैत्यास्तेषां पुरोधसि शुके वा द्विजविभौ चंद्रे
वाऽसदन्वितमंडले दुष्टमहयुक्तमंडले सति पुनरहितकालकुले षष्ठाष्टमगते चैतन्नये असदं-
शगते पापमहनवांशगते सति ॥ ४३ ॥

खरघृणावनुजीव्यचलामृतः शशिनि कंटकगे कृपिको बटुः ॥

कुमुवि शस्त्रयतिविध इहैदवेऽमरपुरोधसि मृरिगुणार्थमुक्त्वा ॥ ४४ ॥

अथ काव्यद्वयेन व्रते केंद्रगतसूर्यादीनां फलमाह—खरेति ॥ इह खरे बटुः खरघृणी
सूर्ये कंटकगे १।४।७।१० सति अचलामृतो नृपस्यानुजीवी सेवको भवति । एवं शशिनि
चंद्रे कंटकगे कृपिको हलकर्मकारकः पुनः कुमुवि मीमे कंटकगे शस्त्री शस्त्रायुधः पुनरैद-
वे कंटकगेऽतिविद्यो नटुविशायुक्तः पुनरमरपुरोधसि गुरौ कंटकगे मृरिगुणार्थमुक्त्वा बटु-
कीर्तिं द्रव्यमोक्षां भवतीति ॥ ४४ ॥

दितिजगुद्धिसहायनभश्चरे चरति तत्र वटुर्व्रतलब्धितः ॥

वृषमखादिकमेति न किं शुभं तरणिजे च जज्ञंगमसंगकृत् ॥ ४५ ॥

दितिजेति ॥ व्रतलब्धितो व्रतप्राप्तकालात् चटुर्वृषमखादिकं, धर्मयज्ञादिकं शुभं किं
एति प्राप्नोति । कस्मिन् नत्र कंटके दितिजबुद्धिसहायनमश्वरे । शुक्रग्रहे चरन्
तस्मिन् चरति गच्छति सति च पुनर्चटुर्जनंगमसंगकृत् चांडालसंगकारी भवेत् कस्मिन्
तरणिने शनौ कंटकगे सति ॥ ' दिवाकीर्तिजनंगमाः ' इति हैमः ॥ ४९ ॥

सदितरावरपाथचतुष्टयं खलु विखोपचयर्क्षकृताश्रयं ॥

सदुपकारफलं व्रतबंधने किल करोत्यथ वर्णिनि सूदयम् ॥ ४६ ॥

अथ व्रते उपचयगतदुष्टग्रहाणां फलमाह—सदितरोति ॥ सदितरावरपाथचतुष्टयं
सदृश्यः शुभग्रहेभ्य इतरे अन्येऽवरपांथा दुष्टग्रहा रविभौमशनिश्रीणचंद्राः एषां चतुष्टयं
कर्तुं पदं वर्णिनि ब्रह्मचारिणि व्रतबंधने सदुपकारफलं सज्जनानामुपकारफलं करोति
किंविशिष्टं चतुष्टयं विखोपचयर्क्षकृताश्रयं विगतं खं दशमं येभ्यस्तानि एवं विधानि उप-
चयर्क्षाणि तृतीय ३ षष्ठे ६ कादश ११ भवनानि तेषु कृत आश्रयो येन तत् ॥ पुनः किंविशिष्टं
सूदयं शुभोदयं ॥ ४९ ॥

ब्रह्मसूत्रधृतिरुत्तमोदयादुष्मगोः क्षणचतुष्टये बटोः ॥

मध्यमा च तदहर्दलावधि स्यादतः क्षणचतुष्टयेऽधमा ॥ ४७ ॥

अथ रथोद्धताछंदसा यज्ञसूत्रधारणे दिनविभागफलं काव्यद्वयेनाह—ब्रह्मेति । उष्मगोः
मूर्यस्योदयात्प्रभातात् क्षणचतुष्टये मुहूर्तचतुष्के बटोर्वह्मसूत्रधृतिर्यज्ञसूत्रधारणमुत्तमा श्रेष्ठा
च पुनरेवं तदहर्दलावधि तस्मात् क्षणचतुष्टयात्परमहर्दलावधि मध्याह्नपर्यंतं ब्रह्मसूत्रधृति-
र्भयमा पुनरतो मध्याह्नतः परं क्षणचतुष्टयेऽधमा ॥ ४७ ॥

सेतशेषदिवसाधमाधमा गर्हिता व्रतविधौ तु वर्णिनः ॥

उत्तमावनिभुरस्य वा हिता मध्यमाऽवनिभुजोऽधमा विशः ॥ ४८ ॥

सेतेति ॥ सा ब्रह्मसूत्रधृतिः इतः प्रातः शेषदिवसो यया सा इतशेषदिवसा एवविधा-
धमा उक्ता सा तु पुनर्वर्णिनो ब्रह्मचारिणो व्रतविधौ गर्हिता वाऽधवा अवनिभुरस्य विप्रस्य
उत्तमा हिता हितकारिणी पुनरवनिभुजः क्षत्रियस्य मध्यमा श्रेष्ठा पुनर्विशो वैश्यस्याऽधमा
श्रेष्ठा ' उपवीतं यज्ञसूत्रम् ' इति हैमः ॥ ४८ ॥

कश्चिदाह दिवसावसानगं याममुज्ज्य दिनपत्रयं कृती ।

ईरितोपनयनाभिलापकं मुक्तसंध्यमखिलं द्विजातिषु ॥ ४९ ॥

अथात्र मतातरमाह—कश्चिदिति । कश्चित् कृती पंडितः दिनपत्रयं दिवसस्य चरण-
त्रयमाह कथयति ॥ किं कृत्वा दिवसावसानगं दिनांतगतं याम चरमग्रहं विहाय किं विशिष्टं दिन-
पत्रयं ईरितोपनयनाभिलापकं ईरितं कथित उपनयनाभिलापो यस्मिंस्तत् । पुनः किं पूर्णं दिन-
पत्रयं मुक्तसंध्यं त्रिसंध्याराहितं केषु अखिलद्विजातिषु ' यमामुज्ज्य ' इति सूत्रपाठे सूत्रछेदकशेषो

दृश्यते । याममुद्गयेत्येतद्युक्तं ततः उद्गयेत्यागे त्रिवर्णात्मकोऽखंडितो दकारोपांत्यो यो धातु-
स्ततः समासं विना ल्युपाप्रवृत्तिस्तेन प्रोद्गयेत्यादि युक्तं अत आह सह समासे कृते उद्गयेति
जायते परंतु सुशाब्दिको उशंति तत्प्रमाणं । ॥ ४९ ॥

स्वोक्तकालगवयोवतामलं स्वोक्तकालसमये द्विजन्मनां ॥

अन्यथा हि रशनानिवंधनं बंधनाय भवति स्वकर्मणाम् ॥ ५० ॥

॥ अधोपसंहारेण व्रते पूर्वोक्तकालं द्रष्टव्यं—स्वोक्तं । अलमित्यवधारणे द्विजन्मनां
विप्राणां स्वोक्तकालसमये पूर्वोक्तनिजकालप्राप्तौ रशनानिवंधनं भवति किंभूतानां द्विजन्मनां
स्वोक्तकालगवयोवतां निजकालप्राप्तवयोर्युक्तानां हि युक्तार्थेऽन्यथा पूर्वोक्तकालाद्यभावे
रशनानिवंधनं स्वकर्मणां बंधनाय पापकर्मणे भवतीत्यर्थः ॥ ५० ॥

नैवं कर्म विदधीत सोमपः षोडशादसमयादनंतरं ॥

भूसुजां द्वियमतुल्यहायनात्र व्रतस्य जिनवर्पतो विशाम् ॥ ५१ ॥

अथ व्यतीने काले विप्रादीनां व्रतं प्रतिपद्यति—नैवेति । सोमपो यज्ञकर्तृविशेषः षोडशा-
दसमयान् षोडशवर्षकालादनंतरं व्रतस्य कर्म व्रतकार्यं नैवं विदधीत न कुर्यात् । अत्र विधेयं ।
तु पुनर्भूसुजां क्षत्रियाणां द्वियमतुल्यहायनाद् द्वाविंशतिवर्षादूर्ध्वं व्रतस्य कर्म न स्यात्पुन-
र्वशां वैश्यानां त्रिजिनवर्षतश्चतुर्विंशतिवर्षत ऊर्ध्वं व्रतकर्म न स्यात् ॥ ५१ ॥

कालशुद्धिरुदिता मया मंदा सेव यास्ति रशनानिवंधने ॥

मेखलां प्रतविमोक्षणे हिता चागमव्रतविधौ द्विजातिनाम् ॥ ५२ ॥

अथोक्तकालशुद्ध्यां ह्यहोरात्रमाह—कांतेति । आगमव्रतविधां वेदव्रतकर्मणि द्विजन्मनां य-
मया कालदिशसेन कालशुद्धिरुदिता प्रोक्ता एव निश्चिनं सा रशनानिवंधने मंजीवं
सदाभस्ति चोपुनः सा मेखला व्रतविमोक्षणे मंजीवं बंधविमोक्षणे हितकारिणी ॥ ५२ ॥

ब्रह्मचारिणमधीरभोदये यो दधाति निजकर्मधर्मगं ॥

साधुनां प्रवसनं ह्यधिष्ठिते प्रोक्तकालवदगारतो निजात् ॥ ५३ ॥

अधोपनयनानंतरं षोडशवर्षमननुद्दिनाह—व्रतवति । अथो अमतरं हि युक्तां
निमादगारतः रश्मिहात् प्रवसनं वने गमनं कर्तृपदं ब्रह्मचारिणं निजकर्मधर्मगं रश्मिहात्
दधाति पुष्पाति विंशतिवर्षं प्रवसनं प्रोक्तकालवत् उपरितकालशुद्धियुक्तं कर्मिन् अधो
भोदये वरराशुर्दग्धं विंशतिवर्षं अधोभोदये साधुनां शुभप्रवेगाधिष्ठिते आश्रिते यत् उपरं
भूत्वापुनोपि वने प्रतिपद्यति ॥ प्रवसनमिति पुन पुनरा इति यावत् । प्रयोगः ॥ ५३ ॥

आनकाननमुवायजस्वनेर्मानुलेन पुनरागमः पुरः ॥

छांदसास्यनिगमोक्तिर्गजितो गोमतिस्वशकसिद्धये वयोः ॥ ५४ ॥

अथ ब्रह्मदेवतात् पुनर्गृहानयने मातुलकृतगौरवं दर्शयति—आनकेति !—मातुलेन कृत्वा ब्रह्मोर्माणवकस्य पुनरागमः पुनर्गृहे आगमनं भवेत् । कस्यै गोमतिस्वशकसिद्धये गौर्वाणी मति-
बुद्धिस्त्वं धनं श सुखं क ज्ञानं एषां निप्यत्तये । किंभूत आगमः पुरोऽग्रे छांदसास्यनिगमोक्ति-
रंजितः छांदसानां श्रोत्रियाणामास्येषु ये निगमा वेदास्तेषामुक्तिभिर्बुद्धौषणैरंजितो रागोक्तः
शेषां प्राप्त इत्यर्थः ॥ पुनः किंभूत आगमः आनकाननसुवाद्यनस्वनैरुपलसितः उपलक्षणार्थे
तृतीया आनकाननं मेरोप्रमुख यत्सुवाद्यं शुभवादित्रं नस्माज्जातैः स्वनैः शब्दैरिति । यतोऽधुनापि
मातुलः किंचिद्धानं विधानं विधाय बटु गृहे आकारयति ॥ ५४ ॥

अथात्र सुबोधार्थं नामतः सर्वे संस्कारा लिख्यते—गर्भाधानं १ पूंसवनं २ सीमितोन्नयनं ३
तथा ॥ जातकर्म ४ तथा नाम ५ चंद्रदर्शनं ६ मेव च ॥ १॥ अन्नस्य प्राशनं ७ चूडा ८ नवमे ९ ज्योषी-
तंकी ॥ गोदानं १० आतिकं ११ चैव आदित्यव्रतमेव १२ च ॥ २॥ उपनिष १३ द्विवाहश्च १४ देवयज्ञ १
स्तथैव च ॥ भूतयज्ञः २ पितृयज्ञो ३ ब्रह्मयज्ञ ४ स्तथैव च ॥ ३॥ नृयज्ञो ५ दार्शिकं १ आश्रमं पश्चादि २
श्रीवर्णी ३ तथा ॥ आश्वयुज्या ४ तु यत्कर्म आग्रहायणकं ५ तथा ॥ ४॥ सत्र्यष्टकोऽथ चैत्री ७
स्मार्तकर्मणि योजिताः ॥ अग्न्योषेय १ मग्निहोत्रं २ दर्शोष्टिः ३ पौर्णमासिकी ४ ॥ ५॥
वातुर्मास्यानि सर्वाणि ५ पशुबंधस्तथैव च ॥ सौत्रामण्याग्रयणानि ७ प्रोक्ताश्चेत हविर्मखाः ॥ ६॥
अग्निष्टोमो १ त्र्यष्टोम २ उक्थ्य ३ चैव तु षोडशी ४ ॥ ७॥ अतिरात्रो ५ वासपेय ६ आसौर्षाम ७
स्तथैव च ॥ सोमसंस्था तु विज्ञेया सर्वशास्त्रास्तु ता स्मृताः ॥ ८॥ शमो १ दमो २ यमश्चैव नियमश्च
४ चतुर्थकः ॥ प्राणायाम ५ प्रत्याहारो ६ ध्यानं ७ धारणं ८ मेव च ॥ योगशास्त्रात्तु
विज्ञेया अष्टौ चैवात्मनो गुणाः ॥ ९॥ अष्टाचत्वारिंशत् स्थाताः संस्कारा गौतमेन
तु ॥ एभिस्तु संस्कृतो यो वै स नरः पुरुषोत्तमः ॥ १०॥ अथैतान् प्रकारात्तरेणाह ॥
गर्भाधानं १ मथापि पूंसवनकं २ सीमितं ३ जातक्रिया ४ नामा ५ गोदानं ६ चैत्रको ७
पनयनं ८ श्रौतव्रतान्यप्यथ ॥ चत्वारि स्तपनं ९ विवाहकरणं १० पंचाभिषेका अपि सं-
स्थाः सप्त च सप्त सप्त इति ते संस्कारजा अप्यमी ॥ ११॥ अथ व्याख्या ॥ नामादिसं-
स्कारा दश १० श्रौतकर्माणि चत्वारि शुक्रियं १ शाकरं २ आतिका ३ उपनिषद् ४
पंचयज्ञा ५ पाकयज्ञसंस्थाः सप्त ७ हविर्यज्ञसंस्था सप्त ७ सोमसंस्था सप्त सर्वोमलेऽत्र
काव्ये ४० चत्वारिंशत्संस्कारा ॥ अत्रानुक्ता अप्यष्टौ ग्राह्याः दमः १ क्षांति २ अनसूया ३
इशौच ४ अनायासः ५ मगलं ६ अकार्पण्य ७ अस्पृहा ८ ॥ ४८॥ इति पाठांतरं ॥ इत्य-
ष्टाचत्वारिंशत्संस्काराः ॥ नन्वत्र केचित्स्वप्नसमयपरसमयानभिज्ञा लुप्यन्ते प्राया ज्ञानानां संस्कारा
न संतीति वदन्त्यतस्तेषां नेत्रोद्घाटनाय सज्जनानां ज्ञानाय च जैनमतसंस्कारा अपि ना-
मतो लिख्यते ॥ यदाहुराचारदिनकरे वर्द्धमानसूर्याः ॥ इह हि केचिद्वर्शनमोहाधिया आ-
र्हतः १ सौमन २ वैशेषिक ३ जैनार्थिक ४ सांख्य ५ चार्वाक ६ तत्त्वालोकनामानुसा-
रिण एव अदृष्टतत्परमार्थं सद्धदयोपात्तप्रमानुप्रमेयप्रमाणप्रभावा आचारमेव तिरस्कु-
र्वन्ति न तेषां वच साङ्गि प्रमाणपदमुन्नेय यतो भगवानुपमादिः अर्हन्पि विदितसमस्तोपमार्थं

आगर्भाद्वाज्याभिषेकपर्यंतं संस्कारांगीकारात्स्वदेहेष्याविश्रकार ॥ यत उक्तमागेम समणस्सणं
 उमहावीरस्त अस्मापि उरोपिठमे हिवसे ठिईपाडिकरंति तई दिवसे चंदसूरदंसणं कुणंति
 इत्यादौ ॥ अत आदौ गृहधर्मकथने षोडशसंस्कारश्चोकाः ॥ गर्भाधानं १ पुंसवनं २ जन्म ३
 चंद्रार्कदर्शनं ४ ॥ क्षीराशनं ५ चैव पृष्ठी ६ तथा निष्क्रमणं स्मृतं ७ ॥ तथाच नामकरण
 ८ मन्त्रप्राशनमेव च ९ ॥ कर्णवेधो १० मुंडनं च ११ तथोपनयनं परं ॥ १२ ॥ पाठालंभो
 १३ विवाहश्च १४ व्रतारोपो १५ तर्कं च १६ ॥ अमी षोडशसंस्कारा गृहीणां परिकीर्तिताः
 ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्यं १ सुल्लकत्वं २ प्रव्रज्या ३ स्थापना ४ तथा ॥ तथाच योगोद्बहनं ५
 वाचनाग्रहणं तथा ६ ॥ ततश्च वाचनानुज्ञा ७ सोपाध्यायपदस्थितिः ८ ॥ आचार्यपदयुक्ति
 श्र ९ प्रतिमोद्बहनं तथा १० ॥ व्रतिति व्रतदानं च ११ प्रवर्तिनीपदक्रमः १२ ॥ महत्तरा-
 पदाचारो १३ दिनरात्रिस्थितिर्द्वयोः ॥ १४ ॥ श्रुत्युस्थितिश्च सव्याख्या १५ मरणस्य विधिः
 पुनः १६ ॥ द्वाराणि षोडशैतानि यस्याचारे प्रदर्शयेत् ॥ ७ ॥ प्रतिष्ठा विंचैत्यादेः १ शा-
 त्तिकं २ पौष्टिकं ३ बलिः ४ ॥ प्रायश्चित्तविधिश्चैव ५ आवश्यकविधिस्तथा ६ ॥ ८ ॥ तथोप-
 वि ७ स्त्रिविधोऽपि पदारोपणमेवच ॥ ८ ॥ गृहिसाम्भोः समानानि द्वाराण्यष्ट प्रकीर्तयेत् ॥ ९ ॥ उप-
 नयनविधिस्तु इक्ष्वाकुवंशयादववंशप्राच्योदीच्यवंशादीनां जैनब्राह्मणानां उपनयेनं यज्ञोप-
 वीतधारणं च तथा सत्रियवंशोत्पन्नानां जिनचक्रिबलदेववासुदेवानां श्रेयांसदशार्णमद्रमभूतीनां
 नृपाणांमपि हरिवंशविद्याधरवंशसंभवानां न जिनोपवीतधारणविधिः ॥ यतस्तेषामंतकुला-
 दिपूत्यस्यमावात्पुनः कदाचिदुत्पत्तौ उग्रकुलादिषु संक्रामणत्वात् ॥ वैश्यानां कार्तिकश्रेष्ठि-
 कामदेवादीनामप्युपनयनजिनोपवीतधारणं शूद्राणामपि आनंदादीनां उत्तरीयधारणं शोषाणां
 वर्णिगादीनामुत्तरांसंगानुज्ञा ॥ जिनोपवीतं हि भगवतो जिनस्य गार्हस्थ्यमुद्रा यतीनां हि नि-
 श्रियानां सर्वमाहाभ्यंतरकर्मविमुक्तानां नव ब्रह्मगुप्तिगुप्तानां ज्ञानदर्शनचारिप्ररतत्रयी इद्र-
 तैवामूद्रावनाभाविता हि सर्वसामुदयो नव हि सूत्ररूपा नव ब्रह्मगुप्तिगुप्तां रतत्रयीं बहति-
 तन्मयत्वात् समुद्रो जलपात्रं करे करोति न सूर्यो दीपं विपतिं । यत उक्तं 'अग्नौ देवोस्ति-
 विमाणां इदि देवोस्ति' योगिनां ॥ प्रतिमास्त्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनां ॥ १ ॥ अतः शि-
 ष्यासूत्रविनिर्जता यतयो ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयकरणाकारणानुमतिषु सदैवावृता ॥ इति जैनमते आ-
 चारदिनकरतश्रवणारिशतसंस्कारा लिखिताः ॥ एषां मंत्रादिविधिस्तु तस्मादेव सविस्तरेण
 ज्ञेयः ॥ उक्तं च भगवत्यामपि ॥ एकादशशतस्यैकादशोद्देशो बलाधिकारे संस्कारविधानं
 ततेणं तस्स महन्बलस्य दारगतस्स अम्मापितरो अणुपुन्वेण द्वितिपडियं वाचं दसूरदं साव-
 गियं वानागरियं वाणागमकरणं वा परं गामणं पयचं कामणं वा जेमावणं वा विंदवट्ठणं वा पठं
 पामणं वा कणवेहणं वा संवच्छरपडिलेहणं वा चोडोयणं वा उच्चणयणं वा आणाणियवणं वा गम्मा-
 दणजम्भणमादीयाइं कोनूयाइं करोति इति सूत्रपाठः ॥ अयास्य वृत्तिः परं गामणि भूमी सत्पणं
 पयचं कामणंति पादाम्यां संचारणं जेमावणंति भोजनकारणं विंदवट्ठणंति कवळवृत्तिकारणं
 पणपामतिं प्रनस्पनकारणं कणवेहणंति प्रतीतिं संवच्छरपडिलेहणंति वणंपयकारिणं चोडो-

पणंगेति चतुर्धरण उवणयणति कलाग्राहण गन्भादाणजम्मणमाईयाइको उगाइकरोतिर्त्त
गर्भादानादिषु यानि कौतुकानि रक्षाविधानादीनि तानि गर्भादानादीन्येवोच्यते ॥ इत्यभयदे
वसूरय ॥ इत्यादि व्यवहारकर्म भगवद्विरप्याचीर्णमागमे विनिर्दिष्टं च यत् व्यवहारो विबहु-
बलव जब देदेइकेवलीविषउमत्पमितादिगाथा ॥ १ ॥ लोकेप्येव 'चतुर्णामपि वेदानां भारको
यादि पारग ॥ तथापि लौकिकाचारमनसापि न लवयेत्' ॥ १ ॥ इति जैनमतावतरण संपूर्णम् ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे व्रताध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

इति श्रीपौर्णिमीयगच्छाधिराजमहारकपुरंदरश्रीमहिमाप्रभसूरीश्वरचरणसरोहचबरोकायमान

शिष्यभावरत्नविरचिताया श्रीकविकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य

मुख्यबोधिकाया व्रताध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

विद्यारंभविवेकप्रकरणम्

विहितेऽथागमारंभे विद्यारंभो मयोच्यते ॥

आगमांगार्गमाशेषशास्त्रविद्यार्थसिद्ध्ये ॥ १ ॥

अथ बहुकरणांतरमध्ययनकरोत्यतोऽनुष्ठमा विद्यारमाध्यायसधानमाह—विहितइति ॥
मपानतरमागमारंभे वेदपठनारंभे विहिते सति मया कालिदासेन विद्यारंभ उच्यते
केमर्थ आगमेति आगमागानि पठगानि आगमाश्च अशेषशास्त्राणि चैता विद्याश्चतुर्दश
भासामर्थसिद्ध्यर्थेऽभिधेयप्राप्तये ॥ १ ॥

शाखापरिवृढपुज्योशनसामुदये ह्युपलब्धे सततं स्यात् ॥

वागर्थिन इह भाषायशसे विद्यारंभोऽमरवरदिवसे ॥ २ ॥

अथ उपचित्रा पादत्रयमात्रासमैकैकपादरचितेन पादाकुलकेन, साधारणविद्यारमशुद्धिमाह
—शास्त्रेति ॥ हि निश्चितं सतत निरतरं वागर्थिन शिष्यस्य विद्यारंभ इह लोके उपलब्धे ज्ञानाय
स्यात् ॥ किंभूतायै उपलब्धे भाषायशसे भाषाया सरस्वत्या यशो यस्या सा तस्यै षक्नुत्व
हन्तिवगुणायेत्यर्थः ॥ कस्मिन् अमरवरदिवसेऽमराणां देवानां मध्ये वर श्रेष्ठ इन्द्रस्तस्य दिवसे
उत्तरायणे इत्यर्थः ॥ पुन कस्मिन् शाखापरिवृढो वेदशास्त्रास्वामी पुज्यो गुरुश्च उशना
गुरुश्चैषा द्वे उदये उद्गमे सति ॥ 'वाणी भाषा सरस्वती' इति हैम ॥ २ ॥

कश्चिदुपक्रममाह महर्षिर्देवशयनवत्कालमपास्य ॥

विद्यायाः क्षितिसुरविभुवर्षे काव्यगुरुदयकालसमेते ॥ ३ ॥

अपात्र मतातरमाह—कश्चिदिति ॥ कश्चिन्महर्षिर्विद्याया उपक्रममारममाह कस्मिन्
क्षितिसुरा विप्रास्तेषां विभुश्चन्द्रस्तस्य वर्षे किंविशिष्टे क्षितिसुरविभुवर्षे काव्यगुरुदयकालसमेते

शुक्रगुरुदयसमालप्राप्ते किंकृत्वा देवशयनवत्कालमपास्य विष्णुसुप्तकालं विहाय आपाद-
शुद्धैर्कादशीमारभ्य कार्तिकशुद्धैकादशीं यावादिति ॥ ३ ॥

पक्षद्वितयगताखिलघसैर्विष्टिकुयोगगलग्रहमुक्तैः ॥

संततमिह किल विद्यारंभः सर्वागमकृतसिद्धिप्रदः स्यात् ॥४॥

अथ साधारणविद्यारंभदिनान्याह—पक्षेति ॥ किलेति प्रसिद्धौ इह विद्यारंभः संततं
निरंतरं सर्वागमकृतसिद्धिप्रदः स्यात् । सर्वागमेषु सर्वशास्त्रेषु कृतं सिद्धिपदं व्युत्पत्तिस्थानं येन
स इति कैः पक्षेति पक्षद्वितयं शुक्लकृष्णपक्षद्वयं तस्मिन् गमो गमनं येषां ते एवविधा वेऽखि-
लाः समस्ता घन्ना दिवसास्तैः किंभूतैः पक्षद्वितयगताखिलघसैः विष्टिकुयोगगलग्रहमुक्तैः
स्पष्टम् ॥ ४ ॥

नक्तंचरपुष्करविधुशैलैस्त्वष्ट्रजपत्पन्नगभगमादयैः ॥

लोललघूडुसमेतैरखिलो विद्यारंभः सुमतिभिरुदितः ॥ ५ ॥

अथ साधारणविद्यारंभनक्षत्राण्याह—नक्तमिति ॥ नक्तचरादिनक्षत्रैः कृत्वा सुमतिभि-
रुदितैरखिलो विद्यारंभ उदितः प्रोक्तः । नक्तचरो रक्षो मूल पुष्कर जलप्राप्त्यापूर्वापादा-
रविर्हस्तः विधुर्मृगशीर्षः शः शमुस्तस्य ऋषमाद्रा एषा द्वेष्टे एभिः किंभूतैः त्वष्टा चित्रा
अजपत् पूर्वाभाद्रपदा पन्नगोऽश्लेषा मृगशिरस्य मः पूर्वाफाल्गुनी एभिरादयैर्युक्तैः पुनः किं-
भूतैः लोललघूडुसमेतैः चरलघुनक्षत्रयुक्तैः ॥ ५ ॥

पर्जन्यार्चितपद्भिदुशनसामाहुरहानि वराण्यभिरूपाः ॥

विद्याया विधुमिहिरदिने वारंभे क्वचिदनसौम्यफलेऽस्मिन् ॥६॥

अथ साधारणविद्यारंभे वारानाह—पर्जन्येति ॥ अभिरूपाः पडिता विद्याया आरंभे
पर्जन्येनैरेणार्चितौ पदौ यस्य म गुरु विद् बुध उशना शुक्र एषामहानि दिनानि वराण्याहुः
कथयन्ति ॥ क्वचिदस्मिन् विद्यारंभे विधुमिहिरदिने चद्रमूर्यदिने अत्र नपुंसके प्रथमाद्विवक्तं
कर्तृपदं अनसौम्यफले अनसौम्यं शुभ फलं ययोस्ते भवेता ॥ फलेऽस्मिन्नित्यत्र संप्रसारणं
मणीवादिवज्जगामेत्यादिवत् ॥ वा इति पञ्चान्न ॥६॥

संधावमस्तमिस्रादिनयोः संधौ मनुजतमिस्रादिनयोः ॥

विद्यारंभोऽमरगुरुशरदोः संधावृत्तोरपि न हि वरदः ॥ ७ ॥

अथ विद्यारंभेऽयनादिष्वपि निषेधानि—संधाविति । अतिनिश्चिनं विद्यारंभो वरदः शुभ
दायको न हि स्यात् । अस्मिन् अमरतमिस्रादिनयो देवरात्रिदिवसयोरुत्तराषण्णदिग्गोचरयो-
र्मेषावित्यर्थः ॥ पुनर्मनुजतमिस्रादिनयोर्मनुष्याणां राज्ञिदिनयो मंडौ पुन मरगुरुशरदो-
र्वृत्तयोः संवत्सरयोः संधौ पुनः ऋतवोः मंडौ ॥ ७ ॥

संसमशरदितोविद्यारंभो विद्यार्थिनि तनुतेऽखिलदंभान् ॥ ७ ॥
मासत्रयमवसानादिगतं समशरदः कुरुते गोसिद्धिम् ॥ ८ ॥

अथ विद्यारंभे समवर्षे निषेधति—संसमेति ॥ संममाः सम्यक् अविपमाः शरदो वर्षाणि
इति प्राक्तानि येन सचासौ विद्यारंभश्चेति समामः । समवर्षगतविद्यारंभो विद्यार्थिनि सिष्येऽ-
खिलदंभान् समस्तकैतवानि तनुते विस्तारयति विद्यारंभे समवर्षनिषेध इत्यर्थः ॥ पुनः समशरदः
समवर्षस्य अवसानादिगतं आदिस्थितं अंतस्थितं च मासत्रयं गोसिद्धिं वाणीनिष्पत्तिं कुरुते
समवर्षस्याद्यत्यमासत्रयं शुभमिति ॥ ८ ॥

संक्रंदनसचिवं विदि धिष्ये संहननाय ११ नभो १० वृष ९ धीस्थे ५ ॥
चंचलराशुदये स तु शस्तोऽथासृजि वांशुभुवि अहितस्थे ॥ ९ ॥

अथ विद्यारंभे लग्नशुद्धिमाह—संक्रंदनेति ॥ विद्यारंभः शस्तः शुभः स्यात् ॥ कस्मिन्
हनने वपुः प्रथमं १ आय एकादशं ११ नभो दशमं १० वृषो नवमं ९ धीः पंचमं ५ एषां
द्वे एतद्वनस्थे संक्रंदन इन्द्रस्तस्य सचिवे गुरौ वा विदि बुधे वा विष्ये शुक्रे वा सति वृ-
नश्चलराशुदये चरराशिलग्ने पुनः अहितस्थे । त्रिस्तुतीयं ३ अहितः पष्ठं ६ एतद्वनेऽ-
ग्निं भौमे अंशुभुवि शनौ वा ॥ ९ ॥

वाडवन्पविदपद्यजनानां विद्यास्वयमखिलासु मयोक्तः ॥ १० ॥
विद्यापृथुलविशेषविभेदारंभविनिर्णयमत्र वदामि ॥ १० ॥

अथ साधारणविद्यारंभोपसंहारमाह—वाडवेति ॥ मया कालिदासेनायं विद्यारंभ उक्तः
तसु वाडवा विप्राः नृपाः क्षत्रियाः विशो वैश्याः पद्यजनाः शूद्रा एषां द्वे एषां विद्यासु
कैमृतासु विद्यासु अखिलासु समस्तासु ॥ अथात्राप्यायेऽहं विद्यापृथुलादिनिर्णयं वदामि ब्रवीमि
वेद्यायाः पृथुलो विस्तीर्णो विशेषः सामान्येतरो विभेदो नानाप्रकारः एषामारंभ उपक्रमस्तान्नि-
गम्यस्तमिति ॥ इति पादाकुलकलंदेनाति चंदोनुशासनतो ज्ञेय ॥ १० ॥

द्युनेतुर्दिनेऽत्रीतजन्मांगजान्हि प्रबुद्धा विदोपे च गाणित्यमूचुः ॥
॥ सेंदरंभमुग्रंक्षरक्षोनलर्क्षैः सनासत्यशेज्येदुर्भाकार्क्यलोलैः ॥ ११ ॥

अथ भुजंगप्रयातेन गणितशास्त्रारंभमाह—द्युनेतुरिति ॥ सदा प्रबुद्धाः पंडिताः गाणित्यं
गणितशास्त्रस्यायं गाणित्यस्तमारंभमूचुः कथयामासुः । द्युनेतुर्दिने सूर्यदिने च पुनरत्रीतजन्मो
गजान्हि अत्रेकरोपे सकाशात् इतं प्राप्तं जन्म येन स चंद्रस्तस्यांगजो बुधस्तस्यान्हि दिवसे
किंभूते विदोपे दोपरहिते रात्रिर्वर्जिते वा ॥ च पुन कैः उग्रशर्षाणि क्रूरसंज्ञमानि रक्षो मूढं
अनलर्क्षं वृत्तिका एषां द्वे एभिः किंमूतैः नामत्यौ अश्विनी ईशः रुद्र आर्द्रा ईज्यः
पुष्य ईदुर्भे मृगशीर्ष अर्कौ हस्तः अंत्यं रेवती लोलाणि भरसंज्ञोद्गान् एभिः सह
वर्तमानैः ॥ ११ ॥

गलग्राहभगांगजापर्वघसानशेषेष्वपास्यैतदारंभ इष्टः ॥

तथारंभका वक्ष्यमाणाः समस्ता विशस्ता भवेदेषु घस्तेषु शश्वत् ॥१२॥

अथात्र गलग्राहोदीन्निषेधति—गालग्राहेति ॥ शश्वन्निरंतरं एतदारंभो गाणित्योपक्रमे इष्टः शुभो भवेत् । केषु अशेषेषु घस्तेषु किं कृत्वा गलग्राहः प्रतीतः भग ईश्वरस्तस्यांगजा विष्टिः पर्वणि एषां घसान् दिवसान् आपास्य त्यक्त्वा तथा पुनरेषु घस्तेषु वक्ष्यमाणा आरंभका विशस्ता मशस्ताः स्युः ॥ १२ ॥

नयेच्छब्दशास्त्रागमारंभकालं कृती शेमुषीशोशनोविहिनेषु ॥

चलक्षिप्रमैत्रोडुशैवाश्रितेषु त्वितो धर्मशास्त्रादिकारब्धिकालम् ॥१३॥

अथ व्याकरणप्रारंभशुद्धिमाह—नयेदिति ॥ कृती पंडितः शब्दशास्त्रागमारंभकालं नयेत् कुर्वीतेत्यर्थः ॥ शब्दशास्त्रं व्याकरणं तदेव आगमः शास्त्रं व्याकरणशास्त्रमित्यर्थः ॥ अथ आगमो वेदो विद्या शास्त्रं वा एतयोरारंभ उपक्रमस्तमिति केषु शेमुषीशो गीष्पतिः उशाना शुक्रः विद् बुधः एषा दिनेषु किंभूतेषु चलसंज्ञानि क्षिप्रसंज्ञानि मैत्रसंज्ञानि भानि शैवमाद्रा एभिर्नक्षत्रैराश्रितेषु युक्तेषु तु पुनरत एषु उक्तमुहूर्तेषु कृती धर्मशास्त्रादिकारब्धिकाळं नयेदिति प्रतीतिं धर्मशास्त्रं स्यात् ॥ 'स्मृतिर्धर्म संहिता' इति हैमः ॥ १३ ॥

त्रियुग्मीश्रवोयुग्मभैः सद्ग्रहाणां समारंभितं सांख्यशास्त्रादिशास्त्रं ॥

मृदुक्षिप्रंशंभूडुशंभूडुयुक्तैर्दिनेष्वेव तद्योधसिद्धिं तनोति ॥ १४ ॥

अथ सांख्यशास्त्रादिप्रारंभशुद्धिमाह—त्रियुग्मीति ॥ सांख्यशास्त्रादिशास्त्रं कर्तृपरं वेदातादिशास्त्रं तद्योधसिद्धिं तनोति विस्तारयति तस्य शिष्यस्य बोधसिद्धिर्ज्ञाननिष्पत्तिस्तौ किंभूत सांख्यशास्त्रादिशास्त्रं सद्ग्रहाणां दिनेषु समारंभितं प्रारब्धं कैः त्रयाणां युग्मयोः समाहारस्त्रियुग्मी पूर्वत्रयमुत्तरात्रयमित्यर्थः । श्रवोयुग्मं श्रवणधनिष्ठा एषा द्वंद्वे एभिर्नक्षत्रैः किंभूतैः मृदुसंज्ञानि क्षिप्रसंज्ञानि शंभूडु आर्द्रा द्वितीयं शंभूडुपदं शंभु ब्रह्मा तत्सोडु रोहिणी एभिर्युक्तैः ॥ १४ ॥

सशर्वाभगाश्रीद्वजेज्यांनुपक्षं शयादिंदुसारंगदक्ससकं च ॥

कवीनास्वारानभिज्ञा वदेयुर्धनुर्वेदविद्यासमारंभकाले ॥ १५ ॥

अथ धनुर्वेदविद्यामुहूर्तमाह—सशर्वेति ॥ अभिज्ञा पंडिता धनुर्वेदविद्यासमारंभकाले शयादिमानि कव्यादिवारान् वदेयुः कथयेयुस्तानाह ॥ शयात् हस्तनक्षत्रात् इंदुसारंगदशां तारकाणां सप्तकं नक्षत्रसप्तकं हस्त १ चित्रा २ स्वाती ३ विशाखा ४ अनुराधा ५ ज्येष्ठा ६ मूलमिति किंभूत सप्तकं सशर्वेति श रुद्र आर्द्रा अः विष्णुः श्रवणः वा नक्षं पूर्वपादा भगः पूर्वोफाल्गुनी अश्विनी अश्विनी इंदुर्मृगशीर्ष अनो ब्रह्मा रोहिणी ईश्वरः पुष्पः अंशुः वरुणस्तारंभं भ शतभिषक् एभिः सह वर्तते यत्तत् । चपुन कवि शुक्रः इन्द्रः सूर्यः आरो भौमः एषा वारान् ॥ १५ ॥

मृदुक्षिप्रतीक्ष्णाख्यलोलोडुवर्गे तमिस्राभियार्तीद्विसृग्वासरेषु ॥

सदा दोषविच्छास्त्रविद्या निरद्रे तथारंभयेद्दारुढं कर्म सर्वम् ॥ १६ ॥

अथ वैद्यकशास्त्रमुहूर्तमाह—मृद्विति ॥ सदा शिष्यः दोषविच्छास्त्रविद्याः वैद्यकशास्त्रविद्या आरंभयेत् । तथा सर्वं गारुढकर्माणि नागदमनादिकं आरंभयेत् पठेत् । कस्मिन् मृदुसंज्ञानि शिप्रसंज्ञानि तीक्ष्णाण्यनि लोलसंज्ञानि उडूनि एषां वर्गे किंभूते निरद्रे निर्गतं ऐंद्र ज्येष्ठा यस्मात्तत्तस्मिन् । च पुनः केषु तमिस्रा तामसी तस्या अभियार्तिवैरा सूर्यः इन्दुः, असृग्भौमः एषां वासरेषु । तमिस्रातमिस्त्रं सदंत्वाविति शब्दप्रमेदे साधुसुदरगणयः ॥ १६ ॥

हरेर्भे च तिष्ये भगक्षे हरेर्भे हरेर्भे च मैत्रे च वेश्वे हरेर्भे

हरेर्भे श्रविष्ठाद्वयेत्ये सदन्हि किलारंभयेन्नाद्यसंगीतशास्त्रम् ॥ १७ ॥

अथ नाट्यसंगीतशास्त्रमुहूर्तमाह—हरेरिति ॥ सदा शिष्यः नाट्यसंगीतशास्त्रमारंभयेत् तदनोद्यमं कुर्यात् । कस्मिन् हरेः सूर्यस्य भे हस्तनक्षत्रे च पुनः तिष्ये पुष्ये पुनर्भगक्षे पूर्वा-
फाल्गुन्यां पुनर्हरेश्चंद्रस्य भे मृगशीर्षे पुनर्हरेरिंद्रस्य भे ज्येष्ठायां पुनर्मैत्रेऽनुराधायां पुनर्वेश्वे-
उत्तराषाढायां पुनर्हरेर्विष्णोर्भे श्रवणे पुनर्हरेर्वायोर्भे स्वातौ श्रविष्ठाद्वये धनिष्ठायां शत-
भिषजि पुनरंत्ये रेवत्यां सदन्हि शुभग्रहवासरे च ॥ १७ ॥

योगवद्विस्तरण्यास्फुजिद्वारयोर्वास्वारस्य यादोर्यदिक्नम्रगे ॥

जैनविद्योग्रलोलाद्यमिश्रांत्यभैर्हस आरंभिता नंदतायै भवेत् ॥ १८ ॥

अथ ज्ञानविद्या जैनविद्यापठनमुहूर्तमाह—योगवद्विरिति ॥ जैनविद्या नंदतायै वृद्धिभावाय भवेत् । किंभूता जैनविद्या आरंभिता सती कस्मिन् हंसे सूर्ये यादोर्यदिक्नम्रगे यादसां जलनंतूना-
मर्थः स्वामी वरुणस्तस्य दिक् पश्चिमा तस्या नमनशीलप्राप्तेऽपराण्हे इत्यर्थः ॥ पुनः कैः उग्रसं-
ज्ञानि आद्यमश्विनी मिश्रसंज्ञे द्वे अंत्यं रेवती एभिर्नक्षत्रै कृत्वा किंभूतैरेतद्वैः तरणिः सूर्यः
आस्फुजित् शुक्रः एतयोर्वावरयोर्वाऽथवा आस्वारस्य योगवद्विः संयोगयुक्ते ॥ १८ ॥

यावनीयुक्तिभाषादिकारंभके दारुणं क्रूरभट्टीशपाथोर्यभैः ॥

विश्वकृद्धीतिहोत्रांत्यभैर्वाचिते वीज्यवारे सदारंभिते शं भवेत् ॥ १९ ॥

अथ यवनविद्यामुहूर्तमाह—यावनीति ॥ सदा यावनी यवनसंबन्धिनी या युक्तिभाषा-
दिका क्रूरा या पारसी इत्यादिका विद्या तस्या आरंभकं उद्यमे आरंभिने प्रारब्धे सति
शं सुखं भवेत् । कस्मिन् वीज्यवारे विगतो नष्ट ईज्यो गुरुयस्मात् गुरुं विनान्यवारे किंभूते
आचिते युक्तेऽन्विते इत्यपि पाठः ॥ कैः दारुणसंज्ञानि क्रूरमानि द्वीशं विशाखा पायसा
जलानामयैः स्वामी वरुणस्तस्य भे शतभिषक् एभि वाऽथवा विश्वकृद्धिना वीतिहोत्रोद्यमः
कलिका अंत्यं रेवती एमिर्युक्ते ॥ १९ ॥

कश्चिदाहोशनोहोत्रभाष्योदयाद्येकः वेदेऽ ष्वि५ ना१२ः

शे १० श ११ घसैस्थ ॥ विंशतीं २० द्रा १४ कृती २२ ।

लेश १६ तत्त्वैरभिन्नानि भाहानि तद्विद्विरुक्तानि च ॥ २० ॥

अथ यावन्त्यां यतांतरमाह—कश्चिदिति ॥ कश्चित् इति ओह । इतीति किं तदाह अत्र यावन्तीविद्यारंभे उशनोऽहः शुक्रवारो भवेत् । अथ पुनस्ताद्विद्विर्घवनविद्यावेदिभिः भाहानि यस्य चंद्रस्वाहानि चांद्रदिनानि उक्तानि । तारीख इति श्लेष्ठभाषाया ॥ किंभूतानि भाहानि तुल्यानि कैः भाष्योदयाद्भानां नक्षत्राणामर्थः स्वामी चंद्रस्तस्योदयात् द्वौ २ एकः १ वेदाः ४ इषवः ५ इनाः १२ आशाः १० ईशाः ११ एतत्संख्यायत्नैः च पुनर्विंशतिः २० ईदाः १४ भाकृतयः २२ इलेशाः भूषाः १६ तत्त्वानि २५ एतत्संख्यायत्नैः । कोऽर्थः दृष्टचंद्र द्वितीयातिथितो हेतुकादितंख्यायिततारीखदिनानि शुभानीति ॥ भाहानीति । 'मः प्रायुक्तोऽथ म सोमोऽया कांतिर्मदिरेदिरा' इत्येकाक्षरकोपे सौमरिः ॥ २० ॥

धीरर्थरेतरक्षिप्रचांद्रैश्वद्विष्ण्वामाशिविद्धेलिराजद्युगम् ॥

शिल्पशास्त्रादिविद्यासमारंभणं स्यादन्ध्यायघत्नान्यघत्नेष्वलम् ॥ २१ ॥

अथ शिल्पशास्त्रमुहर्तमाह—धीरेति ॥ अथमिष्यवधारणे शिल्पशास्त्रादि वास्तुकादिशास्त्रं तस्य विद्यासमारंभणं स्यात् । केपु अन्ध्यायघत्नान्यघत्नेषु अन्ध्यायदिनानि हित्वान्यदिनेषु किंभूतं तत् धीराणि स्थिरज्ञानानि धीरेतराणि चरसज्ञानानि चांद्रं मृगशीर्षे देशं आर्द्रा एतानि अस्यास्तीति वतुष्यस्ये एभिर्गुक्तमित्यर्थः । पुनः किंभूतं विष्ण्वःशुक्रः यागीशो गुरुः विद् बुधः हेलिः सूर्यः राजा चंद्र ण्वा द्युर्गं दिवसप्रातम् ॥ २१ ॥

मातृकारंभकालोऽस्ति पूर्व मया कीर्तितश्चागमारंभकालो व्रते ॥

तत्र ये शेषयोगाः स्मृतास्ते सदैवोक्तिं सर्वविद्यासमारंभणे ॥ २२ ॥

अथोपसंहारेण मुहूर्तमाह—मातृकेति ॥ मया पूर्व मातृकारंभकालः कीर्तितोऽस्ति च पुनरेव आगमरंभकालो वेदारंभसमयः कीर्तितोऽस्ति तत्र आगमादेशे ये शेषयोगाः स्मृताः ते योगाः सदैव सर्वविद्यासमारंभणे ईंशितुं विवेकनाय योग्या भवेयुः ॥ २२ ॥

षट्दलांभोजचक्रे लिखेन्मध्यगं भद्रवर्णं तदाद्येष्टमात्रात्मकम् ॥

वर्णमोकारपूर्वानभिज्ञो दलेऽतोपसव्यान्नमःसिद्धवर्णान्ध्रमात् ॥ २३ ॥

अथ काव्यत्रयेण मातृकाचक्रमाह—पाठेति ॥ अभिज्ञः पठितः षट्दलांभोजचक्रं षट्पणंभद्रवर्णं भद्रवर्णं लिखेत्तच्चक्रे माले इत्यक्षरं मध्यगं मध्यमागे लिखेदित्यर्थः ॥ पुनस्तदाद्ये तस्य चक्रस्याद्ये दले प्रथमे षणोऽष्टमात्रात्मकं पूर्णमग्रे रेखाद्वयं०॥ वर्णं लिखेत् । अत्र प्रथमदलात् अपसव्यं चार्धं सव्यं विदुः प्राज्ञाः "अपसव्यं तु दक्षिणे" इति कोषात् ॥ अथात् दक्षिणधन्येन ओंकारपूर्वात् ओंनमः सिद्धयति लिखेत् ॥ २३ ॥

भत्रयं भास्वदध्याश्रितक्षान्न्यसेद्द्रवर्णेऽय दारा हिमांशोरनः ॥

शेषतारागणाभिन्नषड्भागगाः खंडमात्रादिवर्णेषु देयाः क्रमात् ॥ २४ ॥

अथात्र चक्रे मानि स्थापयति—भत्रयमिति ॥ पंडितो भास्वदध्याश्रितस्तर्हि सूर्यन-

क्षत्रात् मद्रवर्णे मीले स्थितकोष्टके मत्रयं नक्षत्रत्रयं न्यसेत् स्थापयेत् ॥ अथात-

परं चक्षितेन हिमाशोभ्रद्रस्य दाराः नक्षत्राणि क्रमात्क्रमेण खंडमात्रादिवर्णेषु पूर्णरेखाद्वयादिवर्ण-

ेषु देयाः स्थाप्याः । किंभूता दाराः शेषेति शेषतारागणेन मत्रयवर्जितशेषचतुर्विंशतिनक्ष-

त्रगणेनाभिन्नस्तुल्य षड्भागः चतुर्विंशत्रैरेको भागः एवं षड्भागास्तेषु गता इत्यर्थः ॥ २४ ॥*

चक्रमंतर्ममत्रेऽत्र भाषार्थिनश्चार्द्धमात्राक्षरक्षे भवेद्भीतये ॥

शेषभानीति सिद्धये विलोक्यं सदा सर्वविद्यासभारंभसिद्धावदः ॥ २५ ॥

अथैतच्चक्रकोष्ठगतफलमाह—चक्रेति ॥ अत्र चक्रेतर्म मध्यगतवर्तमानचंद्रक्षनत्र कर्तृपदं

भाषार्थिनोऽत्रे मरणाय भवेत् । अपुनरर्द्धमात्राक्षरक्षे कर्तृपदं अर्द्धमात्रे पूर्णरेखाद्वयस्थाने ऋक्षं

वर्तमानर्क्षं नकारस्थाने वर्तमाननक्षत्रं च अनपेक्षिते द्वे नक्षत्रे भीतये भयाय भवेतां । शेषमानि

आभ्या व्यतिरिक्तानि शेषस्थानस्थितनक्षत्राणि सिद्धये सिद्धकार्याय भवेयुः ॥ इत्यदश्चक्रं

सदा विलोक्यं मुष्मिभिरिति शेषः कस्यां सर्वविद्यासभारंभसिद्धौ स्पष्टम् ॥ २५ ॥

मेशातारेशापित्र्यर्मद्वीश्वरज्योतिराख्येननामैदुमासेष्वथ ॥

यंत्रमंत्रोपचारक्रियारंभणं ह्यागमज्ञा विदुःकेचिदार्या इये ॥ २६ ॥

अथ यंत्रमंत्रादिमुहूर्तमाह—मेशेति ॥ हि युक्तार्थे आगमज्ञा शारदातिलकादि-

॥ आह्वानाः यत्राणि सूर्यमनापादीनि मंत्राः शारदातिलकाद्युक्ता उपचारो भूतादिसाधनं

एषां क्रियारंभणं विदुः कथयति ॥ केषु मेशेति ॥ मा वृक्षमीस्तस्या ईशो विष्णुः तारेशश्चंद्रः पि-

रः प्रतीताः अयमा द्वीश्वरो शक्राग्नी एषां व्योतीषि भवणमृगशीर्षमघोत्तराकास्तुनीवि-

ष्णाक्षानक्षत्राणि एषा यो आख्या संज्ञास्ताभिरितानि प्राप्ताणि नामानि येषां ते च यंत्रं

प्रावणः १ एवं मार्गशीर्ष २ माघः ३ फाल्गुनः ४ वैशाख ५ इति इंदुमासाश्च तेषु केचि-

दार्था आचार्या इमे आश्विने मासे विदुः ॥ २६ ॥

श्रौतमंत्राननध्यायतिथ्युद्दिक्षतैश्शुभमत्सावनाहोभिरारंभयेत् ॥

व्यासपक्षद्वयेष्वागमोक्तानमापक्षतिप्रोद्दिक्षताशेषघस्तेष्वपि ॥ २७ ॥

अथ वेदमंत्रमुहूर्तमाह—श्रौतेति । मंत्रवित् आगमोक्तान् श्रौतमंत्रान् वेदमंत्रविमंत्रान्

आरंभयेत् । कैः केषु अंशुमत्सावनाहोभि सौरसावनदिनैः किंभूतैः अनप्ययतिथ्युद्दिक्षतैः

स्पष्टं । अपि पुनः अमावास्या पक्षतिः प्रतिपत् आभ्यां प्रोद्दिक्षतास्त्यक्ता चेऽपेक्षा समस्ताः

पक्षास्तेषु किंभूतेषु व्यासपक्षद्वयेषु आश्विनशुक्लकृष्णपक्षेषु ॥ २७ ॥

यस्य येनास्ति मंत्राद्यमारम्यते तद्धितं तस्य वारंभितं तारके ॥

तस्य देवस्य घस्तेऽथ वारेऽसतो दारुणे यक्षमंत्रादिकं साधयेत् ॥ २८ ॥

अथ मंत्रादिप्रतारं गणशुद्धिमाह—यस्येति ॥ येन पुरुषेण यस्य देवस्य मंत्राद्यमारम्यते तस्य पुरुषस्य तन्मंत्राद्यं आरंभितं हितं हितकारि अस्ति । कस्मिन् तस्य देवस्य तारके वाऽथ तस्य देवस्य घस्ते दिने । अथ मंत्रवित् यक्षमंत्रादिकं साधयेत् कस्मिन् असतोऽशुभस्य यस्य वारे दारुणे तीक्ष्णनक्षत्रे ॥ २८ ॥

स्कंदमार्गपूणाख्यं ५।१०।१५ भद्रासु २७।१२ वा

मंत्रयंत्रव्रतारंभमाद्या विदुः ॥ सानिलेन्द्रानलक्षध्रुव-

क्षेध्वसुं धूर्जटीज्येन्द्रदसाच्युतक्षेपु च ॥ २९ ॥

अथ मंत्रादिस्वामिने वर्णयति—स्कंदेति ॥ आद्याः पुरातनाचार्या अमुं मंत्रयंत्रव्रतारं भे विदुः नानाति कामु स्कंदः कार्तिकेयस्तस्य शुः षष्ठीदिने मारः कंदर्पस्तस्य द्युस्तस्य दशौ पूर्णाख्यभद्रासंज्ञाः प्रतीताः आसां द्वंद्वे आसु च पुनः केषु धूर्जटिः शंभुः आर्द्रा ईश्वर पुष्यः ईद्रे ज्येष्ठा दक्षौ अश्विनी अच्युतः श्रवण एषु आक्षेपु किंभूतेषु सानिलेति आनिल स्वाती इन्द्रानलो शक्राग्नी तयो आक्षं विशाखा ध्रुवर्क्षाणि स्थिरसंज्ञानि एषा द्वंद्वे एषि सह वीर्यं यानि तानि तेषु ॥ २९ ॥

भैमिकाकालमुक्तं दिनं मंत्रिणः सोमसूनोरशीतद्युतेः कव्यहः ॥

आह चाशेषमंत्रोपचारे सदा सद्रणोऽहः कचिच्चांद्रमप्यादृतम् ॥ ३० ॥

अथ समस्तमंत्रोपचारमुहूर्तमाह—भैमिकेति ॥ सदा सद्रण. पंडितवर्गः अशेषमंत्रोपचारो मंत्रिणो गुरोः सोमसूनोर्बुधस्य अशीतद्युतेः सूर्यस्य च एषां दिनमाह कथयति । च पुनः कव्यहः कवेः शुभस्य अहः दिनमाह । अपिपुनः कचिन् चांद्रमश्चंद्रदिनमादृतमंगीदृतं विशिष्टं दिनं भैमिकाकालमुक्तं विष्टिसमयवर्जितम् ॥ ३० ॥

पुष्करागासाशौ च रोपासने पूष्णि धिष्ण्येऽशुल्लसच्छवौ मंत्रिणि ॥

मंत्रयंत्रव्रतोपासनोद्यापने नोचुस्त्यादयोऽभीष्टये सूरयः ॥ ३१ ॥

अथ मंत्रादीनामाराधनादौ मीनार्कादीन्निषेवति—पुष्करेति ॥ अत्र्यादयः सूरयः पंडिता मंत्रयंत्रप्रज्ञाना उपासनां आराधनां च उद्यापनं पूर्णं बलिहृत्यं च अनयो द्वंद्वे एतत्कर्मपदं अभीष्टयेति प्रति नोचुः ननगदुः । कस्मिन् पुष्करे जले अगारं गेहं यस्य स शीनस्तस्य राशौ रोपासने रोपो नाशस्तस्यासनं घनुस्तमिंश्च पूष्णि सूर्ये मीनार्के घनुष्यके सति इत्यर्थः ॥ पुनर्मंत्रिणि गुरो धिष्ण्ये शुभे चांशुल्लसच्छवौ सूर्येण गाहतकांतौ अस्मिन् सति इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

वर्णिनीनां व्रतोपासनं नो हितं कुंभतीर्थोदये वर्णिनीस्थे हरौ ॥
देवतासुप्तिकालेऽथ मासेऽधिके पूर्वदेवेज्यदेवेज्ययोरस्तके ॥ ३२ ॥

अथ कन्यासंक्रांत्यादौ स्त्रीणां व्रतं निषेधयति—वर्णिनीनामिति ॥ वर्णिनीनां स्त्रीणां व्रतो-
पासनं व्रताराधनं नो हितं हितकारि न स्यात् । कस्मिन् कुंभतीर्थोदये कुंभे घटे तीर्थं योनिरूप्य
तिर्यस्य स कुंभतीर्थोऽगस्तिस्तस्योदये । यदुक्तं हेमचंद्रपादैः । 'योनौ पात्रे दर्शनेषु तीर्थशब्द-
स्त्रयोदशार्थेषु' तत्रोक्तः पुनर्हरौ मूर्त्ये वर्णिनीस्थे कन्याराशिगते पुनर्देवतासुप्तिकाले चातुर्मा-
सके अथ पुनराधिके मासे पुनः पूर्वदेवेज्यः शुक्रः देवेज्यो गुरुस्तयोरस्तकेऽस्तमने सति ॥ ३१ ॥

स्यादभद्राय- भद्रा न शंभोर्जपे मीनराशीनयोगस्तथाप्यर्चने ॥

होमकाले शिवायास्तमी तद्भुवः साधने सर्वकालोऽथ मेशोनयोः ॥ ३३ ॥

-अथ महादेवादीनां पूजादौ विष्टिममुखाणामनिधतामाह—स्यादिति ॥ भद्रा विष्टिरभ-
द्राय दुःखाय न स्यात् । तथा मीनराशीनयोगो मीनार्कोऽभद्राय न स्यात् । कस्मिन् शंभोर्भ-
द्रादेवस्य जपेर्चनेऽपि पुनः शिवाया भवान्या होमकाले तद्भुवस्तस्या भवान्या भवतीति
तद्गुणेशस्तस्य तमी रात्रिरभद्राय न स्यात् । अथ पुनर्मेशोनयोः मेशो रमापतिश्च इनश्च
तयोर्विष्णुसूर्ययोः साधने सर्वकालोऽभद्राय न स्यात् ॥ ३३ ॥

निधकालोऽप्यनिधो मया कीर्तितोऽनिधकालोऽथ निधोऽखिले साधने
अन्यदेवव्रतानां स यः सूरिभिस्तत्र सत्यादिभिः प्राक्तनैराहृतः ॥ ३४ ॥

अथ शुभाशुभकालग्रहणे निजमतं द्रवयति—निधेति ॥ मया कालिदासेन योऽनिधः काळो
ऽपि निधः काळः कीर्तितः । यो निधकालोऽनिध उक्तः कस्मिन् अन्यदेवव्रतानां साधने प्राक्तनैः
सत्यादिभिः सत्यनामाचार्यादिभिः सूरिभिः पंडितैस्तत्र स मंत्रदेवस्य शरीरे अखिलः काळ
आहृतोऽंगीकृतः ॥ ३४ ॥

कास्यकंठशयोरांसि गर्भःकटिःपट्टयं मंत्रदेवस्य सेनर्क्षतः ॥

त्रय ३ मि ३ रामा ३ विध ४ वेदा ४ ग्रि ३ रामा ३ गर्भ ४ रोपधी-

शाबलास्तुल्यमानाः क्रमात् ॥ ३५ ॥

अथ मंत्रदेवस्य शरीरमाह—कास्येति । ओषधीश्वरं द्रव्यं तस्याबला नायौ नक्षत्राणि सेन-
र्क्षतः सूर्यनक्षत्रात् क्रमात् त्र्यग्न्यादिभिस्तुल्यमाना मंत्रदेवस्य वास्यादिकानि स्युः ॥ त्रयः ३ अग्नय
स्त्रयः रामास्त्रयः ३ अग्नयश्चत्वारः ४ वेदाश्चत्वारः ४ अग्नयस्त्रयः ३ रामा ३ स्त्रयः ३ आगमाश्चत्वारः
४ एषां द्वे द्वे एभिः । कोऽर्थं सूर्यनक्षत्रात् नक्षत्रत्रयेण मंत्रदेवस्य कं मस्तकं स्यात् । एवं पुनर्न-
क्षत्रत्रयेणास्यं मुखं पुनर्नक्षत्रत्रयेण कंठः एषां द्वे द्वे कास्यकंठाः पुनर्नक्षत्रचतुष्केण
शयो हस्तौ पुनर्नक्षत्रचतुष्केण उरो हृदयं एषां द्वे द्वे हस्तपुत्रेण उरसा च शयोरांसि

इति बहुवचनं सिद्धं पुनर्नक्षत्रत्रयेण गर्भ उदरं पुनर्नक्षत्रत्रयेण कटिः पुनर्नक्षत्रत्रयेण पदद्वयं चरणद्वयं स्यात् ॥ प्राण्यंगानां द्वे नित्यमेकत्वं अत्र तदनित्यत्वाद्यवबहुवचनं सिद्धं यतः "रासहंसारस्वगी चंचुचरौरतिलोहितैः" इत्यभिधानर्चितामाणिः । एवं सर्वत्र होयम् ॥ ३५ ॥

मूर्ध्नि मंत्रो विसिद्धिमुखे सिद्धिदः कालकृत्कंधरायां च दोषो रिपुः ॥
वक्षसीष्टोऽपि गर्भे भवेदर्थहा साधनादर्थदायी तु कट्यंग्रिषु ॥ ३६ ॥

अथ मंत्रशरीरावयवफलमाह—मूर्ध्नि इति ॥ यदि मंत्रपुरुषस्य मूर्ध्नि मस्तके वर्तमानचंद्र-
नक्षत्रं स्यात्तदा साधनान्मंत्रो विसिद्धिर्गतासिद्धिर्भवेत्साधकस्येति शेषः ॥ एवं मुखे सिद्धिदः
अपुनः कंधरायां प्रीवायां कालकृत् मुत्युदायकः । दोषो हस्तयो रिपुर्वैरी वक्षसि हृदये इष्टो
वह्नयः गर्भे उदरेऽर्थहा द्रव्यघातकः कट्यंग्रिषु कटौ चरणयोश्चार्थदायी द्रव्यदायकः ॥ ३६ ॥

स्वस्वयंत्रादिकारंभशुद्धौ तदुद्यापनं तत्र वा पुण्यकाले हितं ॥
मंत्रजाप्यांशहोमं च कुर्यात्सदा चेदपापित्तचक्रे भशुद्धिर्भवेत् ॥ ३७ ॥

अथ मंत्रोद्यापनकालशुद्धिमाह—स्वस्वेति ॥ तदुद्यापनं तस्य मंत्रस्योद्यापनं तत्र स्व-
स्वमंत्रादिकारंभशुद्धौ वाथवा पुण्यकाले हितं हितकारी स्यात् । च पुनश्चेद्यादि अपापित्तच-
क्रे भशुद्धिर्नक्षत्रशुद्धिर्भवेत् ॥ 'अपापित्तधूमध्वनौकृष्णवर्त्मा' इतिहैमः ॥ तदा सदा मंत्रजाप्यांश-
होमं कुर्यात्साधक इति शेषः । मंत्रजाप्यस्यांशो दशांशः स चासौ होमस्य तं यथा शत-
संख्यमंत्रे दश आहुतय इति ॥ ३७ ॥

अथाग्निचक्रं विलिखेन्नवासं क्रमेण धाराधरभिद्भिगत्वात् ॥
स्वीदुर्जैर्द्वैनिसितारजीवाद्युकेतवस्तत्र नियोजनीयाः ॥ ३८ ॥

अग्निचक्रम्

| के | बु | शु |
|----|----|----|
| २७ | ६ | ९ |
| रा | सू | श |
| २४ | ३ | १२ |
| घृ | मं | चं |
| २१ | १८ | १५ |

अथोपेन्द्रवज्रयाग्निचक्रमाह—अथेति ॥ सुधीराग्निचक्रं लिखेत् ॥ किं
मृतं नवास्वं नवकोष्टमित पुन सुधिया तत्राग्निचक्रे क्रमेण धाराधरा
अर्चतास्तान् भिनत्तीति तज्जिद् ईदस्तस्य दिक् पूर्वा तस्यारूपत्वात् कोष्टात्
रवीन्द्रादयो योजनीयाः । रविः सूर्य इंदुजो बुधः इंदुश्चंद्रः ऐतिः शनि
सेतः शुक्र आरो भौमः जीवो गुरुः अगुः राहुः केतुश्चैषा द्वे इति ॥ ३८ ॥

भपंजरं हंससमाश्रितक्षाययाक्रमं चक्रगतग्रहेषु ॥

होमे विदध्यान्नवधा विभक्तं खलायगं सिद्धिनुदास्ति यत्तत् ॥ ३९ ॥

अथास्मिंश्चक्रे मानि स्थापयति—भपंजरमिति ॥ सुधीः हंससमाश्रितक्षारमूपेनक्षत्रा-
ययाक्रममनुक्रमेण होमे होमकुदे चक्रगतग्रहेषु भपंजरं सप्तविंशतिनक्षरसमूहं नवधा विभक्तं त्र-
भिर्भगैः कृत्वा विदध्यात् न्यभेदिन्यर्थे ॥ तत्र यदं खलस्यगं मूत्रग्रहमुखगत तज्ज सिद्धि-
सिद्धिनाशकमस्ति ॥ ३९ ॥

कवेः कचित्कल्पित ओषधीशे भपंजरांशश्च विधोः सितेऽस्तु ॥

तथैव शेषत्रिकलेंदुभागास्थितं तद्वस्त्रयमर्थहृत्स्यात् ॥ ४० ॥

अथ मतातरमाह—कवेरिति ॥ कचित् कवे शुक्रात् भपंजरांशो नञ्जसमूहभाग' ओष-
धीशे चन्द्रे कल्पित च पुन कचित् विधोश्चन्द्रात् भपंजरांश सिते शुकेऽस्तु । तथैव पुन शेष-
त्रिकलेंदुभागास्थित शेषकलात्रयं चन्द्राशस्थित तद्वस्त्रय तद्वस्त्रयमर्थहृत् द्रव्यनाशक स्यात् ॥ ४०

जन्यादिसंस्कारविधानहोमे होमैदिरायाश्च हरेः क्रतौ स्यात् ॥

नित्ये ग्रहेष्टौ च हुताशचक्रं नैमित्तिके दोषवहं न शश्वत् ॥ ४१ ॥

अथ जन्मादिविधानहोमेऽदश्चक्र निर्दूषणमाह—जन्येति ॥ शश्वत् निरंतर हुताशचक्र-
मग्निचक्र दोषवह दूषणधारक न स्यात् ॥ जन्यादिसंस्कारविधानहोमे जातकर्मादिविधि-
होमे च पुनरिदिराया लक्ष्म्या होमे पुनर्हरे कृष्णस्य होमे पुनर्नित्ययज्ञे पुनर्ग्रहेष्टौ ग्रहस्य
इष्टिर्यज्ञस्तस्या पुनर्नैमित्तिके वैश्वदेवे । होमैदिराया इत्यत्र सप्तम्यकृत्वचनेऽप्यादेशे कृते
प्रकारलोपे पुन सैषादिसहिता । यदुक्त लौकिकायेह तद्देव बहुलं भवेत् । सेमाभ्याददे सैषा
नित्यादीनामदुष्टता इति मार्गमाश्रित्य महाकविना संपि कृतः ॥ ४१ ॥

यस्या मयारंभणशुद्धिरुक्ता तच्छुद्धिकालेऽथ तदीरितार्थ ॥

न संशयोऽत्र व्यवहारकर्म विधेयमादेशिभिर्मण्यशेषम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे विद्यारभविषेकाध्यायो नवमः ॥ ९ ॥

अथोपसहारमाह—यस्येति ॥ निश्चित यस्या मया कालिदासेन आरभणशुद्धिविद्यारमशुद्धि-
रुक्ता कस्मिंस्तस्या विद्याया शुद्धिकालस्तास्मिन् । अथ पुनरादेशिभिर्मण्यै-
रशेष व्यवहारकर्म विधेय कर्तव्यं किंभूत तदीरितार्थं तथा शुद्ध्या ईरित-मेरितोऽ-
र्थो यस्मिंस्तत् । अत्र निर्णये संशय सदेहो नास्ति ॥ ४२ ॥

इति श्रीपैणिनीयगच्छाभिराजमहारकपुरंदरश्रीमहिमाप्रभसूरीश्वरचरणसरोजद्वयवतीकावगान

शिष्यभावरत्नविरचिताया श्रीकविकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य

शुद्धबोभिकायामनेकविद्यारमवर्णन नामाध्यायो नवमः ॥ ९ ॥

राजसत्ताध्यायः । ९

अथार्थपाशायनकेऽचलाभृतामुक्तोऽभिषेको नृपवंशजन्मनां ॥

पुष्पंधये तौलिगते त्वलं हरौ केचित्सहस्याहुरिषेऽभिषेचनम् ॥ १ ॥

अथ पठितानतर नृपवंशजाना राज्याभिषेको भवत्यता राजसत्ताध्यायसंज्ञानमाह
—अथेति ॥ अलमित्पवधारणेऽन्यानतर अचलाभृतामहीपतीना नृपवंशजन्मना राजवंशजाना-

१ उक्तं च वीरमिश्रोदये—निवाहयात्रामतवास्तुयहचैलोपवीतप्रदण्डे युषादी ॥

—तथाच दुर्गार्चनसंविधाने न कश्चिच्च परिचिन्तनीयम् ॥ १ ॥

मामभिषेकः पद्याभिषेक उक्तः। कभिन्नर्षपाशायनकेऽर्थो घनपतिः कुबेरस्तस्य आशा उरुता
तस्या अघनके सति। तु पुनर्हरो सूर्ये पुष्पं घयति आस्वादयतोति पुष्पं घयो भ्रमरः भ्रमरशब्द-
पर्यायस्य ज्योतिषे वृश्चिकपर्यायार्थत्वात् वृश्चिकस्तस्मिन् वृश्चिकसंक्रान्तावित्यर्थः ॥ पुनस्तौलि-
गते तुलाराशित्पे रवौ केचिदाचार्याः सहसि मार्गशीर्षे इषे आश्विने चामिषेचनमाहुः ॥ १ ॥

स्फुरद्घने निर्जरवंदिते च धिष्येऽभिषिचेदिह सारवीर्यं ॥

सिंहासनस्थं किल सार्वभौममितातपत्रधृतिमीशमुर्व्याः ॥ २ ॥

अथ गुरुशुक्रगुहौ चक्रवर्त्यभिषेचनमाह—स्फुरद्घनेति ॥ किलेत्यवधारणे जन इह
उठ्या ईशं भूपं सार्वभौमं मांघातुप्रमुखपट्टचक्रवर्तिसमानं जैनमते तु धरतादिसमानं चक्र-
वर्तिनमभिषिचेत् ॥ कस्मिन् निर्जरवंदिते गुरौ धिष्ये शुक्रे च किंभूते स्फुरद्घने दिव्य
शरीरेऽनस्तंगते इत्यर्थः। किंभूतं भूतं सारवीर्यं आरस्य वीर्येण बलेन सह वर्तते य. स त
पुनः किंभूतं सिंहासनस्थं पुनः किंभूतं इतातपत्रधृतिं इता प्राप्ता आतपत्रस्य उत्तरा
धृतिधारणं येन स ते ॥ २ ॥

सौरं सदा मंडलनेतुरद्वमनादृतापादनमोनभस्यं ॥

किलाभिषेके व्यधिकेंदुमासं महीभुजः पेशलमाहुरार्याः ॥ ३ ॥

अथ देशस्वामिनोऽभिषेकशुद्धिमाह—सौरमिति ॥ किलेति सत्ये सदा आर्याः मंडलने-
तुरद्वेष्टास्वामिनो महीभुजो भूपतेरभिषेके सौरमद्रं सौरवर्षं मनोहरमाहुः कथयति ॥ किंभूतमद्रं
अनादृतास्त्वत्त आपादः नभः आवणः नभस्यो भाद्रपदश्च एते मासा यास्मिन्सत् अनाधृता-
पादनमोनभस्य पुनः किंभूतं व्यधिकेंदुमासं अधिकचद्रमासवर्जितं। मध्यममंडलावीशः मध्यमो-
ज्जेतनसम्प्राजापेक्षया सामान्यः॥ मंडलस्य द्वादशरानमंडलमध्यात् मंडलमात्रस्य स्वामी इति हैम ॥
'नृपोऽन्यो मंडलेश्वरः' इत्यमरः॥ अन्यो भूम्येकदेशे यो नृप इति तट्टीका ॥ 'मध्यमो मंडलेश्वरः'
इति इलायुषः ॥ भूम्येकदेशे द्वौ इति तट्टीका ॥ ३ ॥

दुर्गाधिपं मंडलपालवत्स्यात्सदाभिषिचेदथ शासनेशं ॥

प्रजापतेः प्राग्गदिताभिषेककालः कवीज्योदयभागपीठः ॥ ४ ॥

अथ दुर्गस्वामिनोऽभिषेकशुद्धिमाह—दुर्गेति ॥ सदा जनो दुर्गाधिपं चप्रस्वामिनं शासनेशं
निर्देशाधिपं मंडलपालवत् देशनेतृवत् अभिषिचेत् ॥ अथ प्रजापतेर्नृपस्य प्राग्गदिताभिषेक-
कालोऽपि उक्तः स्यात्। किंभूतः कवीज्योदयभाग् शुक्रगुरुद्वययुक्तः। प्रजापतेरिति ॥ सामान्य
रानशद्वयाधी भूपणा नृप इति हैमवचनात् ॥ ४ ॥

रिक्तातिथिं विष्टिमपास्य भूभृतोऽभिषचनेऽक्षीणविभावरीश्वरं ॥

पक्षादुभौ चानु कृयोगवर्जितौ हितौ भवेतामपि भूषणाचितौ ॥ ५ ॥

अथ भूपाभिषेके पञ्चशुद्धिमाह—रिक्तेति ॥ भूमृतो महापस्याभिषेचने उभौ पक्षौ हितौ
हिनकारिणौ भवेतां किंरुत्वा रिक्तातिथिं विष्टिं क्षीणचन्द्र चापास्य हित्वा किंभूतौ पक्षौ कुयोग
वर्जितौ अनु पश्चात् किंभूतौ भूषणाचित्तौ सुयोगान्वितौ ॥ ५ ॥

गुर्वौपथीशास्फुजिदंशुमद्विदामतिस्फुरद्विबकलाविभावतां ॥

तमीशशुद्ध्याश्रितभस्य गोविभोरहानि शस्तान्यभिषेककर्मणि ॥६॥

अथाभिषेके दिनशुद्धिमाह—गुर्विति ॥ गोविभोर्महापदेरभिषेककर्मणि गुरु बृहस्पति-
ओपथीशश्चद्र आस्फुजिच्छुभ्र अशुमान् सूर्य विद् बुध एषा द्वे अहानि दिनानि शस्तानि
प्राक्तानि । किंभूताना अतिस्फुरद्विबकलाविभावता अधिकदैदीप्यमानमडलकलाप्रभायुक्ताना
अस्तरहितानामित्यर्थ ॥ किंभूतस्य गोविभो तमीशस्य चद्रस्य शुद्ध्या दोषवर्जनेन आश्रित
भ नक्षत्र राशिर्वा येन स तस्य तमीशशुद्ध्याश्रितभस्य ॥ ६ ॥

राजा भवेद्बाहुजवंशभूर्यदाभिषेचने भूमिभुवोऽप्यहः स्मृतं ॥

तस्यासुरो याम्यमहोऽत्र वा विदो दिनं न सर्वत्र जगाद देवलः ॥७॥

अथाभिषेके दिनशुद्धौ ऋषिमनमाह—राजेति ॥ यदा बाहुजवंशभू क्षत्रियो राजा भवेत्तदा
तस्याभिषेचने भूमिभुवो भौमस्याप्यहर्दिनं स्मृतं । अत्र देवलनापि सर्वत्र वारेषु पञ्चाभिषेक
न जगाद उवाच कतिपयवारे जगादेत्यर्थ । अहोऽत्र इत्यत्र रत्नविधिमपास्य कस्याचिन्मतमाश्रित्य
कविना उत्तविधिरगीरुत ॥ ७ ॥

राज्ञामलोल्लेणकलंकर्मेन्द्रभक्षिप्रेदिरानायकतारकासु च ॥

मैत्रात्यचित्रास्वभिषेचनक्रियामुशंत्यविद्धासु शुभेतेर्बुधाः ॥ ८ ॥

अथाभिषेके नक्षत्राणि दर्शयति—राज्ञेति ॥ बुधा राज्ञामभिषेचनक्रियामुशति वाञ्छति
कासु अलोल्लानि धीरसंज्ञानि एणकलञ्चद्रस्तस्य भ मृगशीर्ष ईद्रम ज्येष्ठा सिम्रपञ्चानि इदिरा-
नायक कमलापतिर्विष्णु श्रवण आसा द्वे आसु तारकासु भेषु च पुनर्मेरुमनुरावा अल
रेवती चित्रा आसु किंभूतासु शुभेतेरे पावग्रहेरविद्धासु ॥ ८ ॥

अनिर्वलेर्निर्मलमंडलांशुभिर्जनीशलग्रेणविपाकपांशुभिः ॥

भतश्च लग्नादपिसद्गृहोपगेर्नृपाभिषेको नृपशक्तिभागभवेत् ॥९॥

अथाभिषेके गोरशुद्धिमाह—अनिर्वलेरिति ॥ नृपाभिषेको राज्याभिषेको नृपशक्तिभाग
राज्ञ शक्त्यस्तित्त प्रभुत्वोत्साहमत्रना इति ताभिरान्वितो भवेदित्यर्थ ॥ वै मनो गोचररा
शेर्लगाच्च जनीशो जन्मराशेस्वामी लग्नेशो जन्मलग्नस्वामी विपाकपांशो रक्षाभ्यामी अनु सूर्य
एषा द्वे एभि निर्भूतैरनिर्वलेर्बलिष्ठैः पुन किंभूतैर्निर्वण विशदा मन्त्रशशो विवाकिरणा
एषा ते तैस्तरहितैरित्यर्थ ॥ पुन किंभूतैर्मन्त्रहोपगै शुभग्रहान्वितै ॥ ९ ॥

शस्तस्तिमित्रीजितुमादिहोरास्थिरांशगुर्वशवतीह लग्ने ॥

चरेतेग्वंशुमंदशुजारैरुचायारिगैर्भूमिभुजोऽभिपेकः ॥ १० ॥

अथाभिषेके लग्नशुद्धिमाह—शस्त इति ॥ भूमिभुजो महीपतेरभिषेकः शस्तः प्रोक्तः
कस्मिन् इह चरेतरे स्थिरे लग्ने किमूते लग्ने तिर्मिर्मान् स्त्री कन्या जितुर्म मिथुनः आदिर्मेपः
एतेषां होरा लग्नाद् तिर्मिस्त्रीजितुमादिहोरा स्थिरांशो नवांशश्च गुर्वंशो गुरुनवांशश्च एषां
द्वंद्वे एते अस्यास्तीति यत्तुप्प्रत्यये एतद्वत् तस्मिन् । पुनः केः अगुः राहुः अंशुमान् सूर्यः
अंशुजः शनिः आरो भौमः एषां द्वंद्वे एभिः अग्वंशुमदशुजारै किमूतैः त्रयस्तृतीयं ३ आय
एकादशं ११ अरिः षष्ठं एषु गतैः ज्यायारिगैः ॥ १० ॥

सौम्यैरमित्रांत्यलयान्यभावगैरसाधुदृष्ट्युद्भिन्नतमूर्तिभिर्ग्रहैः ॥

स यो विमुत्वं विशुरेति वै भवेद्रसेशमत्तेभकदंवकेसरी ॥ ११ ॥

स यो विमुत्त्व विमुरोत व नयप्रतेशिनितानि ॥
 अपोचितभातगतग्रहरभिपेकफलमाह—सौम्यैरिति ॥ यो विभु सौम्यैर्ग्रहैर्विमुत्त्वं यदा-
 भिपेकमेति प्राप्नोति किंभूतैर्ग्रहैरिति पष्ठ ६ अत्यो द्वादशं १२ लयो अष्टम ८ एभ्योऽन्य-
 भावैरितरभावप्राप्तैः पुन विभूतैः सौम्यैर्ग्रहैरसाधुदृष्टयुष्मिन्नतमूर्तिभिः कूरग्रहदृष्टिवर्जितमण्डलै-
 वै इति हेतौ स विभुः रशेशमतेभकदवकेसरी भवेन् रसा भूमिस्तस्या ईशा राजानस्त एव
 मतेषाः प्रमत्तगजास्तेषा कदव समृहस्तस्मिन् वसगीन् केसरी सिंह इति ॥ ११ ॥

शीर्षेणैवैश्वोपचयाश्रितेः कुजे निजोन्नये चोपचयेऽचरोदये ॥

पट्टाभिषेकादचलाभृतो दरो रिपोः पदं नैव दधाति मंडले ॥ १२ ॥

अथ भौमशीर्षोदभैरविपेङ्कलमाह—शीर्षोदयैरिति ॥ अत्राशुतो महीपते, पट्टामिपेका
रिपोः शत्रोर्दोरो भयं मंडले देशे पदमेव दधाति तत्र रिपुभय न स्यादित्यर्थः ॥ कैः उ
च्यतांश्रितैः त्रि ३ पद ६ दशमै १० कादशा ११ भावगते, शीर्षोदयैर्भिधुनसिंहकन्यातुल
युश्चिरकुम्भै पुन वस्तिमन् उपनये त्रिगृह्दशमैकादशभवनेऽनरोदये स्थिरलमे च निजोष
होच्चभावगते कुजे भौमे सति ॥ १२ ॥

अथातपत्रं विलिखेद्विदिग्धजं भद्रासनं तत्तल्लभपूर्वगं ॥

सव्यापसव्यांसंगचामरद्वयं तद्राज्यमुद्रावलयं च कीर्तितम् ॥ १३

अथ सानमुद्राचक्रमाह—अथेति ॥ सुवी. जानपत्रं उत्रं त्रिभिस्त्रेण । पुनरेवं विदिद् विदि
ध्वनो यमिरसत् विदिग्वचन एवविषं तत्तत्र उग्रपुंगव मद्रामनं पुनः सचपापमश्याममं
मरद्ध्यं वामदक्षिणम्भ्रं सप्तवामरयुग्म त्रिभेत् । नुबंभदा राज्यमुद्रावत्रं राज्यचिन्हं
प्रकीर्तितम् ॥ १३ ॥

विरोचनाधिष्ठितभाद्रमंडलं सिंहासनावस्तलमध्यतो न्यसेत् ॥

सव्यापसव्योभयपार्श्वकोदितं तावत्तलस्थं भयुगं वलार्थहृत् ॥१४॥

अथात्र चक्रे नक्षत्राणि स्थापयति—विरोचनेति ॥ विरोचनाधिष्ठितभात् सूर्यनक्षत्रात् सिंहासनावस्तलमध्यतोऽत्र मंडलं न्यसेत्स्थापयेद्देवज्ञ इति शेष । किंभूतं ममडलं सव्यापसव्योभयपार्श्वकोदितं वामदक्षिणोभयपार्श्वस्थित इति नक्षत्रस्थापना ॥ अथेवा फलमाह ॥ तावत्तलस्थं सिंहासनावस्तलमध्यभागस्थितं भयुगं विभो स्वामिनो वलार्थहृत् सैन्यपदार्थनाशक स्यात् ॥ १४ *

अधोऽसयुग्मे भचतुष्टयं वरं पश्चाद्विदिकेतुयुगे प्रमापणं ॥

ताराचतुष्के भचतुष्कमिन्द्रदिग्भुजाश्रितं मंडलकीर्तिवर्द्धनम् ॥१५॥

अधोऽसेति ॥ अधोऽसयुग्मे भद्रामनावस्तलस्कथयुग्मे भचतुष्टयं नक्षत्रचतुष्कं वरं श्रुतं स्यात् । पश्चाद्विदिकेतुयुगे ताराचतुष्के विदिशोर्गतं भयुगं प्रमापणं विशरणं (प्रमय प्रमापणमिति हैम मापणं) व्यापादनं स्यात् । इन्द्रदिग्भुजाश्रितं पूर्वदिग्भुजयोर्गतं भचतुष्कं उभयतो नक्षत्रस्य युग्मं मंडलकीर्तिवर्द्धनं नीवृषशोवृद्धिकारकं स्यात् ॥ १५ ॥

ततो भवेदासनपीठमध्यगं ताराद्वयं भीतिकरं प्रकीर्णयोः ॥

ज्योतिश्चतुष्कं जनयेद्धितं विभोच्छत्रश्रवोसर्षचतुष्टयं लयम् ॥१६॥

तत इति ॥ ततस्तद्वनार आसनपीठमध्यगं भद्रासनमभ्यभागगतं ताराद्वयं भीतिकरं भयानकं स्यात् । प्रकीर्णयोश्चामरयोर्ज्योतिश्चतुष्कं हितं जनयेत् ॥ छत्रश्रवोसर्षचतुष्टयं छत्रकर्णस्कथनसत्रचतुष्कं लयं मृत्युं जनयेत् । विभो स्वामिन इति सर्वत्र योज्यं । यत्र नक्षत्रचतुष्कं प्रोक्तं तत्र उभयपार्श्वं भद्रं स्थाप्यम् ॥ १६ ॥

तारात्रये छत्रविमोलिसंस्थे पट्टाभिषेकान्नखदेवता स्यात् ॥

सम्राडतश्चेदिह चक्रवर्ती स्वराडपापे ननु छत्रयुक्स्ये ॥ १७ ॥

तारेति ॥ त्रयविमोलिसंस्थे छत्रशिखोपरिस्थिते तारात्रये इह पट्टाभिषेकात् स्वराड् निजराजा नरदेवता नरपति मन्त्राद् द्वादशराजनकरस्य स्वामी भ्यात् । यत्र ' येनेष्ट राजमुपेन मंडलस्येश्वरश्च यः । शास्ति यश्चाज्ञया राजं सममाह ' इत्यमरः ॥ इति राजमुद्राचक्रं ॥ ननु निश्चितं यदि तेन इह भद्रामने छत्रयुग्मस्येऽपापत्रययोगे स्थिते शुभग्रहे मतिः अतोऽभिषेकात् स्वराट् चक्रवर्ती भ्यात् ॥ ननु छत्र इत्यत्र लघुप्रयत्नः समाख्यानः यथा छदोमगाश्चत्यत्रा रस्याद्विर्भात्वादेव केचन उग्रमंडले इत्यादिपदेभ्योऽपि ज्ञेयम् ॥ १७ ॥

भाग्यं भगे शृपणभाज्यविद्धं विधौ कभं भूभुवि मूलमोडु ॥

विदि त्वहिर्युध्यभर्मिद्राद्ये औन्यं कवौ छत्रयुगाकिंछडु ॥ १८ ॥

अथ छत्रयोगे ग्रहनक्षत्रशुद्धिं दर्शयति—भाग्यमिति ॥ मगे सूर्ये भाग्यं पूर्वाफल्युनी
 अविद्धं वेधवर्जितं एवं विधौ चन्द्रे कर्म को वायुस्तस्य मं स्वाती पुनर्मूमुवि भौमे मूले
 पुनर्विदि वुधे ओडु अत्र पदच्छेदः कर्तव्यः अ उडु अः विष्णुस्तस्य उडु संधौ कृते त्रयोद-
 शमस्वरो जातः श्रवणः तु पुनरिन्द्रवंधे गुरौ अहिर्बुध्न्यमं उत्तराभाद्रपदा पुनः कवौ शुके
 शौच्यमग्निं कृतिका पुनरार्किसूडु कोऽर्थः अर्कस्वर्कसूडु अत्रार्थभेदेऽपि सरूपाणामेकशेष
 इत्याश्रित्य प्रथमार्कसूडुशब्दस्य लोपः अर्कसूः शनिस्तस्मिन्नर्कसूः सूर्यस्य देवपर्यायत्वाद-
 दितिस्तस्या उडु पुनर्वमू किंभूते मगादिग्रहे भूषणभाजि सुयोगयुक्ते इति छत्रयुक् छत्रयोगः
 स्यात् ॥ १८ ॥

इहाभिपेकादितिचाहते मे सच्छत्रयुग्भाजि महारथो राट् ॥

अनेकशालेशनतीरितौजा यथाविधोऽन्यत्र तथाविधः स्यात् ॥ १९ ॥

इहेति ॥ इति पूर्वोक्तप्रकारेण इह आसने च पुनःसच्छत्रयुग्भाजि शुभछत्रयोगाग्निं
 आहूतेऽङ्गीकृते मे नक्षत्रे सति अभिपेकात् राट् राजा महारथः सहस्रयोद्धा स्यात् । किंभूते
 राट् अनेकेषां शालेशानां प्राकारस्याग्निनां नतिभिर्नमनैरिति प्राप्तमोजो बलं यस्य स इति । अ-
 न्यत्र यथाविधौ नक्षत्रादियोगस्तथाविधस्तादृक् राजा स्यादित्यर्थः ॥ १९ ॥

तपोधनोपासितराज्यलब्धौ तत्कालमार्यास्त्वभिपेकमूचुः ॥

स्ववंशराज्ञोऽन्यविभोरिति वा राज्यावसाने नरदेवतायाः ॥ २० ॥

अथाकरमाज्ञाज्यप्राप्तनरस्य तत्कालाभिपेकं दर्शयति—तपोधनेति ॥ तपोधनस्य मह-
 र्षेरुपासितान् सेवनात् राज्यप्राप्तौ सत्या आर्या नरदेवताया नृपस्य तत्कालमभिपेकमूचु-
 कथयामासुः । तु पुनरार्याः स्ववंशराज्ञां निर्ववंशनृपस्य वाऽथवाऽन्यविभोरन्यस्याग्निं
 राज्यावसाने वित्रादिमरणावसाने इते प्राप्ते सति नृपामिपेकं तत्कालमूचुरिति ॥ २० ॥

अहेलिभिः पंचभिरुच्चैर्ग्रहैर्नरो भवेन्नीचकुलेऽपि पार्थिवः ॥

तस्याभिपेको जनितोऽधिकैरतस्तज्जातकर्मव न चात्र विभ्रमः ॥ २१ ॥

अथ नीचकुलोत्पन्ननृपामिपेकविधिमाह—अहेलिभिरिति ॥ अहेलिभिः सूर्यरहितैः पंचभि-
 रुच्चैर्ग्रहैः कृत्वा नीचकुले जनितो जन्मप्राप्तोऽपि नरः पार्थिवो भूषतिभवेत् । अतः पंचग्रहतोऽ-
 धिकैर्ग्रहैस्तस्याभिपेकोऽभिधीयते । तज्ज्ञानकर्म एव तस्य मोऽभिपेद एव ज्ञानकर्म प्रोक्तं
 नीचकुलत्वेन पूर्वं संस्काराभावात् । अत्र विभ्रमः सद्यो नास्ति ॥ २१ ॥

भशुद्धिमाहाय कुमारहागितो महीभुजः केवललक्ष्ममंडले ॥

चिदुर्ध्वजे वत्सोऽभिपेकेऽपि च चामरेऽपि ॥ २२ ॥

अथ छत्रयोगे ग्रहनक्षत्रशुद्धिं दर्शयति—भाग्यमिति ॥ भोगे सूर्ये भाग्य पूर्वाफलमुने
 अविद्ध वेधवर्जित एव विप्रो चन्द्रे कर्म को वायुस्तस्य यं स्वाती पुनर्भूमुवि भौमे मृ
 पुनर्विदि बुधे ओदु अत्र पदच्छेद कर्तव्य अ उडु अ विष्णुस्तस्य उडु सधौ कृते त्रयो
 शमस्वरो जात श्रवण तु पुनर्विद्वधे गुरौ अहिर्बुध्चम उत्तराभाद्रपदा पुन कर्को
 शौच्यमग्निं कृत्तिका पुनरार्किसूडु कोऽर्थ अर्कस्वर्कसूडु अत्रार्थभेदेऽपि सरूपाणामेव
 इत्याश्रित्य प्रथमार्कसूशब्दस्य लोप अर्कसू शनिस्तस्मिन्नर्कसू सूर्यस्य देवपर्याय
 दितिस्तस्या उडु पुनर्वसू किंभूते भगादिग्रहे भूषणभाजि सुयोगयुक्ते इति छत्रयुक् छ
 स्यात् ॥ १८ ॥

इहाभिषेकादितिचाहते मे सच्छत्रयुग्भाजि महारथो राट् ॥
 अनेकशालेशनतीरितौजा यथाविधोऽन्यत्र तथाविधः स्यात्

इहति ॥ इति पूर्वोक्तमकारेण इह आसने च पुन सच्छत्रयुग्भाजि शुभ
 आहर्तेशीकृते मे नक्षत्रे सति अभिषकात् राट् राजा महारथ सहस्रयोद्धा स्य
 राट् अनेकेषा शालेशाना प्राकारस्वामिना नतिभिर्नमनैरिति प्राप्तमोक्षो बल यस्य
 न्यत्र यथाविधो नक्षत्रादियोगस्तथाविधस्तादृक् राजा स्यादित्यर्थ ॥ १९ ॥

तपोधनोपासितराज्यलब्धौ तत्कालमार्यास्त्वाभिषेकमूढ
 स्ववशराज्ञोऽन्यविभोरिते वा राज्यावसाने नरदेवताया

अथावरम द्राज्यमाप्तनरस्य तत्कालाभिषेक दर्शयति—तपोधनेति ॥
 पैरुपासितात् सेवनात् रा यप्राप्तौ सत्या आर्या नरदेवताया तृप्तस्य
 कपयामासु । तु पुनरार्या स्ववशराज्ञा निनवशनृपस्य वाऽथराऽ
 राज्यावसाने पित्रादिमरणावसाने इते प्राप्त सति नृपाभिषेक तत्कालमू

अहेलिभिः पचभिरुच्चगैर्ग्रहेर्नरो भवेन्नोचकुलेऽपि
 तस्याभिषेको जनितोऽधिकैरतस्तज्जातकर्मव न

अथ नाचरुलोत्पन्ननृपाभिषेकविमोहाह—अहेलिभिरिति ॥ अहे
 रुच्चगैर्ग्रहे कृत्वा नीचरुज जनिता न यप्राप्तोऽपि नर पार्ष्णिना भूयानि
 धिकैर्ग्रहेस्तस्याभिषेकोऽभिधीयत । तन्नायकर्म एव तस्य सोऽभि
 नीचरुजत्वेन पूर्वं संस्काराभावान् । अत्र विप्रम सत्यया नरित ॥

भशुद्धिमाहाय कुमारहारितो महीभुजः केवलछत्र
 सिंहासने सत्यमुखा विदुर्ध्वजे वत्सोऽभिषेकेऽपि च

केषु तत्र तेषु तान्येवाह । प्रजामंडलके जनपदे पत्तने नगरे च पुरे ग्रामे वा निकेतने गृहे चाभिगतेऽधिकारप्राप्ते चेति ॥ ३० ॥

अस्ते च जीवोशनसोरिने झपे शुचौ नभस्ये कुजमंदवासरे ॥

राज्यांगकर्माण्यथ कोविदा विदुर्न वक्ष्यमाणान्यसर्दिदुवासरे ॥ ३१ ॥

अथ गुरुशुक्रास्तादिदोषे राज्यांगकर्माणि प्रतिषेधति—अस्ते चेति ॥ अयं कोविदाः विद्वताः राज्यांगकर्माणि वक्ष्यमाणानि न विदुः न कथयन्ति ॥ कस्मिन् जीवोशनसोर्गुरुशुक्रयोरस्तेऽस्तंगते सति पुनर्ग्रेषे मीने इने सूर्ये सति पुनः शुचौ आपादे नभस्ये भाद्रपदे कुजमंदवासरे भौमशन्योर्दिने पुनरसर्दिदुवासरे पापचंद्रदिने ॥ ३१ ॥

लघूड्घचित्रादितिमातरिश्वभैरशोपकर्माणि गदन्ति कुंभिनः ॥

चराचरक्षैशपुरोहितोडुभिर्ध्वजक्रिया वारणधिष्ण्यकर्म च ॥ ३२ ॥

अथ गनकर्मसु मुहूर्तमाह—लघ्विति ॥ कोविदाः कुंभिनो गनस्याशोपकर्माणि समस्तकृत्यानि ध्वजक्रिया पताकाधारोपणं च वारणधिष्ण्यकर्म च 'अंबारी' इति भाषायां गदन्ति । कैः लघूड्घनि लघुसंज्ञमानि चित्रा अदितिः पुनर्वसू मातरिश्वा वायुस्तस्य मं स्वाती एषां द्वे एभिः पुनः चरसंज्ञानि अचरसंज्ञानि ईश आर्द्रा पुरोहितो गुरुः पुष्यः एषां द्वे एभिर्नक्षत्रैः ॥ ३२ ॥

सामोद्भवस्येनयुतोडुतो लिखेद्भान्यंतरे त्रीण्यनुमूर्धपिंडयोः ॥

तत्संधिनीदंडगतं च भत्रयं भानां द्वयं तुण्डगतं त्वदि त्रयम् ॥ ३३ ॥

अथ काव्यद्वयेन गनचक्रमाह—सामेति ॥ सुधीः इनयुतोडुतः सूर्यमात् सामोद्भवस्य गनस्य मूर्धपिंडयोः कुंभयोरंतरे विचाले विदौ त्रीणि भानि लिखेत् निवेशयेत् 'कुंभौ तु विदौ शिरसः कुंभयोरंतरं विदुः' इति हेमः ॥ एवं च तत्संधिनीदंडगतं शुद्धादंडमाप्तं भत्रयं पुनर्द्वयं तुंडगतं नक्षत्रयुग्मं मुखप्राप्तं पुनर्मानां त्रयं त्वदि त्वदये लिखेत् ॥ ३३ ॥*

ताराचतुष्कं तु ततोऽग्रपादयोः सदा परांग्रयोर्भचतुष्टयं लिखेत् ॥

चतुष्टयं लूनलतागतं गजे चतुष्टयं पृष्ठगर्मिदुयोपिताम् ॥ ३४ ॥

तारेति ॥ सदा सुधीस्ततस्तस्मादग्रपादयोस्ताराचतुष्कं लिखेत् । च पुनरपरांग्रयोः पश्चाच्चरणयोर्भचतुष्टयं पुनर्लूनलतागतं पुच्छलताप्राप्तं इंदुयोपितां नक्षत्राणां चतुष्टयं करे कुर्यात् न्यसेत् इत्यर्थः ॥ करोतेस्तनादिगणमपास्य भ्वादिगणे उकारविकल्पार्थं पाठ उक्तस्तेन शब्दोपि करति करतः करंतीत्यादिरूपाणि हेममते भवन्ति पाणिन्यास्त्वेनं पृथग्वातुं मन्यते ॥ पुनः पृष्ठगं वंशव्याप्तं नक्षत्राणां चतुष्टयं लिखेत् ॥ ३४ ॥

शुंडादंडे कुंभयोराविलोक्यं वक्त्रेऽत्ता स्याच्छं त्दि व्याधिर्ग्रयोः ॥५॥

पश्चादंघ्रयोर्भीतिरत्तेति ह्ने पृष्ठे व्याधिः कुंभिनोऽशेषकृत्ये ॥३५॥

अथ शालिनीछंदसैतच्चक्रगतनक्षत्रफलमाह—शुंडेति ॥ गजस्य शुंडादंडे कुंभयोश्च
वर्तमानं चेद्रनक्षत्रं स्यात्तदा राः राज्यद्रव्यं अथवा लक्ष्मीः स्यात् ॥ एवं वक्त्रे मुखेऽत्ता मरण
स्यात् । त्दि त्दये शं सुखं पुनरंघ्रोरग्रचरणयोर्व्याधिर्गदः पश्चादंघ्रयोर्भीतिर्भय ह्ने
पुच्छेऽत्ता मरणं पृष्ठे व्याधिः इत्यमुना प्रकारेण कुंभिना गजस्याशेषकृत्ये समस्तकार्ये गजचक्र
विलोक्यं । शुंडा शुडा इति शब्दप्रमेदो दृश्यते ॥ ३३ ॥

तिर्यग्वक्त्रैर्भैरिनेनीज्यविद्धिः कुंभज्योतिःशुद्धिर्गैर्वेह शस्तः ॥

धीरे लभे शुद्धकेंद्रत्रिकोणे सन्नात्यः व्यालोपवात्त्यादिवंधः ॥३६॥

अथ गजबंधमुद्घर्तमाह—तिर्यगिति ॥ इह सन्नात्यः समरोचितः व्यालो मद्रोमत्तो
गज उपवाहो रामबाहोऽरण्यहस्ती एषा द्वे एषा बंधः शस्तः प्रोक्तः कैः तिर्यग्वक्त्रैर्भै-
स्तिर्यङ्मुखनक्षत्रैर्वा इनः सूर्यः ऐनिः शनिः इंज्यो गुरुः विद् बुधः एषा द्वे एतैः किंभूते
कुंभज्योति शुद्धिर्गैर्जनक्षत्रशुद्धिमाप्तै । पुनः कस्मिन् शुद्धकेंद्रत्रिकोणे धीरे लभे सति
१।४।७।१०।१५ व्यालो 'दुष्टगनो गंभीरवैद्यवपताकुशः रामवात्यः सन्नात्यः समरोचिनः'
इति हैमः ॥ ३६ ॥

दाक्षायण्ययेंद्रसूवातभांत्यक्षिप्राणोर्योडुश्रचिष्टासु धीराः ॥

लग्नालोलात्त्यायकेंद्रेषु सौम्यैराजानेयाद्यधकर्माण्यथाहुः ॥३७॥

अथाश्वकर्म्मशुद्धिमाह—दाक्षायणीति ॥ धीराः पठिता आजानेया कुंभीनाम्वा इत्याद-
योऽन्वाः एषा कर्माणि आहुः कैः लग्नात् लोलाखरराशेख्य ३ आयः ११ केद्राणि १।४।७।१५
एषु भावेषु स्थितैः सौम्यैः शुभग्रहे पुनः कामु दाक्षायणीना नक्षत्राणामयः स्वामो पंद्रो
मृगशीर्ष ईदृस्त्रिमाताश्रिताः पुनर्वसू वातभ स्वाती ज्य रेवती क्षिप्रसज्ञा इति अणोर्यो
नक्षत्राभौ वरुणस्तत्पौडु सप्तभिषन् अजिडा अनिडा आस्ता ताशणा द्वे आशु ॥ ३७ ॥

वाहे मौलिस्तंभतो भत्रयं स्यात्सेनादर्थयास्यगा लब्धकामाः ॥

तारास्तिस्रःपंच त्दत्त्वा वरिष्ठा दुष्टाश्चाग्रान्योश्चतस्रःप्रदिष्टाः ॥३८॥

अथाश्वकर्मे भानि स्थापयति—वाहे उति ॥ सेनात् सह इनेन सूर्येण वर्तते यत्स्मात्
सूर्यनक्षत्रात् वाहेश्च मौलिस्तंभतो मस्तकस्त्रुगानो भत्रय नक्षत्रत्रयमथय द्रव्याय स्यात् ।
अर्थात् वर्तमानचंद्रम यदाऽत्र भवत्तदेति । एव जास्यगा मुखमनास्तिग्रतारा लब्धकामा
मास्तकामाः प्रदिष्टाः प्रोक्ताः । पुनर्दत्तः त्दयस्तिनाः पंचताराः वरिष्ठाः द्वेष्टा पुनर्या-
द्योत्तरादयोश्चनक्षत्राः दुष्टाः प्रदिष्टाः ॥ ३८ ॥

ताराः पश्चात्पादयोर्माद्यदाः स्युर्वेदाभिन्नाः पृष्ठदेशे चतस्रः ॥

व्यर्था लूने भानि चत्वारि हान्यै कर्मण्याश्चेत्यदश्चितनीयम् ॥ ३९ ॥

ताराइति ॥ पश्चात्पादयोर्वेदाभिन्नाश्चतस्रस्तारा माद्यदाः रोमदाः स्युः । एव पृष्ठदेशे वशे चतस्रस्तारा । व्यर्था निष्कलाः स्युः । लूने पुच्छे चत्वारि भानि हान्यै विनाशाय स्युः । इति प्रकारेण अश्वस्य इदं आश्वं तस्मिन् आश्वेऽश्वसबंधिनि कर्मणि अदश्चरुचितनीयं विवृण्वैः ॥ ३९ ॥

लोलमैत्रलघुजिष्णुकभेषु स्पंदनाखिलविधानमथाहुः ॥

सेनसद्युषु वशांश्चुषतप९स्थैः साधुराशिवति साधुभिरंगे ॥ ४० ॥

अथ स्वागतालंदसा रथकर्माह—लोलेति ॥ अपानंतरं धीराः स्पंदनाखिलविधान रथानां समस्तकार्यमाहुः । केषु लोलसंज्ञानि मैत्रसंज्ञानि लघुसंज्ञानि जिष्णुरिद्रो ज्येष्ठा को ब्रह्मा रोहिणीभं एषा द्वंद्वे एषु किंभूतेषु सेनसद्युषु सूर्यशुभग्रहदिनैः सह वर्तमानेषु पुनः कस्मिन् साधुराशिवति शुभग्रहराशियुक्तं लगे सति पुनर्वशा स्त्रीभवनं पुनः अंबु चतुर्थं तपो नवमं एतद्भवनस्थैः साधुभिः शुभग्रहैः ॥ ४० ॥

ऊष्मवृष्णिकरकीर्णपुरक्षाद्वेयमृक्षवल्यं वलयस्य ॥

सव्यभागनिचितभ्रममग्रादाविमध्यमनसो नवभागम् ॥ ४१ ॥

अथ रथचक्रे भानि स्थापयानि—ऊष्मेति ॥ ऊष्मवृष्णिः सूर्यस्तस्य करैः कीर्ण व्याप्त पुरं यस्य तच्च फलं च तस्मात्सूर्यभात् सुधिया ऋक्षवल्यं भवत्तु देयं न्यासीकर्तव्यं । कस्मात् अनसः शकटस्य वलयस्य चक्रस्याग्रादग्रभागात् आविर्भव्यं मध्यभागपर्यंतं किंभूतं नक्षत्रवलय नवभागं नवभिर्भागैः स्थितं पुनः किंभूतं सव्यभागनिचितभ्रमं वामभागभरितभ्रमणं वृष्णिरिति प्रप्तिः वृष्णिः शब्दप्रभेदोक्तोऽयं शब्दः दंत्योष्मवृणस्त्वनादिपाठे संभाव्यते ॥ ४१ ॥ *

अग्रमे भवति संकलिरत्ता कूवरोडुनि जयोऽथ रथांगे ॥

संधिभेऽर्थत्तदतिरंतरसंधौ भीतिरिष्टमनसो ननु गर्भे ॥ ४२ ॥

अथैतच्चक्रगतभकलमाह—अग्रेति ॥ अनसः शकटस्य अग्रमेऽग्रतः वर्तमानचक्रमे संकलिर्युद्धं भवति । एव कूवरोडुनि कूवरेयुगवरे 'कांगरा' इति भाषाया । उडुनि वर्तमानचक्रनक्षत्रेऽन्ता मरणं भवति । रथांगे रथादे चक्रगुमे जयः स्यात् । संधिभे संधिगतनक्षत्रेऽर्थत्तदतिरिद्रव्य-हरणं अनरसंधौ मध्यसंज्ञानगतैर्नैर्भीतिर्ययं गर्भं मध्यभागमे इष्टं शुभं ननु निश्चिनं ॥ ४२ ॥

आंत्ययातुभवलाचलमैत्रद्वय्यदासलघुभेर्निचितेषु ॥

सद्विरुक्तमृपमाखिलकार्यं व्यारविद्यमसमग्रदिनेषु ॥ ४३ ॥

अथ वृषभसमस्तकर्माह—आंत्येति ॥ सद्भिः पंडितैः वृषमाखिलकार्यं सोरभेयानां समस्त कृत्यमुक्तं प्रोक्तं केषु व्यारविद्यमसमग्रदिनेषु भौमवृषाग्निवर्जिनेषु संधिदिनेषु किंभूतेषु निचितेषु

व्यासेषु कैः आत्म्यं रेवती यातुभ मूल चलसंज्ञानि अचलसंज्ञानि मैत्रं अनुराधा द्वयं द्विस्त्रा-
मिकं विशाखा दास्यमश्विनी लघुसंज्ञानि एभिर्भै ॥ ४३ ॥

याप्ययाननिखिलव्यवहाराः सद्युसत्तिथिषु सत्सु वराः स्युः ॥

उत्तरेंद्रलघुमैत्रचलक्षैः कंङ्के १।४।७।१० लघुपचये ३।६।११।५थ खलेषु।

अथ शिविकासप्तकर्माह—याप्येति ॥ हि युक्तार्थे याप्ययान शिविका तस्या निखिल
व्यवहाराः वराः श्रेष्ठा स्युः ॥ केषु सद्युसत्तिथिषु शुभदिनशुभवासरेषु सत्सु पुनः कटङ्क
१।४।७।१० उपचये ३।६।११-१२। खलेषु खलग्रहेषु पुनः कैः उत्तरात्रय ईशे
उपेक्षा लघुसंज्ञानि मैत्रसंज्ञानि चलसंज्ञानि एभि ॥ ४४ ॥

पेटके हरिदिशोऽद्युयु नर्क्षार्त्पंच पंच हरितः शिविकायाः ॥

मध्यगा गुगमिताश्च चनसो दंडगा विधुवरा ननु देयाः ॥ ४५ ॥

अथ शिविकाचके नक्षत्राणि स्थापयति—पेटकेति ॥ अद्युयुनर्क्षार्त् सूर्यभात् शिविकाया
पेटके हरिदिशं पूर्वतो हरितश्चतुर्दिशु पच पच विधुवशा नक्षत्राणि देया । हरित इति सार्व-
विभक्तिकस्त्वन् इत्येके इति बहुवचन ॥ न पुनर्मौलिगा मस्तरगता गुगमितास्त्रिसंख्यास्तासां
देयाः पुनर्दंडगा वेणुप्राते द्वे द्वे इत्यर्थः । ताश्चतस्त्रस्तारा देयाः । ननु निश्चितं दैवज्ञैरिति
शेषः ॥ ४५ ॥ *

जिष्णुदिश्यपि कमंतकदिग्गं भं गदाय दसदं वनपाशं ॥

वित्तपाशमतिवेदनमृक्षं मध्यवेणुगमभीष्टमिह स्यात् ॥ ४६ ॥

अथ शिविकाचकगननक्षत्रकलनाह—जिष्णुरिति ॥ इह चके जिष्णुदिशि पूर्वस्य
यदा भ वर्तमानचक्रनक्षत्र स्यात्तदापि निश्चितं यं सुख स्यात् । एवं अतकदिग्ग दक्षिणदिग्
स्थितं भ नक्षत्र गदाय रोगाय स्यात् । पुन वनयो जलशायी वरुणस्तमश्नुने प्राप्नोति इति
वनपाश कारुणदिग्गत भ दसदं भयदं स्यात् । वित्तपाशं वनददिग्गत उत्तरस्या भ्रमति वेदनं बट
पीडाकृत् । मध्यवेणुश्च तौ गच्छतीति तन्मध्यवेणुगमिनि मध्यग मौलिगत वेणुग उभयशभै
वशप्राप्तप्राप्तमभीष्ट शुभ स्यात् ॥ ४६ ॥

पुष्पवंतकविजीवदिनेषु क्षिप्रधीरमृदुशौरिभशाङ्केः ॥

सेवनाद्याखिलदिवशशाङ्के सर्वकर्म गदितत्थनुगानाम् ॥ ४७ ॥

अथ रानसेगामुहूर्णमाह—पुष्पानि ॥ हि युक्तार्थं अनुगाना संज्ञक ना मेवमिदं पुष्पमेव
सर्वकर्म गदितं भोक्त । इति न् अखिलदिवशशाङ्कऽऽशौचचद्रे पुनः केषु पुष्पवतो दादिभास्वा
कविः शुभ जीतो गुरुरेषा दिनेषु पुनः कैः क्षिप्रनक्षानि धीरमक्षानि मृदुसंज्ञानि शौरिभ-
शाङ्कः शाङ्क उपेक्षा एषा द्वे एभि ऊत्वा ॥ ४७ ॥

मारवर्तिनि गुरावसितेऽरावारहंसवति तेजसि वाये ॥

के सितेऽञ्जवति वाथ विलम्बे सेवनं मुनिवरा वरमाहुः ॥ ४८ ॥

अथ सेवाया लघुशुद्धिमाह—माररेति ॥ मुनिवरा सेवन राजसेवा वरमाहु । कस्मिन् मारवर्तिनि कदर्पभाजि सप्तमभावे गुरौ मति । अथ पुनररौ शत्रौ षष्ठभावेऽसिने शनौ सति पुनरारहंसवति भौमसूर्ययुक्ते तेजसि पराक्रमभावे तृतीये वाऽथवा आये एकादशभावे सति पुन के सुखे चतुर्थभावे सिते शुके सति वाथवाऽञ्जवति चन्द्रयुक्ते विलम्बे लम्बे सति ॥ ४८ ॥

कासराख्यकरभाविमुखानामुक्तपार्श्वलपनोद्धुषु सर्वम् ॥

वारुपेन्द्रवसुवारिनभेषु कर्म सद्भिरिनसद्युषु वैनौ ॥ ४९ ॥

अथ माहिषोद्धादीना कर्माह—कासरेति ॥ सद्भि पठितै कासराख्यो महिष क्रूरम उष्ट्र अविमेष सुख आदिर्येषा तेषा माहिषादीना सर्व कर्म कथित । केषु उक्तपार्श्व-लपनोद्धुषु प्रोक्ततिर्यङ्मुखनक्षत्रेषु । पुन केषु वारुपेति । वार्जलं पूर्वापादा उपेन्द्रो विष्णुः श्रवणो वसु धनिष्ठा वारि जल तस्य इन स्वामी वरुणस्तस्य भे शतभिषक् एषा द्वाद्वे एषु भेषु पुन इन सूर्य सद्भि शुभग्रहवासरा एषा द्वाद्वे एषु वाऽथवा ैनौ शनौ ॥ ४९ ॥

स्याद्यमोष्णघृणिमंत्र्यरुणानामन्हि मैत्रलघुभर्गकभेदैः ॥

कर्म पालनमुखं हि सपूर्वैः पुंडरीकमुखहेतिनखानाम् ॥ ५० ॥

अथ सिंहादीना पालनमुहर्तमाह—स्याद्यमेति ॥ हि युक्तार्थे पुंडरीकमुखा चित्रका-यप्रमुखा हेतिवत् प्रहरणवत् नखा एषा ते तेषा व्याघ्रप्रमुखनखरायुधाना पालन-मुख कर्म स्यात् । कस्मिन् यमोष्णघृणिमंत्र्यरुणाना शनिसूर्यगुरुभामानामन्हि दिने पुन कै मै-त्रज्ञानि लघुसज्ञानि भर्ग शिव आर्द्रा को ब्रह्मा रोहिणी ऐंद्रं ज्येष्ठा एषा द्वाद्वे एभि कैभूतै सपूर्वै पूर्वात्रययुक्तै ॥ ५० ॥

स्याद्वलीमुखरुप्रमुखानामैशधीरलघुलोलमृगर्क्षैः ॥

खेलतोऽहनि सतो नरनेतुः कर्मभिः शमटवीशरणानाम् ॥ ५१ ॥

अथ वानरप्रमुखाना खेलनादिकर्ममुहर्तमाह—स्यादेति ॥ अटवीशरणाना वलीमुखा शनरा रुखो मृगभद्रा प्रमुखा एषा वलीमुखरुप्रमुखाना खेलत खेलनात् कर्मभि नरनेतुर्नृपस्य श सुख स्यात् । कस्मिन् सत शुभग्रहस्याहनि दिने पुन कै ऐशमार्द्रा धीर पज्ञानि लघुमज्ञानि मृगर्क्ष मृगशीर्ष एषा द्वाद्वे एभि ॥ ५१ ॥

चीरताम्रमुकुटादिशङ्कतास्तिर्यगाननतमीशवशास्तु ॥

शश्वदुद्वदनभेषु भजेद्राडास्फुजिद्विदिनजीवमपान्हि ॥ ५२ ॥

कातरयोपितोः' इतिकोपः ॥ पुनः कस्मिन् सद्भिः शुभग्रहेषु तानि अचलमानि स्थिरराशयो यस्मिन्
कंकटकस्तस्य काले लभे तस्मिन् सद्युताचलकंकटककाले ॥ ५५ ॥

क्षिप्रवासवमृदुध्रवकर्णान्सज्जनो व्यसृगशेषदिनेषु ॥

सेवितुं वसुमतीशमरिक्तेष्विच्छतीदुसितवत्युदयेऽपि ॥ ५६ ॥

अथ राजमेवामुहूर्तमाह—क्षिप्रेति ॥ सज्जनः वसुमतीशं महीपं सेवितुं क्षिप्रादीन् इच्छति
उरीकरोतीत्यर्थः । इयं सेवा राजद्वारगमनं परदासभावो नास्ति ॥ क्षिप्रेति ॥ क्षिमसंज्ञानि वासवं
वृत्तिषा मृदुसंज्ञानि ध्रुवसंज्ञानि कर्णः श्रवणः एषा द्वे इमान् केषु व्यसृगशेषदिनेषु पुनः
कस्मिन् इदुसितवति चंद्रशुक्रयुक्ते उदये लभे सति किंभूतेषु समस्तदिनेषु अरिक्तेषु
रिक्तातिथिर्वर्जितेषु ॥ ५६ ॥

विश्वकृत्सुरसवित्रयजमित्रस्तोमनष्टरदभद्रयधीः ॥

संत इज्यमुखवारचतुष्के नव्यवर्मफलकाधृतिमाहुः ॥ ५७ ॥

अथ नृत्तसत्ताहखेटकधारणमुहूर्तमाह—विश्वेति ॥ संतः पंडिताः नव्यवर्मफलकाधृतिं
नृत्तसत्ताहखेटकयोः आधारणमाहुः ॥ फलं 'कंटाल' इति भाषा । कस्मिन् इज्यो गुरुः सन्मुखे
यस्य तत् वारचतुष्कं गुरुशुक्रशानिसूर्यानां चतुष्के इत्यर्थः । पुनः कैः विश्वेति ॥ विश्वकृत्त्रि
सुरसवित्र्य अदितिः पुनर्वसुः अजो विष्णुः श्रवणः मित्रोऽनुरावा स्तोमेन यज्ञेन नष्टाः रदा
दंता यस्य स पूषा तस्माद्द्वयं रेवत्यश्विन्यौ धीरसंज्ञानि एषां द्वे एभिर्मे ॥ ५७ ॥

साधुभिर्निशिथिनीशवदंगान्मारधामगगनोपगतैर्वा ।

वर्मितोऽरि ६भव११ गैरनपापैः स्यात्समोऽहितगणानथ जेतुम् ॥ ५८ ॥

अथ मन्त्राहवारणे लग्नशुद्धिमाह—साध्विति ॥ ना पुरुषोऽहितगणान् रिपुसमूहान्
जितुमवरोकर्तुं क्षमः स्यात् । किंभूतः साधुभिः शुभग्रहैः पुनरनपापैः पापग्रहैः कृत्वा वर्मितो-
धृतसन्नाहः किंभूतः साधुभिः निशिथिनीशवदगात् चंद्रराशिषु कलगात् मारधामगगनोपगतैः
सप्तमचतुर्धदशमभावोपगतैः किंभूतैरनपापैररि ६ भव ११ गैः पट्टेकादशगणैः ॥ ५८ ॥

आंत्यवात्यवृहद्वैज्यशयैर्द्रवाष्ट्रभाग्यवसुभान्यगदश्च ॥

रिष्टितोमरधृतो धरणेऽस्याः कव्यसद्युभरितानि वराणि ॥ ५९ ॥

अथ खड्गतोमरधारणमुहूर्तमाह—आंत्येति ॥ अथ बुधाः रिष्टितोमरधृतौ खड्गमर्वलावार-
णेऽरुयाः कटारिकाया धारणे च अंत्यादीनि भानि वराणि अगदन् "क्षुर्येस्त्रिको शशापिका"
इति हेमशेपकोपः ॥ अंत्य रेवती वात्यं स्वाती वृहत्संज्ञानि ऐज्यं पुष्यः शयः करो हस्तः ऐंद्र
ज्येष्ठा त्वाष्ट्र चित्रा भाग्य पूर्वाफल्गुनी वसुभं धनिष्ठा एषा द्वे इमान् किंभूतानि काव्यमद्रुभ-
युतानि कविः शुक्रः असंतोऽशुभग्रहास्तेषां यथा दिनाः भानि राशयश्चैषा द्वे एभिर्युतानि ॥ ५९ ॥

ऐनशेंद्रकभनिष्कभधीराचार्यवासवभहारिविशाखाः ॥

कंकपत्रधनुरादिकधृत्यै भिडिपालधृतयेऽपि च धीराः ॥ ६० ॥

अथ बाणधनुर्भिदिपालादिवारणे शुद्धिमाह—ऐनेति ॥ वीरा ऐनशेत्यादि अकथयन् जगदु ॥ कस्मै ककपत्रा बाणा धनुश्चाप इत्यादिकाना वृत्यै धारणाय च पुनर्भिदिपालधारणाय भिदिपाल भिडपाल इति शब्दे भेदः 'वरछी' इति भाषा ॥ ऐनशेति ॥ अ विष्णु इन् सूर्यश्च श शम्भुश्च इन्द्रश्च क ब्रह्मा च द्वे एषा भानि श्रवणहस्तार्द्राज्येष्ठारोहिण्य निष्क जल तस्य भ पूर्वाषाढा धीरसंज्ञानि आचार्यो गुरु पुण्य वासव धनिष्ठाम हारिणि मृदुसं ज्ञानि विशाखा आसा द्वे श्रवणादी एतास्तारा प्रतिनिष्कामिति क जल निसयोमेऽपि तदेवार्थ ॥ ६० ॥

लोहितांगहरिहंसदिनाद्वैर्भद्रपूर्णजयवद्विधुवारैः ॥

क्षेत्रणीयधनुषेषु गदास्यो ध्रियतेऽस्त्रविसरः सति लम्बे ॥ ६१ ॥

अथ बाणादिवारणे तिथिवारशुद्धिमाह—लोहितेति ॥ अस्त्रविसर शस्त्रसमूहो ध्रियते भैरविति शेष । कै । भद्रति । भद्रास्तिथय पूर्णा जयाश्च वतुप्रत्यये भद्रवतीमन्त्रा पूर्णवर्ता पूर्णा इत्यर्थ । एताभिर्युक्ता. निधुवाराश्च द्रदिनास्तै किंभूतै लोहितांगो भोम हरिर्यम शनि हसो रवि एषा दिनैराज्यैर्युक्तै पुन कस्मिन् सति शुभग्रहे शुभे वा लम्बे सति किंभूतोऽस्त्रविसर ॥ क्षेत्रेति ॥ क्षेत्रणीय गोकणिकादि धनु समाप्ते धनुषामिति इपूर्वाङ्ग गदा अतीता एता आस्य सुख यस्य स इत्यादियुक्त इत्यर्थ । ध्रियते इत्यत्र ऋकारस्य रिज्यादेशत्वाद्धीर्घत्वाभावो घटने परमत्र कस्याचिन्मताश्रित ज्ञातेऽन्यथा ध्रियते इति दुर्वाज प्रयोगो वरमिति ॥ ६१ ॥

उग्रदारुणमहावलभान्त्यत्वाष्ट्रतिष्यकरकार्णभमिश्रैः ॥

आश्रितान्यसदहानि जगुस्तऽनेकभेदनलिकास्त्रविधाने ॥ ६२ ॥

अथ नलिनादिशस्त्रविधाने भवारशुद्धिमाह—उग्रेति ॥ ते प्रासेद्धा वीरा. अनेकभेदन- लिकास्त्रविधाने लघुबृहदनेकभेद वृत्तप नलि जवृग इत्यादि बन्दिशस्त्रविधाने असदहानि पापग्रहदिवमानि जगु कथयामासु । किंभूतानि असदहानि आश्रितानि युक्तानि के । उग्रेति । उग्रसंज्ञानि दारुणसंज्ञानि महाबले वायुस्तः स्वामी आत्य रेवती त्वाष्ट्र चित्रा तिष्य पुण्य करो हस्त लृणस्त्यद काप्ययं श्रवण मिश्रसत्ते द्वे एषा द्वे एतै ॥ ६२ ॥

स्याज्याय सजयं च सरिक्तं बन्दिमुक्तपरमास्त्रविधानं ॥

चंचरीकहरितावुर्किभैरायगेरुपचयेष्वनदुष्टैः ॥ ६३ ॥

अथ बन्दिमुक्तास्त्रे तिथि प्रगुद्धिमाह—स्याज्यायेति ॥ बन्दिमुक्तपरमास्त्रविधानं कर्तृपद अग्निना मेरितोहगोळकृहन्नालकास्त्र सोमनाणादि वा जयाय वैरिपराभवाय

स्यात् । किंभूतं सजयं जयातिथियुक्तं पुनः किंभूतं सरिकं रिक्तयुक्तं कैः कृत्वा अनदुष्टैः पापग्रहैः किंभूतैः आग्नौः एकादशभावगैः उपचयेषु विषये ३।६।१०।११।चंचरीको वृश्चिकराशिः हरिः सिंहः ताडरिर्वृषः कुंभ एभिः ॥ ६३ ॥

नव्यदुंदुभिजवादनमन्यद्वाद्यवादनमविद्युगमिष्टं ॥

भूभुजोऽस्ति राज्याभिधपूर्णं मैत्रलोललघुभैरितणम् ॥ ६४ ॥

अथ नवीनभेयाविवादने तिथिवारनक्षत्रशुद्धिमाह—नव्येति ॥ नव्यदुंदुभिजवादनं अन्यद्वाद्यवादनं च कर्तृपदं भूभुजो भूभुज्येष्टं श्रेष्ठमास्ति कैः मैत्रलोललघुभैः स्पष्टं । किंभूतं नव्यदुंदुभिजवादनं अविद्युगं दुवचनितान्यग्रहदिनगतं पुनः किंभूतं सजयामिधपूर्णं जयातिथिपूर्णातिथियुक्तं पुनः किंभूतं इतकोणं इतः प्राप्त अर्थशक्त्या आस्फालेनः कोणो वीणादिवादनं यस्मिन्स्तत् कोणस्तु वाभिन्न वज्राडवानाडाडोयादिकइतिभाषायां 'भेरी दुंदुभिरानकः' इति हैमः । भेरी-शब्दस्यायं विवेकः । भेरी दंडयोग इत्यत्र दंडोपयोगिनी भेरी 'दमामा' इति भाषा इति ता-किंकाः । अपरा यतः 'सार्द्धहस्तत्रयमानं भेरीणां समुदाहृतं ॥ पिंडे पडंगुला प्रोक्ता वाद्येन्मुखकुंकयोः' ॥ १ ॥ इति रंगोदये परंतु दुंदुभिस्तु भेरीकारा संकटमुखी 'नकेरति' भाषा । अपरं अग्रेतनकाव्ये काहल इत्यत्र ढक्काकारा काहला मदनभेरी 'वरधु' इत्यादिभाषा इति ॥ मातकोणं इत्यत्र दंडादिघातकरणं अन्यत्र मुखकुंकसंयोगकरणं ॥ ६४ ॥

रिक्तयाहनि युतेऽहितसंधं भीषयत्यहिभयातुभशाकैः ॥

नव्यकाहलधृतेरपि पापे तद्रवः समिति वा विमचोग्रैः ॥ ६५ ॥

अथ भेरीधारणे काहलशुद्धिमाह—रिक्तेति ॥ काहलधृतेरपि भेरीधारणादपि तद्रवस्तस्य काहलस्य रवः शब्दः समेति संग्राभेऽहितसंज्ञं शत्रुसमूहं भीषयति भीषयते कस्मिन् पापे पापग्रहेऽहनि दिने किंभूते रिक्तया युते वाऽथवाऽहिभयमश्रेया यातुमं मूले शाकं ज्येष्ठा एभिर्भुक्ते किंभूतैरेभिः विमचोग्रैर्वृत्तावर्जितानि उग्रसंज्ञानि येषु तानि तैः ॥ ६५ ॥

सिद्धियुज्यमृतसिद्धियुगास्येऽशेषवाद्यगणकर्म विभद्रे ॥

वाद्यधर्तुरसद्वति रशौ प्राक्कुजे लगति शब्दवतीति ॥ ६६ ॥

अथ वादित्राणां सर्वेषां कर्मशुद्धिमाह—सिद्धीति ॥ अलमित्यवधारणे वाद्यधर्तुरस्य अशेषवाद्यगणकर्म स्यात् ॥ कस्मिन् सिद्धियुजि निष्पत्तिभाजि अमृतसिद्धियुगास्ये अमृतसिद्धियोगममुखे किंभूते विभद्रे विष्टिरहिते पुनः कस्मिन् अनसद्वति शुभग्रहयुतेऽतिशब्दवति कोऽर्थः मेघवृषममिथुनसिंहधनुषां गणोऽतिशब्दवान् कथ्यते तस्मिन्निते प्राप्ते प्राक् कुजे उग्रे सति इत्यर्थः ॥ प्राक् पूर्वस्यां कुर्भुभिस्तस्यां जायते इति उदयाचलार्कोदयस्थानं प्राक्कुजं उग्रसंज्ञमित्यर्थः ॥ कथं कन्याराशिरेतिशब्दवान् न स्यात् सत्यं कन्याराशिः शब्दवान् स्यात् परं अतिशब्दवान् न स्यात् स्त्रीणां मधुरस्वरत्वात् ॥ ६६ ॥

उक्तघसमुत्पत्तिर्नयकालं नोक्तराज्यभवकर्म करोति ॥

अन्यथैत्यथ समुद्भूय स योऽर्थं वच्मि दिग्विजयकालमिदानीम् ॥६७॥

अधोपसहारेण पूर्वोक्तकालशुद्धिं दृढयति—उक्तेति ॥ यो राजा उक्तवत्पत्तिर्नयकालं पूर्व कथितदिनादिनिश्चयसमय उद्भूय विहाय उक्तराज्यभवकर्म कथितराज्योत्पन्नविधानं करोति सोऽन्यथा वैपरीत्यं न एति इति न अपि तु प्रामोतीत्यर्थः ॥ अधानतर अहं इदानीं साप्रत दिग्विजयकालं वच्मि कथयामि समुद्भूयेत्ययं कस्यचिन्मताश्रितत्वात्प्रयोगः समासविना दृश्यतेऽन्यथा प्रोक्त्यादि स्यात् ॥ ६७ ॥

जेतुमिच्छति परावनिपालं तावदप्युपकुलैः सजयैर्यः ॥

भैरनीककघटाघटनं राट् क्षत्रियद्युनिचितैर्विदधीत ॥ ६८ ॥

अथ नक्षत्रवारशुद्धौ सैन्यरचनामाह—जेतुमिति ॥ यो राट् परावनिपाल रिपुभूष जेतुं हतुमिच्छतीति स राट् तावत्तथपमनीक घटाघटनं सैन्यसमूहरचना सैन्यरचनाकरणं वा विदधीत । कै उपकुलै उपकुलसङ्घैर्भैरनीकै किंभूतै सजयै नयातिथिसहितै पुन किंभूतैः क्षत्रियद्युनिचितैः रविप्रौढौ क्षत्रियसङ्घो अनयोर्दिनयुक्तैः ॥ ६८ ॥

वासवात्यलघुमित्रजनित्रीमित्रशीतलभमानुगभेषु ॥

तं प्रतीष्टमविधेष्वनुयानं तस्य वाडवखगद्युतेषु ॥ ६९ ॥

अथ भवारशुद्धौ नृपप्रयाणमाह—वासवेति ॥ अनु पश्चात् तस्य राज्ञो यानं प्रयाणं तद् सैन्यं प्रति इष्टं शुभं स्यात् । केषु वासवधनिष्ठा अत्यं रेवती लघुसंज्ञानि मित्रजनित्री सूर्यमाता अदितिः पुनर्वसु मित्रोऽनुरागा शीतलभो हिमाशुशुद्धौ मृगशीर्ष मा लक्ष्मीस्तस्या अनुग स्वामी मानुगो विष्णुस्तत्र श्रवण एषा द्वे एषु किंभूतेषु वाडवखगयोर्गुरुशुक्रयोर्विप्रसङ्गा अनयोर्दिनयुतेषु पुन किंभूतेषु अविधेषु कुयोगैरविधेषु विधे विदधमिति शब्दप्रमेदः । जनित्री जनयत्री इति शब्दप्रमेदः ॥ ६९ ॥

पर्वपक्षतियुगाखिलरिक्ताद्वादशीत्रिचरणाख्यकुयोगान् ॥

प्रोद्भूय दिग्विजययानमुशन्ति योगिनीमुखगणाभिमुखान् ॥७०॥

अथ दिग्विजययाने पर्वोद्दीन् निषेधति—पर्वेति ॥ नृणां दिग्विजयप्रयाण उशन्ति वाञ्छन्ति किं कृत्वा पर्वेति पर्वोणि पक्षतियुगं प्रतिपद्धितीये अखिला रिक्ता द्वादशी त्रिचरणाख्यकुयोग त्रिपुष्करनाभकुयोग एषा द्वे एतान् प्रोद्भूय हित्वा न पुनर्योगिनीमुखगणाभिमुखान् योगिनी मुखयोगगणसन्मुखान् हित्वा ॥ ७० ॥

निम्नकालबलयं फलकामं संलिखेदुत्तमजस्तु दिशोऽशोः ॥

यत्सुखद्विदिशि तस्य कमिज्याद्वासरानिह समस्तविदिषु ॥७१॥

अथ निघ्नकालचक्रमाह—निघ्नेति ॥ मुषीः फलकामं दारुपट्टकसदृशं निघ्नकालवलयं
हननकालचक्रं लिखेत् । इह चक्रे मुषीः हुतमुनोऽग्नेर्दिशोऽग्निकोष्टतः समस्तविदिक्षु अंशोः
सूर्यात् तु पुनरिष्यात् शुरुतो वारान् दिनान् लिखेत् । विदिक्षि यद् द्युवर्त् यत् उदप्राप्तग्रह-
दिनमुक्तकोष्टकं तत् कोष्टकं तस्य निघ्नकालस्य कं मुखं स्थानं स्यादित्यर्थः ॥ ७१ ॥ *

निघ्नकालमनुगैरुगं यः किं विधाय कुरुते मृधमग्रे ॥

सव्यसाध्यनुगशात्रवसंघैस्तस्य संयति रणांगणसंस्थैः ॥ ७२ ॥

अथ सन्मुखं निम्नकाष्ठमुखं परिहरन् युद्धनयं दर्शयन्नाह—निघेति ॥ यो राह् अनुगैः पदातिभिः सह निम्नकाष्ठमनुगं पृष्ठगं विधाय कृत्वा मृधं युद्धं कुरुते तस्य भूपतेऽग्रे संयतिः संग्रामे सव्यसाच्यनुगशास्त्रवसंघैः किं स्यात्तस्य किमप्यनिष्टं न कुर्युरित्यर्थः ॥ सव्यसाचि-
नमर्जुनमनुगच्छन्ति अनकुर्वतीति सव्यसाच्यनुगाः अर्जुनाख्यपाण्डवसदृशा ये शास्त्रवाः रिपव-
श्तेषां संघाः समूहास्तैः संयतौ रणांगणे संस्यैः युद्धभूमिव्याप्तैः 'सव्यसाची धननयः'
इति हेमः ॥ ७२ ॥

द्युनिशेन दिशोऽयुमानयैद्या निखिला भुञ्जति दक्षिणभ्रमेण ।

सः च तिष्ठति यत्र तत्र कीलास्त्वनुगाग्रस्थदिशोः स्फुलिंगधूमौ ॥७३॥

अथ मालभारिणीछंदसास्मिन्नेव निघ्नकालचक्रे ज्वालादिसंज्ञात्रयं स्थापयति—शुनिशनैति ॥
अंशुमान् सूर्यो शुनिशेनाहोरात्रेण ऐंद्याः पूर्वदिक्तो निखिलाः समस्ताः दिशो भुंजति भुनक्ति
केन दक्षिणभ्रमेण सूर्यो यत्र तिष्ठति तत्र स्थाने कीलाम्बिज्वाला अस्ति । अनुगाग्रस्थदिशोः
स्फूर्किंगधूमौस्तः ॥ कोऽर्षः सूर्याधिष्ठितस्थानात् नृष्टगतदिशि स्फूर्किंगा भग्निकणा भवंति अग्रगत-
दिशि धूमो भवतीत्यर्थः ॥ मालभारिणीछंदस इदं लक्षणं ‘ओमे ससननगाः समे पादे सभरयाः
॥३॥१॥२॥प्रथमपादः ॥२॥३॥४॥५॥ द्वितीयपादः’ यथा ‘इह वासकसाज्जिकाविळासं वहते
शारदशर्वरीवरण्यः ॥ अवतंसितकैरयोच्चवलश्रीर्विकसत्तारकमाळभारिणीयं’ ॥ ? ॥ इति छंदो-
ऽनुशासने हेमसरयः ॥ भुंजतिप्रयोगो महाकविगम्यः ॥ ७३ ॥

हरिदमिशिखावतीति यातुर्दहतीष्टं शितिपद्धतीतदाहा ॥

सृजति भ्रममग्रगात्तधूमा न च हंसाभिमुखं हि यानमुक्तम् ॥७४॥

अथ ज्वालादियुक्तदिशां फल्गमाह—हरिदिति ॥ अग्निशिखावती हरित् बन्धिज्वालायुक्ता दिग् यातुर्नरस्य प्रयाणकारकस्य इष्टं वाञ्छितं दहति । पुनः शितिपद्धतीन्दाहा शितिपद्धतिः कृष्णवर्त्मा बन्धिस्तेन इनः प्राप्तो दाहो यया साध्निकणयुक्ता पृष्ठगदिग् यातुर्दिष्टं दहति । पुनरभ्रगातधूमा आसः प्राप्तो धूमो यया साध्न्या दिग् भ्रमं संशयं सृजति करोति इति हेतूनां युक्तार्थे हंसाभिमुखं सूर्यसन्मुखं यानं प्रयाणं नोक्तं ॥ इति निघ्नकान्तचक्रम् ॥ ७४ ॥

शिखिनस्तमसश्च भुक्तमेष्टु क्रमतस्तौ मृतजीविताख्यपक्षौ ॥

दहनेन्दु १३ मितेष्विति स्वरज्ञा दहनेन्दु १३प्रतिमौ विदुर्मृष्टे तौ ॥७

अथ स्वरोदयोक्तमृतजीविताख्यपक्षौ स्त भवत इति स्वरज्ञा स्वरोदयवेदिन ॥ तौ मृतन वितपक्षौ मृष्टे सग्रामे दहनेन्दुप्रतिमौ विदु । मृतपक्षोऽग्निसदृशो जीवितपक्षश्चंद्रसदृश इत्यर्थे यत् 'यत्र ऋसे स्थितो राहुर्वेदनं तद्विनिर्दिशेत् । मुखात्पचदश ऋक्षतस्य पुच्छे व्यवस्थि ॥ १ ॥ राहुभुक्तानि ऋक्षाणि जीवपक्षे त्रयोदश ॥ त्रयादशैव भोग्यानि मृतपक्ष प्रकीर्तित ॥ २ ॥ जीवपक्षे क्षपात्राद्ये मृतपक्षे रवौ स्थिते । तस्मिन् काले शुभा यात्रा विपरी त्तु हानिदा ॥ ३ ॥ चंद्रादित्यौ यदा युक्तौ जीवपक्षे व्यवस्थितौ । तत्र होम नय लाभ यात्र काले विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥ मृतपक्षे यदा काले सस्थितौ चंद्रमास्करौ । तदा हानिर्भयं मृतपक्षे मृत्युर्यात्राफल मत ॥ ५ ॥ जीवपक्षे स्थिते चंद्रे कार्यं स्यादमृतोपम । मृतपक्षे मृतं शे यत्र चंद्रबलावल ॥ ६ ॥ न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो न च चंद्रमा । तन्ममेकं प्रश्नसति त्रि पदेकादशे रवौ ॥ ७ ॥ इति जीवपक्षमृतपक्षराहुविचारचक्र ॥ ७५ ॥

अहितैरपसव्यभागग तैः पदिकं युध्यति जीवपक्षलब्धौ ॥

प्रविधाय निहंतुमेकमग्रे युधि शक्यंत इनं न योऽपि तस्य ॥ ७६ ॥

अथ जीवितपक्षे दक्षिणार्ककल दर्शयति—अहितैरिति ॥ यो रात्र् ते अहितैः शत्रौ सम पदिकं पादचारि यथा स्यात्तथा इति क्रियाविशेषण युध्यति किं कृत्वा जीवपक्षलब्धौ जीवितकालप्राप्तावपि एकं कवल इत सूर्य अपसव्यभागग दक्षिणभागास्थित प्रविधाय व शत्रवस्त्राय राज्ञो निहतुं हननाय न शक्यते समर्था न भवति कस्मिन् अग्रे उत्तरे युधि सग्रामे । अथ धातुर्विदादिगणीयस्तेन कर्तुं किः । यत् 'प्राणप्रवेशे बह्नाडिपादं कृत्वा प्रा दक्षिणमर्कविष ॥ गच्छेच्छुभाचारिविधाय' इत्यादि ॥ ७६ ॥

कुरु तेऽपि कलिं स्पृहास्ति राजन्मिहिराराहनि नागरेण कर्तुं ॥

यदि जीवितपक्षमासु धीरैः सजयामूपकुलेंदुवासिनीपु ॥ ७७ ॥

अथ जीवितपक्षे मथारशुद्धौ युद्धमाह—कुरुत इति ॥ हेराजन् यदि ते तव नागरेण ना सवधिशत्रुजनेन सह कलिं कर्तुं स्पृहा वाजऽस्ति तदा त्व धीरै सुभटे कृत्वा कलिं कुरु क स्मिन् मिहिराराहनि मिहिर सूर्य आरो मोमस्तयोरहनि दिने पुन काम उपकुलेंदुवासिनी उपकुलसज्ञा द्वेऽश्वदस्य वासिन्य कलत्राणीत्यर्थ । किंमतासु उपकुलनारासु सनयातिष्ठि कामु पुन किंमतासु नावितपक्षमासु जीवितपक्षसमितासु 'वासिनी' 'वर्णिनी स्त्री' इति हलापुन 'सुवासिनी' 'सूर्य' स्यात्' इति हेम ॥ ७७ ॥

कुलमेऽभिभवः सतीति युद्धान्पतेः स्यादनु नागरस्य सिद्धिः ॥

उभयोरपि संधिरन्यविष्णये गुरुविष्ण्याहनि पूर्णयाश्रितेऽतः ॥ ७८ ॥

अथ जीवितपक्षे कुलभादिमवारफलमाह—कुलेति ॥ इति सति जीवितपक्षे कुलमे कुलसंज्ञनक्षत्रे
 युद्धात् भूपतेः राज्ञोऽभिभवः परामवः स्यात् । अनु पश्चात् नागरस्य शात्रवस्य सिद्धिः स्यात् ॥
 अतोऽस्मादन्यधिष्येऽन्यनक्षत्रे उभयोः संधिः संधानं स्यात् ॥ कस्मिन् गुरुधिष्याहनि गुरु-
 शुक्रदिने किंभूते पूर्णया पूर्णासंज्ञातिथ्याश्रिते ॥ ७८ ॥

यदि शालमसह्यराजधानीं नृपतेर्नेतुमरं तदीश्वरं चेत् ॥

धिषणास्ति सदन्यस्वायनैर्वा नय मध्ये निचितेऽथ तस्य जित्वा ॥ ७९ ॥

अथ युद्धे जयाय कोटचक्रसंधानमाह—यदीति ॥ अथ यदि चेत् अरं शीघ्रं तदी-
 श्वरं शालस्वामिनं जित्वा शालं प्राकारमसह्यराजधानीं उत्कटरकंधावारं वा नेतुं गृहीतुं नृ-
 पतेर्भूपस्य धिषणाऽस्ति तदा त्वमेतद्वक्ष्यमाणं नय कुरु ॥ अथवा नृपते इत्यत्र संबोधनात्-
 पाठे हे नृपते हे राजन् यदि तदीश्वरं शालस्वामिनं जित्वाऽसह्यराजधानीं नेतुं तव धिषणा
 बुद्धिः इच्छाऽस्ति तदा त्वं शालं नय गृहाण इत्यप्यन्वयः । कस्मिन् सदन्यास्वायनैः पापग्रहै-
 स्तस्य मध्ये शालचक्रमध्ये निचिते व्याप्ते सति 'रकंधावारो राजधानी' राजाश्रितमूलनगर-
 मित्यर्थः ॥ इति हैमः ॥ ७९ ॥

चतुरस्रमुदीरितं त्रिकोष्टं वलयं यत्स्वरशास्त्रभेदविद्धिः ॥

तदथोच्यत एव चक्रसंज्ञं शदिशो न्यस्तकृशानुभादि चक्रम ॥ ८० ॥

अथ कोटचक्रस्थापनां दर्शयति—चतुरस्रमिति ॥ हे राजन् स्वरशास्त्रभेदविद्धिश्चतुरस्रं
 चतुःकोणं त्रिकोष्टं त्रयः कोष्टाः यस्य तत् यद् वलयं चक्रमुदीरितं कथितं अथ मया तच्च-
 क्रमुच्यते कथ्यते ॥ किंभूतं तत् चक्रसंज्ञं चक्राभिधं दुर्गचक्राभिधं दुर्गचक्रमित्यर्थः ॥ पुनः किं-
 भूतं शदिशः शस्य ईश्वरस्य दिग् तस्या ईशानदिक्को न्यस्तकृशानुभादि न्यस्तानि स्थापि-
 तानि कृत्तिकादि भानि यस्मिंस्तत् ॥ ८० ॥ *

इह शौच्यभमैज्यमाद्यपित्र्येऽनिलभं द्वीशभमित्रभे च भैम्याः ॥

अभिजिन्नयमाद्यमांतकर्षं ककुभोऽयं परिधौ गणोऽस्ति बाह्ये ॥ ८१ ॥

अथ कोटचक्रस्य प्रथममुपरितनकोष्टके कृत्तिकादिभानां स्थापनां दर्शयति—इहेति ॥ हे
 राजन् इह चक्रे शौच्यभं कृत्तिका ऐज्यं पुष्यः आर्द्रं च पित्र्यं च अनयोर्द्वे आह-
 पित्र्ये आश्लेषामधे द्वे अनिलभं स्वाती द्वीशभमित्रभे विशाखाऽनुराधे द्वे अभिजिन्नयं अभिजित्
 श्रवण धनिष्ठा आद्यमश्विनी आंतकर्षं भरणी च समुच्चये एषां द्वादशभानां गणोऽयं भीमस्य
 ईश्वरस्य इयं भैमी दिक् तस्या भैम्याः ईशानकोणतो बाह्ये परिधौ परिवेषे उपरितनकोष्ट-
 केऽस्ति तिष्ठति ॥ आह्यपित्र्येऽनिलभमित्यत्र द्विवचनं मणीवादिवर्जमितिषत् संधिः ॥ ८१ ॥

कभकश्यपभीरुभे च भाग्यं सततं विश्वकृदक्षमैद्रविश्वे ॥

शततारकमंत्यभं च दुर्गे गदितोऽसावुडुसंचयः स्वर्ज्ञे ॥ ८२ ॥

अथ चक्रस्य द्वितीयेऽतरालके रोहिण्याद्यष्टमानि दर्शयति—कमेति ॥ हे राजन्
सतत सदा कस्य ब्रह्मणो मे कम रोहिणी कश्यपस्य भीरु कश्यपे स्त्री अदितिस्तद्ग पुन
र्वसु अनयोद्विद्वे इमे मे माग्य पूर्वाफाल्गुनी विश्वरुद्रस्त चित्रा ऐंद्रविश्वे ज्येष्ठोत्तराश्वि
शततारक शतभिषक् अत्यम रेवती च समुच्चये इत्यसावुदुसंचयो भवर्गो दुर्गविचाले
स्वरज्ञैर्गदित प्रोक्तः ॥ ८२ ॥

रुरुकार्यमयातुधिष्ण्ययुग्मं त्रिकमंत्यानुगभद्वयं च मध्ये ॥

इह मध्यगभाष्टकेऽग वार्त ससमस्तावरगैः सदैव विद्धि ॥ ८३ ॥

अथ चक्रस्य तृतीये मध्यमागकोष्टकेऽष्टमृगशीर्षादिस्थापना दर्शयति—कमेति ॥
तु पुनः स्वरज्ञै रुरु मृगशीर्षे श रुद्र आर्द्रा अर्यमयातुधिष्ण्ययुग्ममिति । कोऽर्थ अर्यम
युग्म उत्तराफाल्गुनी हस्त इति द्वय यातुयुग्मं मूल पूर्वाषाढा इति द्वय अजपत् पूर्वमाद्रपदा भ
त्पामुगम अत्यस्य रेवतीनक्षत्रस्यानुपश्चात् गच्छतीति तत् उत्तरामद्रापदामामित्यर्थ ॥ एषा द्वे
समग्रपद ॥ इत्यय भाना गणो मध्ये शालमध्यकोष्टके गदित प्रोक्त । अग इति कोमलामग्रो हे
राजन् ससमस्तावरगै समग्रग्रहै सह वर्तमाने इह मध्यभाष्टके मध्यमाप्तनक्षत्राणामष्टके च
सदैव वार्त कल्याण विद्धि जानीहि 'स्वारथ्ये वार्तमनामयम्' इति हैम ॥ ८२ ॥

विदिगंशुसमानभैः प्रवेशो गदितस्तंभ इहानुवात्यकाणं ॥

भचतुष्टयमंतरस्थतारा निखिला निर्गमगा बुधैर्विचिंत्याः ॥ ८४ ॥

अथ भै प्रवेशनिर्गमस्तभस्थानानि दर्शयति—विदिगमिति ॥ इह शालचके विदिगशुसमानभै
विदिक्षु चपसपु अशुभि सूर्यैर्मान प्रमाणं येया तानि तैर्भेदैर्दशनस्तत्र कृत्वा बुधै प्रवेशो गदित ॥
कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षाणि १ मवापूर्वाफाल्गुन्युत्तरफाल्गुन्य २ अनुराधाज्येष्ठामूलानि ३ धनि
ष्ठाशतभिषक्पूर्वाभाद्रपदा ४ इति प्रवेशे द्वादश । पुन अनु बाह्यकाण शालबाह्यकोणसमीपात्
अत्यस्पतारा निखिला अतरालगतद्वादशमानि बुधैर्निर्गमगा विचिंत्या ॥ पुनर्वसुपुष्याश्लेषा १
चित्रास्वातीविशाखा २ उत्तराषाढाऽभिनिच्छ्रवणा ३ रवत्यभिनीभरण्य ४ ॥ पूर्वादिदिक्षु आर्द्रहस्त
पूर्वाषाढोत्तरामाद्रपदा इति स्तभनक्षत्रचतुष्टयं ॥ यत् 'कोटचक्र छिन्नेच्छादौ चतुरस्र त्रिनादिक ।
कृत्तिकादीनि भान्यत्र चाभिजित् तत्र दापयेत् ॥ १ ॥ बहि प्राकारमध्ये च मध्ये दुर्गे
बहिर्बहि । प्रवेशो निर्गमस्तत्र ज्ञातव्य स्वरवेदिभि ॥ २ ॥ बहिर्द्वारेणान्येवं प्राकारे तारवा-
ष्टक । दुर्गमध्ये तथा चाष्टौ तन्मध्ये स्तभतुर्यक ॥ ३ ॥ प्राच्या रौद्र यमे हस्त पूर्वाषाढा च
पश्चिमे । केवेर्यामुत्तरामद्रा एतस्तभचतुष्टय ॥ ४ ॥ कृत्तिकाद्य मयाद्य च मेवाद्य वासवादि ।
ग्रीणि त्रीणि प्रवेशे च द्वादशान्यानि निर्गमे ॥ ५ ॥ चतुरस्र तथा दार्वे त्रिकोण वृत्तदार्यक ।
अर्द्धचद्र तथा ज्ञेय गोस्तन धनुराकृति ॥ ६ ॥ चतुरस्रे यथा न्यासो भूमिभागक्रमेण च ।
प्रवेशनिर्गमस्तभस्तथा वृत्तादिसप्तके ॥ ७ ॥ इत्यादि नरपतिजयचर्यादिशास्त्रतो ज्ञेय ॥ ८४ ॥

विदधत्यनंसाधवो बहिस्था द्युसदो वप्रविभंगमप्यसंतः ॥

इह मध्यगता विलोमगा वा कलिना वेषकवाहिनीलयं ते ॥८५॥

अथ शालचक्रे ग्रहस्थानफलमाह—विदधतीति ॥ इह शालेऽनसाधवः शुभा द्युसदो ग्रहाः बहिस्था वप्रविभंगं प्राकारभंगं विदधति कुर्वति । अपि पुनः असंतः पापग्रहा मध्यगता वप्रभंगं विदधति केन कलिना संग्रामेण । वेति पक्षतरे । इह ते एते विलोमगाः मध्यगताः सौम्याः ग्रहाः बहिस्थाः पापाश्च आवेषकवाहिनीलयं आयातसेनाक्षयं विदधति ॥ यतः 'कूरा गर्भे शुभा बाह्ये गृह्यते निश्चितं पुरं । सौम्या मध्ये बहिः कूरा असाध्यं दुर्गमुच्यते' ॥८५॥

इतपापचतुष्टयं तदंतर्यदि शालः ससमस्तसाधुखेटः

कलिना किल तत्र भेदभंगोऽरमृते स्यादमुनान्यथेतभंगः ॥८६॥

अथातर्गतकूरग्रहचतुष्केण कोटग्रहणमाह—इतेति ॥ यदि चेत् तदंतस्तस्य शालस्य मध्ये इतपापचतुष्टयं गतकूरग्रहचतुष्कं भवति । यदि ससमस्तसाधुखेटः समग्रसौम्यग्रहैः सह वर्तमानः शालो भवति किलेति सत्ये तदारं शीघ्रं तत्र शाले भेदभंग उपजायते भंगः स्यात् । केन अमुना कलिना युद्धेन कृतेन विना यतः 'कूर चतुष्टय मध्ये प्राकारे सौम्यखेचराः । भेदभंगो भवेत्तत्र विना युद्धेन गृह्यते' ॥१॥ इति ॥ अन्यथेति ॥ एवं पूर्वोक्ताभावे भगः पराजयः स्यात् । आगतस्य पलायनमित्यर्थः ॥ उपजापः पुनर्भेद इति 'पराजयो रणे भंग' इति हैमः ॥८६॥

यदि शालकमध्यगाः सदन्ये त्वसदन्ये गगनायना बहिस्थाः ॥

अतिकृद्भवताहवेन दुर्गत्रधिभूर्भज्यति तत्र नास्य वेशः ॥८७॥

अथ मध्यबाह्ययोः पापसौम्यैः समयुद्धमाह—यदीति ॥ यदि चेत् शालमध्यगता प्राकारमध्यगताः सदन्ये पापग्रहाः तु पुनर्बहिस्था असदन्ये शुभा गगनायना ग्रहाः सति तदानधिभूर्भज्यति भनक्ति केनातिकृद्भवता महत्कष्टयुक्तेन आहवेन संग्रामेण कृत्वा पुनरस्य आयातनृपस्य वेशः प्रवेशो नास्ति ॥ भज्यते इति भज्यः भज्य इव आचरतीति भज्यति अन्यथायं प्रयोगो महाकविगम्यः ॥ ८७ ॥

कृतशालकबाह्यवासखेटास्त्वसदन्यग्रहयुक्तगर्भदुर्गः ॥

यदि तत्र न जायतेऽपि भंगः प्रवले द्वेपिणि चास्तु खंडिपातः ॥८८॥

अथवा स्वमध्ययोः पापसौम्यैः पुरोऽभगतामाह—कृतेति ॥ यदि कृतो बाह्यकशाले वासो यैस्ते च खेटाश्च प्राकारबाह्यस्थिताः पापखेटाः सति तु पुनरसदन्यग्रहयुक्तगर्भदुर्गः दुर्गमध्यगतशुभग्रहाः सन्ति तदा तत्र शाले भंगो न जायते कस्मिन्प्रवले द्वेपिणि सति अपि पुनः खंडिपातः किंचित् कोटपतनमस्तु ॥ यतः 'प्राकारे बाह्यगाः कूराः सौम्या मध्यगता यदि ॥ युद्धं प्राकारखंडिश्च पुरभंगो न जायते' ॥१॥ इति ॥ ८८ ॥

वहिरंतरगाः खलाः खपांथाः स्युरपापा यदि शालधिष्ण्यसंस्थाः ॥

उभयोश्च चमृक्षयोऽतियुद्धान्नियतं भूमिभुजोस्तयोर्निवृत्तिः ॥ ८९ ॥

अथ बाह्यमध्ये पापसौम्यभूमिश्चे कलमाह—वहिरिति ॥ यदि खलाः क्रूराः खपांथाः ग्रहाः वहिरंतरगाः स्युः अपापाः शुभा ग्रहाः शालधिष्ण्ये संस्थाः प्राकारनक्षत्रे स्थिताः स्युस्तदा नियतं निश्चितं तयोर्भूमयोर्भूमिभुजोश्चमृक्षयः सेनाविनाशः स्यात् ॥ कस्मादतियुद्धात् च पुनरुभयोर्भूमिभुजोर्निवृत्तिः कल्याणं स्यात् ॥ यतः 'सौम्यमध्ये च कोटे च बाह्ये पापग्रहा यदि देवैर्ब्रह्मादिभिर्दुर्गे रणारंभे न गृह्यते' ॥ ८९ ॥

सखलग्रहशालतारका चेद्वहिरंतर्गतशोभनग्रहेंद्राः ॥

समसंगरयामनन्ति संतः प्रतिवारं च पतरपपीह खंडिः ॥ ९० ॥

अथोक्तवैपरीत्ये कलं दर्शयति—सखलेति ॥ चेद् यदि सखलग्रहशालतारका खलग्रह युक्तप्राकारनक्षत्रं स्यात् वहिरंतर्गतशोभनग्रहेंद्राः संतः पंडिताः समसंगरं समानसंग्राम आमतुं ति कथयति च पुनरिह प्रतिवारं पट्टमवारपर्यंतं वर्तमानवारतोऽग्रवार इति प्रतिवारं खडिरपि पतति किंचित् किंचित् कोटयोद्धादिक्षयः स्यादित्यर्थः ॥ यतः 'प्राकारस्था ग्रहाः क्रूरा वहिर्मध्ये शुभाः स्थिताः । समयुद्धं भवेत्तत्र खडिगताः दिने दिने' ॥ ९० ॥

युगपत्सदसद्विषयचरेंद्रा यदि मध्यस्थलदुर्गबाह्यगाः स्युः ॥

युधि घोरतरेंद्रतकास्ययानं भवतीलातलपालयोर्द्वयोर्वा ॥ ९१ ॥

अथ मध्यबाह्ये युगपच्छुभाशुभग्रहं सर्वश्रयं दर्शयति—युगपदिति ॥ यदि चेत् यत् समं कालं तदसद्विषयचरेंद्रा शुभाशुभग्रहा मध्यस्थलदुर्गबाह्यगाः स्युस्तदा घोरतरे उभे युधि संग्रामे द्वयोः इलातउपालयोर्भतलत्त्वामिनोरतकास्ययानं प्रयाणं सृस्युर्भवतीत्यर्थः ॥ यतः 'क्रूराग्रग्रहाश्चाथे प्राकारे मध्यबाह्ये । एतस्या यत्र कुर्वति संग्रामं तत्र दारुणः ॥ न कश्चित् विनयं युद्धे द्रव्यं याति यमालय' इति ॥ ९१ ॥

सममानतया शुभाशुभाश्चेत्सहिता बाह्यविमध्ययोर्नभोगाः ॥

परिवेष्टकशालपालरात्रोर्गृहि संधि कथयन्ति कोविदा वा ॥ ९२ ॥

अथवा समध्ये समभागस्थितशुभाशुभग्रहं कलमाह—समेति ॥ चेद् यदि शुभाऽशुभा सममानतया तुल्यप्रमाणेन सहिताः युक्ताः नभोगाः ग्रहाः बाह्यमध्ययोः बाह्यमध्यगा स्युः वेति पश्चतरे इह नदा कोविदाः पण्डिताः परिवेष्टकशालरात्रोर्गृहेष्टकभूते, शालभूते श्रान्त्योन्यं संधि कथयन्ति ॥ यतः 'समगस्याः शुभा क्रूरा वहिर्मध्ये च सहिष्ताः ॥ तदा संधि विनानीयार्त्तसैन्ययोर्नभोरपि' ॥ ९२ ॥

चरतोरवनीतजन्मचांद्रोहनि स्तांभ्य उत प्रवेशभे भे ॥

पुरोधमवेहि जीवपत्रे त्वकुलर्क्षे हिमभासि श्रिरिकालम् ॥ ९३ ॥

अथ मौमबुधचंद्रनक्षत्रसंयोगे पुररोधं दर्शयति—चरत इति ॥ हे राजन् त्वं पुररोधमवेहि जानीहि कस्मिन् अवनीतजन्मचांग्रोः अवनिर्भूमिस्तस्या इतं प्राप्तं जन्म येन स अवनीतजन्मा चंद्रस्यापत्यं चांद्रिबुधः अनयोर्द्वे एतयोरहनि दिने किंभूतयोर्मौमबुधयोः स्तंभे भवं स्ताम्य तस्मिन् स्तंभसंबंधिनि मे नक्षत्रे उत अथवा प्रवेशनक्षत्रे चरतोगच्छतो. तु पुनरकुलर्धे कुलसंज्ञमवर्जितनक्षत्रे जीवपक्षे हिमभासि चंद्रे भूरिकाळं पुररोधं जानीहि । ९३ ॥

दिशि मंत्रिणि संस्थिते मघोनः क्षितिजे दंडभृतः सिते परस्यां ॥

विदि वित्तविभोश्च जिह्मभावे नु मिथः शैविरशालभेदभंगः ॥९४॥

अथात्र पूर्वादिदिक्षु स्थितगुरुभौमशुक्रबुधानां फलमाह—दिशीति ॥ नु वितर्के मिथः परस्परं शैविरशालभेदभंगः सैन्यरचनापटमंडपादिः शालः प्राकारभेदः उपजाप एषां भंगः स्यात् कस्मिन् मघोन इद्रस्य दिशि पूर्वस्या मंत्रिणि । गुरौ सति पुनः क्षितिजे भौमे दंडभृतो यमस्य दिशि दक्षिणस्या संस्थिते सति पुनः सिते शुक्रे परस्यां पश्चिमायां दिशि संस्थिते सति पुनर्विदि बुधे वित्तविभोर्धनदस्य दिशि उत्तरस्यां संस्थिते सति किंभूते गुरुप्रभुत्वे जिह्मभावे वक्रगतिं प्राप्ते ॥ ९४ ॥

ससदन्यनिरीक्षितद्विजेशो द्युसदोऽसंत उतास्ति यत्र तत्र ॥

खलु खंडिनिपात ईक्षितास्तैः पुरवेशो विशतोऽस्तोऽयनेन ॥९५॥

क्रूरग्रहविलोकितरस्थाने फलं दर्शयति—ससेति ॥ उत वितर्के यत्रासंतः क्रूरा द्युसदो ग्रहाः संति किंभूताः ससदन्यनिरीक्षितद्विजेशः क्रूरग्रहविलोकितचंद्रसंहिताः द्विजैर्द्विजेशो द्विजेशः इति बहुवचनं खलु निश्चितं तत्र खंडिपातो वप्रभंगोऽस्ति पुनर्यत्र तैः पापैरोक्षिताः क्रूरग्रहाः संति तत्र विशन् तस्य विशतः प्रवेशकरस्य राज्ञः पुरवेशो नगरप्रवेशः स्यात् शत्रु पुरं गृह्णातीत्यर्थः । केनासतः पापस्यायनेन मार्गेण दारुणयुद्धे बहुजनयुद्धे क्षयत्वात् ॥९५॥

इह निर्गमभे निहन्ति पापः कुटिली बाह्यविशालशालभित्तिं ॥

स तु शालगतो हि मध्यभागं जठराद्वाममिदं भवेत्प्रवेशे ॥ ९६ ॥

अथ वक्रिग्रहाश्रितस्थाने फलमाह—इहेति ॥ हि युक्तार्थे इह निर्गमभे कुटिली वक्त्री सन् पापो ग्रहो बाह्यविशालशालभित्तिं बाह्यवृहत्प्राकारकुर्वन् निहति तु पुनः स वक्त्री पापग्रहः शालगतः मन् मध्यभागं हन्ति पुनरिदं फलं जठरान्मध्यमागात् वामं विलोमं प्रवेशे भवेदित्यर्थः ॥ ९६ ॥

यदि दुर्गविभुः खला विमध्ये निखिलास्तंभवर्तिनो भवंति ॥

पुरुहूतपराक्रमोऽपि शालं वत मुक्त्वा विपलायते स्वपांथाः ॥९७॥

अथ स्तंभनक्षत्राश्रितक्रूरग्रहाणां फलमाह—यदीति ॥ यदि विमध्ये शालयेदके निखिलाः समस्ताः खलाः पापाः स्वपांथाः ग्रहाः स्तंभवर्तिनः स्तंभनक्षत्रेषु वसेमान् भवंति तदा

नतेति खेदे दुर्गविभु प्राकारस्वामो शालं मुक्त्वा विपलायते गृहीतदिग् भवति । किंभूतः ?
 ब्रह्मतराक्रमोऽपि इद्रसमानवीर्योऽपि ॥ ९७ ॥

इह शालवदेव देशचक्रे कथितस्तारकखेचरादिभेदः ॥

पुरनामभपंचभागधिष्ण्यात्पुरचक्रे च सदोदितः प्रवुद्धैः ॥ ९८ ॥

अथ कोटचक्रोपसहारेणान्यदपि दर्शयति—इहेति ॥ इह चक्राधिकारे सदा प्रवुद्धे
 पद्धिते तारकखेचरादिभेद नक्षत्रग्रहादिस्थापनाभेद शालवत् प्राकारवत् एव कथितः । कस्मिन्
 देशचक्रे जनपदसाधनचक्रे पुनः पुरचक्रे नगरचक्रे पुरनामभपंचभागधिष्ण्यात् नगरनाम
 नक्षत्रात् पंचभागस्थानात् तारकखेचरादिभेद उदितः प्रोक्तः चतुर्विंशु मध्यभागे चेति पञ्चमा
 नेन स्थापना इति शालादिचक्राधिकारः सपूर्णः ॥ शालो दस्यस्तालव्यश्च ॥ ९८ ॥

समिताजपदक्षवैश्वमिश्रैर्द्विनगेनैदवघसवर्तमानैः ॥

रविमंदरथद्युमद्युभी राट् पुरवेशी बहुदेशवेशकः स्यात् ॥ ९९ ॥

अथ युद्धे नगरपुरादिप्रवेशे तिथिवारशुद्धिमाह—समितेति ॥ राट् राजा समिता संग्रामेण
 पुरवेशीनगरप्रवेशको बहुदेशवेशको भूरिजनप्रवेशकारकः स्यात् ॥ कैः अनपटस्रवैश्वमिश्रैः
 पूर्वाभाद्रपदा उत्तराषाढा मिथ्ये रुक्तिकाविशाले एषा द्वंद्वे एभिः किंभूतैः द्विनगेति । द्वौ द्वितीयौ
 १ जगा सप्तमी ७ इना द्वादशी १२ भद्रास्तिथय एते चैदवघस्राश्चाद्रदिनाश्चैतु वर्तमाना
 पुनः किंभूतैः रविमदेति । रविः सूर्यः मंदो रथो वेगो गमन यस्य स मंदरथः शनिः इमौ च द्यु
 खगौ च रविमंदरथद्युमद्युभौ तयोर्द्वौ दिनौ एषु तानि ते द्युभी राट् इत्यत्र पुरतो विसर्गस्य रा
 तस्य छोपे च कृते पूर्वस्वरस्य दीर्घे द्युभीराट् इति जातः ॥ ९९ ॥

सुखवृत्तिभूतः पुरादिवेशेऽधिभुवो मेत्रलघुध्रुवैस्वार्तः ॥

भगभार्गवभाग्यजीववारा ददर्ताद्वीरितकैः सुयोगलमाः ॥ १०० ॥

अथ प्रवेशेऽशुभाशुभकारान् दर्शयन्माह—सुखेति ॥ अधिभुवो नृपस्य पुरादिवेशे न
 रादिप्रवेशे भगभार्गवभाग्यजीववाराः सूर्यः शुक्रः भगस्य सूर्यस्थापत्य भाग्य शनिः गुरुः
 द्वंद्वे एते वारा अवार्तमभद्र ददति कैः कृत्वा मित्रलघुध्रुवैर्मित्रमनुराधा उतुसज्ञानि ध्रुवसज्ञानि
 एभिर्नक्षत्रैः किंभूतैरद्वीरितकैः चद्रेण प्रेरितश्चद्रेण युक्तेरित्यर्थः । किंभूता सुष्टु योगो यति
 तत्तमुयोग एष किं लभ्य एषु ते । किंभूतस्य अधिभुवः सुखवृत्तिभूतः सुखवर्तनवारवस्य ॥ १०० ॥

स्थिरभोदयभाज्यनेहसीज्ये सुखं यथासौ १० सुखवर्तमानोश्च दुष्टैः ॥

अरिद्वलब्धिगतेर्हितः प्रवेशः पुरि संकीडितसुस्थिरैर्द्वयस्थैः ॥ १०१ ॥

अथ स्थिरलब्ध्यादौ प्रवेश दर्शयति—स्थिरैरिति ॥ पुरि नगर्या राज्ञः प्रवेशो हितो ।
 करी स्यात् । कस्मिन् स्थिरभोदयमाने स्थिरराशेष्टप्रयुक्ते अनहमि काले इत्येव गुरो
 च पुनः सुखवर्तमानो महेच्छ वर्तमानो सुखं यथासौ १० सुखवर्तमानोऽप्यो ।

पुनः कैः भरिष्ठवर्गैः तृतीयषष्ठैकादशमावगैः दुष्टैः पापग्रहैः किंभूतैर्दुष्टैः संक्रोडितास्तुस्थिरैर्द्ववस्थैः संक्रोडिता १ सुस्थिरा २ इमे चंद्रावस्थे द्वे एषु ते तैः ॥ १०१ ॥

प्रवासा विनष्टा मृताख्या जया च प्रहास्या रतिः क्रीडिता सुप्तमुक्ते ॥

ज्वरा कंपिता सुस्थिरैवानुभं स्युः क्रमेण क्रियादर्कमा इंद्रवस्थाः ॥ १०२ ॥

अथ भुजंगमयातन चंद्रस्य द्वादशावस्था आह—प्रवासेति ॥ क्रियात् मेपात् क्रमेणानुभं राशिं राशिं प्रवासादय इंद्रवस्थाश्चंद्रावस्था अर्कमा अर्कैर्मयंते इत्यर्कमा द्वादश-
संख्याः स्युः ॥ मेपराशिस्थचंद्रात् प्रवासादयः १२ वृषराशिस्थचंद्रात् विनष्टादयः १२
एवं सर्वा अपि । मुक्ता च भुक्ता च अनयोर्द्वे द्वे सुप्तमुक्ते एव निश्चितम् ॥ १०२ ॥

प्रवासे श्रमो वा प्रवासोदयोऽब्जे विनष्टश्रुतिः स्याद्विनष्टानुयाते ॥

मृतायां कलिर्वा रुगर्तिर्जयायां जयः सर्वतः स्मैतयोगः स्मितायाम् ॥ १०३ ॥

अथासा कलमाह काव्यत्रयेण—प्रवास इति ॥ प्रवासोदये प्रवासावस्थायामब्जे
चंद्रे सति प्रवासे बहिर्गमने श्रमः स्यान्नरस्येति शेषः ॥ एवं विनष्टानुयातेऽब्जे
विनष्टश्रुतिः विनाशस्य श्रवणं पुनर्मृतायामब्जे कलिर्वायवा रुगर्तिः रोगपीडा पुन-
र्जयायामब्जे सर्वतो जयः पुनः स्मितायामब्जे स्मैतयोगः हास्यसंयोगः स्यात् ॥ १०३ ॥

रतौ राज्यधीशे रतीशे रतिर्वा जनैः क्रीडितायां वशाभिर्विलांसः ॥

मदालस्यमोहः प्रसुप्तानुगे स्यात्सुभक्तिश्च भुक्ताश्रितेऽर्तिर्ज्वरायां ॥ १०४ ॥

रताविति ॥ रतौ राज्यधीशे रत्यवस्थायां चंद्रे सति रतीशे कामविषये रति स्यात् ॥ वा पुनः
क्रीडितायां चंद्रे वशाभिर्विध्यास्त्रीजनैः सह विलासः । पुनः प्रसुप्तानुगे चंद्रे मदालस्यमोहः
मदतंद्राभ्यां मौढ्यं स्यात् ॥ पुनर्भुक्तामिश्रिते चंद्रे भुक्तिः पुनर्ज्वराया चंद्रेऽर्तिः पीडा
स्यात् ॥ १०४ ॥

दरो वेपथुः कंपितायामितीदौ स्थितिः स्थायिनी जायते सुस्थिरायां ॥

समामासघस्रप्रवेशे च याने दरे पूःप्रवेशे कलौ चिंत्यमेतत् ॥ १०५ ॥

दर इति ॥ कंपितायामितीदौ चंद्रे दरो मयं वेपथुः कंपश्च आधते । पुनः सुस्थिराया-
मिदौ स्थायिनी तिष्ठच्छीला स्थितिर्जायते इति एवमेतच्चिंत्यं । कस्मिन् सनादिप्रवेशे सना-
दौ नासः घस्रः एषां प्रवेशे च पुनर्यानि प्रयाणे पुनर्दरे मये पुनः पूःप्रवेशे नगरीप्रवेशे पुनः
कलौ संग्रामे ॥ १०५ ॥

विपक्षं विजित्वा तदर्थं च नीत्वा समापूरयत्यात्मकोशालयं यः ॥

स जीवे शुभे भोदयेऽब्जे स्थिरे स्वे सपूर्णं शनीज्यान्हि यात्यर्थशुद्धिम् ॥ १०६ ॥

अथ भेदारभरणशुद्धिमाह—विपक्षमिति ॥ यो नृपः आत्मकोशालयं निजभेदारगृहं
समापूरयति किं कृत्वा विपक्षं शास्त्रं विजित्वा न पुनस्त्वदर्थं शत्रुघ्नं नीत्वा गृहीत्वा कस्मिन्

स्वे धनमावे स्थिरे भौदये धनमावस्थस्थिरराशिलग्रे पुनरब्जे चद्रे जीवे गुरो च द्युः
पूर्णातिथिसहिते शनोऽन्यान्हि शनिगुरुदिने सति सो नृपोऽर्थवृद्धिं याति प्राप्नोति ॥ १०

कलो भविष्यत्यथ भारतावनो महीभुजो बाहुभुवोऽप्यनेकशः
शकास्तथैषामभिषेचनादिकं हितं सदोदीरितकालसाधितम् ॥

अथ वशास्येन कलो राजाभिषेक पूर्ववद्दर्शयति—कलाविति ॥ अथानतरं
युगे भारतावनौ भरतक्षेत्रेऽनेकशो बहवो बाहुभुव क्षत्रिया महीभुजो राजानो भवि
तथा शकाः श्लैष्ठा अपि राजानो भविष्यति मदा तेषामभिषेचनादिकं हितं स्यात् ।
तमभिषेचनादिकं उदीरितकालसाधितं पूर्वोक्तकालसाधितं ॥ १०७ ॥

धराधिभृर्भिस्त्रशकादिजातिजस्तदासनस्थोऽभिजनेर्नमस्कृतः ॥
स्तुतः स राजाधिजनेः प्रतिष्ठितो न मंत्रभेदाद्यभिषेचनोचितः ॥

अथ भिष्ठादिजातिनृपाणामभिषेकादिकं निषेधति—धरेति ॥ भिष्ठाशरादिन
धराधिभूः राजा मंत्रभेदाद्यभिषेचनोचितो न स्यात् । किभूता धराधिभू तदासनस्थ पूर्वो
नस्तिपतः पुनः किभूतः अभिजने योऽन्येनैवमष्टयपुनः किभूतः स्तुतः ॥ अथवाभिजना
चारवा इति वादोऽस्या तस्मिन् ॥ पुनः किभूतो राजाधिजनैः राजोऽधिकारमो
प्रतिष्ठितः ॥ १०८ ॥

युधिष्ठिराद्वेदयुगांवराग्रयः ३०४४ कलंवविश्वे १३५

ऽभ्रखखाष्टभूमयः १८००० ॥ ततोऽयुतं लक्षचतुष्टयं

४००००० क्रमाद्धरादृगष्टा ८२१ विति शाकवत्सराः ॥ १११ ॥

अथ युधिष्ठिरादीनामंतरालवर्षाण्यमाह—युधिष्ठिरादिति ॥ युधिष्ठिरात् कलिस्तक्रमणकालः स्यात् ॥ वेदयुगावराग्रयः ३०४४ चतुश्चत्वारिंशदधिकसहस्रत्रयं शाकवत्सरा भवन्ति एतावत्कालं युधिष्ठिरशाकः ॥ ततः कलंवविश्वे कलंवा वाणाः ९ विश्वे त्रयोदश १३५ पंचत्रिंशदधिकशतं एतावत्कालं विक्रमशाकः ॥ 'रोषः कलंवशरमार्गणाचित्रपुंखा' इति हैमः ॥ ततोऽभ्रखखाष्टभूमयः १८००० अष्टादशसहस्रा एतावत्कालं शालिवाहनशाकः ॥ ततोऽयुतं १००००० दशसहस्रा एतावत्कालं विजयाभिनंदनशाकः ॥ ततो लक्षचतुष्टयं ४००००० एतावत्कालं नागार्जुनशाकः ॥ ततो धरादृगष्टौ धरादृक्अष्टौ ८२१ 'महीद्विनागाः' इत्यपिपाठः ॥ एकविंशत्यधिकाष्टशत एतावत्कालं बलिशाकः ॥ इति इह कलौ व्रमात् शाकवत्सराः स्युः ॥ १११ ॥

युधिष्ठिरोऽभूद्भुवि हस्तिनापुरे तथोज्जयिन्यां पुरि विक्रमान्हयः ॥

शालेयधाराभृति शालिवाहनः सुचित्रकूटे विजयाभिनंदनः ॥ ११२ ॥

अथोपजात्येषा जन्मभूमिमाह—युधिष्ठिरादिति ॥ स्पष्टं नगरं शालेयधाराभृतिं शालेरमोलेरनाम्नि गिरौ ॥ ११२ ॥

नागार्जुनो रोहितके क्षितौ बलिर्भविष्यतीन्द्रो भृगुकच्छपत्तने ॥

कृतप्रवृत्तिस्तदनंतरं भवेत्तदा भविष्यत्यवनीभृतोऽर्कतः ॥ ११३ ॥

नामेति ॥ पूर्वार्द्धे स्पष्टं । नगरं रोहितके क्षितौ रोहितासभूमौ ॥ अनुक्तान्यप्यत्र ग्रंथांतरादेपां ईशानामन्याह ॥ यतः 'युधिष्ठिरोभूत्किल राजवंशजः स राजपुत्रः परमारवंशभूः ॥ श्रीविक्रमार्को ननु शालिवाहनो गोहिच्छर्भूः विजयाभिनंदनः ॥ १ ॥ शिशोदरान्वायभवो भविष्यत्ततोऽत्र नागार्जुनसंज्ञको नृपः ॥ राजाधिराजः किल कल्किरात्मभूस्तत्स्थापितो, राट् बलिश्च दीक्षकः ॥ २ ॥ इति ॥ अथ उत्तरार्द्धमाह ॥ तदनंतरं कृतप्रवृत्तिः सत्यपुगप्रवर्तनं भवेत्तदार्कतः सूर्यतोऽवनीभृतो राजानः सूर्यवंश्या भविष्यति ॥ ११३ ॥

समस्तकाष्ठाचरतामिलाभृतामेपामृतं दिग्विजयोऽनिशं भवेत् ॥

इति प्रयत्नादूणकैरुदीरितं यानं सदा कालगमेषु कामदम् ॥ ११४ ॥

अथैषा . सदाकालप्रयाणमाह—समस्तेति ॥ अनिश निरंतरं इत्याभृता महोपतीना समस्तकाष्ठाचरता सर्वदिक्षु गच्छता सता अनेकभूषदेशेषु गमनशीलाना एषा चक्रवर्तिनां दिग्विजयो भवेदिति हेतोः ऋतं सत्यं गणकैर्यत्नादुद्यमात् सदाकालम् सर्वकालप्राप्तं यानं प्रयाणं कामदमभीष्टदायकमुदारितं प्रोक्तं केषु एषु चक्रवर्तिषु ॥ ११४ ॥

गजपतिरधिमतो वांतरं योऽधिदेशो ह्यपतिस्चलेशः
 सोऽपि साधारणः स्यात् ॥ नरपतिरिह मंदो लेशदेशाव-
 नीशो निजवलवशतोऽमी दिग्जये सत्वभाजः ॥ ११५ ॥

इति श्रीकवि॥लिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे राजसत्ताध्यायो दशमः ॥ १० ॥

अथ मालिन्यैषा सर्वेषां बलं वर्णयति ॥ गजपतिर्वाधिमत्तोऽधिकारयुक्तो वाऽधिदेशो
 धिकदेशवान् वा ह्यपतिर्वाचलेशः पर्वतेशो भूमीशो वा नरपतिर्वा लेशदेशावनीशः स्व-
 देशवान् स्वल्पभूमीशो वा यः स्यात्सोऽपि मंदः सन् साधारणः सामान्यः स्यात् ।
 स्मिन्निह दिग्जयेऽनंतरं पश्चात् अमी पट्वक्त्रवर्तिनो दिग्जये सत्वर्मानोऽभ्यगच्छन्ति युक्ताः स-
 क्माद्भिन्नबलवशात् इति ॥ ११५ ॥

इति श्रीकवि॥लिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे राजसत्ताध्यायो दशमः ॥ १० ॥

विषयभावराजमिरचिताया श्रीकवि॥लिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणस्य

मुख्योपधिकाया राजसत्ताध्यायो दशमः ॥ १० ॥

त्रिविधयात्राध्यायप्रकरणम् ।

अथ प्रयाणं त्रिविधं बृहत्समं मितं भवेदतदपि त्रिभेदकृत् ॥

कालिक्रियं तीर्थफलं च पण्यवत् किलेति तत्कालनयं ब्रवीम्यहम् ॥१॥

अथ राजसत्तामाश्रित्य प्रयाणं स्यादतो ब्रह्मस्थेन प्रयाणाध्यायसंप्रदानमाह—अपेक्षितं
 अथानंतरं किलेत्यवधारणे ३३१ प्रौढं १ समं तुल्यं न्यूनाधिकविषयमित्यर्थः २ मिठं च
 ३ इति त्रिविधं प्रयाणं भवेत् ॥ अपि पुनरेतद्बृहत्समं लघुत्रिविधमपि प्रयाणमेकैकं त्रिभेदकृत्
 भेदयुक्तं स्यात्तदाह ॥ कालिक्रियं फलपूर्वकं प्रिया यस्मिन्तन् पुनः किंभूतं तीर्थस्य वा
 लाभो यस्मानन् 'फलशस्त्राग्नेयुष्टिलाभयो' इत्यनेकार्थः ॥ पुनः किंभूतं पण्यवत् पणित्वप्यपुनं
 'वपित्वप्य तु विक्रयपण्यमिति' ऐम ॥ यथा बृहत्प्रयाणं कालिक्रियं तीर्थफलं पण्यवत् इति त्रि-
 तया बृहत् समं लघु च त्रिधा योग्यमिति ॥ अहं तत्कालनयं तेषां प्रयाणानां सम्यग्गी-
 तमवनिर्णयं वा नर्तामि कथयामि ॥ १ ॥

शुचे शुचिः स्याच्च नभो नभोगह्नभस्यमासो नुरभस्यसंगदः ।

बृहद्गमस्योशनसश्च गीप्पतेनुद्गमो नुद्गमनं सृजत्यरम् ॥ २ ॥

अथ बृहत्प्रयाणे आषाढादीन् दूषयति—शुचे इति ॥ नुरभस्य शुचिराषाढं शु-
 च्युत्तम्ये षोडशस्य स्यात् । किंभूतस्य तु बृहद्गमस्य बृहद्गमो गमनं यस्य स तस्य अर्प-
 णप्रयागे विशेषो न । च पुनरेव नम आषाढो षोडशस्य स्यात् । अयं नम सुद्वाराभ्यां

शद्वप्रभेदे दृश्यतेऽपरस्तु नभाः सकारातः शुंसे सुवचःशद्वत् । पुनर्नमस्यमासो याद्रपदमासो
नरस्याभस्य संगदो मृत्युदायकः स्यात् ॥ भातीति भा नास्ति भा कांतिर्यस्य-स-अभो यमः
कालः अदृश्यरूपत्वादन इति पदं युक्तं तस्याभस्येति ॥ च पुनरुत्थनसः शुक्तस्य गीष्पतेर्गुरोश्चा-
नुद्रमोऽस्तकालोऽरं शीघ्रं नरस्योद्गमनं मरणं सृजति करोति हि युक्तार्थे ॥ २ ॥

सिते समांशावुदयानुगे सदानुकूलवर्तिन्यधिवृत्तिकृद्गमः ॥
भवत्यसौ च त्रिविधो जनुर्विभावनस्तगे न्यस्तफलस्तमीश्वरे ॥ ३ ॥

अथ शुक्लादिशुद्धौ प्रयाणमाह—सित इति ॥ सदाऽसौ त्रिविधो गमो गमनमाधि-
वृत्तिकृत् अधिका वृत्तिं करोतीति तथा भवति । कस्मिन् सिते शुक्ले सति किंभूते शुक्ले समांशौ
कोऽर्थः ग्रहयुतौ अन्यग्रहेण विजितौ न स्यात्स समाशुः पूर्णवीर्यस्तास्मिन् । पुनः किंभूते शुक्ले-
उदयानुगे उदयप्राप्ते पुनः किंभूते अनुकूलवर्तिनि पुनः कस्मिन् सति अनगस्ते उदयप्राप्ते
जनुर्विमौ जन्मलक्षणस्वामिनि किंभूतो गमः तमीश्वरे चन्द्रे न्यस्तफल आरोपितफलः गृहीत-
शुभचन्द्र इत्यर्थः ॥ ३ ॥

न तीर्थकामः सति पाणिजाद्वयुधेऽनृजौ शिशौ वृद्धघने च नीचगे ॥
नरोऽमराच्ये गमनं प्रकार्येद्विनैव कुंभस्थलगौतमीगयाः ॥ ४ ॥

अथानिष्टगुरौ तीर्थप्रयाणं निषेधति—न तीर्थेति ॥ तीर्थकामस्तीर्थगमनेच्छुर्नरो गमनं
न कारयेत् । कस्मिन् पाणिजाद्युधे पाणिजा नखास्त एवायुध यस्य स सिंहस्तस्मिन् सिंहराशौ
अमराच्ये गुरौ सति किंभूते गुरौ अनृजौ वक्रिणि पुनः किंभूते शिशौ वास्यावस्था गते
पुनः किंभूते वृद्धघने वृद्धावस्था गते पुनः किंभूते नीचगे स्पष्टं किञ्चिन् कुंभस्थलगौतमीगयाः
विन्ययोगे द्वितीया अत्र कुंभस्थलादिष्वेव गमनं कुर्यादित्यर्थः ॥ यतः कुंभराशिगुरौ कुंभस्थलं
हरिद्वारं गच्छेत् । सिंहगुरौ गोदावरौ गच्छेत्सर्वकाले गयां गच्छेदित्यादि ॥ यतः 'हरिद्वारे
प्रयागे च गंगासागरसंगमे ॥ सर्वत्र दुर्लभा गंगा त्रिषु स्थाने विशेषतः' ॥ १ ॥ वासिष्ठ्या
गोमती तद्वत् गोतमी स्यादेति शद्वप्रभेदः ॥ ४ ॥

स्वधामतो द्वादशयोजनावधि प्रयाणमाचरेत्ति तीर्थमानिभिः ॥
नोदीरितं तैर्धर्मशेषधर्मदं परैरुदन्वयुतिनिम्नगावधि ॥ ५ ॥

अथानिष्टगुरौ निषेधलतीर्थप्रयाणमाह—स्वधामेति ॥ तीर्थमानिभिस्तैर्धर्मशेषधर्मदिरित्याद्यैः पुरा-
तनैर्धर्मैरिह पूर्वोक्तगुरावनिष्टे सति तैर्धर्म तीर्थेभ्यं प्रयाणमशेषधर्मदं नोदीरितं न कथितं ॥ किंभूतं
प्रयाणं स्वधामतो निनृहात् द्वादशयोजनावधि अष्टाचत्वारिंशकोशपर्यन्तं पुनः परैरुदन्व-
न्ययुतिनिम्नगावधि न कथितं उदन्वान् समुद्रस्तस्मिन् युतिर्माहितं यस्याः साऽसौ च निम्नगा
नदी च तस्या अवधिर्मर्यादा यस्मिन्नादिनि गंगासागरसंगमपर्यन्तामिति ॥ ५ ॥

गतिर्नृणामृत्वनुकूलगामिनी मुदि प्रधानेव सदैव भामिनी ॥

सुशुद्धिगाशाश्रयसिद्धिकारिणी समस्तयानोत्सवकार्यचेतसां ॥६॥

अथ गमने सामान्येन ऋतुशुद्धिमाह—गतिरिति ॥ समस्तयानोत्सवकार्ये चेतो एषां ते तेषां नृणां गतिर्ममनं ऋत्वनुकूलगामिनी सदैवमुदि हर्षनिमित्तं प्रधानावरा स्यात् पदऋत्न नामनूकूलं योग्यतां गच्छतीत्येवंशीला यादृक् ऋतुस्तादृक् प्रयाणं शुभमित्यर्थः ॥ किंभूता गतिः सुशुद्धिगा अतिशयशुद्धिं प्राप्ता पुनः किंभूता गतिः आशाश्रयसिद्धिकारिणी इप्वारधारकस्य सिद्धिकरणशीला अथवा समस्तं पदं अतिशुद्धिं प्राप्ता चासौ आशा दिक् च तस्यामाश्रयो निवासो यस्य स तस्य नरस्य सिद्धिकारिणी केव भामिनी च भामिनी बधूरप्येवंविधा भवति किंभूता भामिनी ऋत्वनुकूलगामिनी ऋतुकालानुगमनशीला सती प्रधाना पुनः किंभूता सुशुद्धिगा ऋतुस्नानानन्तरं शुद्धिं प्राप्ता पुनराशाश्रयस्य इच्छाधारकस्य भर्तुः सिद्धिकारिणी ॥१॥

ईपत्तिडिद्रासवतीमाधिक्रियां घनांवराभिद्रधनुःकटाक्षिणी ॥

शिखिस्वना वृत्तपयोधरां सुधीः प्रावृद्धशामेत्य न यानमिच्छति ॥७॥

अथ काव्यद्वयेन वर्षासु वर्णनद्वारेण प्रयाणं निषेधति—ईपदिति ॥ सुधीः प्रावृद्धा वर्षाऋतुरेव स्त्री तामेत्य प्राप्य ईपत् स्तोकेमपि यानं प्रयाणं न इच्छति किंभूतां प्रावृद्धा तडिद्रासवती तडिता विद्युता वासोऽवस्थानमस्यास्तीति सा ता विद्युत्स्थितिमती यथा 'सरस्वती वासवती सुखे' इति नैनपद्वितीयसर्गे ॥ अथवा ईपच्छब्दोऽत्रापि योज्यः ॥ ईपत्वारं वारं तडितामिति तथैव ॥ पुनः किंभूता प्रावृद्धा अधिक्रियां अधिका क्रिया कर्षणादिक्रा बह्वत्पन्नजन्तुर्हंसादिरूपा वा यस्या सा ता पुनः किंभूता प्रावृद्धा घनांवरा घना मेघा एव अंधराणि वस्त्राणि यस्याः सा ता पुनः किंभूता ईद्रधनुःकटाक्षिणी ईद्रधनुरेव कटाक्षोऽक्षि विदूषितमस्यास्तीति ता पुनः किंभूता शिखिस्वना शिखिना मयूराणां स्वनाः शब्दा यस्या सा ता पुनः किंभूता वृत्तपयोधरा वृत्ता सर्वत्र प्रसरणशीला पयोधरा मेघा यस्या सा ता ॥ अथ स्त्रीपक्षं दर्शयति ॥ किंभूता नशा तडिद्रा वासवती स्थितिमती तडिद्रुपमानेन चंचल त्वेजसादिस्वभावः प्रोक्तः ॥ अथवा तडिद्रवत् वासवती वारागना यस्याः सा ता पुनः किंभूता अधिका क्रिया षोडशाक्षंकाररूपा यस्याः ॥ पुनः किंभूता घनानि सूक्ष्माणि वस्त्राणि यस्या सा पुनः किंभूता ईद्रधनुर्वत् कटाक्षा यस्याः सा ॥ पुनः किंभूता शिखिनः स्वन इव स्वनो यस्या सा ॥ पुनः किंभूता वृत्ता मंदलाकारौ पयोधरौ स्वनौ यस्याः सा तामिति रूपकालंकारः ॥ या 'रूपकं यत्र साधर्म्यादर्थगोराभिधा भवेत् ॥ समस्त चासमस्तं वा खंडं वा खंडमेव वा ॥ १ ॥ कीर्णाधिकारा कलशालमाना निवद्वताराऽस्मिन्निगु. कुतोऽपि ॥ निशापिशाची व्यनरद्वयं महांत्युल्लूकध्वनिफल्कृतानि ॥ २ ॥ इति वाम्बदालंकारे ॥ ७ ॥

इयं लसच्छाडुलकाद्रिचीवरा धुनीभुजावंधितपांथपद्धतिः ॥

नवांबुदासंचितपर्वतस्तनावनीव वर्षासु चरद्वधसुखी ॥ ८ ॥

इयमिति—इयमवनी भूमिरेव विधा स्यात् किंभूतावनी लसदिति ॥ लसंतो वैदीप्यमाना ये शाद्वलका बालतृणयुक्तस्थानानि त एव आर्द्राणि चीवराणि यस्याः सा । पुनः किंभूता धुन्यो नद्यस्ता एव मुजौ हस्तौ ताभ्या बंधिता रुद्धा पायस्य पथिकजनस्य पद्धतिर्मार्गोऽथवा पांथश्रेणिर्यया सा । पुनः किंभूता नवांबुदैर्नवीनमेधैः सिंचिताः पर्वताः शैला इव स्तनौ यस्याः सा । अवनी केव चरद्वधूसखी इव यथा चरतो देशांतरं गच्छतो नरस्य वधूर्वधूती तस्याः सखी अथवा वधूरेव सखी, सध्रीची एवंविधा भवेत् ॥ किंभूता चरद्वधूसखी लसच्छाद्वलकवत् आर्द्राणि छिन्नानि चीवराणि यस्याः सा । पुनः किंभूता धुनीवत् भुनौ दीर्घबाहू ताभ्यां बंधिता पायस्य गच्छद्भर्तुः पद्धतिर्यया सा । पुनः किंभूता नवांबुदैः सिंचितौ पर्वतवत् स्तनौ यस्याः सा इति यर्पासु गमनं निषिद्धमित्यर्थः ॥ ८ ॥

शरद्वते मुक्तपयःपयोधरे पयोनिधौ वर्पति शौक्तिकेयतां ॥

तद्विंदवो वाथ विभूपयंत्यतो जगत् शरत्स्याद्गमनोचिता गुणात् ॥ ९ ॥

अथ काव्यद्वयेन वर्णनद्वारेण शरद्वतौ प्रयाणं दर्शयति—शरद्वति ॥ शरद्वते शरत्का-
लमात्रे मुक्तपयःपयोधरे मुक्तजलं मेधे पयोनिधौ समुद्रे वर्पति सति तद्विंदवोऽपि तस्य मेधस्य जलकणा अपि जगद् विभूपयन्ति आधाराधेयोपचारात् जगज्जनानलं करोति किं कृत्वा शौक्तिकेयतां मुक्ताफलत्वमवाप्य प्राप्य समुद्रे भ्रतो हेतुर्गुणात् शरद् गमनोचिता प्रया-
णाय योग्या स्यात् ॥ ९ ॥

केदारपात्रधृतशालिभिरिष्टगंधैः शुद्धांवरा विकचदंबुजमञ्जुनेत्राः ॥

सिद्धेः पुरः शरदि हीवनुलक्षमेतत्तद्यायिनो दिगबलाः समवाकिरन्ति ॥ १० ॥

अथ वसंततिलकेनाह—केदरेति ॥ शरदि ऋतौ दिगबला दिग्बन्धस्तद्यायिनस्तासु दिक्षु गमनशालात्ररान् समवाकिरन्ति वर्द्धयन्ति कः केदरेति । केदाराः क्षेत्राणि त एव पात्राणि तेषु धृताः शालयो ग्रीहयस्तैः कृत्वा किंभूतैः इष्टगंधैर्मनोहरगंधैः किंभूता दिगबलाः शुद्धानि निर्मलानि अंबराणि नभासि यासु ताः । पुनः किंभूताः विकचति । विकचन्ति विकस्वराणि च तानि अंबुजानि कमलानि च तान्येव मञ्जुनि मनोहराणि नेत्राणि यान्ता ताः । यथा स्त्रियोऽपि दिग्गयिनं वर्द्धयन्ति केदारैश्चः केदारवत् वा पात्रे रौप्यादिभानने धृतशालिभिः मनोहर-
गंधैः किंभूताः स्त्रियः शुद्धांवराः पत्रिवस्त्राः पुनः किंभूताः स्त्रियः विकचदंबुजवत् मञ्जुनि नेत्राणि यासा ता इत्युक्तिलेशः ॥ हि युक्तार्थे नु वितर्के पुरोऽग्रे सिद्धेः सिद्धिकार्यस्यैतच्छतं चिन्हमिव यतोऽग्रतः शुभशकुन कार्यसिद्धिं कथयति ॥ १० ॥

मंदं महोऽतकदिशं ब्रजतोंऽगभाजो हेमंतमत्तहिमसंपदसह्यवृत्तां ॥

युक्तं भवेत्तिमिरनाशविधेरिवैनां प्रोद्भ्येतिथानमतिमानपरंपराशां ॥ ११ ॥

अथ वर्गनद्वारेण हेमंततौ लब्धेऽपि प्रयागमनिष्टदं दर्शयति—मंदमिति ॥ अंगमानः प्राणिनो महस्तेजो मंदं क्षीणं यत् । किंभूतस्यागमात् एनां अंतर्दिशं संपरिगता

मनतो गच्छतः किंभूतामतकादिशं हेमन्तेन शीतकालेन यदा पुष्टा चासौ हिम
संपन्न तयाऽसह सोढुमशक्नव वृत्तं शीलं यस्याः सा ता कस्येन तिमिरनाशविधेः सूर्यस्यैव
यथा अंतकादिशं दृष्टिणाशा व्रजतस्तिमिरनाशविधेर्महो नंदं भवति तथैव हे नरत्वं यान
प्रयाण जहि । किंभूतं यानं अतिमानपरंपराश्रं अतिक्वतमाना परंपराशा दिग् यस्मिन्तत् ॥
यथा सूर्योऽपि दृष्टिनायने नृहृत्पथान त्यनति इति युक्तोऽयमर्थः । लघुप्रयाणेऽपि शी-
तपराभवत्वात् नृहृत्प्रयाणं सर्वथा निषिद्धमित्यर्थः ॥ ११ ॥

आशाविनीतगमने शिशिरेभ्युपेयानीहारपेलवकला-
स्यसरोजशोभाः ॥ सर्वा वशा इव नरो गमना-
भिलाषी भाक्षीणभानुतनुतापपराः प्रियाशाः ॥ १२ ॥

अथ वर्णनद्वारेण शिशिरतौ प्रयाणमाह—आशेति ॥ आशया काष्ठया इच्छया
वा विनीत प्राप्तं गमन यस्मिन् स तस्मिन् आशाविनीतगमने शिशिरे ऋतौ नर गमनाभि-
लाषी सन् सर्वा. प्रियाशा ईप्सितकाष्ठा अभ्युपेयात् गच्छेत् । किंभूताः प्रियाशा. नीहारेति.
नीहारेण हिमेन पेलव श्लक्ष्ण कृश क जल तस्मिन्नास्यानि दैर्घ्यमानानि सरोजानि कम-
लानि तेषां शोभा यासु ता । अथवा नीहारपेलवेन हिमस्तोकेन कलानि मनोहराणि आ-
स्यानि मुखानि तद्वत् सरोजानि तेषां शोभा यासु ता । अथवा नीहारेण पेलवानि स्तोकादि
कलानि आस्यत्सरोजानि शेष तथैव ॥ पुन किंभूता प्रियाशा भाक्षीणेति । मामि प्रभाभि- स्ती
णश्चासौ भानु. सूर्यश्च तस्य तनुः सूक्ष्मश्चासौ तापश्च तेन परा उत्कृष्टाः का इव वशा
इव यथा नरः सर्वाः वशा इयात् किंभूता वशा. प्रिया श्रेष्ठा आशा इच्छा यासा ता
अथवा प्रियेषु भर्तृषु आशा यासा ता । पुन किंभूता आस्थान्येव सरोजानि शेष सर्व-
मपि पूर्ववत् ॥ १२ ॥

प्रेत्यानिलो मलयमद्रिमृतौ विधत्ते पांथश्रमं त्रिगुण-
भाषमपोहितुं किं ॥ कर्तुं मघाविति पराभवमन्यस-
त्वं शक्यं यियासुरखिलासु ककुप्सु तस्मिन् ॥ १३ ॥

अथ वर्णनद्वारा वसततौ सर्वदिक्षु प्रयाणमाह—प्रेत्येति ॥ अनिलो वायुर्मलयमद्रि
मलयपात्र प्रेत्य प्राप्य मघौ वसते तस्मिन् ऋतौ त्रिगुणमात्र शीतमंदसौरमास्थ विधत्ते
निवर्ति किंकर्तु उन्मेश्यते । पांथश्रम पयिकननश्रममपोहितुं निरसितुं किंभूतोऽनिल इति
अखिलासु ककुप्सु । दक्ष इयासुर्गमनेच्छु किंकर्तुं शक्य समर्थमपि अन्यसत्त्व विरहित
पराभव कर्तुं किं यदाह हर्षकवि 'निषमो मलयमहिमरुजोविषकू-कारमयो मघोदित ॥
सगकाककत्रविषमः पवनस्तद्विरहानलैवसा' ॥ १ ॥ १३ ॥

अवकीर्णरसासु दिक्षु कामं गमनं मानव वामलोचनासु ॥
देवधुव्यथितासु धर्मकाले स्वशिवं वाञ्छसि चेदिव त्यज त्वं ॥ १४

अथ पालमारिण्या वर्णनद्वारेणोष्मकाले प्रयाणं निषेधति—अवकीर्णेति ॥ हे मानव चे
द्यदि त्वं स्निग्धवामात्मनि भद्रं वाञ्छसि तदा त्व धर्मकाले, ग्रीष्मकाले काममत्यर्थं गमनं
प्रयाणं त्यज मुंच कामु दिक्षु किम्नासु अवकीर्णरसासु अवकीर्णोऽवध्वस्तो विसंस्थूतप्राप्तो
रसो यामु ताः अथवाऽवध्वता रसा भुमिर्यासु तासु 'अवकीर्णत्ववध्वस्तम्' इति हेमः ॥
पुनः किम्नासु दिक्षु देवधुना दाहेन व्यथितासु पीडितासु कामु इव वामलोचनासु इव
ग्रीष्मे एवंविधासु त्वांषु यथा गाढं गमनं स्याज्यमिति ॥ १४ ॥

समेऽयने शीतलगूप्मरश्म्योर्गमोऽथ सर्वत्र भवेदुल्लये ॥
तस्मिन् द्युनेतुर्द्युनि रात्रिनेतृ रात्रौ प्रयाणे त्वयनेऽन्यथा न ॥ १५

अथोपनारायायनदिक्शूलचक्रमाह—समश्चि ॥ शीतलगूप्मरश्म्योः चंद्रमूर्ययो
समेऽयने एकस्मिन्नयने सति गमः प्रयाणं सर्वत्र सर्वस्मिन् काले भवेत् । कोऽर्थः यदि
चंद्रार्कावुत्तरायणगतौ स्याता तदा उत्तरस्या प्राची वा व्रजेत् । यदि रविचंद्रौ दक्षिणायनगतौ
स्याता तदा मतीर्चा दक्षिणा वा व्रजेत्तदिह्मुखा यात्रा शुभेति ॥ अथ पुनर्द्युनेतुः
सूर्यस्यातुल्ये भिन्नेऽयने चंद्रारपथगयने द्युनि दिवसे प्रयाणं भवेत् ॥ द्युशब्दो नपुंसकः य
॥ 'द्युरक्त्यव्ययमप्यहः' इति शब्दप्रभेदे साधुसुंदरगणयः ॥ तु पुनः रात्रिनेतृश्रद्धस्यातुल्ये
सूर्याभिन्नेऽयने रात्रौ प्रयाणं भवेत् । कोऽर्थः यस्मिन्नयने रविः स्यात्तदयनस्य दिशि दिवा
प्रयाणं स्यादेवं चंद्रस्य रात्राविति ॥ उत्तरस्या पूर्वस्या अंतर्भावः दक्षिणस्या पश्चिमाया
अंतर्भाव इति । अन्यथेति । पूर्वोक्तरीत्या अभावे प्रयाणं न भवेत् ॥ १५ ॥

न देवसुप्तौ गमनं गृणंति प्रभूतमार्गं च समं प्रबुद्धाः ॥

होलांतपक्षे न समस्तयानं दोषस्तदीयो नहि नित्ययाने ॥ १६ ॥

अथ चतुर्मासकादौ प्रयाणं निषेधति—न देवेति ॥ प्रबुद्धाः पंडिताः प्रभूतमार्गं बृहत्प्रयाणं
च पुनः समं मध्यगमने प्रयाणं न गृणंति न कथयति कस्या देवसुप्तौ चातुर्मासके च पुनर्हो
लांतपक्षे फाल्गुनशुक्लप्रातिपदमारभ्य पूर्णिमातं समस्तयानं न गृणाति पुनर्नित्ययाने तदीयो
दोषो देवसुप्तिहोलांतपक्षयोर्दोषो नहि स्यात् ॥ गृणंतीति गृ निगरणे घातुः ॥ १६ ॥

बृहद्रमो नो विषमैर्विचरैरुत्पातवर्तिन्ययने च मंगिनीं ॥

यानं तु नारुत्य तरंगिणीश्वरे समीककामस्त्रिविधो गमो विशां ॥ १७ ॥

अथ विषमग्रहैः प्रयाणं निषेधति—बृहद्रमेति ॥ बृहद्रमो बृहत्प्रयाण १ च पुनस्तरंगि-
नीश्वरे सपुत्रे मंगिनीं नावं सनारुत्य यानं प्रयाणं २ पुनः समीककामो युद्धकामो गमः ३

इति त्रिविधो गम प्रयाणो विशा नृणा न स्यात् । कस्मिन् विषमैर्वियच्चरैः सूर्यमगलशनैश्च
प्रहे. कृत्वा उत्तातवर्तिनि उपरागादिशेषयुक्तेऽयने मासपटुलक्षणे सति ॥ १७ ॥

महोनिधौ द्विप्रकृतिं प्रयाते प्रयातुस्तावनिदूरयाने ॥

तथा भवेत्तावुल्लेखकौर्ष्या ८ नधिष्ठिते नारपथप्रयाणे ॥ १८ ॥

अथ द्विस्वभावादिराशिगते रवौ वृद्धप्रयाणादि निषेधति—महोनिधाविति ॥ द्विप्रकृतिं
प्रयाते द्विस्वभावराशिगते महोनिधौ सूर्ये महसा तेजसा निविस्तस्मिन् सति प्रयातु प्रयाण-
कारकस्य नरस्यात्ता मरणं भवेत् । कस्मिन्नवनिदूरयाने भूम्या दीर्घप्रयाणे तथा पुनस्तावुरे-
वृषराशि छेय सिंहराशि कौर्ष्यो वृश्चिकराशिरेषा द्वे तान् राशीन् अधिष्ठित आश्रिते
सूर्ये सति नारपथप्रयाणे जलपथगमने प्रयातुर्मरणं स्यात् ॥ नार यथा नारे जलेऽयन गृह
पथस्य स नारायणो विष्णु नारमिति शब्दप्रमेद ॥ १८ ॥

जनो गमं भाद्रपदे प्रयातोऽखिलासु नो भद्रपदं प्रयाति ॥

मितेतरं दिक्षु तथाऽश्विनेऽस्मिन्निजास्थितिं तीर्थमियाददोषे ॥ १९ ॥

अथ भाद्रपदादौ वृद्धप्रयाणादि निषेधति —जन इति ॥ जनो भाद्रपदे मासेऽखिलासु
दिक्षु मितेतेरं मितेतात् इतरे बृहन्मध्यप्रयाणे द्वे यस्मिन् स त गम गमनं प्रयात प्राप्त सन्
भद्रपद कल्याण न प्रयाति न प्राप्नोति । तथास्मिन्नशेषे आश्विने मासे निजस्थितिर्तीर्थनीन-
कुलागततार्थं प्रयात सन् भद्रपद न इच्छां प्राप्नुयात् ॥ १९ ॥

पक्षद्वयेऽसद्ग्रहवाररिक्तापक्षादिपथ्याततिथीरपास्य ॥

विष्टिं कुयोगं कचिदप्यजाहः पष्ठीमरोपं गमनं च हारि ॥ २० ॥

अथ कुयोगं हिंसा पक्षद्वयेऽरि प्रयाणमाह—पक्षति ॥ पक्षद्वयेऽशेष त्रिविधमपि, गमन
हारि शुभ स्यत् ॥ किंत्वा असदिनि ॥ असद्ग्रहवारान् क्रूरग्रहवारान् रिक्तास्तिथी पक्षयो
रादितिथिं प्रतिपद मध्यतिथिमष्टमीं अततिथिं पचदश्यां च अवाप्त्य विहाय च पुनर्विष्टि
कुयोगं च कनित् अजाह अज्ञस्य विष्णोर्दैन द्व दृशीं पष्ठीं चापास्येति ॥ २० ॥

विकर्तनेलामरराजमध्ये द्विराशिमानाधिकमंडलं चेत् ॥

महागमश्चाहवकामयानं भवेदलुप्राविककालमाने ॥ २१ ॥

अथार्कद्विद्विराशिमानविचाल त्यजन्मयाणमाह—विकर्तनेति ॥ चेद्यदि विकर्तन सूर्य
इलामरराजो नद्विराजश्चद्र अनयोर्मध्येऽनर विचाल द्विराशिमानाविक भवेत् ॥ कोऽर्थं कृष्ण
दशमीमारभ्य शुक्ल चर्मा यावत् सूर्यचन्द्रयोर्द्विराशिमान विचाल स्यात् ॥ तद्विचाल क्षणचद्र
कालत्रात्याज्यमित्यर्थ ॥ तदा महागमो गृहप्रयाणं च पुनराहवकामयानं समामकार्यमशाय
न भवेत् । कस्मिन्नलुप्राधिककालमाने क्षोणाविकर्षणमासदिनवर्जिते काले ॥ २१ ॥

सुरासुराचार्यगमोऽतिमान्यो मध्यो विदजांशुगमोऽपि निधः ॥

पतंगजारशुगमो यियासोरात्मीयनामानुगुणोऽयमुक्तः ॥ २२ ॥

अथ गुरुप्रमुखवारेषु शुभसमाशुभप्रयाणमाह—सुरेति ॥ सुराश्चासुराश्चान्योराचार्यौ गुरु
शुक्रौ एतयोर्दिने गमो गमनं यियासो नरस्यातिमान्यो भृशमणीकार्यः श्रेष्ठतमः इत्यर्थः ॥
विद्वजांशुगमो बुधचंद्राविदिने गमो मध्यः समः पतंगजः शनिरारो भौमोऽन्योऽगुनि दिने
यमोऽतिनिधः स्यात् ॥ अयं गुण आत्मीयनामानुसदृश उक्तः । शुभनामा ग्रहः शुभोऽशुभनामा
ऽशुभ इति ॥ २२ ॥

संसिद्धियोगे समिति प्रयाणं प्रभाकरारान्हापि वाच्यमाहुः ॥

तथा स्वपूर्वेशमित्तप्रयाणं शनौ च नौयानमरौद्रकेतौ ॥ २३ ॥

अथ सिद्धियोगादौ प्रयाणमभिधौति—संसिद्धीति ॥ पंडिताः समिति संग्रामे प्रया-
णमग्न्यं श्रेष्ठमाहुः वदन्ति कस्मिन् संसिद्धियोगे सम्यक्सिद्धियोगे च पुनः प्रभाकरः सूर्यः
आरो भौमोऽन्योरहि तथा पुनः स्वपूरीति । स्वपू. निज्जनगरी तस्या वेशाय प्रवेशाय
मितं लघुप्रयाणमग्न्यमाहुः ॥ कस्मिन् शनौ शनिवारं च पुनर्नौयानं नौकायाः प्रयाणमग्न्यमाहुः ।
कस्मिन्नरौद्रकेतौ अरौद्राः सौम्याः केतवः किरणा यस्य स चंद्रस्तद्धिने ॥ २३ ॥

लघुश्रवोऽचित्रमृदुश्रविष्ठादित्यानि भान्याहुरशेषयाने ॥

शुभानि साजेंद्रवतेशतारां साधारणां गाणितिकास्त्रियुग्मीम् ॥ २४ ॥

अथ काव्यद्वयेन प्रयाणे उत्तममध्यमशुभभान्याह—लघ्विति ॥ गाणितिकाः दैवज्ञा-
नशेषयाने समस्तप्रयाणे लघ्वादीनि भानि शुभानि आहुः वदन्ति । लघ्विति । लघुसंज्ञानि
अश्विनीपुष्यहस्ताः श्रवः श्रवणः अचित्रमृदूनि चित्रावर्जितमृदुसंज्ञानि अनुराधा रेवती
मृगशीर्षाणि श्रविष्ठा वनिष्ठा आदित्य पुनर्वसु एषा द्वे इमानि नव भानि शुभयात्रेयाणि ।
पुनर्गाणिनिक्वास्त्रियुग्मीं साधारणा मध्ययात्रेयाण्याहुः । व्याख्यामाहुः त्रयाणां पूर्वाभाद्रपदा-
त्तराभाद्रपदा इति युग्म १ पूर्वाषाढा उत्तराषाढा इति युग्म २ पूर्वाकल्गुनी उत्तराकल्गुनी
इति युग्म ३ इति एषा युग्मानां समाहारस्त्रियुग्मीता किंभूता त्रियुग्मी साजति । अजो-ब्रह्मा
रोहिणी इन्द्रो जेष्ठा वनेश जलेशो वरुणस्तस्य तारा शतभिषक् आभिः सहवर्तमाना इति
नवभानि मध्ययात्रेयाणि ॥ २४ ॥

मिते समे वापि विमिश्रभावास्तारावरात्थत्र सदापकामाः ॥

निरैद्रतीक्ष्णांतकमिश्रचित्राग्रभंजनादिप्रभवेदुवामाः ॥ २५ ॥

मितेऽतिमिते लघुनि समे वा प्रयाणे हि युक्तं विमिश्रभावास्ताराः रोहिण्यादि नव
मध्ययात्रेयतारा वरा स्युः । पुनरत्र त्रिविधे प्रयाणे सदा निरैद्रतीक्ष्णादितारा अपकामाः
निर्गतकामा नेष्टा इत्यर्थः । निरैद्रतीक्ष्णानि ज्येष्ठावर्जिततीक्ष्णसंज्ञानि आर्द्राश्लेषामूल अंतर्को

भरणी मिश्रे द्वे विशाखा रुक्मिणीश्चेति चित्रा प्राभजनं प्रभंजनस्य इदं स्वाती आदिप्रमणा
भयज्जा पितर मत्रा एता इदुवामा नक्षत्राणि इति नव मानि अयात्रेयाणि ॥ २९ ॥

प्रयाणभं क्षमा७द्वि१गुणे३पु५तारं वारं गमेहस्य किमंगिनश्चेत् ॥
जाताडलं तच्च हि यामघटं घटं स्वमुद्दयासव उत्पतंति ॥ २६ ॥

अथ प्रथमतारादियुक्त प्रयाणनक्षत्र नेष्टमाह—प्रयाणेति ॥ चेद्यादि अगिनः प्रयाणभ
यात्रानक्षत्रमेवविध स्यात्तदा गमेहस्य गमे गमने ईहा इच्छा यस्य स तस्य इच्छावतो नरत्वं
किं गमने इच्छा व्यर्थेत्यर्थ ॥ किंशब्दो निषेधार्थस्तेन सामिप्रायविशेषणानिषिद्ध तदाह । किंभूत
प्रयाणं क्षमा १ द्वि ७ गुणे ३ पु ५ तार प्रथमा सप्तमी तृतीया पंचमी च वा तारा
यस्मिस्तत् । पुन किंभूतं प्रयाण जाताडल उत्पन्न आडलो यस्मिस्तत् । पुनस्ताप्रयाणभ
यामघट यमघटं भवमिति हि यस्मात्कारणात् अर शीघ्र अगिनोऽसव प्राणा स्व घट
निजं शरीर उद्दय्य विहाय उत्पतति ऊर्ध्व गच्छति यात्रिकनरो मृत्युमेतीत्यर्थ ॥ यत्
'यमघटे गते मृत्यु कुलच्छेद करग्रहे' इत्यादि उक्तप्रयोगश्चित्य ॥ २९ ॥

समूषणे दूषणवर्जिते भे स्फुरत्प्रभादीपितमंडलेऽरिमन् ॥

यात्रागमित्राणसहायिनी स्याद्गोशुद्धिता चेद्दिनभादिभूता ॥ २७ ॥

अथ दिगादिशुद्धौ प्रयाणमाह—समूषण इति ॥ चेद्यादि दिनभादिभूता दिननक्षत्रादिना
गोशुद्धिता गोशब्दोऽत्र दिग्वाची दिक्शुद्धिता स्यात्तदास्मिन् दूषणवर्जिते भे नक्षत्रे
यात्रा प्रयाण गमित्राणसहायिनी यात्रिकनरस्य रक्षणाय सहचारिणी स्यात् ॥ किंभूते
समूषणे सुयोगान्विते पुन विभूते स्फुरत्प्रभादीपितमंडले रव्याद्याऽमणरहिते इत्यर्थ ॥ २७ ॥

कु१नंद९नेत्री३श११म अक्ष५विश्व१३मे युगे४नमें१२५-

गें६३१४मितेऽचल७द्यु१५मे ॥ द्वि२दिक् १०समे

त्रि३श३०दाहि८प्रमे क्रमादैज्यास्तिथी स्तो नु च योगिनीविहे ॥ २८ ॥

अथ योगिनीचक्रमाह—कुनदेति ॥ नु वितर्के च समुच्चये ऐंशा पूर्वदिशात क्रमा
योगिनीविहे योगिनीपारिण्यौ तिथौ रत द्वे द्वे तिथौ भवत इत्यर्थ ॥ विशेषणद्वारेणाह । किं
तिथौ कुनंदमे कु१नदा९म्या प्रतिपन्नवमीम्या मिमांसे इति मा स्त्रीलिङ्गे प्रथमाद्विवचने मे
सर्वत्रैव ज्ञेय । प्रतिपदि नवम्या च पूर्वस्यां योगिनीत्यर्थ ॥ एव किंभूते तिथौ त्री३शमे
त्रयश्च ईशाश्चेति तृतीयायामेकादश्यामात्रेभ्यो योगिनी । पुन किंभूते तिथौ अक्ष५विश्व१
प्रथम्या नवोदश्या याभ्या योगिनी । पुन किंभूते तिथौ युगे४न१२मे युगानि च इना मूय
चतुर्भ्यां द्वादश्या च नैऋत्यां योगिनी । पुन किंभूते तिथौ अंगे६३१४मिते षष्ठ्या चतुर्दश्या
च वारुण्या योगिनी । पुन किंभूते तिथौ अचल७द्यु१५ मे अचला पर्वताश्च
तिथौ च सप्तम्या पूर्णिमाया वायव्या योगिनी । पुन किंभूते तिथौ द्वि२दिक् १०

द्वितीयायां दशम्यां च उत्तरस्यां योगिनी । पुनः किंभूते तिथौ त्रिशदः ॥ ३० ॥ हिमने
अमावास्यायामष्टम्यां ऐशान्यां योगिनी तिष्ठति । अत्र काव्ये एकारांतद्वेषने संधिकार्यं
मतांतराश्रितं ज्ञेयम् ॥ २८ ॥ *

मंदो हि राजा च हरेरिहाशामाशामहेरंगभुवो गुरुः स्यात् ॥

शूरः कविः पाशकरस्य शूली भौमो बुधश्चैलविलस्य यातुः ॥ २९ ॥

अथ वारदिकशूलमाह—मंद इति ॥ हात्यवधारणे हरेरिद्रस्य आशा पूर्वा प्रति
इह गमने यातुर्यात्रिकनरस्य मंत्रः शनिः राजा चंद्रश्च शूली शूलमुक्तः स्यात् ॥ एवमहेः
सूर्यस्यागभुवो यमस्याशां दक्षिणां प्रति गुरुः शूली स्यात् ॥ पुनः पाशकरः पाशः करे यस्य स
पाशपाणिर्षरुणस्तस्याशां पश्चिमां सूर्यः कविश्च शूली स्यात् ॥ एलविलस्य धनदस्याशा-
मुत्तरां प्रति भौमो बुधश्च शूली स्यात् ॥ 'अहिर्देवावधेशः स्यात् सूर्योऽहिरहिरध्वज' इत्यने-
कार्यध्वनिमजस्य ॥ २९ ॥ *

वरोपलब्धिर्यदि यानयोगिनी न योगिनी सन्मुखचारिणी तदा ॥

तच्छूलिकाष्ठं गमनं शरीरिणः सशूलिकागं गमिनं सृजत्यरंमा ॥ ३० ॥

अथ योगिनीं शूलं सन्मुखं त्यजन्नाह—वर इति ॥ यदि सन्मुखचारिणी योगिनी
यानयोगिनी न स्यात्तदा शरीरिणः उपलब्धमितिः शुद्धिर्वा वरा प्रधाना स्यात् ।
अरं शीघ्रं शूलिकाष्ठं मंदादिवारशूलिनः काष्ठा दिग् यस्मिन्तदेवविधं गमनं कर्तुं पदं
गमिनं यात्रिकनरं सशूलिकागं शूलरोगमुक्तदेहं सृजति करोति ॥ यथा शूलिकाष्ठं शूलिकाक
चौरादिदेहे प्रवीढा करोति इत्यत्रैव श्लिष्टार्थेन प्रोक्तं ॥ ३० ॥

द्युदिनादिदिनानि पूर्वतो निखिलाशासु सदेहकालवान् ॥

हरिभूः कलितस्तु पाशवान्बिभ्रुभूस्तावहितौ हि सन्मुखौ ॥ ३१ ॥

अथ बैतार्हायेन शनिबुधौ कालपाशवतौ दर्शयति—द्युदिनेति ॥ द्युदिनादिदिनानि द्युशब्दे-
न यः उदयप्राप्तवारस्तस्य दिनमादौ एषा तानि एवंविधानि दिनानि पूर्वतो निखिलाशासु
सर्वदिषु न्यसेत् । यत्र हरिभू शनिः कलितः सख्याप्राप्तस्तत्र शनिः कलवान् ॥ यात् ।
यतः 'नेळगइते पूरविदी जइ सृष्टिबंधिसहारगणी जइ सातवार इणी परिसमाप्तिः जिहां शनि
तिहा निश्रयकाल' ॥ १॥ च पुनरेव विभुभूर्बुधः पाशवान् स्यात् ॥ तु इत्यवधारणे हि युक्तार्थे
तौ शनिबुधौ सन्मुखावहितौ निष्कारकौ स्याता ॥ ३१ ॥ *

अविशगोऽजितुमाऽन्विधराशिभिः शरमैर्भैर्नवमेस्तु संयुतैः ॥

हरिदिङ्मुखदिकचतुष्टये क्रमतः कल्पितमिदुमंडलम् ॥ ३२ ॥

अथ पूर्वादिदिषु मेपादिराशिस्त्यचंद्रगृहाणि कल्पयति—अवीति ॥ बुधे हरिदिङ्
मुखदिकचतुष्टये पूर्वादिदिक्षुचतुष्के क्रमतः इदुमंडलं कल्पितं कथितं । कैः कृत्वाऽविमेषराशिः

गौर्वृषः मिथुनो मिथुनं अन्धिराशिः कर्कः एषां द्वे एभिः किंभूतैरोभिः शरभैः शरैर्वज्रैः
 मीतीति शरमाः तैः पंचमेन पंचमेन राशिना संयुतैः । यथा मेघात् पंचमो राशिः सिन्धुः
 एषं वृषमिथुनकर्केभ्यः । तु पुनः किंभूतैरोभिर्नवमेनवमप्रमाणैर्नवमेन नवमेन संयुतैः यथा
 मेघात्तमो धनुराशिरैवं वृषमिथुनकर्केभ्यः । कोऽर्थः मेघे वृषे धनुषि च चंद्रगृहं पूर्वस्थां
 एवं वृषकन्यामकरेणुयाम्या मिथुन्तुलाकुंभेषु पश्चिमाया कर्कवृश्चिकमीनेषु उत्तरस्था ॥ यथा
 'मेघे च सिंहे' इत्यादि ॥ ३२ ॥ *

वनितावदनेंदुमंडलं विदुरभ्याननमिंदुमंडलं ॥

गमनार्थिनि दत्तवाञ्छितं गमनेऽपीव च दक्षिणाशगम् ॥ ३३ ॥

अथ सन्मुखदक्षिणगं चंद्रगृहं लाभदं विशिनष्टि—वनितेति ॥ बुधा अभ्याननं सन्मुखमिंदुमंडलं इव कर्मपदं वनितावदनेंदुमंडलं स्त्रीमुखं गमनार्थिनि यातारि गौ दत्तवाञ्छितं पूरितेच्छं विदुः । च पुनर्गमनेऽपि दक्षिणाशगं दक्षिणदिगंतं चंद्रमंडलमिव स्त्रीमुखं दत्तवाञ्छितं विदुः ॥ ३३ ॥

गतचांद्रदिने चतुःस्थिते खयमाव्यंगयुते ॥ ३४ ॥

स्वादीशी त्यज पाशघातकेऽभिमुखे कालनिपातने गमिन् ॥ ३४ ॥

अथ तिथिपाशघातकालनिपातान्सन्मुखस्त्यजन्नाह—गतेति ॥ गतचांद्रदिने किंभूते चतुःस्थिते एतत् चतुःस्थानस्थापिते पुनः किंभूते खयमाव्यंगयुते शून्यद्विचतुष्पद्युक्ते ॥ ३४ ॥ पुनः किंभूते गजैरष्टाभिर्हते भानिते सति हे गमिन् हे वार्यस्त्व स्वादीशी नि जगमनकाष्टाया पाशघातने कालनिपातने अभिमुखे सन्मुखे त्यज विजहीहि । पाशघाते इत्यत्र द्वितीयाद्विचनमेवमन्यदपि । स्वदिशाति । शेषोऽक्रमितपूर्वादिदिग्गणनया क्रमेण तिथिपाशघातनकालनिपातनानि भवतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ *

बहुलादिभचक्रपद्धतीं हि काष्ठासु विचिंतयेद्ग्रहान् ॥

उत यानविलग्नदिकस्थितानुदयाशास्थितिगांश्च सन्मुखान् ॥ ३५ ॥

अथ कृत्तिकादिषु स्थितान् ग्रहान् सन्मुखोत्तरैक्यति—बहुलेति ॥ सुधीर्ग्रहान् सन्मुखान् विचिंतयेत् । वासु इह काष्ठासु दिक्षु किंभूतासु बहुलादिभचक्रपद्धतीषु कृत्तिकादिनक्षत्रभेदीषु किंभूतान् ग्रहान् उत यानविलग्नदिकस्थितान् प्रयाणलग्नस्य दिशि स्थितिर्वा हे तान् उत पुनः किंभूतान् उदयाशास्थितयान् पूर्वदिक्स्थानगतान् यानविलग्नदिकस्थितानि । कोऽर्थः प्राच्याषट्दिक्षु क्रमेण विलग्नसदनांदनेषु भावेषु सूर्यादिग्रहाः स्थिताः कालटिकाः स्युः । यथा लग्नस्य सूर्यः प्राच्यां गंतुरनस्य साकालिकः स्यात् । एवं लाभ ११ व्यय १२ रंभः शुक्र आग्नेयां कर्मस्थो १० भौमो दक्षिणस्यां न ३९ एम ८ भावस्थो राहुर्नक्षत्रां सप्तमभावस्थः शनिः पश्चिमाया षष्ठदशम ६ भावस्थश्चंद्रो वायव्यां चतुर्थभावस्थो तु

उत्तरस्या द्वितीयतृतीयभावगो शुलीशान्या । अत्र ललाटव्यतिरिक्ते कंटके स्थाने यदि
दिग्धीश्चस्तिष्ठति तदा यात्रा शुभान्ययाऽशोभनेति तत्त्वमिति ॥ ३५ ॥

न सितेऽभिमुखे समागते रुचिरं यानमलं व्यपत्तनं ॥

वनितामिधुनाऽलये तथा खरदीप्तावपि बोभवीति हि ॥ ३६ ॥

अथ काव्यद्वारेण तदेव विस्तारयानि—न सित इति ॥ हि निश्चिनं अलं व्यपत्तनमे-
कनगरांतरगतं यानं प्रयाणं रुचिरं मनोहरं न बोभवीति तारां कस्मिन् सिते शुक्लेऽभिमुखे
समागते सति अपि पुनः कस्मिन् तथा वनितामिधुनाऽलये कन्यामिधुने आलये गृहे यस्य
स बुवस्तस्मिन् बुधे सन्मुखे सति तथा पुनः खरदीप्तौ सूर्ये सन्मुखे सति ॥ ३६ ॥

प्रधने जनकस्थितौ सितस्तुपसर्गे नरमेकपत्तने ॥

न हि दोर्ग्रहपूर्वमंगले गमिनं दुष्यति सन्मुखोऽपि वित् ॥ ३७ ॥

अथ संग्रामादौ शुक्रबुधसन्मुखत्वानवलोकनमाह—प्रधन इति ॥ सन्मुखः सितः
शुक्रोऽपि पुनर्विद् बुधोऽपि गमिनं नरं न हि दुष्यति न दुःखाय करोति कस्मिन् प्रधने संग्रा-
मे पुनर्जनकस्थितौ पितृगृहे पुनरुपसर्गे दुर्भिक्षादौ पुनरेकपत्तने एकग्रामे पुनर्दोर्ग्रहपूर्वमंगले
वाणिग्रहणादिमंगले ॥ ३७ ॥

भृगुवत्सवासिष्ठकश्यपात्रिभरद्वाजकुला जना भृगुं ॥

गणयन्ति न सन्मुखं त्वमी विदमप्यांगिरसान्वयान्विताः ॥ ३८ ॥

अथ भृगवादिगोत्रोत्पन्नजनानां मते शुक्रादिसन्मुखत्वमवगणयति—भृग्विति । अमी
जनाः भृगुं शुक्रं सन्मुखं न गणयन्ति न मन्वंते किंभूता जनाः भृगुवत्सादि भृगवादीनां कुलानि
गोत्राणि येषां ते ॥ पुनरांगिरसान्वयान्विताः आंगिरसवंशयुक्ताः जना विदं बुधमपि सन्मुखं
न गणयन्ति ॥ ३८ ॥

कुरुभोजकटांघ्रहूणकानरिमीणद्रविडांगनान्वितान् ॥

न च दुष्यति सन्मुखोऽशनाः सुमुखोऽर्को विदतोऽन्यनीवृतः ॥ ३९ ॥

अथ देशविशेषेण शुक्रादिसन्मुखत्वमवगणयति—कुर्विति ॥ सन्मुखोऽशनाः सन्मुखशुक्रः
कुर्वादीन् देशान् न दुष्यति किंभूतान् अरिमाणाद्यान्वितान् तत्रागमनान्वितः स्त्रीराज्यदेशवि-
शेषः प्रतीतः । पुनः सन्मुखोऽर्कोऽप्येवं पुनर्विद् बुधोऽन्यनीवृतोऽन्यदेशान् दुष्यति ॥ ३९ ॥

बृहतीहामिते समे गमे न समीयात्प्रतिशुक्रमंगभृत् ॥

हिमरोचिषि पौष्णमेषभेऽभिमुखोऽधोऽस्ति कविर्न दोषकृत् ॥ ४० ॥

बृहतीति ॥ इह बृहति १ भिने २ समे ३ त्रिविधे गमे प्रयाणेश्चभृत् पुरुषः प्रतिशुक्रं स-
न्मुखं शुक्रं न समीयान् नोगच्छेत् । पुनर्हिमरोचिषि चन्द्रे पौष्णमेषभे रेवतिमेषराशिस्थिते मनि-
षस कवेः शुक्रोऽशोऽस्ति अंशः सः दोषकृत् भवेत् ॥ ४० ॥

१। पविपाणिदिशं त्यजेद्रभेऽजपदक्षे दिशमांतिकीं जनः ॥

वननेतुरिहाजभे गमिन्फलबुद्धेऽर्थमभे च गौह्यकीम् ॥ ४१ ॥

अथ सन्मुखो नक्षत्रक्रीडा त्यजन्नाह—पथीति ॥ हे गामिन् जन हे फलबुद्धे फले कलाप बुद्धिर्यस्य स तत्सबद्धौ त्वं इदमे ज्येष्ठाया पविपाणिर्दिशस्तस्य दिशं पूर्वा त्यज । एवमजपदक्षे पूर्वमाद्रवदामामांतिकीं दिशं दक्षिणा त्यज । पुनरजभे रोहिण्या वननेतुरेकगस्य दिशं पश्चिम त्यज । पुनरर्थमभे उत्तरफाल्गुन्या गौह्यकीं कौषेयीं उत्तरा त्यज ॥ ४१ ॥

दिनकृत्सितमंगलागवो यमशीतच्छविसौम्यमंत्रिणः ॥

हरितामधिपाश्च दिग्विभौ गमलमे न ललाटगे गमः ॥ ४२ ॥

अथ ललाटयोग प्रयाण निषेधति—दिनकृदिषि ॥ सूर्यशुक्रभौमराहव शनिचंद्रबुधशुभश्रेते हरितां काष्ठानामधिपाः स्वामिनः सति तत्र गमलमे गमलमधिपये ललाटगे ललाटगने शिपि भौ सति गमो न स्वावेष्टत्वाललाटगतमूर्धादीना । स्वष्टार्थस्तु पूर्व दिग्वाकात्ने प्रोक्तोऽस्ति ॥ ४२ ॥

कृपीटयोनेरुद्धतः कुमंडले भवकवेदांश ४ समेतदिह्मुखे ॥

जनो हुताशश्वसनाशमत्र तत्सूत्रं समुल्लंघ्य न पारिधं व्रजेत् ॥ ४३ ॥

अथोपमात्या परिधयोगचक्रमाह—कृपीटयि ॥ कृपीटयोनेरुद्धतः कृत्तिकानक्षत्रात् कुमंडले भूमीतले भवकस्य नक्षत्रगणस्य वेदांशश्चतुर्भागाः सप्तानां चतुष्केणाष्टाविंशतिनक्षत्राणि तेषां समेतानि सहितानि दिग्मुखानि यस्मिन्स्तरिभ्यः विषयेऽत्र तत् पारिधं परिधमव सूत्रमुल्लंघ्य जनो हुताशश्वसनाशममिवावुदिश न व्रजेत् ॥ यतः प्राच्यदिदिग्चतुष्केषु क्रमाच्छ्रुतेऽन्यादिसप्तकचतुष्के प्रागुत्तरयोः प्रत्यग्यान्वोर्मध्ये मध्योऽन्यथा परिधः 'अग्निमालयोर्मध्ये परिधस्तित्ते महीं । देवा अपि न लभन्ति न दैत्या न च मानवाः' ॥ ४३ ॥

अयोगिनीशूलककालपाशां नाशां यदा पारिधसूत्रमस्मिन् ॥

तदापि यायादुपसर्गलब्धाविपात्तदुल्लंघ्यतु शुद्धकाष्ठाम् ॥ ४४ ॥

अथावश्यके परिधोद्यवनमाह—अयोगिनाति ॥ यदा योगिनीशूलकक कपाशादिभिः आशाः संनि पुनरस्मिन्दिग्विभगे पारिधसूत्रमस्ति तदापि जनो न यायादौ गच्छेत् पुनरुपसर्गलब्धौ आवश्यके तु तदुल्लंघ्य पारिधं भिन्ना शुद्धकाष्ठां दूषणराहित्यं दिशमिपाद्मनेत् ॥ ४४ ॥

आशाविरुद्धे यदि सन्मुखः स्यादाजा तदा मानफलाय यानं ॥

सं नीचगो ह्रीनकृतावलब्धो न चेद्विगुलादिकुदिगुगाप्ये ॥ ४५ ॥

अशासंशारेण प्रमाणशुद्धि निश्चिरेति—भाषति ॥ यदि चेत् आशाविरुद्धे दिग्दिग्द्वे राता चन्द्रः सन्मुखोऽस्ति तदा यान मानफलद्वयं ज्योतिर्विदकल्पं स्यात् । चेत् ४

चद्रे । नीचगो । न । स्यात् ॥ पुनः । इनकरावलब्धः । सूर्यकिरणव्यालुप्तो । न स्यात् ॥ पुन-
र्विशूला दिक् दिग्शूलादिदोषवर्जिता दिगस्ति तदा यानं गुणाप्त्यै गुणप्राप्तये स्यात् ॥ ४५ ॥

याने समेऽल्पे च विलोक्यमेतच्छूलादिनीतित्वमतिप्रयाणं ॥

शस्तं तु शूलादिकृते विरुद्धे न राजवत्यां हरितीति सत्यम् ॥ ४६ ॥

यान इति ॥ समेऽल्पे च याने प्रयाणे एतच्छूलादिनीतित्वं शूलादिनिर्णयत्वं विलोक्य
निर्भजनां कर्तव्या इत्यर्थः ॥ तु पुनरतिप्रयाणं बृहत्प्रयाणं न शस्तं कस्मिन् शूलादिकृते
विरुद्धे सति पुनर्हरिति दिशि राजवत्यां चंद्रयुक्ताया सत्या सन्मुखचंद्रेऽपीत्यर्थः ॥ इति सत्यम् ॥ ४६ ॥

व्यवहृतिफलयानं मंजु पंचांगशुद्ध्या समुदयजययानं

लग्नदिक्शुद्धिवामं ॥ त्रिविधमलमनेहः शुद्धिमतीर्थ-

यानं त्वखिलगमनभेदः शाकुनोत्साहदृष्टः ॥ ४७ ॥

अथ मालिन्या त्रिविधप्रयाणे व्यवहारादित्रिविधफलशुद्धिं दर्शयति—व्ययेति ॥ पंचांग-
शुद्ध्या कृत्वा व्यवहृतेर्व्यवहारस्य फलार्थं यानं व्यवहृतिफलयानं मनु श्रेष्ठं स्यात् ॥ पुनः
समुदयस्य शुभग्रामस्य जयस्तस्मै यानं प्रयाणं लग्नदिक्शुद्धिवामं लग्नस्य दिशश्च शुद्ध्या मनो-
हरं स्यात् ॥ पुनस्तीर्थेयानमनेहः शुद्धिमत् कालशुद्धियुक्तं मनोहरं स्यात् ॥ इति त्रिविधं प्रयाणं
अलमित्यवधारणे ॥ अथ तु पुनः अखिलगमनभेदः शाकुनोत्साहेन दृष्टः विलोकितः शाकुनो-
त्साहदृष्टः । अखिलगमनभेदे शाकुनोत्साहदृष्ट इत्यपि पाठः । एतेन शकुनविचारोऽपि भृशं
चित्यः ॥ ४७ ॥

भवति तदनु मुख्या संमपां भृशशुद्धिः खचरयुति-

विशुद्धिर्भुजां च क्षणाद्या ॥ इतरजनगणानां शुद्धि-

रातस्कराणां शकुननयभवातः शेषशुद्धिर्विचिंत्या ॥ ४८ ॥

अथ त्रिप्रादीनां मुख्यामुख्यप्रयाणशुद्धिं दर्शयति—भनतीति ॥ सोमपा ब्राह्मणानां
भृशशुद्धिर्नक्षत्रदिनशुद्धिर्मुख्या भवति । तदनु पश्चात् भुभुजा क्षत्रियाणां खचरयुतिविशुद्धि-
र्मुख्या भवति । इतरजनगणानां शूद्राणां क्षणाद्या शुद्धिर्मुख्या भवति । आतस्कराणां
नीचपौरपर्यंतानां शकुननयभवा शुद्धिर्मुख्या भवति । तदनु तस्या मुख्यायाः पश्चाच्छेषशुद्धि-
र्गोणी चिंत्या इति ॥ ४८ ॥

जनीशराशीशदशेशलग्नपाः स्फुटप्रभाः सारभृतो गमे नृणां ॥

ददंत्यलं चारुफलं तु दिक्पतिः सकटंको भूरिमहा महार्थकृत ॥ ४९ ॥

अथ प्रयाणे जन्मादिस्वामिनो वर्णयति—जनीशेति ॥ जनोश्चो जन्मशः । राशीशो राशि-
स्वामी दशेशो दशास्वामी लग्नो लग्नस्वामी एषा ह्येते नृणां गमे गमनेऽ-
२२

छमत्पर्यं चाल मनोहरं फल ददति । किंभूता एते स्फुरत्प्रभाः अस्तरहिता इत्यर्थः ॥ पुनः
किंभूताः सारधृतो बलघुक्ताः तु पुनः सकण्टकः केंद्रसहितः भूरिमहा, भूरि बहु महस्तेनो
यस्य स एवनिधो दिक्पनिर्गहायकृत्स्यात् ॥ ५९ ॥

चरे चरांशे च गमं गुरुं विदो विदुः सतद्विप्रकृतौ समं वरं ॥
मितं समस्तेषु गृहेषु लग्नगैर्गमत्रयं नालिङ्कुलारश्शक्तिः २भिः ॥ ५० ॥

अथात्र लघुशुद्धिमाह—उद्दिनि ॥ मि. पंडिताः गुरुं गमं बृहत्प्रयाण वर विदुः
कस्मिन् चरे चरलत्रे चराद्ये चरनयाशे च पुनरेवं सतद्विप्रकृतौ द्विस्वभावराशयशयुक्तद्वि
स्वभावराशौ सम प्रयाण वर विदुः । पुनः समस्तेषु उदये लग्ने मितं प्रयाणं वर विदुः ।
पुनरलिङ्गुलारश्शक्तिभिः वृश्चिककर्कसीनराशिभिर्उग्रैः कृत्वा गमत्रयं न विदुरिति ॥ ५० ॥

स्वोदीरितै राशिभिरंगगैर्गमे शीर्षोदयो यातुरभीष्टसिद्धिकृत् ॥

पृष्ठोदयो यानफलापकृद्यथा तथा कचिचायमलोलभोदयः ॥ ५१ ॥

स्वोदीरितरिति ॥ शीर्षोदयो मिथुनसिंहन्यातुअवृश्चिककुंभ इति गमे गमने यातुरनेत्या
भीष्टसिद्धिकृत् स्यात् । कै. स्वोदीरितैर्नन्मात्रे राशिभिः किंभूतैरंगगैः प्रथमभावगतैः कृत्वा
पुनः पृष्ठोदयो मेघवृषपुन कर्कमकरमीना इति पृष्ठोदयमतो यथा यातुर्यानफलापकृत् प्रयाण
फलनाशकृत्स्यात् ॥ तथाच पुनः कचिदलोभोदयः स्थिरलग्नोदयोऽयं तथा यान-
फलापकृत्स्यात् ॥ ५१ ॥

यदाष्टमं संभवराशिलग्नतो गमांगमगापकरं तु यायिनः ॥

तच्छासिताराविनगौ तदातृदौ पष्ठं ६ समिष्टापदमातनोति ॥ ५२ ॥

अथ प्रयागे निषिद्धलग्नं दर्शयति—यदेति ॥ यदा संभवराशिलग्नतो गमांगं गमनलग्न-
मष्टमं स्यात्तदा यायिनो नरस्यागापकरं शरीरनाशकरं स्यात् ॥ तु पुनस्तच्छासितारौ
जन्मलग्नगमनलग्नस्त्राभिर्नौ इन्गौ मूर्धमङ्गलग्नतो तदातृदौ मरणदायकौ स्याता । पुनर्धौवा
जन्मलग्नतो गमनलग्ने पष्ठं तत् समिष्टापदं मध्यकृ वाञ्छितपदार्थेषु व्यापदं तनोति ॥ ५२ ॥

समुद्यतो जेतुमस्त्रिजं व्रजेलग्नं जनुष्यार्थिवयोगयोजिते ॥

जनेश्वरो यः स हि सर्वमंपदो जित्वाहितव्रातमुपैत्यसंशयम् ॥ ५३ ॥

अथात्र जन्मराजयोगान्गर्जयति—समुद्यत इति ॥ यो जनेश्वरो नृपतिरस्त्रिजं रिपुसमूहं
जेतु समुद्यतं सन् व्रजेन् गच्छेन् कस्मिन् जनुष्यार्थिवयोगयोजिते जन्मराजयोगयुक्ते
एतन्निधे त्रयं हि मुक्तार्थं स नृपाऽसंशयं निश्चिन्नाहितव्रात रिपुसमूहं जित्वा सर्वसंपदं
वर्मात्तं उपैति प्राप्नोति । अथवा स नृपाऽहितव्रातं जित्वा सर्वसंपदं संशयो यस्य स सर्वसंपदं
सन् उपैति स्वस्थानं समापति ॥ ५३ ॥

यदा हि ते राशितनूनिमीलने प्रयाणलम्बेऽरिजनेऽरावुत ॥

उत प्रयाणोदयगैस्तदीश्वरैर्यायी जनो याति यमालयं तदा ॥ ५४

यदेति ॥ हीत्यवधारणे यदा ते राशितनून्मराशिर्जन्मलम्बं च ताम्यां निमीलनेऽष्टमराशौ उत वितर्के अरिजनेः शत्रोर्जन्मराशिजन्मलम्बाम्बामरो पष्ठराशौ प्रयाणलम्बे चेद्यायी जनो यमालयं मृत्युं याति । उत यदा तदीश्वरैर्जन्मराशिजन्मलम्बादष्टमराशिस्वामिभिः शत्रोर्जन्मलम्बराशिभ्यां पष्ठमवनस्वामिभिर्वा प्रयाणोदयगैः प्रयाणलम्बगतैः प्रयःणं भवति तदा यायी गमनशीलो जनो यमालयं मृत्युं याति प्राप्नोति ॥ ५४ ॥

सारी सुतौ व्योमचारी सलग्नो राशिर्योऽसौ वेशराशिश्च राशेः ॥

स्वस्यादोषः पर्यवस्थातुरुच्चैः कालो यातुः संपदं संदधाति ॥ ५५ ॥

अथ मालिन्याह—सारीति ॥ सूतौ जन्मलम्बे सारी बलयुक्तो व्योमचारी ग्रहः सलग्नः प्रयाणलम्बमूर्तिस्थः च पुनः स्वस्य राशेः सकाशात् योऽसौ वेशराशिः स निर्दोषो भवति तदा उच्चैरत्यर्थं पर्यवस्थातुः शत्रोः कालः स्यात् । गात्रगमिनः संपदं दधाति पुज्जाति ॥ ५५ ॥

देहः कामः च लभेद्भेदवैरिगैः काव्यजीव्यमराजमंगलैः ॥

यो जनो व्रजाति योजनायुतं याति सोऽपि खलु तज्जयश्रियम् ॥ ५६ ॥

अथ रभोद्धतया प्रयाणलम्बे ग्रहभावशुद्धिमाह—देहेति ॥ यो जनो योजनायुतं योन नाना दशसहस्रं व्रजति गच्छति कैः कृत्वा काव्येति शुक्रगुरुचंद्रभाभैः किंभूतैरोभिः देह-स्तनुवचनं ? कामः सप्तमं ७ यत् तृतीयं ३ भेदं चतुर्थं ४ वैरिः पष्ठ ६ एषु गतैः खलु निश्चितं सोऽपि जनस्त्वज्जयश्रियं रिपुनयलक्ष्मीं याति प्राप्नोति ॥ ५६ ॥

शूराहितदृष्टिद्रविविग्रहोऽगमोदयोऽसौ प्रतिपक्षहा भवेत् ॥

अनीककामस्य हि नुस्तथोदयो विमानभावेऽपचयेनिमंगलः ॥ ५७

अथोपजात्याह—धूरेति ॥ तदा नुः पुरुषस्य अमौ गमः प्रयाग प्रतिपक्षहा वैरिघातको भवेद्यदा गमोदयः प्रयाणलम्बमस्ति किंभूतोऽसौ गमोदयः शूरः सूर्योऽहिंते पष्ठे यस्मिन् स शूराहितः पुनः किंभूतशिखरेऽष्टमे विद्रुवो यस्मिन् स त्रि-द्रवित् पुनः किंभूतः आर्यो गुरुर्विग्रहे तनुभावे यस्य स आर्यविग्रहः तथा पुनः किंभूतः विमानभावेऽपि दशमभावरहितेषु उपचयेषु त्रिपदैकादशमभावेषु ३६/११ देनिः शनिर्मंगलश्च यस्य स इति । किंभूतस्य नुः अनीककामस्य संग्रामामिळापेणः हि युक्तार्थे ॥ ५७ ॥

घनाऽरिदमानाऽनिहरीनजेंदवो घनारिमानानि समेत्य यायिनः ॥

ददत्युतेज्येऽगगतेऽर्थश्लामऽगगाः परे यियासोऽलमर्थलाभदाः ॥ ५८ ॥

घनेति ॥ हरि सूर्य इनज शनि ईदुअन्ट एपा द्वे रविशानिचद्रा यायिनो नरस्य वनारे
मानानि द्दरारिपुसन्मानानि ददति सर्वेऽपि द्दशत्रवो नमतीत्यर्थ ॥ किरुत्वा वनारिमानानि वनं
प्रथम भवन १ अरि पठ ६ मान दशम १० एतानि समेत्य प्राप्य एते गता सत इत्यर्थ ॥
उताधवा इज्ये गुरौ अंगगते लग्नगते सति अपरे ग्रहा अर्थरत्नाभ ११ मा मतोऽलमत्यर्थ
मर्थलाभदा स्यु कस्य यिसासोर्गेमनाभिजापिणः ॥ ५८ ॥

कौशेऽभवेत्कमलिनीपरिणायकश्चेत्स्मारः ७

सवित्कविरिहाहवयानकाले ॥ यो ना प्रयात्यरि-

चमृभटकुंभिकुंभकंठीरवो भवति भूतलगीतकीर्तिः ॥ ५९ ॥

अथ वसततिष्ठकेनाह—कौशेति ॥ चेद्यदि कमलिनीपरिणायक अवजिनीपति
सूर्य कुश जल तत्र भव कौशस्तरिपश्चतुर्थभावे भवेत् । पुन सवित्कवि
बुधयुक्तशुरु स्मार सप्तमभावगतो भवेत्तदा इहास्मिन् आहवयानकाले सप्तम
प्रयाणकाले यो ना पुमान् प्रयाति गच्छति त पुमान् अरिचमृभटा रिपुसैन्यसुभटा एव
कुंभिनी गभास्तेषा कुम्भेषु कंठीरव सिंहसमो भवति । किंभूत स भूतले गीता प्रसिद्धा
कीर्तिर्यशो यस्य स ॥ ५९ ॥

मित्रोदयं राजमदं स्मराज्यं राज्यं रिपोऽच्छिद्यति यो जनेशः ॥

नेतुं समेत्योदयमेवमीयात्तमादराद्वैरिजनेरितार्थः ॥ ६० ॥

अथोपजास्याह—मित्रेति ॥ यो जनेशो नृपो रिपो शात्रवस्य राज्य नेतु गृहीतुमि
च्छति स नृपो मित्रोदय लग्नस्थमूर्ध्व पुना राजमद सप्तमभावस्थनष्ट पुन स्वराज्य
रवे धनभावे राज्या नृपो यस्मिन् स त एवविधमुदय लग्न समेत्य प्राप्य ईयात्तेच्छेत् । नृप
किंभूत आदरात् वैरिजनेन ईयिता अर्पिता अर्था यस्मै स ॥ ६० ॥

क्षमापत्यपूर्वेषु पचभिर्ग्रहैरामित्रवार्मरश्चघनोद्यमाश्चुगैः ॥

नृपः स यो दिग्विजयोद्यम चरेत्सर्वसहानायकनीतमो भवेत् ॥ ६१ ॥

क्षमापत्येति ॥ यो नृपो दिग्विजयोद्यम चरेत् गच्छेत् के क्षमाया भूमेरपत्य मगल
क्षमापत्यपूर्वमौमादिभि पचभिर्ग्रहैः कृत्वा किंभूतैर्ग्रहादिभि अमित्र पठ ६ वाजेल चतुर्थ
मार वंदर्ष सप्तम ७ घन शरीर प्रथम १ उद्यमस्तृतीय ३ ऋषु गते स नृप इह
लोके सर्वसहा भूमिस्तस्या नायका राजानस्तेभ्यो नाता गृहीता मा लभ्यो येन स
एवविधो भवेत् ॥ ६१ ॥

सराजमंत्रिमंगलक्रियोद्दयो जयाय वा ॥

ग्रहत्रयं यियासतः सकंठका १।१।७।१०५५ गमे ११शुभम् ॥६२॥

अथ प्रमाणिकादसाह—सराजेति ॥ यियासतो गमनाभिलाषिणो नरस्य सह राज-
मंत्रिमंगलैश्चन्द्रगुरुभौमैर्वर्तते यः स एवविध क्रियोदयो मेपलग्र जयाय भवेत् । वा पुनर्ग्रहत्रयं
चन्द्रगुरुभौमत्रय सह कंठकेन प्रथमचतुर्थसप्तमदशमभावेन वर्तते यः स चामौ आगमो लाभ
एकादशभावश्च तस्मिन् शुभ शुभकारकः स्यात् ॥ ६२ ॥

भवन्ति जातकोदिता महीशयोगसंचयाः ॥

त एव यानलग्ना यियासतां जयप्रदाः ॥ ६३ ॥

अथ राजयोगानभिष्टौति—भयतीति ॥ त एव महीशयोगसंचया गनगोतसमूहा
यियासता गमनाभिष्टापिनराणा जयप्रदा विजयदायकाः स्युः ॥ किंभूता चान्त नन्मजात
कशास्त्रे उदिता उक्ताः । पुनः किंभूताः यानलग्नाः प्रयाणलग्ने आयाताः ॥ ६३ ॥

यथाबलं महीशयुक् तथा बलं घराधवे ॥

प्रयच्छति प्रयाणगं तदेव दर्शयाम्यहम् ॥ ६४ ॥

यथेति ॥ यथा महीशयुग् राजयोगो यद् बलं घराधवे नृपे प्रयच्छति ददाति तथाह तदेव
प्रयाणगं प्रयाणवेलाप्राप्त बलं दर्शयामि प्रकटीकरोमि ॥ ६४ ॥

शशिनि मंदवति स्मरगेऽस्त्रमे ९ऽमरपूरोधसि पूष्णयजमे भवेत् ॥

उदयगे जनितोऽवनिपो गमे निखिलनिर्जितभूत उभूमिपः ॥ ६५ ॥

अथ द्रुतविलंबितेन राजयोगानाह—शशिनीति ॥ अवनिपो भूः निखिलनिर्जितभूतल-
भूमिपः सप्तस्तविजितभूमंडलनृपो भवेत् । कस्मिन् सति गमे प्रयाणे जनितो गन्मनः स्मरमे
सप्तमभावे शशिनि च्छे किंभूते भद्रवति शनियुक्ते पुनः कस्मिन् अस्त्रमे धनराशो अमर-
पूरोधासि गुरो सति पुनः कः जममे मेगराशो पूष्णि मूर्गे किंभूते मूर्गे उदयगे
मूर्तिस्थे सति ॥ ६५ ॥

मकर१०मंगलमंगलसच्छ्रियं रविजभाजनुपेत्य न नेति ना ॥

धनुषि९राजविकर्तनयोः स वै नरपतित्वमुपैत्यखिलेदिरम् ॥ ६६ ॥

मकरोति ॥ वै इति हेतौ ॥ ना पुमात्ररपतित्वं भूत्वं न उपैति इति न द्वोनकारां प्रकृत्यर्थं
सूच्यतः प्राप्नोतीत्यर्थः । किंभूत्वा मकरमंगल मकरराशिसंयमगत्र उपेत्य प्राप्य किंभूतं
मकरमंगल रविजभाज शनियुक्ते पुनः किंभूतं अंगे लभतो श्रौर्यस्य स न अगलमच्छ्रियं
पुनः क्रयोः सतो धनुषि वनरुजो राजविकर्तनयोः यद्वाक्ययोः सतो 'रुपतिर्विकर्तन'
इति हेतुः ॥ किंभूतं नरपतित्वं अखिला समम्ना इंदिरा लब्धीर्यस्मिस्तन् अखिलेदिरं ॥ ६६ ॥

धवलभासि मृगो१०दयशालिनि श्रितरसाभुवि भूविभुस्त्र९मे ॥

भवति भास्वति पौरुषपावकज्वलितवैखिलोऽरिक्वलो नरः ॥ ६७ ॥

घबलेति ॥ नरो भविभुर्भो भवति गमे प्रयाणे इति शेषः ॥ कस्मिन् मृगोदयशालि
मकरलग्नशोभायुक्ते घबलभासि चद्रे किंभूते घबलभासि श्रितरसाभुवि आश्रितभौमे पुन क
अस्त्रमे घनराशौ भास्वति मूर्गे सति किंभूतो नर पौरुषे प्रतापे एव पावके ज्वलितानि दाश
वैरिकुलानि रिपुसमूहा येन स । पुन किंभूतो नर अरीणा शात्रवाना कु भूमिं लानि गृह
इति अमृत्ययेऽरिकुल इति ॥ ६७ ॥

यदि समेत्य विनेतुं मरिश्रियं सविधुतावुरिभोदयमीहते ॥

गुरुमदं ७ हरिशं ४ हरिजांवरं १० वसुमतीपतिराशु समाव्रजेत् ॥ ६८

यदीति ॥ यदि चेत् वसुमतीपतिर्भूतोऽरिश्रिय विनेतुं विनाशीकर्तुं गृहीतु
ईहते इच्छति तदा आशु शीघ्रं समाव्रजेत् गच्छेत् । किंकृत्वा सविधुतावुरिभो
चंद्रसहितवृषलग्नमेत्य त्राप्य किंभूत तावुरिभोदय गुरुमदे सप्तमे यस्य स त गुरुमद पु
किंभूत हरि सूर्य शे चतुर्थे भावे यस्य स त हरिश पुन किंभूत हरिज शनिरेवरे दशम
यस्य स त हरिजावर ॥ ६८ ॥

मिहिरजन्मनि ना मकरो १० दये व्रजनि राजगुरुज्ञरसाभवेः ॥ सहज
रिः फ १२ नभो १० अहित ६ चारिभिर्नयति योऽजुर्नवीर्यविरोधिगाम् ॥ ६९

मिहिरोति ॥ मिहिरजन्मनि शनौ मकरोदये मकरलग्नविषये सति यो ना पुमान् व्रजति गच्छे
कै कृत्वा राजा चद्र गुरु शो पुष रसाभवो भौम एषा द्वे तै किंभूतै तै सहजस्तृतीय
रिः फ १२ दश १० नभो दशम १० अहित पष्ठ ६ एषु भावेषु चारिभिर्मनशीलै स ज
अजुर्नवीर्यविरोधिगा नयति प्राप्नोति अजुर्नस्य पार्थस्य वीर्य पराक्रम इव पराक्रमो येषा
च ते विरोधिना रिपवश्च तेषा गा भूमिं नयति ॥ योऽजुर्नवीर्यविरोधिनामित्यपि पाठे स्पष्ट
यथा रुश्चित् बलिष्ठोऽजुर्नवीर्येण पराक्रमेण विरोधिना रोधशीला गा सौरभेयी वा नय
इत्युक्तिर्युक्तः ॥ ६९ ॥

अप १२ विशेषभुजा सयमामृजा धिपणधिष्यमृगाकवहं धनुः ॥

विदि वशोदय ६ भाजि यदा गमे हरिवलारिवलापकरो नरः ॥ ७०

अपेति ॥ यदा गमे प्रयाणे विषणो गुरु धिष्य शुक्र मृगाकश्चद्र एषा द्वे एत
वहति विमर्ति एतद्वहयुक्त वनु स्यात् ॥ किंभूत ननु यमेन शनिना सह वर्तते य सयम
चासौ असम् भौमश्च तेन उपलसित । किंभूतेन सयमामृजा क्षेपेषु मीनेषु विशेष श्रेष्ठ क्षपा
शेषो मकरस्त भुनक्ति इति भुक् तेन भुजा मकरराशिषुक्तेन तदा नर पुमान् हरिवला
नलापकरो भवेत् हरे सिंहस्य नलभिव बल एषा ते च तेऽरयश्च तेषा बल वीर्य बला लक्ष
वाऽपकरोति हस्तीति कस्मिन् सति वशोदयमाजि कन्याग्रयुक्ते विदि बुधे सति ॥ ७०

अनिमिषोदयः १२ ओऽमृतदीधितौ करिकरे १०ऽसृजि पूष्णि सलेयभे ५ ॥
कलशवर्तिनि ११ योऽशुभुवि व्रजेदाखिलमैलविलस्वमिहानयेत् ॥ ७१ ॥

अनिमिषेति ॥ यः पुमान् व्रजेत् कस्मिन् ऋति अमृतदीधितौ चंद्रेऽनिमिषोदयगे मीनलगते
पुनः क अमृजि मौमे करिकरे मकरे सति पुनः क पुष्णि सूर्ये लेयभे मिहाराशौ मति पुनः
क अशुभुवि शनौ कलशवर्तिनि कुंभराशियुक्ते मति स इह जगति अविश संपूर्ण ऐलवि-
लस्य कुबेरस्य त्वं धनमिव धनं नयेत् प्राप्नुयात् ॥ ७१ ॥

मतिसखाश्रिततुंगपदोऽंगगो गवि २ कवीदुविदो मिहिरोऽज १ गः ॥

यदि गमी लभते परसंपदं नखरो खरोधितशात्रवः ॥ ७२ ॥

मतिसखेति ॥ यदि अंगगो लग्नगतः श्रिततुंगपदः उच्चस्थानगतः एवंविधो मतिसखा गुरुः
स्यात् । पुनः कवीदुविदः शुक्रचंद्रबुधाः गवि वृषराशौ स्युः । पुनरांगगो मेपराशिगतो मिहिरः
सूर्यः स्यात्तदा गमी पुमान् परसंपदं शत्रुलक्ष्मीं लभते प्राप्नोति । किंभूतो गमी नखरः पुरुष-
श्रेष्ठः पुनः किंभूतः स्वेण शब्देन रोषिताः क्षुभिताः शात्रवा येन स खरोधितशात्रवः ॥ ७२ ॥

अवि १ कुलीर ४ तुला ७ जितुमानि ३ चेद्विभुयुतानि समंदमृगो १० दये ॥

शयगतैव गतस्य नुरिंदिरा क्षितिभुजोऽतिभुजोत्कटतावतः ॥ ७३ ॥

अवीति ॥ चेद्यदि समंदमृगोदये क्षितिभुक्तमकरलग्ने विभुयुतानि निजस्वामिभिर्युक्तानि अ-
वेकुलैरनुत्तुलानि मेपकर्कटलामिश्रानि स्युस्तदा गतस्य प्रयाणकारस्य नुः पुंसः शय-
गता एव हस्तगता एव इंदिरा लक्ष्मीर्भवति । किंभूतस्य नुः क्षितिभुजो भूमिभोक्तुः पुनः किंभू-
तस्य अतिभुजोत्कटतावतः प्रलंबभुनयोत्कटता तद्वत्स्तद्युक्तस्य ॥ ७३ ॥

संविदि भीरुघने १ कविमानभे १०ऽनु मद ७ राजगुरौ मति ५ मंगले ॥

गमनमाशु विधाय मतीन ५ जे वृणु नृवीर १० विरोधिजयश्रिय ३ ॥ ७४ ॥

संविदीति ॥ हे नृवीर नृणा मध्ये शूर इव विरोधिजयश्रिय शत्रुजत्वादलक्ष्मीं वृणु
प्राप्नुयाः किंभूता आशु शीघ्रं गमन विधाय कस्मिन् भीरुघने कन्यालग्ने विदि बुधयुक्ते
पुनः किंभूते कविमानभे दशमभावे शुके पुनः किंभूते अनु पश्चात् मरु पुरौ सप्तमभावे
चंद्रे गुणे च पुनः मतिमंगले पंचमभावे मौमे पुनः मतीनगे पंचमभावे नृणा सति सशीणि
भीरुघनेत्यस्य विशेषणानि ॥ ७४ ॥

सुखमगोगतयःऋतु९केंद्रगाः १।४।७।१०। श्रितवि-
खोपचय ३।६।१०। क्षखला ग्रहाः ॥ यदि भवंति
तदा गमकृज्जनोऽसहनसंचितरायमिहाश्रुते ॥ ७५ ॥

सुखेति ॥ यदि सुखेन मीयते इति सुखमाः 'सुखमा सुखमानि शोभन' इति हैम ।
अथवा सुखमा सौम्याश्च ते गोगतयो ग्रहाश्च ते सौम्यग्रहा ऋतुर्नवम ९ केंद्राणि
१।४।७।१० एषु गता भवति च पुन खला ग्रहा श्रितविखोपचयर्क्षा दशमवर्गितेषु उपचये
गता भवंति विगत ख दशम येभ्य ३।६।११। इति तदा गमकृत् गमनकारको जन पुन
इह जगति असहनै शत्रुभि सचिता मीलिता राय लक्ष्मीं अश्रुते प्राप्नोति ॥ ७५ ॥

योगा कियंतां नृपनामभूताः प्रकीर्तिता ये भुवि होरिक्वैयैः ॥
मयोदितास्ते त्वपरे विलोक्या जयाय यातु खलु जातकोक्ताः ॥ ७६ ॥
योगा इति ॥ होरिक्वै होराज्ञानविद्विर्भुवि पृच्छ्या ये नृपनामभूता राजसत्ता या
प्रकीर्तिता मया ते कियतो योगा खलु निश्चित यातु प्रयाणकारकस्य नया
उदिता उक्ता तु पुनरपरे योगा जातकोक्ता विलोक्या ॥ ७६ ॥

महत्प्रयाणेऽखिलवर्णलोकेरमी प्रदृश्याः पृथुराजयोगाः ॥
तथा त्रिधाभ्यागमयानकाले सर्वत्र भावस्थितिखेटयोगाः ॥ ७७ ॥
अथ राजयोगानामुपसहारमाह—महदिति ॥ अखिलवर्णलोकै चतुर्वर्णनैरमी ।
पृथुराजयोगा महत्प्रयाणे प्रदृश्या विलोकनीया । तथा त्रिधाभ्यागमयानकाले त्रिवि
धमप्रयाणसमये भावस्थितिखेटयोगा द्वादशभावस्थग्रहयोगा सर्वत्र विलोक्याः ॥ ७७ ॥

कलेवर १ कोशभश्मस्त्रश्वाहने ४मंत्रोऽहितः ६

पद्धतिः ७ आयुः ८ मानसे ९ ॥ व्यापारभं १० लब्धिः ११

रत्नलब्धिः १२ रित्यमी भावा विचिंत्या विबुधैर्गमोदयात् ॥ ७८ ॥

अथ प्रयाणलक्षणे द्वादशभावनामा-याह—कलेवरमिति ॥ विबुधैरिति ॥ अमी गमोद
प्रयाणोदया भावा विचिंत्या इति किं तानाह ॥ कलेवर शरीर १ कोशभ भाङ्गारो
धनम्वन अस्त्र वानुष्क ३ वाहन ४ अनयोर्द्विद्वे मंत्र आओचन ५ अहित शत्रु
पद्धतिर्मार्गः ७ आयु ८ मानस चित्त ९ अनयोर्द्विद्व व्यापार. १० लब्धि
अलब्धिर्व्यय ११ ॥ ७८ ॥

सराजराजग्रहमदराहवो गमोदयस्था विसृजति चापद ॥

विराजंतोऽखिलसपदं नृणामरोपयाने सततं यियासताम् ॥ ७९ ॥

अथ द्वादशभावेषु न्याणलक्षणे प्रथमभावकलमाह—सराजात ॥ सह
चद्रेग वर्ति सराजौ च ते राजग्रहौ रविभौ च मंद शनिश्चर राहुश्च

चन्द्रयुक्तरविभौमशनिराहवो गमोदयस्थाः सततं निरंतरं गियासता गमनाभिलाषिणा
नृपाणामापदं विमृजंति कुर्वन्ति कस्मिन्नशेषयाने समस्तप्रयाणे चपुनर्विराजः संतः
शुभग्रहाः अखिलसंपदं विमृजंति शेषं योज्यं इति प्रयाणलघुप्रथमभावफलं ॥ ७९ ॥

शुभा गमद्भि ददतीह सारगाः सारं हरंत्यन्यखगामिनो गमे ॥

सहोत्थगाः सर्वसमृद्धिदायिनोऽनिलाध्ववेगा निखिला उदीरिताः ॥ ८० ॥

अथ द्वितीयभावफलमाह—शुभेति ॥ सारगाः धनभावस्थाः शुभाः शुभग्रहाः गमद्भि
प्रयाणलक्ष्मीं ददति कस्मिन्निह गमे प्रयाणे पुनरन्यखगामिनः पापग्रहाः धनस्थाः सारं
द्रव्यं हरंति ॥ अथ प्रयाणे तृतीयभावफलमाह ॥ हि निश्चितं निखिलाः सर्वे अनिलाध्वनि
मरुत्पथे आकाशे वेगो गमनं एषा ते ग्रहाः सहोत्थगाः सहजभावस्थाः सर्वसमृद्धिदायिन
उदीरिता उक्ताः ॥ ८० ॥

संतो वने ४ शं वितरंत्यशं परेऽपरे कवीर्ज्येदुज-
तोऽपसिद्धये ॥ भवंत्यपत्येऽ गमिनोऽभ्रगामिनो
विरोहिणीशा निखिला रिपौ ६ हिताः ॥ ८१ ॥

अथ प्रयाणे चतुर्थभावफलमाह—संत इति ॥ वने जले चतुर्थभावे संतः शुभग्रहाः श सुखं
वितरन्ति ददति परे अपरेऽशुभग्रहाः अशं दुःखं वितरन्ति ॥ अथ प्रयाणे पंचमभावफलमाह ॥
अपत्ये पंचमभावे कवीर्ज्येदुजतः शुक्रगुरुबुधेभ्यः सकाशात् अपरेऽन्ये रविचंद्रभौमशनयो-
ऽपगता सिद्धिर्येभ्यस्तेऽपसिद्धयो निष्कला भवन्ति । अर्थात् शुक्रगुरुबुधाः सिद्धिकारका भवन्ति ॥
अथ प्रयाणे षष्ठभावफलमाह ॥ रिपौ षष्ठभावे विरोहिणीश्चाश्र्वरंहिता अखिला अभ्रगामिनो
ग्रहाः हिता हितकारिणो भवन्ति गमिनः पुंस इति सर्वत्रापि योज्य ॥ ८१ ॥

जयं दधत्यार्यविदिंदवो मदे७ मदं परे पालयितुं सुशक्तयः ॥

न यानजं चात्तरि८वित्सितौऽगिरा गिराप्तये चात्तृकृतोऽपरे ग्रहाः ॥ ८२ ॥

अथ प्रयाणलघ्रे सप्तमभावफलमाह—जयमिति ॥ मदे सप्तमभावे आर्यविदिंदवो गुरुबुध
चंद्राः जयं दधति पुष्पांति पुनर्मदे सप्तमेऽपरे रविभौमशुक्रशनयो यानजं प्रयाणप्राप्तं पुमांसं
पालयितुं रक्षणाय न सुशक्तयो न समर्था भवन्ति गता नरः सयं यातीत्यर्थः ॥ अथ प्रयाणे
अष्टमभावफलमाह ॥ अत्तरि मृत्यौ अष्टमभावे विद् बुधः सितः शुक्रः च पुनरगिरा गुरुश्चैते
गिराप्तये वाणीप्राप्तये देशलब्धये वा भवन्ति 'गीस्तु वाचि सरस्वत्या दुर्गायां ककुभि स्मृता'
इति महीपः ॥ च पुनरष्टमे भावेऽपरे ग्रहा अतृकृतो मृत्युकारकाः स्युः ॥ ८२ ॥

नेनैनिराजारतमांसि भाग्यं भाग्याश्रिताऽनीह दिशन्ति यातुः ॥

सिद्धयै परेऽर्कार्यमानम१०स्थास्त्वपाटवायायुशुभाः शुभाः स्युः ॥ ८३ ॥

अथ शार्दूलविक्रीडितेन रात्रौ पंचदशमुहूर्ताधिपानाह—श्राजेति ॥ शः शिवः १
अजाधिरजपाद २ अहिर्बुध्न्यकः ३ पूषा ४ दत्तो ५ यमः ६ अनलोऽग्निः ७ अजो ब्रह्म
८ इंदुः ९ अदितिः १० इनबंधो गुरुः ११ जिनो विष्णुः १२ रविः १३ त्वष्टा १४ महा
बलाख्यो वायुः १५ 'पृषदश्वो महानलः' इति हैमः । एषां ब्रह्मे बहुवचनं सदा निशि रात्रौ
एते क्षणेशाः मुहूर्तनायकास्तिथिमाः पंचदशसंख्याः स्थिरत्रापि नक्षत्राणि ग्राह्याणि ॥ ९० ॥

आर्यम्णस्तर्णौ विधौ विधिलवो रक्षोलवः क्षमाजनौ पैत्र्यो
धौमनिकेतनः क्षण इमेऽसद्रौहिणेयेऽष्टमः ॥ जीवे यातुज-
लक्षणावुशनसि ब्राम्ह्याग्रजौ भास्करो शर्वो वैपधरो
गमे बुधवरैर्हेयास्तथा मंगले ॥ ९१ ॥

अथ रव्यादिवारेषु त्याज्यमुहूर्तानाह—आर्येति ॥ तरणौ रविवारे अर्यम्णः सूर्यस्या-
यं आर्यम्णो लवो मुहूर्तो हेयस्त्याज्य एवं विधौ चंद्रवारे विधिलवो रक्षोलवश्च द्वौ पुन-
क्षमाजनौ धौमवारे पैत्र्यः पूर्वजलवः १ धौमनिकेतनोऽग्निर्बुधिलव इमौ द्वौ पुन-
रौहिणेये बुधवारेऽष्टममभिनिदसदुष्ट पुनर्जीवे गुरुदिने यातु राक्षमो जल च तौ क्षणौ लवी पुन-
रुशनसि शुक्रवारे ब्राम्ह्याग्रजौ ब्रह्मपूर्वजसंबधिलवौ पुनर्भास्करो शनिवारे शर्वो रुद्रसं-
धिलवश्च बुधवरैरिमे लवा गमे प्रयाणे तथा मंगले विवाहादौ हेयास्त्याज्याः ॥ ९१ ॥

यद्विष्णुं हि यथा गतौ विकलितं तस्मिंस्तदीये क्षणे
यानं मानपरं गमे भवति नो मध्ये क्षणे दक्षिणां ॥
यायाच्चापरादिक्षु तत्र गमनं सिद्ध्यै सदा या क्रिया
यस्मिन्मे गदिता तदक्षविरहे स्यात्तत्क्षणेऽपीष्टदा ॥ ९२ ॥

अथैषा व्यवहारमाह—याद्विष्णुमिति ॥ हि निश्चितं यद्विष्णुं नक्षत्रं यथा गतौ गमनं
निगदितं तथा तस्मिन् नक्षत्रे तदीये क्षणे तस्य नक्षत्रस्य लवे यानं प्रयाणं मानपरं
श्रेष्ठं भवेत् । कस्मिन् गमे पुनः पुनान् मध्ये क्षणेऽभिनिन्मुहूर्ते दक्षिणा दिशं नो यायात् ।
च पुनस्तत्राभिनिन्मुहूर्तेऽपरदिक्षु दक्षणावर्जितदिक्षु गमनं सिद्ध्यै स्यात् । पुनर्यस्मिन् मे
नक्षत्रे सदा या क्रिया गदिता प्रोक्ता पुनस्तदक्षविरहे तात्क्रियोक्तनक्षत्राभावे तत्क्षणे
तस्य नक्षत्रस्य मुहूर्तेऽपि सा क्रिया इष्टदा स्यात् ॥ ९३ ॥

मिश्रैरलोलेः प्रथमान्हि भैः क्षणेर्न दारुणैर्म-
ध्यादिनेऽपराणहके ॥ क्षिप्रैः प्रदोषे मृदुभि-
स्तभीदले क्रूरैर्निशांते च चर्लैर्गमो भवेत् ॥ ९३ ॥

अप्यपजात्या प्रयाणे क्षणनक्षत्रे कालनिर्णयमाह—मिश्रैरिति ॥ प्रथमान्हि पूर्वाह्णोत्तरे
मिश्रैरलोले स्थिरैर्भैर्क्षत्रैर्गमो गमनं न मध्यादिने दारुणैः क्षणैर्भैर्गमो न पुनरपराणहकैः

क्षिप्रैः क्षणैर्भैरगमो न पुनः प्रदोषे यामिनीमुखे मृदुमिर्गमो न स्यात् । च पुनस्तमीदले
ऽर्द्धरात्रे क्रूरैर्गमो न पुनर्निशांते चरैर्गमो न भवेत् ॥ ९३ ॥

इति प्रसन्नास्तु विशेषकालतस्ताराः समस्ता गमने वभाण यः ॥

अतोऽन्यकालानुगतास्तदन्वयान्मतं तदीयं यदनुद्धतं वत ॥ ९४ ॥

अथात्र कस्यचिन्मतमाह—इति प्रसन्नेति ॥ यः काश्चित् गमने प्रयाणे तुरित्य-
वधारणे विशेषकालतः समस्तास्तारा नक्षत्राणि वभाण जगौ किंभूतास्तारा इति
प्रकारेण प्रसन्ना निर्दोषाः अतःकारणात् पुनः किंभूतास्तारास्तदन्वयात्तत्सद्भावात् अन्यका-
लानुगता अन्यसमयप्राप्ताः वत वितर्के यतः कारणाच्चदीयं मतमनुद्धतं नीतिगतं ॥ ९४ ॥

दधिघृतफलमीनक्षौद्रगोरोचनाब्जध्वजमुकुरपयोन्नोष्णी-

पभृंगारवीणाः ॥ कुसुमधवलधान्यछत्रशंखाजनाम्ब-

ज्वलदनलनृत्यानेभाश्चशुक्लोऽक्षकन्याः ॥ ९५ ॥

अथ मालिन्या काव्यत्रयेण दक्षिणगान् शुभसूचकशकुनानाह—दधीति ॥ दधि
घृतं फलानि मीनो मत्स्यः क्षौद्रं मधु गोरोचना गोपितं ओषधिश्च अब्जं कमलं ध्वजः
पताका मुकुरो दर्पणः पयो दुग्धं अश्वं उष्णीषं मुकुटः ' भृंगारः कनकालुका ' इति
हैमः ॥ शुक्लकुम्भ इति रत्नमाला ॥ वीणा वीपवती कुसुमानि पुष्पाणि भवलधान्यं छत्रं
शंखः अंजनं कज्जलं अस्त्रं घनुरादि ज्वलदनलो निर्धूमोऽग्निः नृत्याने शिविका इषो हस्ती
अनुमत्तः अश्वो घोटकः शुक्लोऽक्षः श्वेतवृषभः अनङ्गः कन्या कुमारी एषां द्वंद्वे ॥ ९५ ॥

फलकुशवसुसिद्धार्थाक्षतछागमृत्ताः सजलकलशवेश्या-

रत्नभद्रासनानि ॥ नकुलसुरभिभूपाव्यालभक्ष्याखु-

विप्राः सतनयवनिता व्याघ्राट्कोरक्षुभूपाः ॥ ९६ ॥

फलेति ॥ फलानि मदनफलानि कुशो दर्भः वसु द्रव्यं सिद्धार्थः श्वेतसर्पः अघ्नता
छाजाः छागोऽजः मृत्ता शुभमृत्तिका सनलकलशो नक्षपूर्णकुम्भः वेश्या गणिका रत्नानि
भद्रासनं सिंहासनं नकुलः सुरभिर्धेनुः भूषालंकारः व्यालमक्ष्या मयूराः आसुः मूषकः
विप्रौ द्वौ वहवो वा नत्वेकः सतनयवनिता पुत्रसहितस्त्री व्याघ्राटो भारद्वाजपत्नी कीरः शुकः
शुभः अखंडितदंढः भूपो राजा एषां द्वंद्वे ॥ ९६ ॥

दूर्वाकरीपांकुशदीपकौपधीःसमिच्च धौतावरवर्धमानकौ ॥

दृष्ट्वेह वद्वैकपशुर्गमे नयेदेतान्यभीष्टान्यथ सव्यगानितु ॥ ९७ ॥

अधोपनात्याह—दूर्वेति ॥ दूर्वा कगीषः गोमयं अंकुशः दीपकः ओषधिः आसा समाहारद्वंद्वे
एकत्वं च पुनः समिच्च एषः तृ पुनः धौतावरः प्रसंगलिनवस्त्ररत्नकः वर्धमानकः शरावः । यदुक्तं

श्रीहर्षकविना 'भ्रमयत्यामित विदर्भजानननीराजनवर्द्धमानकं' इति ॥ अथवा बहुपुत्रादि-
परिवारयुत पुरुष बद्धैकपशु रज्ज्वादिना बद्धएकादिदृशग इह गमे प्रयागे पुमान् एतानि
शकुनानि अभीष्टानि दृष्ट्वापसव्यगानि दक्षिणगतानि नयेत् कुर्यात् ॥ ९७ ॥

मृदंगभेरीमृदुशंखनादान्वेद्वानि गंगलगीतघोषान् ॥

श्रीवाद्यवीणानकवेषुशब्दान् श्रुत्वा च याता लभते गमर्द्धिम् ॥९८॥

अथ वाद्यशकुनान्याह—मृदगेति ॥ याता पुमान् गमर्द्धिं प्रयाणलक्ष्मीं लभते प्राप्तेति
किञ्चित्वा मृदग मुरज भेरी दुदुभि मृदुर्भेदलभत्यादिवादित्र शस्त्र कबु एषा द्रुष्टे एषा
शब्दान् च पुनर्वेद्वानि पुनर्मंगलगीतघोषान् पुन श्रीवाद्य वीणा घोषवती आनक पटह
वेषुर्वश एषा द्रुष्टे एषा शब्दान् श्रुत्वा । वाद्यभेदो बहुधा यतो मृदगो मृण्मय काष्ठमयश्चे
त्यादौ तेन सुधिया विचार्य पुनरुक्तदूषणा एका शका ह्या ॥ ९८ ॥

रत्नावला शकरिका शिवा पिका कपोतकी क्रौञ्च्यनुगंधमूपिका ॥

स्यात्पिंगला वासकगोधिका सदा यियासता वामविभागगा वरा ॥९९॥

अथ वामभागगतशकुनान्याह—रत्नेति ॥ रत्नावला जारे काशकापी लोढी अथवा नडु
विशेषः शूकरिका 'सूषरी' इति भाषा । शिवा सगाली पिका कोकिला कपोतकी पारावती
क्रौञ्चो अनु पश्चात् धूम्रपिका छुछुदरी गंधमख्या' इति हैम । पिंगला भैरवी चीवरी भाषा
आवासकगोधिका गृहगोधिका यियासता पुसा वामविभागगा एषा सदा वरा स्यात् ॥ ९९ ॥

भासो मृगश्लिक्करपिप्पलाख्याः श्रीकठशाखा मृगपुष्कराख्याः ॥

शुभा यियासोरपसव्यगाः स्युर्वशाभिधा ये पतगास्तथा ते ॥१००॥

अथ दक्षिणगतशुभशकुनान्याह—भासेति ॥ भासः शकुंतपत्तिविशेषः 'भासे शकुतको
यष्टो' इति हैम ॥ मृग श्लिक्को मृगविशेषः पिप्पलश्चटकविशेषः मृगो मृगश्रीकठः
भाषः शाखामृगो वानर पुष्कराख्य सारत पुष्कराख्य कुरकर' इति हैमः ॥ यियासो
रपिप्यत पुम एते अपसव्यगा दक्षिणगताः शुभाः स्युः । तथा पुनर्ये रशाभिधाः स्त्रीमन्त्रका
पतगा पक्षिणस्तऽपि दक्षिणगा शुभा ॥ १०० ॥

निशाटनारिष्टकपोतदुर्गागोमायुवार्ध्राणसरासभाख्याः ॥

विनिर्गमे वामगता वरा स्युः प्रवेशने दक्षिणभागसस्थाः ॥ १०१ ॥

अथ निर्गम प्रवेशे च शकुनविवेकान्याह—निशेति ॥ निशाटो मृक अरिष्ट काक
कपोता रक्तरोमः तथा त्वेवमजिका गामायु मृगाः वार्ध्राणमः खट्वी रामयाम्य एते
विनिर्गम वामगता वरा स्युः । पुन प्रवेशने दक्षिणभागसस्था वराः स्युः ॥ १०१ ॥

शस्ता यदा यांति वनौकसो मृगास्तदौजसंस्यानुमिताः प्रदक्षिणं ॥
गमे गमो यानकृतांसुतांगिनामशेषयानाखिलभेदसिद्धये ॥ २ ॥

अथ विषमसंख्यायां शकुनान्याह—शस्तेति ॥ यदा वनौकसो वानरा मृगाश्च
ओजसंख्याप्रमाणा यानकृता नराणां गमे प्रयाणे दक्षिणभागं याति तदा शस्ताः स्युः । उत
वितर्के यानकृतान्गिनां गमोऽशेषयानाखिलभेदसिद्धये स्यात् ॥ २ ॥

असिद्धये यानकृतां गुडौषधिह्रीवाहितैलास्थिवसोपलाहिताः ॥ ✓

पिचव्यजंवालतुपामयिश्रमिप्रभ्रष्टचर्मप्रतिरूपभूतयः ॥ ३ ॥

अथ काव्यद्वयेनाशुमशकुनान्याह—असिद्धेति ॥ यानकृता पुंसामपि द्वये निष्कलाय
एते स्युस्तानाह ॥ गुडः इक्षुरस औषध ह्रीवो नपुंसको अहिः सर्पः तैलं अस्थिवसा मेदः
'तेनोमे गौतमं वमा' इति हैमः ॥ उपलः पापाणः अहितः शत्रुः एषा द्वयः पिचव्यः
कार्पासः 'कार्पासस्तु वादरः स्यात्पिचव्य' इति हैमः ॥ अंबालः पंकः तुपो धान्यकोशः
'तुषो बुधासे कडेगर' इति हैमः ॥ आमयी रोगी श्रमी क्रमयुक्तः प्रभ्रष्टो विकलः चर्मप्रति-
रूपभूतिः चर्मकारः ॥ ३ ॥

आम्लं कटुक्षारतृणांधभस्मभृत्प्ररोपिनन्नांगविमुक्तकेशिनः ॥

क्षुधातुवंध्यारजका रजस्वला विष्मूत्रगोधाराशदारुजहकाः ॥ ४ ॥

आम्लमिति ॥ आम्लं कटु क्षारः तृणानि घास अंधो गताक्षः भस्मभृत् भस्मवारी
रोषी श्लेष्मी प्ररोधी इति पाठांतर नन्नांगो वस्त्ररहितः विमुक्तकेशिनोऽस्यतकेशाः क्षुधातुः
धितः वंध्या रजको निर्गेजकः रजस्वला ऋतुयुक्तास्त्री विद् विष्टा मूत्रं गोधा निहाका
॥ विकाशः शशः दारु काष्ठ जाहको गात्रसकोची ॥ ४ ॥

इहासितान्नाजिनलोहतस्करा विनासिकांगारखरोष्वाहनाः ॥

कुञ्जस्त्वयोजीवनफाटमाहिषा मुंडो भुगेतानि भवंत्यसंपदे ॥ ५ ॥

इहेति ॥ असितान्नं कृष्णधान्य अजिनं चर्म लोहं तस्कराः विनासिकः छिन्ननासिकः
अंगारा अग्निनाद्धिदग्धाः रवरवाहनः उष्ट्रवाहनः कुञ्जो हीनागः तु पुनर्योजीवनी लोह-
कारः फाट तर्क माहिषः कासारः माहिषारूढो वा मुंडः केशरहितः भुक् भक्षर एतानि
शकुनानिव्यसंपदे दुःखाय भवति ॥ ५ ॥

आवासदाहं स्खलितं च रोपता कुटुंबवादं धनहानिमातृवं ॥

भुगाहवं कासरसंगरं गमे ह्यवाप्य कष्टं नखिदष्टमेति ना ॥ ६ ॥ ✓

अथाशुभसूचकशकुनान्याह—आवासेति ॥ ना पुमान् गमे प्रयाणे कष्टमेति एतेति
किं न आवासदाहं गृहज्वलनं स्खलितं वाहनादीनां स्खलनं रोपता कोषत्व उष्ट्रवादं

कुट्टये परस्परकलहं धनहानिं आर्तवन् स्त्रीधर्मं भुगाह्वं भक्षकयुद्धं कासरसंगरं महिष-
नखिदष्टं सारमेयादिदंष्ट्राविदीर्णं चावाप्य प्राप्य हीत्यवधारणे ॥ ६ ॥

नखिध्वनिं च क्षुतमत्र रोदनं भस्त्रास्वनं दारुविदारणस्वनं ॥

अयःशिलाताडनमोतुकृद्रवं श्रुत्वैति याता परिपंथिविग्रहम् ॥ ७ ॥

अथाशुभशकुनान्याह—नखीति ॥ अत्र याता पुमान् परिपंथिविग्रहं शत्रुकलहे
'दुर्हृदं परिपंथिकपंथिनौ' इति हेमः ॥ किं कृत्वा नखिध्वनिं नखरायुधाना शब्दं च पु-
क्षुतं छिक्त्वा रोदनं भस्त्रास्वनं चर्मप्रसेविकायाः शब्दं दारुविदारणस्वनं भिद्यमानकाष्ठशब्दम्
शिलाताडनं लोहशिलाकुहनं ओतुकृद्रवं विडालविहितशब्दं च श्रुत्वा ॥ ७ ॥

समुद्यते गंतुमरं नरे स्यात्स्वप्नो विरुद्धो यदि दुष्टभाषणं ॥

गुरोर्नाज्ञान्यविरोधवार्ता तदा गमो नागमहेतुरंगिनः ॥ ८ ॥

अथ विरुद्धस्वप्नादीनशुभशकुनान्याह—समुद्यतइति ॥ अरं शीघ्रं यदि चेत् नरे पुंसि ये
समुद्यतेऽप्युद्यमवति विरुद्धो दुष्टः स्वप्न स्यादथवा दुष्टभाषणं वा गुरोः पित्रादेरना-
मा व्रज इति लक्षणा वा अन्यविरोधवार्ताऽन्यैः सह विद्वेषवार्ता स्यात्तदा गमः प्रयाण-
गिनः पुंसोऽनागमहेतुः पुनरावर्तनहेतुः अलाभहेतुर्वा स्यात् ॥ ८ ॥

यांगारगाशा ज्वलिता च धूमिता तदाश्रिता ये शकुनाः शकुंतजाः ॥
कुर्युस्तदाशाभ्रमवारवर्णतो विवर्णभावं गमनं यियासुषु ॥ ९ ॥

अथागारादिदिशाश्रितान् शकुनान्निष्कलान् दर्शयति—यांगारेति ॥ या आशा दिग् अग-
रगा १ ज्वलिता २ धूमिता ३ चास्ति तदाश्रिता तथा दिशा आश्रिता ये शकुनाः शकुंतजा-
पक्षिजाता भवेयुस्ते शकुना यियासुषु सुषु गमनं विवर्णभावं श्यामभाव कुर्युः ॥ कस्मात्
दाशाभ्रमवारवर्णतः सा च आशा तदाशा तस्या भ्रमो यस्य स चासौ पारश्च तस्य वर्णते
रामात् 'वैवर्ण्यं कारुणिकाश्रु' इति हेमः ॥ पुनरमुनैवोक्तं 'रघुवशे विवर्णभावं स स भूमि-
पालः' इति ॥ अथ अथातरादगारादिदृष्टक्षणाणि लिख्यन्ते 'रानन्यता' इत्यामादि यावद्यामा
वर्कं दिने । एव यामोदयो भानु पूर्वाद्यष्टदिशो भ्रमेत् ॥ १ ॥ दिनरात्रिप्रमाणेन याममा-
नु तद्वेत् । तन्मानेन भ्रमेन्नानुदिशोऽष्टौ प्रहराष्टके ॥ २ स्याज्ज्वालिनी सूर्येयुक्ता दग्धा चरविणो
दिग्गता । गम्या धूमवती ज्ञेया तिस्रो दीप्ता इमा दिशः ॥ ३ ॥ ताम्यः पचमिका याता
शातास्तिलः प्रकीर्तिताः । शेषं दिशाद्वयं मिश्र यथासन्नस्वभावक ॥ ४ ॥ विपुवत्संस्थिते सूर्ये
ज्वालिनी वासवी दिशा । दग्धाशा शाकरी ज्ञेया धूमिता पावकी मता ॥ ५ ॥ कर्काद्यष्टाने
सूर्ये ज्वालिनी शूलभृदिशा । दग्धा सोमदिशा ज्ञेया शक्राशा धूमिता तदा ॥ ६ ॥ मकरा-
द्यष्टके सूर्ये पावकी ज्वालिनी भवेत् । सहस्राद्यष्टदिश दग्धा यमाशा धूमिता भवेत् ॥ ७ ॥
वासराताष्टभागे च निशाद्यप्रहराष्टके । ज्वलत्यापि गता गम्या दग्धा धूमवती दिशा ॥ ८ ॥
अशुभाः स्यादंशो दीप्ताः शुभाः शाताः प्रकीर्तिताः । यदिशा द्विनयं मिश्र यथासन्नस्वभावक ॥ ९ ॥

यत् ॥ ९ ॥ ज्वलिताद्यष्टकांशानां प्रमाणार्थं भूगार्भ्यहं । सूर्यवारवशाच्चक्रं दिग्विशेषकद्वन्द्वं
 ॥ १० ॥ चतुरस्र भवेच्चक्रं मध्येऽष्टदिग्भिर्भेदनं । सप्त सप्त खिखेद्रेखास्तद्वाह्ये दिक्चतुष्टये
 ॥ ११ ॥ षष्ठे बाह्ये भवत्येवं समास्तत्र समन्विताः । भागा रेखातरादस्याश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः ।
 ॥ १२ ॥ दिक्प्राच्यां सप्तरेखास्तु स्थाप्या द्वादश राशयः । कर्कादिमिथुनातास्ता दक्षिणो-
 त्तरमार्गगाः ॥ १३ ॥ विषुः स्थानमध्यरेखाया तुलामेपाद्यवासे । भवेदीशानरेखातः कर्काद्यं
 दक्षिणायनं ॥ १४ ॥ भवत्याग्रेयरेखातो मकराद्युत्तरायणं । एवं तच्छेषरेखास्तु राशीना
 स्याद् द्विकं द्विकं ॥ १५ ॥ रेखा रेखांतराले च त्रिंशद्भागान् प्रकल्पयेत् । राशित्रिंशद्वि-
 भागास्ते चक्रदिशांगभोजकाः ॥ १६ ॥ भागेनवतिसंख्येस्तैर्दिगैकैका भवेदिह । तदर्द्धांशै-
 र्दिशांशैः स्यान्निर्माणं त्रिंशदंशकैः ॥ १७ ॥ कुम्भाङ्कं पश्चिमं मीनभेषवृषादिमंडलं । एवं
 प्राची नवत्यंशैर्मानावुत्तरचारिणि ॥ १८ ॥ वृषाङ्कं पश्चिमं कामकर्कसिंहादिमंडलं । एतैर्न-
 वतिसंख्यांशैर्जायते शाकरी दिशा ॥ १९ ॥ सिंहाङ्कं पश्चिमं कन्या तुल्ये वृश्चिकप्रगृदिशं ।
 पुनः प्राची भवत्येतैः सूर्ये दक्षिणचारिणि ॥ २० ॥ वृश्चिकस्त्यदलं चाप मृगे कुम्भा-
 दिमंडलं । दिग्गमेयी भवत्येतैर्भागेनवतिसंख्यकैः ॥ २१ ॥ एवं राशिचक्रात्तुपेन स्यात्
 त्रिंशदंशकैः । ततः पूर्वाशपृष्ठाशान् दहेत् पंचाब्धिसंख्यया ॥ २२ ॥ ज्वलत्पृष्ठाशपृष्ठस्था
 दग्धांशाः खाकसंख्यया । ज्वलत्पूर्वाशकाग्रस्था नवत्यंशाश्च भूमिताः ॥ २३ ॥ यद्दिने यत्र
 गश्यंशे विषुवादौ स्थितो भवेत् । उदयादि तद्दिशादि याति सव्येन भास्करः ॥ २४ ॥
 द्युरभिना तथा यामः कृत्वा पलमयं च तत् । नवत्यासपलैर्भुक्तिरेकैकाशस्य जायते
 ॥ २५ ॥ एवं यामवशाद् भानुयत्र काष्ठांशके स्थितः । तत्रोक्ताशकमानेन दिग् ज्वाला
 दग्धभूमिता ॥ २६ ॥ चक्रमध्ये भवेन्नेकः सूर्यस्तस्य प्रदक्षिणं । भूमावहर्निशं भुक्ते दिशौऽष्टौ
 प्रहराष्टके ॥ २७ ॥ अन्योन्यमार्गचारेण भानुर्याति दिने दिने । एवं भवति मार्गाणा-
 मशीत्या संयुतं युतं ॥ २८ ॥ तद्दिने मार्गतो गत्वा रविर्यस्यां दिशि स्थितः । तत् प्रभृति
 नामानि विज्ञेयानि दिशाष्टके ॥ २९ ॥ ज्वलिता भूमिता छाया जला कर्दमिता धरा ।
 पस्मांगारवती ज्ञेया सूर्ययुक्ता दिशा क्रमात् ॥ ३० ॥ वयो बंधः सुखं राज्यं लाभः हेमं
 भयं रुजः । ज्वलिताद्यास्तु, काष्ठास्तु फलं स्याच्छकुनोदये ॥ ३१ ॥ ज्वलितादिदिशैकैका
 त्रिधा ज्ञेया क्रमेण तु । तासां नामानि वक्ष्येऽहं चतुर्विंशतिसंख्यया ॥ ३२ ॥ ज्वलिता ज्वा-
 लिनी ज्वाला चैवं प्राज्वालिनी त्रिधा । संप्रसिता च धूमावा धूमिनी च त्रिधा परा
 ॥ ३३ ॥ छाया मिश्रा च शुभा च त्रिधा छाया दिशा मता । शीतला हेमकी चैव तुषारी
 च जला त्रिधा ॥ ३४ ॥ गडुला च कला पंका चेति कर्दमितात्रयं । सस्नेहा शाद्वला
 शेपा चैवं च त्रिविधा धरा ॥ ३५ ॥ रेणुश्च भस्म तापः स्यादिति भस्मान्वितात्रिकं । दग्ध-
 वाहा निदाही च चैवमंगारिणी त्रिधा ॥ ३६ ॥ चतुर्विंशति नामानि प्रोक्तानि च क्रमेण
 तु । एषक् एषक् फलं चासा वक्ष्यते शकुनोदये ॥ ३७ ॥ घातं मृत्यु रुज चैव वंशं हानिर्नि-
 भ्रमौ । मोहं चैव सुखं लाभं धनार्थं राजपमुन्नतं ॥ ३८ ॥ अभिषेकं तथा राजनगाद्

पुनसपद । स्त्रीलाभं भोगवृद्धिं च विदेशं निग्रहं तथा ॥ ३९ ॥ भगं चैव तथा काष्ठं सतापं
शोकमेव च । प्राप्नुवति रुमादेव शकुनान्मानवा फल ॥ ४० ॥ प्राक्तं यत्प्रहराष्टके रवि
दशादग्धादिकाकाष्ठकं तस्यैकैकदशास्त्रिधा क्रमवशाद्देदाश्चतुर्विंशतिः । तेषां नामनिदानं
भावजफलं विंदति ये शाकुने ते जानति फलस्य तस्य विवरं हालाहलं चामृतं ॥ ४१ ॥
इति द्विशामकरणं अथातरादवमेव ॥ ९ ॥

छायोरजध्वजसुभूरुहतोरणेषु क्षीरदुमांघ्रानिकटेषु मनोहरावर्णा ॥

प्राप्ताः प्रसन्नकलशाः शकुना यियासोरारामशालसुरभूकुलशांतदिक्षु १०

अथ वसंततिलकेन शुभस्थानेषु प्राप्तशकुनान् दर्शयति—छायेति ॥ छायाऽनातप
उरजं गृहं ध्वजं पताकां सुभूरुहं शुभवृक्षं तोरणं एषां वृद्धे एषु पुनः क्षीरदुमो राना
दनादि अबुजलं निकटे समीपदेशे एषु पुनर्मनोहरोवर्णा शुभभूमौ पुनः आराम उपवनं
शालो वृक्ष प्राकारश्च सुरकुलं चैत्यं भूकुलं नद्यादितटं जातदिशो ज्वलितदित्रयात् अन्य
दिशं शाता आसा वृद्धे तासु एतत्स्थानेषु प्राप्ता ल०या शकुना यियासोर्नरस्य प्रसन्नेन
हर्षेण कलेन मनोहरवस्त्रेन शं मुखं येभ्यस्ते प्रसन्नकलशाः स्युः ॥ १० ॥

भस्मास्थिशुष्कपतितद्रुमदग्धभिन्नक्षोणीरुहावकरकंटाकिविड्भ्रसासु ॥

आहुः सदा शकुनमार्यवरा निरर्थं व्यर्थं तथाप्यशकुना गमनं प्रकुर्युः ॥ ११

अथाशुभस्थानेषु लब्धशकुनं व्यर्थं दर्शयति—भस्मेति ॥ आर्यवरा शकुनिका बुधा
सदा शकुनं निरर्थं निष्फलमाहुः कासु भस्म रक्षा अस्थि शुष्क पतितश्च द्रुमः दग्धो
भिन्नो विदारितश्च क्षोणीरुहो वृक्ष अवकर कटकी वदर्यादिवृक्ष विड् विष्ठा रसा भूमि
एतासु तथाऽशकुना अपि गमनं व्यर्थं प्रकुर्युः ॥ ११ ॥

शांताश्रयो मिथुनतांडवभक्ष्यचंचुतारप्रयाणयम-

दिप्रववार्विलासाः ॥ वामस्वनच्छदविलाससुशाल-

रोहाः श्यामाविचेष्टितामिहाभिमुखीति स्म्यम् ॥ १२ ॥

अथ पोतकीशकुनमाह—शांतेति ॥ इह प्रयाणेऽभिमुखी श्यामा पोतकी दुर्गादेवी इति
नामांतराणि इति विचेष्टितं स्म्यं सिद्धं कार्यं गमिन इति शेषः । किंपूता श्यामा शांताश्रयो
शांता शुभा आश्रयाः स्थानानि यस्यां सा । यथोक्तं अथातरे 'प्रासादः पर्वतो हर्म्यं प्राकारो
मंदिरं मठः । यत्रिकायुक्तं यंत्रं प्रतोलो विद्यावेश्मकी ॥ सत्रागारं प्रपा गोष्ठं गोष्ठं नवगोमयं ॥
कोष्ठागारं गृहं कोशं टंकशास्त्रा घटीगृहं । इत्यादि स्त्रीरुष्टाविंशत्याधिकशतं मितानि
शांतस्थानानि उक्तानि । शुभस्थानमिता इत्यर्थः । अथवा शांतदिगाग्रितां स्त्रीष्टायेनेत्यपि श
०दार्थः । पुनः किंपूता श्यामाविचेष्टिता मिथुनेन मिथुनं दपत्योर्द्ध्वं तांडवं नर्तनं भक्ष्यं चंचुर्मु
श्चपंचु तारं शुभनादं 'तारोऽयुच्चैर्न' इति हैमः । प्रयाणयमादिगुरवः प्रयागात्

दक्षिणदिशि शब्दः वर्जुजलेषु विलासः क्रीडनं एताः चेष्टा यस्याः सा समासे समग्रपदं पुनः किंभूतं । इयामाचेष्टितं वामेति वामे भागे स्वनः अथवा वामो मनोहरः स्वनः शब्दः यस्याः हृदेषु पर्णेषु विलासः क्रीडा यस्याः सा सुशाले शुनवृत्ते रोहः आरोहणं यस्याः सा समासे समग्रपदं । अथवा इति इयामाचेष्टितं शुभमिति किं शांताश्रयमित्यादि शांताश्रयो मिथुनेति वामस्वन इति च पाठोपि शुभः । यतः ' उत्साहसन्मुखत्वं च सन्मुखं शुभवीक्षणं । उत्कुल्यास्पमसन्नत्वं रोमाचोन्नतनं धृतिः ॥ १ ॥ औदार्यं स्थिरता धैर्यं प्रकटत्वं सकामता । उद्यमः सेखनं प्रीतिरुच्चाश्रयमुनादता ॥ २ ॥ एभिरष्टादशैर्भेदैर्भावः शातोऽभिधीयते ' इति ग्रंथांतरेष्युक्तं ॥ १२ ॥

अतोऽन्यथा चेष्टितमीप्सितापहं दुर्गाकृतं यायिनि पुंसि संततं ॥

समस्तयानेष्वपि शाकुनं नयं प्रद्रष्टुमर्हं गमकामसिद्धये ॥ १३ ॥

अथ इयामादुश्रेष्टितमशुभं दर्शयति—अतश्चेति ॥ उक्तचेष्टितात् अन्यथा विपरीतचेष्टितं दुर्गाकृतं संततं सदा ईप्सितापहमभिन्नवितषातकं भवति कस्मिन् यायिनि गमनशीले पुंसि यतः ' पराङ्मुखत्वं संकोचो मुखबंधोऽथ ईक्षणं वैकल्यं सैन्यता निद्रानाश्रयासौ विचेष्टिता ॥ १ ॥ वियोगो विस्मयश्च च नीचस्थानाश्रमस्थिता । अधःपातोऽगभंगश्च कंपनं धुननं व्रयं ॥ २ ॥ एभिरष्टादशैर्भेदैर्भावो दीप्तोऽभिधीयते । दुष्टोऽसौ शौभने कार्ये दीप्ते दीप्तविनाशकः ॥ ३ ॥ इति शाकुननिर्णयं शाकुनं नयं समस्तयाने सर्वप्रयाणे प्रद्रष्टुमर्हं योग्यं स्यात् । किमर्थं गमकामसिद्धये गमनकार्यफलप्राप्ते ॥ १३ ॥

प्राणायामान्न पंचस्मरन्ना यायादाप्ते शाकुने

वै विरुद्धे ॥ दि१०द्मान्कृत्वैवं द्वितिये तृतीये

घट्ट १५ प्रख्यान्नो चतुर्थे गमः स्यात् ॥ १४ ॥

अथ शाङ्गिन्या गमनसमये दुष्टे शाकुने जाते यत्कर्तव्यं तदाह—प्राणेति ॥ वै पादपूर्तौ तत्र गमने ना पुमान् विरुद्धे दुष्टे शाकुने आप्ते जाते सति पंचप्राणायामान् श्वासोच्छ्वासरोधनानि स्मरन् यायात् गच्छेत् । प्राणायामस्तु यतः ' दक्षिणे रेचयेद् वायुं वामेन पूरितोदरं । कुम्भेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं त्रिदुर्बुधाः ' ॥ १ ॥ इति ॥ अतर्गतेष्टदेवभावना इत्यर्थः । एव द्वितिये वारे गमने विरुद्धे शाकुने सति दिङ्मान् दशसंख्यान् प्राणायामान् कृत्वा गच्छेत् । एव तृतीये वारे षष्ठप्रख्यान् पंचदशसंख्यान् कृत्वा गच्छेत् । एव चतुर्थे वारे विरुद्धे शाकुने गमः प्रयाणं न स्यात् ॥ १४ ॥

उल्कापातोपप्लवस्फूर्जथुस्त्वे धाराकंपे गर्जितेऽकालजेऽब्दे ॥

शंपापाते वैकृतेऽगादिभूते पक्षं हित्वाऽतो महद्यानमाहुः ॥ १५ ॥

अथोत्पातादौ प्रयाणविलंबं दर्शयति—उल्केति ॥ आर्याः ॥ अत उत्पत्तात् पक्षं
हित्वा त्यक्त्वा महधानं वृद्धप्रयाणमाहुः कथयन्ति । कस्मिन् सति उल्कापात आकाशात्
ज्वालापतनं उपप्लव उपरागः स्फूर्जथुर्वज्जनिर्घोषः 'अतिभीः स्फूर्जथुर्वनिः' इति हेमः ॥
अकस्मात् त्वे महाशब्दो जायते स स्फूर्जथुः स्मृतः एषां भावे तत्प्रत्ययस्तस्मिन् पुन
'धारा'रूपे भक्पने पुनरकालनेष्टे मेघे गर्जिते सति पुनः शोषापाते विद्युत्पाते 'चलाशपाजि
प्रभा' इति 'हेमः । पुनरगादिभूते वृत्तादिभूते वैकुण्ठे विकृतिभावं प्राप्ते सति ॥ १५ ॥

गमो विवाहाननमंगलागमे न स्यात्समाशोचनकालसंभवे ॥

समागतैः श्रोत्रियमित्रराजभिर्वा तन्निवृत्तौ क्रियते गमोद्यमः ॥ १६ ॥

अथोपजात्या 'इष्टादिवस्तुनि समागते प्रयाणविलंबं दर्शयति—गमइति ॥ गमः प्रयाण न
स्यात् कस्मिन् विवाहाननमंगलागमे उद्वाहमुखमंगलकार्ये समागते पुनः समाशोचनकालसंभवे
सूतकसमये प्राप्ते सति पुनः कैः श्रोत्रियमित्रराजभिः छादसमित्रनृपैः समागतेरायातैर्वा कृत्वेवि
वन्निवृत्तौ मंगलादिसपूर्व श्रोत्रियादित्वस्थानगते गमोद्यमः क्रियते पुसेति शारः ॥ १६ ॥

हरित्यसौ केतुरुदेति यस्यामियादिलार्योऽरिजयाय तस्या ॥

न तूदयद्वादशधिष्ण्यकाले पुच्छभ्रमाशं गमनं तथैव ॥ १७ ॥

आधोदितरेतुदिशि प्रयाणविलंबं दर्शयति—हरित्येति ॥ यस्या हरिणि दिशि असौ
केतुरुदेति तस्या दिशि असौ इष्टार्यो भगो न इयान्न गच्छेत् । वस्यै अरिजयाय कस्मिन्
सति उदयद्वादशधिष्ण्यकाले केतोरुदयादिरूपे द्वादशधिष्ण्यकात्, द्वादशराशिनात्
कोऽर्थः । केतुः पुनराशितः सप्तभिश्च निनः त्रयचके च दशरिचर्चनं यावत्तस्मिन् तु पुनः
पुच्छभ्रमाशं पुच्छभ्रमणदिग्गतं गमनं तथैव तात्पर्यात् न स्यात् ॥ १७ ॥

सुशुद्धिलब्धिर्गमवासरे यदा गंतुं न शक्नोति यथादशावशान् ॥

प्रस्थानयानं प्रवसेद्विधाय राद् मध्यमद्रं फलसिद्धिहेतुमत् ॥ १८ ॥

अथ प्रस्थानमोचनं दर्शयति—सुशुद्धीति ॥ यदा य राद् नृप शुद्धिः सत्या गम
वासरे प्रयाणदिने गंतुं न शक्नोति तस्मात् यथादशावशान् यथाप्रस्थानवशान्
नृपः प्रस्थानस्य यानं प्रयाणं विधाय प्रस्थानयानं विधाय प्रस्थानं कृत्वा प्रवसेत् । अधिकमात्रं
शुद्धं तिष्ठेत्त्यर्थः । निभूतं प्रस्थानयानं मध्यमद्रं मध्ये यद्वा राद्याय यस्य राः
पुनः निभूतं फलसिद्धिहेतुमत् पुनः प्रवश्यम् ॥ १८ ॥

बृहद्गमे चापशतावधेर्विदुर्धनुःशतार्धात्तु समे निजस्थितेः ॥

प्रस्थानमूर्ध्वं विबुधा वरं मितेऽष्टपंचविंशत्यवधेः स्वयं कृतम् ॥ १९ ॥

अथ प्रस्थानमोचने मर्यादानाह—बृहद्गमइति ॥ विबुधाः पंडिताः बृहद्गमे चापशतावधेः
नृपः शतार्धपर्यन्तं प्रस्थानं वरं विदुः । एतत् तु पुनः समं प्रयाणे शतार्धपर्यन्तं प्रस्थानं

ऊर्ध्वं पुनर्मिते लघुप्रयाणेऽस्त्रपंचविंशत्यवधे पंचविंशतिधनुषोऽग्रे 'किंभूतं प्रस्थान स्वयं
कृतं आत्मना विहितं कस्याः सकाशात् निजस्थितेर्निजस्थानादृहादित्यर्थः ॥ १९ ॥

प्रस्थानयेद्वाहमिलिधिपोऽथवा हेति सपूगावरपुस्तकं द्विजः ॥

विडर्थयुक्तावरमन्यविद् सदा सशालिचैलं त्वपरैरादिकम् ॥ २० ॥

अथ नृपादीनां भिन्नप्रस्थानविधिं दर्शयति—प्रस्थानेति ॥ सदा इलाधिपो भूषो वाह
घोटकमथवा हेति शस्त्रं प्रस्थानयेत् प्रस्थानं कुर्यात् । करणे भिन्नत्ययांतः । द्विजो विप्रः
सपूगावरपुस्तके पूगफलयुक्तवस्त्रं पुस्तकं च प्रस्थानयेत् । विद् ५२५ अर्थयुक्तावरं द्रव्ययुक्तं
वस्त्रं प्रस्थानयेत् । अन्यविद् शूद्रः सशालियुक्तवस्त्रं प्रस्थानयेत् । तु पुनरपरे कारुका-
दयोऽंबरादिकं वस्त्रादिकं प्रस्थानयेत् ॥ २० ॥

प्रभूतभूपालकिरीटघृष्टपद्धराधिभूरश्वगजौ तु शैविरौ ॥

शालाधिपालः शिविरं बहिर्नयेद्यात्राद्युपादावधिगा शुभा स्थितिः ॥ २१ ॥

अथ नृपादीनां प्रयाणाविधिमाह—प्रभूतेति ॥ प्रभूतानां गृह्णा भूपालानां किरीटैर्मुकु-
टैर्घृष्टौ उत्तेजितौ पूजितौ पादौ यस्य ॥ चासौ धराविभूश्चक्रवर्ती अश्वगजौ बहिर्न-
येत् किंभूता अश्वगजौ शैवरो शिविरे पटमंडपात् भवोत्तु पुनः शालाधिपाले दुर्गाधिपः शिविरं
पटमंडपादिकं बहिर्नयेत् ॥ यात्रायाः प्रयाणस्य शुभं दिनं तस्य ॥ दशतुर्वागस्तदवधिगा तत्प्रा-
माणा स्थितिः शुभा स्यात् एकप्रहरमात्रमित्यर्थः ॥ २१ ॥

याता यायादालकाशा पुरोऽन्हि मध्याह्ने कामर्द्धये पोरुहूर्ती ॥

केनाशीमत्रापरान्हे निशीथे पाथोनाथाशामिवाशाधिनाथः ॥ २२ ॥

अथ शालिन्योत्तरादिषु प्रयाणवेलां दर्शयति—यातेति ॥ यत्र प्रयाणे याता पुमान्
पुरोऽन्हि पूर्वाह्णे कामर्द्धये कार्यमर्द्धये अलकाशा उत्तरा यायात् ॥ एव मध्याह्ने पोरुहूर्ती
पुरुहूर्तस्य द्रव्यस्य तां दिशः पुनरप्यपरान्हे केनाशी कीनाशस्य यमस्येयं दिग् तां पुनर्निशीथे
पाथोनाथो जलपतिर्वरुणस्तस्याशः पाथिना क इव आशाविनाथ इत्यथा निजनिजाशाधि-
नाथो निजां दिशं कार्यासिद्धये व्रजति ॥ २२ ॥

याने येन प्राश्यमुक्तं न युक्तं तारावाराशोदितं

यत्तदुग्रः ॥ तत्तत्प्राग्याशागते नुर्विगेवस्तस्मात्सम्य-

ग्वारदिक् प्राश्यमर्हम् ॥ २३ ॥

अथ प्रयाणे नक्षत्रप्राश्यं दूषयन् वारदिकप्राश्यं द्रव्ययति—यान इति ॥ याने प्रयाणे
येनाचार्येण यत् तारावाराशोदितं नक्षत्रवारकाष्टासु स्थितं प्राश्यं भक्ष्यमुक्तं भोक्तं तद्

न युक्त यतो नुः पुरुषस्य उग्रो महान् विरोधः स्यात् । किंभूतस्य नुः तत्तत्रसंज्ञोक्त वा-
रादिप्रोक्त च प्राश्य भुक्त्वा आशायां गतैर्गमनं यस्य स तस्येति । कथं विरोध उच्यते
यतो नक्षत्रप्राश्यमन्यदिति तस्मात् कारणात् सम्यग् वारदिक् प्राश्यमर्हं योग्यं स्यात् ॥ २३ ॥

मज्जिकाघारयुक् पायसं कांजिकं संशृतक्षीरमुत्ताभवं सद्दधि ॥

द्रागपक्वं पयः प्राश्य तैलोदनं गम्यतेऽर्कादिवारेषु धाराभृता ॥ २४ ॥

अथ स्वग्विण्यार्कादिवारेषु प्राश्यमाह—मज्जिकेति ॥ धाराभृता भूमेन द्राक्, क्षीर
गम्यते गमनं क्रियते किंत्वाऽर्कादिवारेषु मज्जिकाद्य प्राश्य भुक्त्वा यथा रविवारे म-
ज्जिका शिखरीणी ' शर्करादधिमरीचकर्पूरैर्लोमिश्रिता रसालाया तु मज्जिता ' इति हैम ॥ म-
ज्जिता इति शब्दप्रभेदः । मज्जिका तु वैद्यामरश्चेति ॥ सोमवारे आधारयुक् पायसं घृतयुक्तं
रमाद्य एषा समाहारैकत्वं भौमवारे वाजिकामारनालं बुधवारे संशृतक्षीरं पक्वं पयः शृत
शब्दोऽत्र श्राकं पाके इति धातोरदादेः । किंभूतं पयः उत्ताभवं गम्य ' उत्ताभमारोक्षिणी '
इति हैमः । गुरुवारे सद्दधि गम्य शुक्रवरेऽपक्वं पयः शनिवारे तैलोदनं तिळाद्य ॥ २४ ॥

कौशिकाशागमे प्राश्यमाज्यं भवेन्मंजु तैलोदनं शामिनीदिश्यनु ॥

मीनविस्त्रं पयःपालकाष्टागमे सौरिभेयीपयो राजराजस्य हि ॥ २५ ॥

अथ दिक्प्राश्यमाह—कौशिकेति ॥ कौशिक इद्र कौशिकाशागमे पूर्वस्या गमनं
आज्यं घृतं प्राश्य भक्ष्यं मंजु भवेत् । अनु पश्चात् शमनस्य यमस्येयं दिक् शामिनी तस्यो व-
शिणस्या तैलोदनं प्राश्य पुनः पयः पाष्टो नक्षत्रतिर्वरणस्तस्य वाष्टा तद्रूपेण मीनवि-
मस्यरूपिणं प्राश्य पुनः राजा गुह्यं ' यक्ष पुण्यननो राजा ' इति हैम ॥ तस्य राज-
स्वामी कुबेरस्तस्य दिशि उत्तरस्या सौरिभेयीपयो गोक्षीरं प्राश्यं भवेदिति हि युक्तार्थः ॥ २५ ॥

ऐन्द्रो समारुह्य गजं नराधिभृत्यादरं स्यदनमांतिर्गमिह ॥

तुरंगमं दिग्विजयाय वारुणीं नृयानकं हि प्रति नारवाहिनम् ॥ २६ ॥

अथोपजात्या दिग्गोभ्यानि बाह्यान्-याट्-ऐन्द्रोमिति ॥ अरं शीघ्रमिह गमे नराधिभृता ग-
समारुह्य ऐन्द्रो दिशः पूर्वामियान् गच्छेत् । एव स्यदनं यथा समारुह्य आतिर्गं दिशः दक्षिणं
गच्छेत् । तुरंगममथ समारुह्य वारुणीं पश्चिमां दिशः गच्छेत् । नृयानकं शिविकां समा-
नरवाहनस्य पुत्रस्य इयं दिग् नारवाहनी नामुत्तरां प्रति गच्छेत् ॥ २६ ॥

बृहद्रमोक्ते समयेऽबुभोदये सितदुमत्र्यन्धि विद्रूपणे भवेत् ॥

यानोत्तमैश्च सप्तवारुणैर्ग्रहेर्भीष्टैर्जलानमुत्तमम् ॥ २७ ॥

अथ नक्षत्राणां ज्ञानमाह—बृहद्रमोक्ते समये बृहद्रमयाणोक्तं नक्षत्रं
नक्षत्रयागमुत्तमं भवेत् । ४ अबुभोदये नक्षत्राणि पुनः भिन्नं शुक्रं इन्द्रं मरीचं

रेषामन्ति दिने किंभूते विदूषणे दूषणरहिते च पुनः कैरानोत्तमैः प्रयाणश्रेष्ठ-
भिः किंभूतैः यानोत्तमैः सवातवारुणैः नातः स्वाती वरुणस्येदं शतभिषक् आभ्यां
सहवर्तमानैः पुनः कैरभीष्टैर्ग्रहैर्जलस्येदं यानं उत्तमं श्रेष्ठं भवेत् ॥ २७ ॥

राजा नरः प्राकृतकोऽपि वा यो मानानुगो त्दृष्टमनाः प्रयायात् ॥

शुभांवरो भूषितभूषणांगो नयेदसौ याननयेन लक्ष्मीम् ॥ २८ ॥

अथ प्रयाणोत्सुक्येन सफलतां दर्शयति—राजेति ॥ यो राजा नरो वा प्राकृतकोऽपि
दृष्टमनाः प्रनोदितचित्तो मानानुगः सन्मानप्राप्तः सन् प्रयायाद्दृष्टेत् सोऽसौ राजा याननयेन
प्रयाणकरणेन नीत्या वा लक्ष्मीं संपदं नयेत् प्राप्नुयात् । किंभूतो राजा शुभांबरः पुनः किंभूतो
राजा भूषणभूषितांगः ॥ २८ ॥

गमं विमृश्येति करोति यो नरो दिगीश्वरानिष्टसुरात्रभश्चरान् ॥

स्मरन्प्रणम्यादिभुवो वरीकृतानुपैति राजाखिलयानसंपदम् ॥ २९ ॥

अथोपसंहारेण गमनसमयव्यवहारमाह—गममिति ॥ यो राजा इति पूर्वोक्तप्रयाण-
नीत्या विमृश्य विचार्य गमं गमन करोति किं कुर्वन् दिगीश्वरान् दिक्पालान् इष्टसुरान्
निजेष्टदेवान् नभश्चरान् ग्रहाश्च स्मरन् किंकृत्वा आदिभुवो विप्रान् वरीकृतान् दत्तदक्षिणान्
प्रणम्य स राजाऽखिलयानसंपदमुपैति प्राप्नोति ॥ २९ ॥

शुक्रशनोर्ज्ञेदुदिनेषु वारुणानिलश्रविष्ठेज्यमृदुस्थिरोद्धभिः ॥

याता विरिक्तान्यकुयोगविष्टिर्मेनृभाजि लग्ने गमनस्थलं विशेषत् ॥ ३० ॥

अथ प्रथमप्रयाणवासस्थानकमाह—गुर्विति ॥ गुरुः उशनाः शुक्रः शो बुधः मृदुः एषां
दिनेषु याता पुमान् नृमानलग्ने नैराक्षौ गमनस्थलं स्थेयस्थानं विशेषत् प्रविशेत् । कैः कृत्वा
वारुणं शतभिषक् अनिलं स्वाती श्रविष्ठा धनिष्ठा इज्यः पुष्यः मृदुसंज्ञमानि स्थिरसंज्ञोद्धनि
षा ईद्रे एतैः किंभूतैर्विरिक्तास्तिययः अन्यकुयोगाः विष्टिः अषावासी विगता येभ्य-
तानि तेः ॥ ३० ॥

स्थानं प्रविश्य क्रियते प्रवासिना ततोऽन्ययानं च चरोदये वरं ॥

सदन्दि चेदिक् समर्थेदुभीरुगे प्रवेकदिग्राशितमीशमंडले ॥ ३१ ॥

अथ गमनस्थलादग्रे अन्यप्रयाणशुद्धिमाह—स्थानमिति ॥ प्रवासिना पथिकेन पुंसा
यानं प्रविश्य ततः स्थानादवरं श्रेष्ठमन्ययानं इतरप्रयाण क्रियते कस्मिंश्चेद्यदि चरोदये
स्थले च पुनः सदन्दि शुभग्रहदिने किंभूते सदन्दि दिक् च समयश्च इंदुभीरुनेक्षत्रं च
तानि गच्छतीति उपस्थिते तस्मिन् पुनः किंभूते सदन्दि प्रवेकं प्रधानदिग्राशिम्या तमीश-
मंडलं चेद्विचर्य यस्मिंस्तत् सन्मुखोऽर्थं जप्त्वा येत्यादि 'अनुत्तरं प्राग्रहरं प्रवेकं' इति हेम. ॥ ३१ ॥

निजं पुरं याननिवर्तितो नरो जीवादिपंचद्युषु संविशेदसौ ॥

सवासवक्षिप्रमृदुध्रुवेष्वथ स्थिरोदये शुद्धलयात्यकंटके ॥ ३२ ॥

अथ पुनरायाते निजपुरप्रवेशमुहूर्तमाह—
आयातो नरोऽसौ निजं पुरं संविशेत् प्रविशेत् । कपु जीवादिपंचद्युषु गुरुशुक्रशनिरविचन्द्रवारो
किंभूतेषु सवासवेत्यादि वासव धनिष्ठा क्षिप्रमृदुध्रुवसप्तानि एभिः सहितेषु पुनः स्थिरोदये
स्थिरलग्ने किंभूते स्थिरोदये शुद्धलयात्यकंटके दूषणरहिता अष्टम ८ द्वादश १२ कटक
मासा १।४।७।१० यस्मिन् स तस्मिन् ॥ ३२ ॥

न द्वादशी पक्षतिदर्शः सप्तमी ऽरिक्ता ४।९।१४ तिरि-
क्ता ऽजदिनेष्वतत्र कृत् ॥ विविष्टियोगेषु पुरप्रवेशनं
त्ववामवामैः शकुनैर्विलोमगैः ॥ ३३ ॥

अथ पुरप्रवेशो दुष्टतिथ्यादीन् यज्यं पञ्चाह—
न द्वादशीति ॥ पुरप्रवेशनं अत्र कृत् दुष्ट
कृत् स्यात् शुभकृदित्यर्थः ॥ कपु द्वादशी पञ्चाति प्रतिपत् दशोऽनावासां सप्तमी रिक्ता
क्षिप्रय एताभ्योऽतिरिक्तेषु यजितेषु अजदिनेषु चाजदिनेषु किंभूतेष्वनदिनेषु वि-
विष्टियोगेषु विष्टिर्जितयोगेषु तु पुनरवामवामैरपसंयसव्ये शकुनैर्विलोमगैः कृत्वा अपश-
वामे दक्षिणामागे वामैः शुभैर्विलोमगैः शकुनैः 'तत्र शास्त्रं कुलं तत्र तत्र सिद्धौ पथक्रिया ।
तत्र सुखं नष्टं तत्र तत्र पवनसाधनं' ॥ १ ॥ इत्यनेकार्थः ॥ ३३ ॥

विधाय वामं शुमणि निवेशयेदवाममिदु हरिदाननसं ॥

'उतोदयर्क्षभ्रमणं तथा गमी सूर्यान्वयोऽस्तोदयशेलगं पुरा ॥ ३४ ॥

अथ सूर्यवशोऽन्नवृषस्य प्रवेशविधानमाह—
विधायेति ॥ उत चेत् गमी सूर्यान्वय
सूर्यवशो रात्राऽस्ति तदासौ पुरं निवेशयेत् प्रविशेत् । किंभूत्वा वामं शुमणि सूर्य
विधाय तथाऽवामं दक्षिणभागमिदु विधाय । किंभूत् सूर्यं हरिदाननसं पूर्वोदयदिक्षु राशिग
तथा उदयर्क्षभ्रमणं, उदयोऽन्नराशिस्तस्य भ्रमणगत कोऽर्थोऽष्टमराशित आरभ्य पञ्चमु
राशिषु वर्तमानोऽर्कः पूर्वोभिमुखगृहे प्रविशता वामो भवति । एव पञ्चमराशित आरभ्य
पञ्चमु राशिषु गतोऽर्को दक्षिणभागमुपे गृहे प्रविशता वामो भवति । द्वितीयात् त्वमु गत
पश्चिमाभिमुखे गृहे वामो भवति । एतादृश्यात् त्वमु गत उत्तराभिमुखे गृहे वामो भव
तीत्यर्थः । तथास्तोदयशे भ्रमणस्तान्नेदवाच्यं पुरमपि प्रविधाय प्रविशदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

भवत्यसौ चेदिति चन्द्रवज्र पुरस्तदावेननकेऽन्यथोदित ॥

दिने दिनेऽन्यथभूरुपति गत्र निर्गोद्वगी च निवेशानाद्वरम् ॥ ३५ ॥

अथ चन्द्रवज्राद्वरं स्य प्रवेशविधानमाह—
भवत्यसौ तदासौ रात्रा ॥ ३५ ॥ अत्रान्नं प्रवेश्येयमादिव पूर्वोक्तविधौ तेन विधिः । शुमणि

कृतोपयामोऽथ पुमान् गृहित्वं वृद्धापनादीपदिने समेति ॥

यथासतारायुति राजवीर्यं तमीमुखानंदितमेपलमे ॥ ९१ ॥

अथ दीपवृद्धापनमाह—कृत इति ॥ अथ कृतोपयामो विहितविवाहः पुमान् वृद्धापनात् दीपदिने दीपमालिकायां गृहित्वं गृहस्थाश्रमभावं समेति प्राप्नोति कस्मिन् यथासतारायु-
ति राजवीर्यं यथायोगप्राप्तनक्षत्रयोगचंद्रबले तमीमुखानंदितमेपलमे रजनीमुखसमृद्धमेपलमे
प्रमाणाश्विनांतदृशः दीपोत्सव इति भावः ॥ ९१ ॥

आदित्यदैत्यार्चितपादपुष्करौ हितौ तु नैत्यादिह हंसलीनगू ॥

खगोपरागो हरिः५गो हरिप्रियो दीपोत्सवस्त्रीगृहवेशने हितः ॥ ९२ ॥

अथ दीपोत्सवस्त्रीगृहवेशने गुर्वस्तादिकं निर्दोषमाह—आदित्येति ॥ आदित्यवधारणे
आदित्या देवाः दैत्या असुराः एभिरर्चितं पादपुष्करं पूजितं पादपंकजं ययोस्तौ गुरु-
शुक्रौ नैत्यादित्यत्वादिह दीपदिने हंसलीनगू हंसे सूर्ये सोमा गावः किरणा ययोस्तौ अस्त
गतावपि द्वितौ शुभौ स्थाता । खगोपरागः चंद्रसूर्यग्रहण इरोरंद्रस्य प्रियो गुरुर्हरिगः सिंह-
शिगो हितः शुभः स्यात् कस्मिन् दीपोत्सवस्त्रीगृहवेशने स्पष्टं ॥ ९२ ॥

दीपद्युवृद्धापनकृत्यसंभवो दैवाद्यदा स्याद्विपमे विवाहतः ॥

उक्तक्षणाद्याखिलकालभूपिते गोधूलिलग्नौ समयेऽपि तद्धितम् ॥ ९३ ॥

इति श्रीकविकाब्दिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे विवाहाध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

दैवादीपवृद्धापनाभावे वधूप्रवेशे विवेकमाह—दीपेति ॥ यदा दैवात् दीपद्युवृद्धापनकृ-
त्यसंभवो दीपने वृद्धापनकृतेरसंभवः स्यात्तदा विवाहतो विपमे समये वर्षे तत् वधूप्रवे-
शनं हितं शुभं स्यात् कस्मिन् उक्तक्षणाद्याखिलकालभूपिते एतादृशे गोधूलिकलमे सति
कोऽर्थः पोष्यशदिनानंतरं विपमवर्षे विपममासे विपमदिने च वधूप्रवेशः कार्यः पंचवर्षानंतरं
विपमवर्षादिनियमो नास्ति किंतु दोषरहिते काले वधूप्रवेशो विधेय इति ॥ ९३ ॥

इति भाष्यार्णिमाद्यप्यभावस्तत्त्वविचितायां श्रीमालेशस्तुतज्योतिर्विदाभरणस्य मुखो-

धिप्राया विवाहाध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

वस्त्रालंकारधारणाध्यायः ॥ १४ ॥

अथोपयामादनयोरनंतरं कालेऽशुकालकृतिधारणं युवे ॥

सद्रूपणे भृपणधारिणी प्रिया नृभूषणे दुपणदायिनी यतः ॥ १ ॥

अथ विवाहकरणानंतरं वस्त्रादिधारणशुद्धिर्वर्तते ऽनोश्चंकाराध्यायसंवागमाह—अथो इति ॥
अथानंतरं उपयामाद् विवाहानंतरमनयोर्वस्त्रधारणं शुकाच्छुभेयार्थं यद्रूपधारणं

निजं पुरं याननिवर्तितो नरो जीवादिपञ्चद्युषु संविशेदसौ ॥

सवासवक्षिप्रमृदुघ्रुष्वथ स्थिरोदये शुद्धलयात्यकटके ॥ ३२ ॥

अथ पुनरायाते निजपुरप्रवेशमुद्धर्तमाह—निति ॥ याननिवर्तित प्रयाण कृत्वा आयातो नरोऽसौ निजं पुरं सविशेत् प्रविशेत् । कपु जीवादिपञ्चद्युषु गुरुशुक्रशनिरविचन्द्रबोरेषु किंभूतेषु सवासवेत्यादि वासव घनिष्ठा क्षिप्रमृदुघ्रुवसज्ञानि एभिः सहितेषु पुनः स्थिरोदये स्थिरलग्ने किंभूते स्थिरोदये शुद्धलयात्यकटके दूषणरहिता अष्टम < द्वादश १२ कटक प्राया १।४।७।१० यस्मिन् स तस्मिन् ॥ ३२ ॥

न द्वादशी पक्षतिदर्श ३० सप्तमी ७ रिक्ता ४।९।१४ तिरि-
क्ताब्जदिनेष्वतंत्रकृत् ॥ विविष्टियोगेषु पुरप्रवेशनं
त्ववामवामैः शकुनैर्विलोमगैः ॥ ३३ ॥

अथ पुरप्रवेशे दुष्टतिथ्यादीन् वर्जयन्नाह—न द्वादशीति ॥ पुरप्रवेशनं अत्र कृत्वा तु क
कृत्वा स्यात् शुभकदायमे ॥ केषु द्वादशी पक्षति प्रतिपत् दशोऽमावासां सप्तमी रिक्ता
स्तिथय एताभ्योऽतिरिक्तपु यज्ञितपु अत्र दिनेषु चाद्रदिनेषु किंभूतेष्वनदिनेषु वि-
विष्टियोगेषु विष्टिश्रितयोगेषु तु पुनरवामवामैरपस्यस्यैवै शकुनैर्विलोमगैः कृत्वा अथवा
वामे दक्षिणमामे वामैः शुभैर्विलोमगैः शकुनैः 'पञ्च शास्त्रं कुलं तत्र तंत्रं सिद्धोपपत्तिः ।
तत्र सुखं नष्टं तत्र तत्र पवनसाधनं' ॥ १ ॥ इत्यनेकार्थः ॥ ३३ ॥

विधाय वामं शुभमणिं निवेशयेदवाममिदुं हरिदाननक्षं ॥

'उतोदयर्क्षभ्रमणं तथा गमी सूर्यान्वयोऽस्तोदयशेखरं पुरा ॥ ३४ ॥

अथ सूर्यवशोऽवगन्तव्यस्य प्रवेशविधानमाह—विधयेति ॥ उत चेत् गमी सूर्यान्वय
सूर्यवशो एवाऽस्ति तदासौ पुरं निवेशयेत् प्रविशेत् । किं कृत्वा वामं शुभमणिं सूर्य
विधाय तथाऽत्राम दक्षिणभागममिदुं विधाय । किंभूत सूर्य हरिदाननक्षं पूर्वदिशि राशिग
तथा उदयर्क्षभ्रमणं उदयो लत्रराशिस्तस्य भ्रमणगत कोऽर्थोऽष्टमराशित आरभ्य पञ्च
राशिषु वर्तमानोऽर्कः पूर्वदिशि मुखे गृहे प्रविशता वामो भवति । एवं पञ्चमराशित आरभ्य
पञ्चसु राशिषु गतोऽर्को दक्षिणदिशि मुखे गृहे प्रविशता वामो भवति । द्वितीयात् पञ्चसु गत
पञ्चमराशिषु गृहे वामो भवति । एकादशात् पञ्चसु गत उत्तराभिमुखे गृहे वामो भव
तीत्यर्थः । तथास्तोदयशेखरमस्तान्त्राचोदयाचत्रयं पुरमपि प्रविधाय प्रविशेदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

भवत्यसौ चेदिति चंद्रवंगज- पुरस्तदावेशनकेऽन्यथादितं ॥

दिने दिनेरान्वयभूरूपेति गङ्गा निशादुवर्गी च निवेशनाद्वारम् ॥ ३५ ॥

अथ चंद्रवशाद्वारं स्व निवेशयित्वा—भवतीति ॥ चेद्यादे जमा चंद्रवशात् रात्रि
भरति तदासौ रात्रा ॥ तथा आश्विनं प्रवेश्य योदिनं पूर्वदिशि निवेशेत् । शुभमणिं

नरेण सद्वा हरिणीदृशा भवेत् सितांगिरोविद्वद्युपु सर्वसिद्धिदम् ॥

लघुध्रुवत्वाष्टचतुष्कवासवादितेयपौष्पैर्धवलान्शुकं धृतम् ॥ ६ ॥

अथ श्वेतवस्त्रधारणशुद्धिमाह—नरेणेति ॥ नरेण भर्त्रा हरिणीदृशा स्त्रिया वा धवलान्-
शुकं श्वेतवस्त्रं सत् शुभं धृतं सर्वसिद्धिदं भवेत् केषु सितांगिरोविद्वद्युपु शुकशुकुचदिनेषु
पुनः कैः कृत्वा लघ्विति लघुभानि ध्रुवभानि त्वाष्टचतुष्कं चित्रास्वानांविशाखानुरावाः
वासवं धनिष्ठा आदितेयं पुनर्वसु पौष्णं रेवती एभिर्भरति ॥ ६ ॥

त्रिदशदोषविद्वक्षधनिष्ठयोरनिभपंचमनष्टरदोडुपु ॥

भवति शोणनिभांवरधारणं शुभतरं द्विजराजखगद्युपु ॥ ७ ॥

अथ रक्तवस्त्रधारणशुद्धिमाह—त्रिदशेति ॥ शोणनिभांवरधारणं रक्तवस्त्रधारणं शुभतरं
भवति केषु द्विजेति द्विजौ गुरुशुक्रौ राजानौ रविमौ ते च ते खगा ग्रहश्च तेषां द्युपु
दिनेषु पुनः केषु त्रिदशानां दोषविद्वौ वैद्यौ अश्विनीकुमारौ तयोः ऋतमश्विनी धनिष्ठा च
तयोः पुनरनिभपंचकं हस्तपंचकं नष्टरदः पूरा रेवती एतु उडुपु ॥ ७ ॥

ध्रुवलघुव्यसुरद्वयरेवतीवसुभनिर्जस्वार्द्धिकमंत्रिभिः ॥

विदिनजीवदिनैः परिधानतः कपिलपीतपटस्य शमश्नुते ॥ ८ ॥

अथ पीतरक्तपीतवस्त्रधारणशुद्धिमाह—ध्रुवेति ॥ मानसः कपिपटीतपटस्य पीतरक्तवस्त्रस्य
पीतवस्त्रस्य च परिधानतो धारणात् शं सुखमश्नुते प्राप्नोति कैः कृत्वा ध्रुवेति ध्रुवाणि
लघ्नि द्वे असुरभे इति द्वयमुरं मूलं पूर्वाषाढा 'द्विमु'मिति पाठे विशाखा दनि द्वयं रेवती
वसुभं धनिष्ठा निर्जस्वार्द्धिकश्चित्रा मंत्री पुष्यः एभिः पुनः विद्वद्वरा इतः सूर्यः नृचै-
गुरुः एषां दिनैः ॥ ८ ॥

त्रियमलीवसुभैनचतुष्टयादितिभदस्तयुगोडुपु धारयेत् ॥

अनुपलाशशित्युतिचीवरं तरणिजे तरणी तरुणी नरः ॥ ९ ॥

अथ नीलश्यामवस्त्रधारणे शुद्धिमाह—त्रियमलीति ॥ तरुणी युधनिरः पुमान् वा
अनुपलाशशित्युतिचीवरं नीलं श्यामं च वस्त्रं धारयेत् केषु त्रियमलीं व्रतणा यमशाना
समाहारे उत्तरात्रयं पूर्वात्रयमिति वसुभं धनिष्ठा ऐनचतुष्टयं हस्तचतुष्कं हस्तः चित्रा स्वती
विशालेति अदितिभं पुनर्वसु दस्तयुगं अश्विनी भरणी एनेषु पुनस्तारणिजे शनी तरणी सूर्य
च वारे ॥ ९ ॥

धवलचीवरधारणभेदजोडुपु शशानकवीज्यविदां दिनैः ॥

नयति पट्टकुलस्य कृतिव्रजो धृतिमपाणवति स्थिरभोदये ॥ १० ॥

अथ पट्टकुलधारणशुद्धिमाह—धवलति ॥ कृतिव्रजो बुधमूः पट्टकुलस्य नृने धारणं
नयति करोति केषु धवलति श्वेतवस्त्रधारणमश्विनी इन्द्रमृगशीर्षः अन्यो मिथुः शरणाः 'दः

मुवे कथयामि यतो हेतोः सदृशेण दोषयुक्ते काले समये भूषणधारिणी धृतभूषणा सती प्रिया स्त्री दृषणदायिनी स्यात् कस्मिन् नृभूषणे नररत्ने पतौ ॥ १ ॥

नृयोपितोर्भूषणचरधारणे विचारणीयं धवलच्छवेर्वलं ॥

नरस्य राशौ नियतं च जन्मनो विजन्मबोधस्य हि नामवर्णभे ॥ २ ॥

अथ वस्त्रभूषणधारणे चद्रवल वर्णयति—नृयोपितोरिति ॥ नृयोपितोर्वधूवरयो धवलच्छवेश्चद्रस्य बल विचारणीयं चिन् ॥ कस्मिन् भूषणचरधारणेऽलवाराणां वस्त्राणां धारणे च पुनर्नरस्य जन्मनो राशौ नियत निश्चित बल विचारणीयं विजन्मबोधस्याज्ञातजन्मनो नरस्य नामवर्णभे नामाक्षरराशौ बल नियत ॥ २ ॥

सर्वत्र भद्राखिलपातवैधृता विरुद्धयोगास्तिथिवारधिष्यजाः ॥

सदर्शरिक्तास्तिथयस्तथोचिता न चरनेपथ्यधृतौ चरोदयाः ॥ ३ ॥

अथ वस्त्रधृतौ भद्रादियोगास्त्यजति—सर्वभेति ॥ सर्वत्र सर्वदेशेषु भद्रा अखिल पाता क्रातिपात व्यतीपात ग्रहपात वैधृत एषा द्वे तथा तिथिवारधिष्यनास्तिथिवारन सत्रजाता एवविधा विरुद्धयोगा तथा सदर्शरिक्तायुक्तास्तिथयस्तथा चरोदयाश्चरलग्नानि एते समस्ताश्चरनेपथ्यधृतौ वस्त्रवेपधारणे नोचिता न योग्याः स्यु यत 'नेपथ्य स्याद्यवनिका रणभूमिप्रसाधन । रामादिव्यजको वेपो नटनेपथ्यमिष्यते ' ॥ ३ ॥

सितेज्यसोमेनदिनेषु नूतनं स्याच्चीरनिर्माणमलं सुलभे ॥

कुर्विदवेमाख्यतुरीयसंपलध्वानलादित्यमृदुस्वर्यभैः ॥ ४ ॥

अथ प्रथम वस्त्रोत्पादनशुद्धिमाह—सितेति ॥ अलमित्यवधारणे नूतन नवीन चर निर्माण वस्त्रोत्पादनकर्म स्यात् कस्मिन् सितेज्यसोमेनदिनेषु शुक्लशुक्लचद्रसूर्यदिनेषु पुन सुख पुन कै कृत्वा लघ्विति लघुनक्षत्राणि आनल रुतिका आदित्य पुनर्वसु मृदुसङ्गभानि स्व स्वर्गस्तस्यायं स्वामी इदंस्तस्य भज्येष्टा एभिर्नक्षत्रै किभूत चरानिर्माण कुर्विदस्तनुवाय वेमा रूपो वायश्च तुरी ताम्य माता कुर्विदवेमाख्यतुरीया तथाभूता सप्त समृद्धिरस्य तः तुरीयेति भवार्थेत्वीम ॥ ४ ॥

कुर्विदमुक्तक्रियमंशं सकृत् धोतं यदहं किल कृत्स्नमंगले ॥

धर्तुं तदेवाहतमादिकोविदैर्ज्ञेयं कुयोगोत्करदोषभूषितम् ॥ ५ ॥

अथोद्वाहावा सकृद्धोतवस्त्र परिधानयोग्यमाह—कुर्विदेति ॥ किलित्यवधारण यदव वस्त्र कुर्विदमुक्तक्रिय कुविदन मुक्ता क्रिया यस्मिंस्तत सकृद्धानमेकवारप्रक्षालितं स्यात् 'निपासु' इति भाषा तत् वस्त्र कृत्स्नमंगले समग्रमंगलकार्यं वर्तु परिधानाय अर्ह योग्य स्यात् आदिकोविदैस्तदेव वस्त्रमाहत द्वितीयादिवारप्रक्षालित उद्देश्यमात्र वा कुयोगोत्करदोषभूषितं ज्ञेय ॥ ५ ॥

नरेण सद्वा हरिणीदृशा भवेत् सितांगिरोविद्वद्युः सर्वसिद्धिदम् ॥

लघुध्रुवत्वाष्ट्रचतुष्कवासवादितेयपौष्पेर्ध्वलांगुलं धृतम् ॥ ६ ॥

अथ श्वेतवस्त्रधारणशुद्धिमाह—नरेणेति ॥ नरेण भर्त्रा हरिणोदृशा त्विषा वा ध्वला-
शुलं श्वेतवस्त्रं सत् शुभं धृतं सर्वसिद्धिदं भवेत् केपु सितांगिरोविद्वद्युः शुरुगुरुबुवादिनेषु
पुनः कैः कृत्वा लघ्विति लघुभानि ध्रुवभानि त्वाष्ट्रचतुष्क चित्रास्वातिविशाखानुरागाः
वासवं धनिष्ठा आदित्यं पुनर्वसु पौष्णं रेवती एभिर्मरिति ॥ ६ ॥

त्रिदशदोषविदक्षधनिष्ठयोरनिभपंचभनष्टरदोडुपु ॥

भवति शोणनिभावरधारणं शुभतरं द्विजराजखगद्युपु ॥ ७ ॥

अथ रक्तवस्त्रधारणशुद्धिमाह—त्रिदशेति ॥ शोणनिभावरधारणं रक्तवस्त्रधारणं शुभतरं
भवति केपु द्विनेति द्विजो गुरुशुक्रौ राजानौ रविर्भौमौ ते च ते खगा ग्रहश्च तेषां द्युपु
दिनेषु पुनः केपु त्रिदशानां दोषविदो वैद्यौ अश्विनीकुमारौ तयोः मूलमश्विनी धनिष्ठा च
तयोः पुनरनिभपंचकं हस्तपंचकं नष्टरदः पूषा रेवती एतु उडुपु ॥ ७ ॥

ध्रुवलघुव्यसुरद्वयरेवतीवसुभनिर्जस्वार्द्धिकमंत्रिभिः ॥

विदिनजीवदिनैः परिधानतः कपिलपीतपटस्य शमश्नुते ॥ ८ ॥

अथ पीतरक्तपीतवस्त्रधारणशुद्धिमाह—ध्रुवेति ॥ मानवः कपिपटपीतपटस्य पीतरक्तवस्त्रस्य
पीतवस्त्रस्य च परिधानतो धारणात् शं सुखमश्नुते प्राप्नोति कैः कृत्वा ध्रुवेति ध्रुवाणि
लघूनि द्वे असुरभे इति द्वयमुर मूलं पूर्वाषाढा 'द्विमुर'मिति पाठे विशाखा इति द्वय रेवती
वसुभं धनिष्ठा निर्जस्वार्द्धिकश्चित्रा मन्त्री पुष्यः एभिः पुनः विदूः बुधः इनः सूर्यः नचैः
शुरुः एषां दिनैः ॥ ८ ॥

त्रियमलीवसुभेनचतुष्टयादिति भद्रस्युगोडुपु धारयेत् ॥

अनुपलाशशितियुतिचीवरं तरणिजे तरणौ तरुणी नरः ॥ ९ ॥

अथ नीलश्यामवस्त्रधारणे शुद्धिमाह—त्रियमलीति ॥ तरुणी युवतिर्नरः पुमान् वा
अनुपलाशशितियुतिचीवरं नील श्यामं च वस्त्रं धारयेत् केपु त्रियमली त्रयणा यमशाना
समाहारे उत्तरात्रयं पूर्वात्रयमिति वसुभं धनिष्ठा एनचतुष्टयं हस्तचतुष्क हस्तः चित्रा स्वती
विशाखेति अदितिभं पुनर्वसु दस्युगं अश्विनी भरणी एतेषु पुनस्तारणिने शनौ तरणौ सूर्यः
च वारे ॥ ९ ॥

धवलचीवरधारणभेद्वजोडुपु शशीनकर्वाज्यविदां दिनैः ॥

नयति पट्टकुलस्य कृतिवजो धृतिमपापवति स्थिरभोदये ॥ १० ॥

अथ पट्टकुलधारणशुद्धिमाह—धवलेति ॥ रुतिवजो युधमनुजः पट्टकुलस्य धृतिं मारग
नयति करोति केपु धात्रेति श्वेतास्त्रधारणप्रयोगे इदुर्भुगधीनः अन्ये निभुः शरणाः ॥ १० ॥

वृत्ता शशी इनो रवि कवि शुक्र इज्यो गुरु विद् बुध एषा दिने पुन कस्मिन् अपावति
पापग्रहरहिते स्थिरभोदये स्थिरलग्ने ॥ १० ॥

कचिददारुणभोग्रभमिश्रभेरुडुभिरेव पटः कृमिजो धृतः ॥

दिनमणीज्यतमीशदिनेषु शं मनुभुवानुभुवामनुलभ्यते? ॥ ११ ॥

अथ कोशयवस्त्रधारणशुद्धिमाह—कचिदिनि ॥ नु वितर्के मनुभुवा नरेण कृमि
कृमिर्कोशोत्पटो धृतेऽनु पश्चात् भुवा भूषाणा श मुखं अनुलभ्यते प्राप्यते केरुडुमि
नेक्षत्रै किंभूतैरदारुणेति दारुणवज्ञानि उग्रमानि मिश्रभे द्वे एभिर्भैः रहितै पुन केपु दि
नमाणे सूर्य इज्यो गुरु तमे शश्वत् एषा दिने ॥ ११ ॥

शयचतुष्कवसूडयुगत्रयं त्रिदशसूडयुगाश्विनभांत्यभैः ॥

खरकरास्फुजिदैनिदिनेषु वै भवति लोमपटस्य धृतिः श्रियै ॥ १२ ॥

अथ कवत्रादिलोमपट्य रणशुद्धिमाह—शयेति ॥ वै पादपूर्ता लोमपटस्य धृति कवत्र
धारण स्थिरमाधारण वा श्रियै भवति कै शयचतुष्क हस्तचतुष्क वसूड
शनिष्ठा युगत्रयी पूर्वोत्तरत्रय त्रिदशसूडयुगं देवमातृयुग पुनर्वसु पुष्य अश्विनीभ अश्विन
रेवती एषा द्वे द्वे एभि पुन केपु खरकर सूर्य अस्तुजिच्छुक्र ऐनि शनि एषा दिने ॥ १२ ॥

क्षयाधिऽकेनेहसि भार्गवेज्ययोस्तंऽशुगुर्वोस्तु मिथस्तदोरुसोः ॥

दधाति योपिच्छयने तथामरे करे न दंतोद्भवत्तैमिच्छुडकम् ॥ १३ ॥

अथ क्षयाधिक दिकाले स्त्रीणा दतादिचूडरुधारण निषेधेति—शयेति ॥ योपिच्छु स्त्री करे
पागौ दतोद्भवकोर्मचूडक दतसवधिचूडकं कच्छासवधिचूडकं न दधाति नो विमार्त कस्मिन्
क्षयाधिकेऽनेहसि काले तथा भार्गवेज्ययो शुक्रगुर्वोस्तंऽस्तु गने तु पुनस्तथाशुगुर्वो सूर्यगी
प्यत्योर्मिथ परस्पर तदाक्रमो सतो धनुर्मीनस्ये सूर्य सिंहस्ये गुरा तथा अमरत्येद आमर
तस्मिन् शयने देवशयने चातुर्मास्ये इत्यर्थ ॥ १३ ॥

अकृप्यभूपांशुमदश्मशं चुरा मुक्ताकिक्कट्टिद्रुमदंतचुडकाः ॥

द्विजातिराजेषु पाणिपंचके सयासवांत्याश्विनभे श्रियै धृताः ॥ १४ ॥

अथ सुवर्णादिभणाना धारणशुद्धिमाह—अकृप्येति ॥ अकृप्यभूपादयो धृता श्रियै स्तु
अकृप्य हेमरू । रू । सावर्ण रूपा तन्मिश्रित भूषण अशुमदश्मा सूर्यहातमणि 'सूर्यहात
सूर्यमणि सूर्यशवा दहनोपल' इति शत्रु । 'शत्रुहास्तचुनात्रना' इति हय । शत्रुहा इति ।
मुक्ता मुक्ताफल अति रुन् अरीक इति भवा रक्तमणि विद्रुम प्रवाठ दंतचूडक एषा
द्वे द्वे एते केपु द्विजाना गुरुगुर्वो राजाना रविभौनी एषा दिनेषु पुन पाणिपंचके हस्तपंचके
विमं पाणिपंचके अमर रनिष्ठा अत्य रवनी अश्विनिर्भ एषा द्वे द्वे एभि सह वर्तमाने ॥ १४ ॥

मधेशमैशेनमृदुद्विनायकानिलांबुनाथाद्यभगर्क्षवासवैः ॥

गुरुद्वयेनद्वयवासरे करे दध्याद्वशा कौर्ममणेरलंकृतिम् ॥ १५ ॥

अथ कौर्मचूडधारणशुद्धिमाह—मंशेति ॥ वशा स्त्री करे पणौ कौर्ममणेः कच्छ-
पसंबधिरत्नचूडकस्यालंकृतिं भूषणं दध्यात् विभूयात् केः कृत्वा मधेशं अर्द्धां मैशं माया
लक्ष्म्या ईशो मेशस्तस्येदं श्रवणः इनो हस्तः मृदुमानि द्विनायकं विशाखा आनिलं स्वाती
अंबुनायो वरुणः शततारा आद्यमाश्विनी मगर्क्ष पूर्वाफाल्गुनी वासवं धनिष्ठा एषां द्वंद्वे एतैः
पुनः कस्मिन् गुरुद्वयेनद्वयवासरे गुरुद्वयं इनद्वयं चेति गुरुशुक्रसूयसार्मादिने ॥ १५ ॥

वाघ्रीणसं पारशवं च माधुकं धारैरुदाहारि विधानमादरात् ॥

वैदूर्यकं कौर्ममणित्रियोदिते धिष्ण्ये दिने वा कचिदंशुसंभवे ॥ १६ ॥

अथ खड्गपात्रादिकार्यशुद्धिमाह—वाघ्रीणसमिति ॥ धीरैः पंडितैर्वाघ्रीणसं खड्गपात्रादिकं
पारशवं लौहं पिंडं 'पारशवं धनं'मिति हैमः । माधुकं त्रपुसंबधि 'माधुकं त्रपु यद्विश्रुते' हैमाने-
कार्थः । वैदूर्यकं च विधानं कृत्यं वाघ्रीणसरयेदं विधानं कर्म इत्यण् एवं पारशवं माधुकं च
ज्ञेयं उदाहारि कथितमित्यर्थः । वस्मात् आदरात् कस्मिन् धिष्ण्ये नक्षत्रे दिने च किंभूते
धिष्ण्ये दिने च कौर्ममणित्रियोदिते कच्छपसंबधिवलयरत्नक्रियासु प्रोक्ते पुनः कचिदंशु-
संभवे शनौ दिने वा इति मतांतरं ॥ १६ ॥

अदारुणोग्रैरुडुभिस्त्वमिश्रार्येनराजद्युपु संगतेषु ॥

ससीसशुल्बादि च कर्म वारं सपञ्चरागादिसिते कचित्स्यात् ॥ १७ ॥

अथ ताम्रादिकर्माह—अदारुणेति ॥ ससीसशुल्बादि सीसपत्रकसहित ताम्रादिकर्म च पुनः
सपञ्चरागादि रक्तमणिप्रमुखसहितं कर्म वारं श्रेष्ठं स्यात् केरुडुभिः किंभूतैः अदारुणोग्रैस्ती-
क्ष्णकूर्मनक्षत्ररहितैः पुनः किंभूतैरमिश्रैः साधारणनक्षत्ररहितैः पुनः केषु आर्येनराजद्युपु
गुरुविषंब्रदिनेषु संगतेषु संयुक्तेषु तु पुनः कचित् सिते शुक्ले दिनेऽपि स्यात् ॥ १७ ॥

सशुभे ह्यचरोदयेऽपि केंद्रे वसनं धारितमातनोति धाम ॥

चरचापिवशाविसारलग्ने धृतमंजीरवशा विसारमेति ॥ १८ ॥

अथ मालभारिण्या वृत्तनूपरधारणे लग्नशुद्धिं दर्शयति—सशुभइति ॥ धारितं परिहृतं
वस्त्रं कर्तृपदं धाम तेज आतनोति विस्तारयति कस्मिन् सशुभे शुभग्रहयुक्ते ह्यचरोदये
कन्यास्थिरलग्ने सशुभे वैद्वंशेऽपि धृतमंजीरवशा चरणधृतनूपरा स्त्री विसारं शुभतरमेति प्राप्नोति
कस्मिन् चरोति चरलग्ने चापिनि धनुषि वशायां कन्यालग्ने विसरे मीनलग्ने ॥ १८ ॥

कटकांगदकर्णिकादिभूपारशनाहारभगाद्यलंकृतिः स्यात् ॥

हरिगोलिवशास्त्रियुग्मरलग्ने सति के खेच विपे श्रुतौ धृतेष्टा ॥ १९ ॥

अथ कटकाद्यलंकृतिधारणशुद्धिमाह—कटोति ॥ कटकाद्यलंकृतिधृता इष्टा स्यात्
कटको वलयं अंगदं केयूरं कर्णिका कर्णभूषणं इत्यादि भूषालंकारः रशना मेखला हार-

भरा मुक्ताफलादीना हारभेदा इत्याद्यलङ्कारितिरिति ॥ कस्मिन् हगिः सिंह गौर्वृष अलिर्वृश्चिक
वशा कन्या स्त्री धनु युग्म मिथुन एषा लग्ने च पुन के प्रथमभावे खे दशमे विषे जले
चतुर्थे श्रुतौ कर्ण तृतीये एकादशे सन् शुभग्रह तस्मिन् सति शुभग्रहयुक्तप्रथमा
दिभावे इत्यर्थ ॥ १९ ॥

गुरुभश्रुतिधीरवासवैशैरविदोरेंद्रपयोर्यधिष्ण्यपौष्णैः ॥

रविसत्सु विवित्सु पापमुक्ते मुकुटं मस्तकभोदये विदध्यात् ॥ २० ॥

अथ मुकुटधारणशुद्धिमाह—गुरुभेति ॥ सुधीर्मुकुटं विदध्यात् निभूयात् कै गुरुभेति
गुरुभ पुष्य श्रुति श्रवण धीरभानि ध्रुवभानि वासन धनिष्ठा ऐश्वर्यार्द्रा एभि पुन वै अधि
दोर्हस्त ऐंद्र ज्येष्ठा पयोरी वरुणस्तस्य धिष्ण्यं शततारा पौष्णा रेवती एभि पुन केषु रवि
सत्सु सूर्यशुभग्रहदिनेषु किंभूतेषु विवित्सु बुधराहेषु पुन कस्मिन् पापमुक्ते पापग्रहरहिते
मस्तकभोदये शिर्षोदयलग्ने ॥ २० ॥

लघुलोलमृदूग्रधन्ववाभैरलपन्सत्तद्युषु लग्नपुं विलभैः ॥

घनसारकुंगनाभिवर्णागुरुगोरोचनमालयादिकृत्यम् ॥ २१ ॥

अथ घनसारादिकृत्यशुद्धिमाह—छत्रिति ॥ सुधियो घनसारादिकृत्यमलपन् अकथ
यन् घनसार कर्पूर सुरगनाभि कस्तूरी वर्णो हिंगुलादि कुकुमादिर्वा अगुरु कृष्णागरु
गोरोचन प्रतीत मध्ये भवं मालय चदन इत्यादीना कृत्य मडनमिति वैर्दधु इति लघूनि
लोत्रानि च भानि मृदूनि उग्रग्रन्था इष्टो ज्येष्ठा 'पूतनापादुग्रधन्वा' इति हैम । वा जलं वज्र
पूर्वापादा एतै किंभूतैर्लग्नपुं विलभै आश्रितनरलग्नै पुन केषु सत्तद्युषु शुभग्रहदिनेषु ॥ २१ ॥

मचिरे दितिजन्मनां मघोनोऽमृतमालिन्यनु च प्रसूनकार्यं ॥

मृदुतिष्यमुरारिभत्रये स्याच्छ्रुतनर्क्षे नृदये च चंद्रदृष्टे ॥ २२ ॥

अथ कुसुमकार्यशुद्धिमाह—सचिवेति ॥ प्रसनकार्यं पुष्पकार्यं स्यात् कस्मिन् दिति-
जन्मना दैताना मचिवे शुक्रदिने न पुनर्मघोन इष्टस्य सचिवे गुरुदिनेऽनु पश्चाच्चामृतमा
ल्लिनि अमृतं मालयति धरते इति मलधारणे धातो प्रयोगत्वात् तस्मिन् अमृतधारिणि
द्वे दिने पुनर्मृदूनि तिष्य पुष्य मुरारिर्विष्णुस्तद्भद्रत्रय श्रवणत्रय पुन श्रवसर्क्षे स्वातोभे
तु पुनश्चंद्रदृष्टे चद्रेण विलोकिते नृदये नरलग्ने ॥ २२ ॥

लघुधीरवसृडुपुष्यपौष्णैः सुखर्द्धक्यनिलोडुदासर्मत्रैः ॥

सदहस्सु विवित्सु देहदुर्गः परिधेयोऽचरभोदये सुदेंद्रे ॥ २३ ॥

अथ वचनादिधारणशुद्धिमाह—लघुधीरेति ॥ देहदुर्गं सच्चाह परिधेय परिचार्य
मुभयैरिति शय कलेगुनि धीराणि वसृडु धनिष्ठा पुष्य पौष्णा रेवती एषा द्वे एभि पुन
वै सुखर्द्धकिश्चिन्ना अनिलोडु स्वाती दाक्षमन्विनी भैरवमुरारि एषा द्वे एभि पुन केषु

सदहस्म शुभग्रहवासरेषु विवित्सु किंभूतेषु बुधराहितेषु पुनः कस्मिन् अचरभोदये स्थिरलभोदये
किंभूते अचरभोदये सुकेंद्रे शुभग्रहयुक्तकेंद्रे ॥ २३ ॥

काचकाचमणिकज्जलक्रिया भानुभानुजभृगुप्रसूतिषु

वातवासवमृदुद्विदैवतैरादितारकयुतैः प्रशस्यते ॥ २४ ॥

अथ काचादिकार्यशुद्धिमाह—काचेति ॥ काचः काचमणयः काचमणिकाः कज्जलं
एषां क्रिया प्रशस्यते प्रशंसनीया केषु स्यात् भानुः भानुजः शनिः भृगुप्रसूतिः शुक्रः एषां दिनेषु
पुनः कैः वातः स्वाती वासवं धनिष्ठा मृदूनि द्विदैवतं विशाखा एषा द्वेदे एतैः किंभूतैः
आदितारकयुतैः स्पष्टं ॥ २४ ॥

व्यातकाग्रमृदुमिश्रदारुणैर्भास्करैर्दुभवभास्करद्युभिः ॥

चर्मकर्म कलितं द्युपानहौ धारिते विदधतोऽतिशं विशाम् ॥ २५ ॥

अथ चर्मकर्मशुद्धिमाह—व्यातेति ॥ हि अवधारणे चर्मकर्म विदधतः कुर्वतः चर्मकारस्य
अध्या विदधतः कुर्वणात् तु पुनः धारिते उपानहौ विशा मनुष्याणां अतिशं महत्सुखं कलितं
प्रोक्तं कैवर्त्यतिकां नि भ्रष्टांरहितानि उग्रमानि मृदूनि मिश्रे द्वे दारुणानि एषा द्वेदे एतैः
पुनः कैः भास्करैः शनिः इंदुभवो बुधः भास्करः सूर्यः एषा दिनेः ॥ २५ ॥

भूपदत्तमुपयामवासरे स्नेहिलब्धमचलामराज्ञया ॥

सिद्धवाक्यवशतः शमंवरं धारितं तु तनुतेऽखभूषणम् ॥ २६ ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे वत्सालकरणपरिधानाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

अथ भूपादिभ्यो लब्धवत्त्वादीनां तत्कालधारणमाह—भूपेति ॥ हि अवधारणे अंवरं वस्त्रं
तु पुनरत्रभूषणं शस्त्रं भूषणं च कर्तृपदं शं सुखं तनुते किंभूत अचरादिकं अचलामराज्ञया
विप्रदेशेन सिद्धवाक्यवशतो महस्यादेशात् धारितं कस्मिन् अभे नक्षत्रादियोगरहितेऽपि सति
पुनः किंभूतं अंवरं भूपदत्तं राज्ञा प्रदत्तं पुनः उपयामवासरे लब्धं स्वमनेनार्पितं स्नेहिलब्धानि-
त्यपि पाठः स्नेहितः प्राप्तः ॥ २६ ॥

इति श्रीपौर्णमीयशिल्प्यभावरत्नविरचिताया श्रीकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य प्रसन्नोपनिषाया

वत्सालकरणपरिधानाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

कस्मिंश्चित्समये नृपस्य सदसि श्रीविक्रमार्कस्य यो

विद्वद्भिः परिपूरिते च मुनैर्दक्षिणं सद्गोषा जगौ ॥

दैवज्ञस्य ततो वराहमिहिरस्यानेन मूर्खोक्तो

न ज्ञोऽस्यामिति कालिदासकविना दुर्बोधशास्त्रं कृतम् ॥ २ ॥

व्याख्या श्रीविक्रमार्कसभाया श्रीकालिदासेन वराहमिहिरवृत्तशास्त्रे दृश्यं दत्तं ततस्तेनापी मूर्ख इति
अपि यतोऽस्मदुक्तौ त्वमज्ञोऽसि ज्योतिर्मागत्वात् ततः कालिदासेनापि तन्मदावहरणाय इदं शास्त्रं
कृतमिति ॥

अत्रायमन्वयः प्रतिभाति—व्यातकाग्रमृदुमिश्रदारुणैः भास्करैर्दुभवभास्करद्युभिः चर्मकर्म कलितं हि
धारिते उपानहौ तदा अतिशं विदधतः कुर्वत इत्यर्थः ॥

प्राकाराध्यायः १५

दुर्गं विना नैव हि निर्भयं पुरं पुरे स्वराशिस्थलम् गृहं वरं ॥

क्रमादहं शालपुरौकसामतो वक्ष्यामि तावत् घटनाभिर्निर्णयं ॥१॥

अथालंकाराध्यायकथनानंतरं भूषणादि सुस्थानं विना विनश्यति अतः प्राकाराध्यायसंधानमाह—दुर्गमिति ॥ हि युक्तार्थे दुर्गं कोटं विना दुर्गं शत्रुभिर्दुष्प्राप्यं नैव स्यात् ॥ यतः 'यस्याश्रयबलेनैव राज्यं कुर्वति भूतले । विग्रहं चतुराशो भीमान्तैः शत्रुभिः सह ॥ १ ॥ विषमं दुर्गम् घोरं वर्कं भीरुमयावह । कपिशिर्विश्र शोभ रौद्रादालकमदितं ॥ २ ॥ प्रतोली पत्रकालास्या परिखा कालरूपिणी । रणमंडपकृता विकुलीपत्रयात्रित ॥ ३ ॥ मुशलैर्धुरैः पाशैः कुंतलद्वैर्धनुःशरैः ॥ सयुक्तं सुभटैः शूरैरिति निवेशयेत् ॥ ४ ॥ प्रथमं मृगमयं कोटं जलकोटं द्वितीयकं । तृतीयं ग्रामकोटं च चतुर्थं मि गंधहरं ॥ ५ ॥ पञ्चमं पर्वतारोहं षष्ठ कोटं च डावरं । सप्तमं बक्रभूमिस्थं विषया तथापरं ॥ ६ ॥ इति पुरे नगरे स्वराशिस्थलग निजराश्युचितस्थानमितं गृहं वरं स्यात् । हेतोस्तावत्प्रथमं क्रमाक्रमेणाह शालपुरौकसा प्राकारनगरगृहाणा घटनया रचनया अभिनि वक्ष्यामि कथयिष्यामि ॥ १ ॥

नगेंद्रशालोऽस्त्यनुवारिशालो भूशालको गन्धरशाल एषां

नगांबुशालावतिदुर्गमौ स्तो मध्याधमौ गन्धरभूमिशालौ ॥

अथ प्रथम पर्वतादिस्थानगतशालभेदानाह—नगेति ॥ नगेंद्रशालः पर्वतोपरि वप्रोः अनुवारिशालो जलमध्यगतोऽस्ति पुनर्भूशालो भूमिप्रतिष्ठितोऽस्ति पुनर्गन्धरशालो विलप्रतिष्ठितो वा 'विले तु गन्धर गुहा' इति हैम ॥ इत्यादिति चतुर्थे एषा वप्राणा मध्ये न शालौ पर्वतजलरथौ वप्रौ अतिदुर्गमौ गृहीतुमशक्यौ स्तः भवतः गन्धरभूमिशालौ प्र मध्याधमौ भवतः गन्धरशालो गृहीतुं शक्याशक्य भूमिशालो गृहीतुं शक्य इत्यर्थः ॥ शिलामयश्चोत्तम इष्टिकामयो मध्योऽधमो मृदाचितोऽत्र दारवः ॥ शालः सुधीभिस्त्वधमाधमाभिधः प्रभापितः सन् विबलोप्यसौ बली

अपैतानेव पाषाणादिनिर्मितं नुत्तममध्यमाधमानाह—शिलेति ॥ सुधीभिः शिल एषैर्निर्मितो वप्र उत्तमः श्रेष्ठ प्रभापितः । च पुनरिष्टिकामयो मध्यो मध्यमः पुनर्मृद मृत्तिकामयोऽधमो नेष्टः पुनर्दारवः काष्ठमयस्त्वधमाधमोऽधमनम इति अमौ विबलोऽपि असमर्थोऽपि सन् बलि बलीष्ठः स्यात्तत्कारणमाह ॥ ३ ॥

अनेकयंत्रास्त्रनिकायसज्जितो भटाचितो धान्यरसादिप्रसृतः ॥

स दुर्गमस्तुच्छबलोऽपि शालको भवेदसौ मंडलरक्षणक्षमः ॥

अनेकेति ॥ सोऽसौ तुच्छबलोऽपि स्तोकसैन्योऽपि शालको दुर्गमः सन् मंडलरक्षणक्षमः ॥ सोऽसौ तुच्छबलोऽपि स्तोकसैन्योऽपि शालको दुर्गमः सन् मंडलरक्षणक्षमः ॥ सोऽसौ तुच्छबलोऽपि स्तोकसैन्योऽपि शालको दुर्गमः सन् मंडलरक्षणक्षमः ॥

समूहस्तेन सज्जितः उद्गदीरुतः पुनः किंभूतः शालः भटाचितः सुभैय्यातः पुनः किंभूतः शालः
धान्यरसादिपूरितः धान्यघृततैलतृणकाष्ठादिभिः पूर्णः ॥ ४ ॥

नृवाहनाशायनवर्तिनीने शालो विधेयोऽश्मभिरिष्टकाभिः

इहैव मार्गे त्विपकोर्जयोर्वा मृत्स्नामयोऽन्योऽनु च सर्वकाले ॥ ५ ॥

अथ कोटकरणकालमाह—नृवाहनेति ॥ अश्मभिः पाषाणैः शालो विधेयः कर्तव्यः कऽप-
वा-इष्टकाभिः शालो विधेयो वा मृत्स्नामयः शुभमृण्मयः शालो विधेयः कस्मिन् इह नृवाहने
धनदस्तस्पाशा उत्तरा तस्यामयनवर्तिनि उत्तरायणयुक्ते इने सूर्ये सति पुनः कस्मिन् मार्ग-
शीर्षे तु पुनः कपोरिपकोर्जयोः आश्विनकार्तिकयोः अनु पश्चाच्च पुनस्तयो दार्ढ्यादिमयः शालः
सर्वकाले विधेयः ॥ ५ ॥

न द्विस्वभावे ३।६।९।१२। तरणौ प्रतिष्ठांमितेऽगिरस्यास्फुजिती दुर्विधे ॥

दौर्ग्यं समारंभणमाहुरार्या दुष्टैश्च पाकेशकुजांशुसोमैः ॥ ६ ॥

अथ द्विस्वभावराश्यादौ शालप्रारम्भं निषेधति—न द्विस्वभावेति ॥ आर्या आचार्या दौर्ग्य-
दुर्गस्य शालस्येदं समारंभं उपक्रमणं नाहुः नोचुः कस्मिन् द्विस्वभावे द्विस्वभावराशौ ३।६।९।१२-
तरणौ सूर्ये सति पुनः अंगिरसि गुरौ आस्फुजिति शुके चन्द्रविधे प्रतिष्ठांस्ततामिते गुरुशुक्र-
धन्वास्ते सति च पुनः पाकेशो महादशास्वामी कुनो मौमः अंगुः सूर्यः सोम इन्दुः एषां द्वेष्टैः
किंभूतैर्दुष्टैः दुष्टभावप्रामैः ॥ ६ ॥

मार्गात्तमः शक्रदिशि त्रयेऽतिमाद्याभ्यां पस्यामनुशुक्रतोऽस्त्यदिक्र ॥

नभस्यतः शालविधानकादरोऽस्थ्याभिवक्त्रे न विधंतुदे भवेत् ॥ ७ ॥

अथ मार्गादीनां त्रये राहुनिवासस्थाने वदन् सन्मुखं निषेधति—मार्गादिति ॥ मार्गात्
शक्रशीर्षात् त्रये मार्गादिमासत्रये शक्रदिशि पूर्वस्थां तमो राहुर्भवति । पुनरतिमात् काल-
नात् त्रये माभ्यां दक्षिणस्थां तमो भवति । अनु पश्चात् शुक्रतो ज्येष्ठमासात् त्रये पारस्य-
पश्चिमायां तमो भवति । पुनर्नभस्यतो भाद्रपदात् त्रये उदक् उत्तरस्थां तमोऽस्ति । एतत्कारण-
माह शालविधानकादरो वपकार्योऽयमो न भवेत् कस्मिन् स्थ्याभिवक्त्रे प्रतोलीसन्मुखे विधंतुदे
राहौ सति ॥ ७ ॥

भद्रा त्वभद्रातिभयाय रिक्ता ४।९।१४। दर्शः समारंभितदुर्गकाले ॥

सौम्यारवारौ विडलाडलाद्या कुयोगताऽसद्वत्तशालतारा ॥ ८ ॥

अथ शालप्रारंभे कुनिष्ठिचारयोगं निषेधति—भद्रेति ॥ समारंभितशालकाले प्रारंभित-
वरणसमये भद्रा भद्रासंज्ञा तिथिः च पुनर्भद्रा विष्टिः पुनः रिक्तातिथिः दर्शोऽमावासी पुनः
सौम्यारवारौ बुधभीमवारौ पुनर्विडयडलाद्या कुयोगता पुनरसद्वत्तशालतारा असदिः पापप्रदे-
स्ता विद्वमुक्तभीमयुक्ता शालतारा प्रकारप्रारंभनसत्रनतिमयां स्यात् एते नेष्टा इत्यर्थः ॥ ८ ॥

औमेश मेशेनमृदुधुवेज्यप्राभंजनांभोर्यमवासवेपु ॥

नृभोदये पापरिषोऽसुकेंद्रे प्राकारकोपक्रममाहुरार्याः ॥ ९ ॥

अथ नक्षत्रादिशुद्धौ प्राकारप्रारंभणमाह—ओमेति ॥ आर्याः प्राकारस्य वरणस्य उपक्रम प्रारंभमाहुः केषु उमाथाः पार्वत्या ईश उमेशस्तस्येदमार्द्रा माया ईशो मेशस्तस्येदं श्रवण इनो हस्तः मृदुनि ध्रुवाणि इज्यः पुष्यः प्राभंजनमानिष्ठं स्वाती अंभोर्यमं जलस्वामिनप्रत्र शततारा वासवं धनिष्ठा एषां द्वन्द्वे एषु पुनः कस्मिन् नृभोदये मिथुनतुलाकन्याधनुराद्यलंका नामन्यतमलमे पापरिषौ पठभावस्थपापग्रहे सुकेंद्रे सति ॥ ९ ॥

अथ त्रिरेखे वलये चतुर्भुजे कार्शानवादीशदिशो भपंजरं ॥

कोणांशवेशं दिशि निर्गमं यथा न्यसेत्तथा दुर्गविधानसिद्धये ॥ १० ॥

अथ दुर्गचक्रे कृत्तिकादिनक्षत्राणि स्थापयति—अयेति ॥ अथ वप्रप्रारंभे चत्वारो भुजा यस्य स चतुर्भुजः चतुरस्र इत्यर्थः तस्मिन् त्रिरेखेति तिस्रो रेखा यस्य स तस्मिन्नेवंविधे वलये वमचक्रे सुधीर्भरंजरं तथा तेन प्रकारेण कृत्तिकादिदिदि कार्शानवं तस्मात् कृत्तिकादिनक्षत्रात् ईशदिश ईशानदिशतो न्यसेत् स्थापयेत् यथा येन प्रकारेण कोणांशवेशे चतुष्कोणे वेशः प्रवेशो यस्य तत् स्यात् ॥ पुनर्निर्गमदिशि चतुर्दिशु बहिर्गमनं स्यात्तदा दुर्गविधानसिद्धये कोटसाधननिष्पत्त्यै स्यात् ॥ उक्तं च 'कृत्तिकाद्यं मन्वाद्यं च भैत्राद्यं वासवादिकं ॥ त्रीणि त्रीणि प्रवेशे च द्वन्द्वान्यानि निर्गमे' इति ॥ १० ॥

शालोदितं शालनिवेशगं वरं भमुक्तमाद्यैरहिता वहिः खलाः ॥

आरंभणे मंगलमंदमप्युदुर्गस्य भंगाय विचित्रमित्यनु ॥ ११ ॥

अथ शालचक्रगतनक्षत्रादिकं दर्शयति—शालोदितमिति ॥ आर्यैश्चाचार्यैः शालोदितं वप्रयोगपरुषितं शालनिवेशगं प्राकारप्रवेशगतभं नक्षत्र वरं श्रेष्ठमुक्तं प्रोक्तं, पुनर्बहिः खलाः नाहस्याः क्रूराः ब्रह्मा अहिता नेष्टाः आरंभणे वप्रारंभे पुनर्मंगलमप्युदुर्ग भौमशनिषु कनप्यदुर्गमं दुर्गस्य वप्रस्य भंगाय विचित्रं ज्ञातव्यं अनुवश्रादिति ॥ ११ ॥

आरंभखाते यदि मंगलो यमो ह्यमंगलायेह यमो भवेदयं ॥

एवं पुरे स्यात्पुरनामधिष्यतो विलोकनीया पुरविष्यगुह्यिता ॥ १२ ॥

अथात्र खातगतभौमादिकं दर्शयति—आरंभेति ॥ खने आरंभ इति आरंभखाते तस्मिन् यदि चेत् मंगलो भौमोऽस्ति तदा सोऽमंगलाय दीपाय स्यात् ॥ इह खाते यदि यम शनिर्भवेत्तदायं यमो भवेत् यमनुरूपत्वान्नुत्पद्य स्यादित्यर्थः ॥ हि युक्तार्थे एव पूर्वोक्तप्रकारेण पुरे पुरनामधिष्यतो नगरनामनक्षत्रात्पुरविष्यगुह्यिता नगरनक्षत्रस्य निर्दोषता विलोकनीया ॥ १२ ॥

प्रवेशने मानवकीर्णमध्यकं दुर्गं सदा स्तंभितमे च दुर्गम् ॥

शून्यं तदारंभविधौ विनिर्गमे निवृत्तिवृत्तं नृनिविष्टनस्थले ॥ १३ ॥

अथ प्रवेशादिगतयेषु शालफलमाह—प्रवेशन इति ॥ तदारंभविधौ दुर्गप्रारंभणकार्यं प्रवेशने प्रवेशस्थाने भे- सति मानवकीर्णमध्यकं मनुष्यपूर्णमध्यभागमेवंविधं सदा दुर्गं स्यात् । च पुनः स्तंभितमे स्तंभनक्षत्रे दुर्गं दुर्गम् स्यात् । पुनर्विनिर्गमे भे दुर्गं शून्यं स्यात् ॥ पुनर्नृनिविष्टनस्थले दुर्गं निवृत्तिवृत्तमुपरामवृत्तं स्यात् सुखयुक्तमित्यर्थः ॥ १३ ॥

परिभ्रमोऽसौ समयैक्यैकः फणीश्वरस्यापि रसातले स्यात् ॥

लांगूलगत्या परिवाममार्गे रौद्र्या दिशो गोमुखमत्रयेऽशौ ॥ १४ ॥

अथात्र सर्वपरिभ्रमणमाह—परिभ्रमेति ॥ रसातले भूतले परिवाममार्गे फणीश्वरस्य शेषनाग- स्यापि असौ एकया समया एकवर्षेण एकः सपूर्णः परिभ्रमः स्यादित्यर्थः ॥ कुत्रो लांगूलगत्या पुच्छगमनेन रौद्र्या दिश ईशानकोणात् गोमुखमत्रये वृषादिराशित्रयेऽशौ सूर्ये सति ॥ १४ ॥

यदा फणेश्यामुदरं च वायव्यां लूनं तदा यातुहरित्यहेः स्यात् ॥

पृदाकुशून्याग्निककुप च खातं गदंति दर्वीकरशून्यकोणे ॥ १५ ॥

अथाहिचक्रे खानं दर्शयति—पदेति ॥ यदा ऐश्यामीशानकोणेऽहेः सर्वस्य फणा स्यात् । णाशब्दः पुंस्त्रीलिंगः च पुनर्यदा वायव्यां वायुकोणेऽहेरुदरं स्यात् पुनर्यदा यातुहरिति नैऋ- यकोणेऽहेलूनं पुच्छ स्यात्तदा पृदाकुशून्या सर्वरहिताऽग्निककुप अग्निदिक् स्यात् । काकोदरो विषधरः फणभृत्पृदाकुडकर्गकुडलिविलेशयदं दशूकाः इति हैमः । च पुनस्तदा सुविधौ दर्वी- करशून्यकोणे सर्ववर्जितकोणे खातं गदंति वदंति ॥ १५ ॥

एवं भ्रमचक्रमरीतिगत्या भ्रमोऽयमुक्तो मुनिभिः प्रधानैः ॥

ईशानतो दक्षिणभागगत्या संतर्कयन्ति भ्रममस्य जैनाः ॥ १६ ॥

अथाहिभ्रमे जैनमत दर्शयति—एवमिति ॥ पुराणैः पुरातनैर्मुनिभिर्भक्तिभिरेवं भ्रम उक्तः कथं एवममुना प्रकारेणाग्निकोणतो वाममार्गेण भ्रमचक्रमरीतिगत्या नक्षत्रचक्रमरीतिगमनेनेति पुनर्जैनाः श्वेतवरादयोऽस्य सर्वस्य भ्रमं संतर्कयन्ति कथयन्तीत्यर्थः कया ईशानतो दक्षिण- भागगत्या ॥ १६ ॥

दुर्गे पुरे चोक्तसि मंडपे हरेः प्रपामरागास्कयोः शक्तिमेः ॥

वेद्यादि सर्वत्र फटेति गोत्रयं जगाद वादाय नु जैनदर्शनम् ॥ १७ ॥

अथाहिभ्रमे जैनमतविवेकं दर्शयति—दुर्ग इति ॥ नु वितर्कं जैनदर्शनमिति वादाय नगाद इतीति किं दुर्गं वने पुरे नगरे ओक्तसि गृहे मंडपे च हरेः सिंहाराशितत्वं शक्तिरूपं शस्य ईश्वर- स्य दिक् यस्याः सा फटा फणा स्यात् ॥ सिंहाराशित्रये ईशानकोणे सर्वमुत्पत्तित्वर्थः ॥ ए

प्रपामरागारकयोः पानीयशाला देवालयस्तयोर्विषये तिमेर्मानात् त्रयं शदिक् फणा स्यात् । एवं वेद्यादि सर्वत्र स्थाने गोवृषात् त्रयं शदिक् फणा स्यात् ॥ १७ ॥

यदैककाले निखिलावटक्रिया स्याददंशूकभ्रमणेकता तदा ॥

भुजंगशून्यं घटतेऽवटं सदा प्रमाणतोऽत्रेति न तन्मतं धृतम् ॥ १८ ॥

अथ जैनमतं स्वयं नागीकरोति—यदैकेति ॥ यदा दंदशूकभ्रमणेकता सर्पभ्रमैक्य स्यात् तदा एककाले निखिलावटक्रिया समस्ता खातक्रिया स्यात् ॥ अत्र खाते सदा प्रमाणतो भुजंग-
शून्यं खातं वरं घटते हि युक्तार्थे इति हेतोस्तन्मतं जैनमतं श्रुतं सत्यं न स्यात् स्वयं नागी-
कृतमित्यर्थः ॥ १८ ॥

भोगानुगं मंदिरखातमाहतं कुतार्किकः कश्चिदुवाच वेत्यपि ॥

निर्ग्रथपक्षादहतदंभवानसौ वदत्यवेक्ष्येति कुलादिकं हरेः ॥ १९ ॥

अथ पुनः कस्यचिन्मतं दूषयति—भोगेति ॥ वा इति पक्षातरे भोगानुगं सर्पकायगतं
मंदिरखातमाहतं श्रेष्ठं स्यादित्यपि कश्चित् कुतार्किको दुष्टविचारी उवाच असौ कुतार्किक
इति पूर्वोक्तं हरे सिंहाराशितं कुलादिकं गृहादिकमवेक्ष्य विलोक्य वदति किंभूतोऽसौ निर्ग्र-
थपक्षादहतदंभवान् वेपथारितोऽगीकृतकपटवान् 'निर्ग्रथो निःस्वमूर्खयोः भ्रवणे' इति
हेमः ॥ १९ ॥

समीरमार्गाष्टपदांशपेटके चरत्यहिर्वासनयारमंदगः ॥

इत्याह कश्चित्किल वास्तुशास्त्रविन्न तेन दृष्टं भ्रमणं तु दृक्श्रुतेः ॥ २० ॥

अथाहिचक्रेऽष्टपदचक्रं वास्तुशास्त्रेदितं दूषयति—समीरेति ॥ किलत्यल्लोके समी-
रमार्गे व्योम्नि अष्टपदांशपेटकेऽष्टचरणभागचक्रेऽहिः सर्पश्चरति गच्छति कस्मिन् खलातरे
पापप्रहविचाले कया वासनया निषेधान्वये वासनयेति पदप्रयोगः 'वासना भावना संस्कार'
इति हेमः । इति कश्चिदहं ब्रूते किंभूतं कश्चित् वास्तुशास्त्रवित् गेहभूशास्त्रज्ञः तेन केनचित्
दृक्श्रुते सर्वस्य भ्रमणं न दृष्टं ॥ २० ॥

चतुर्मुजाग्रिस्तु चतुर्मुजेषु रौद्रादिकेष्वत्र फणास्थितिः स्यात् ॥

इति प्रमाणं प्रकटं प्रवीणैरुदीरितं वासनया पुराणैः ॥ २१ ॥

अथ ऋषिमतचक्रमाश्रित्य स्वमतं द्रवयति—चतुर्भुजेति ॥ अत्र व्योम्नि चतुर्भुजाग्रिः
चत्वारो भुजा हस्ता अग्रयः पादाश्च यस्याः सा एवविधा स्थितिः स्यात् । केपु रौद्रादिषु
ईशानकोणादिषु च पुनश्चतुर्भुजेषु त्रिराशिप्रमिते भचक्रे चत्वारो भुजा एषु तेषु इत्यर्थः ।
इति प्रकारेण पुराणैः पुरातनैः प्रवीणैः पंडितैः प्रकटं प्रमाणमुदीरितं प्रोक्तं ॥ २१ ॥

उक्तेषु भेष्वाहुरधोमुखैः क्षणैः कोणे किलाशीविपवर्जितेऽवटं ।

चरोदये भूषणभाजि कोविदस्तारानुदास्येस्तनुयादिह क्षणैः ॥ २२ ॥

अथ सातकारणशुद्धिमाह—उक्तेष्विति ॥ किंलेश्यवधारणे कोविदाः पण्डिता आशाविषवर्जिते कोणेऽवटसातमाहुः । कथयन्ति केषु उक्तेषु शालकर्मोक्तेषु भेषु पुनः कैरघोमुखैः क्षणैरघो-
मुखनक्षत्रक्षणैः पुनः कस्मिन् चरोदये चरलमे किंभूते चरोदये भूषणमात्रे शुभयोगाश्रिते सुषीरिह उक्तेषु भेषु स्तंभान् तनुयात् आरोपयेत् कैरुदास्यैः क्षणैरूर्ध्वमुखनक्षत्रमुद्धर्तैः ॥ २२ ॥

आयव्ययांशादिवले वलेंदिरा दुर्गे पुरे सद्मानि वेदिकादिषु ॥

भवोदतोऽयं तदुपक्रमोऽधुना यद्वास्तुशास्त्रोदितरीतिरुच्यते ॥ २३ ॥

अथायव्ययांशादिवलं वर्णयन् वास्तुशास्त्रोदितं संदधाति—आयेति ॥ दुर्गे पुरे सद्मानि-
वेदिकादिषु विषये आयव्ययांशादिवले सति इंदिरा लक्ष्मीर्वला वलिष्ठा भवेत् । तत्तस्मात्का-
रणादयमुपक्रमः । प्रारंभः क्रियते यद्वास्तुशास्त्रोदितरीतिरुच्यते स्पष्टं ॥ २३ ॥

क्षेत्रे भवेत्क्षेत्रफलं चतुर्भुजे तत्कोटिदोराहतिरेवमायते ॥

त्र्यसेऽपि दोःकोटिहतेर्दलं फलं दोःकोटिलंबैर्विषममे च कल्पितम् ॥ २४ ॥

अथ क्षेत्रफलं साधयति—क्षेत्रे इति ॥ चतुर्भुजे चतुरस्रे क्षेत्रफलं क्षेत्रमानं भवेत् । आयते
दीर्घे क्षेत्रे कोटिदोषयोः कोटिभुजयोराहतिर्हननं गुणनमेव क्षेत्रफलं स्यात् । अपि पुन
रूपले त्रिकोणे क्षेत्रे दोःकोटिहतेर्भुजकोट्योर्हतिर्गुणना तस्या दलमर्धं तत् फलं क्षेत्रमानं
स्यात् । पुनर्विषममे क्षेत्रे दोःकोटिलंबैर्भुजकोटिलंबनैः क्षेत्रफलं कल्पितं ॥ २४ ॥

विष्कंभपादे परिणाहनिघ्ने वृत्ते सदा क्षेत्रफलं च चापे ॥

वृत्तार्द्धवत्स्यादिह वृत्तमध्यं वृत्तत्रिभागोऽनियतं यदन्यत् ॥ २५ ॥

विष्कंभेति—वृत्ते वर्तुलक्षेत्रे परिणाहनिघ्ने परिधिगुणिते सति विष्कंभपादे विस्तृतिदुर्याशे
क्षेत्रफलं स्यात् । यदुक्तं लीलावत्यां ‘वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलं स्यात्’ इति । च
पुनश्चापे धनुराकारक्षेत्रे वृत्तार्द्धवत् वर्तुलक्षेत्रार्धवत्स्यप्रमाणं स्यात् । वृत्तत्रिभागः वर्तुल-
अर्धो वृत्तमध्यं स्यात् । यदन्यदुक्तक्षेत्रेभ्यो विपरीतमस्ति तत्क्षेत्रमनियतं नियामकरहितं
स्यात् । इह दुर्गादिके सर्वत्र योज्यं ॥ २५ ॥

षडक्षतै राजमिहांगुलं भवेत्सप्ताक्षतैर्वैष्णवमैशमंगुलं ॥

यवोदरैरष्टभिरत्र तत्करो जिनांगुलैरक्षतैश्च धनुश्चतुःकरम् ॥ २६ ॥

अथ ब्रह्माक्षीनामंगुलादिमानं दर्शयति—षडक्षतैरिति ॥ इह प्रासादादिमाने षडक्षतैः
षड्यपैः आजं भजत्येदं ब्राम्हमंगुलं भवेत् । सप्ताक्षतैः सप्तयवैर्वैष्णवं विष्णोरिदं काश्यप्यं
मंगुलं भवेत् । अत्र प्रमाणे तैर्जिनांगुलैश्चतुर्विंशतिमितैस्तत्करस्तेषां करः कोऽर्धं अनांगु-
लैरमकरः कृष्णांगुलैः कृष्णकर ईशांगुलैरीशकरः स्यात् च पुनश्चतुःकरं धनुः स्यात् ॥ २६ ॥

प्रासादकुंडादिकर्पाठवेदिकाद्विजालयेषु स्मृतमाजमंगुलं ॥

जलाशयारामविधौ नृपालये निधौ हितं वैष्णवमन्यदन्यगम् ॥ २७ ॥

अथानांगुलादीनां ग्राहस्थानानि दर्शयति—प्रासादेति ॥ प्रासादो देवालयः कुडादिकं वेदिका द्विजालयो विप्रगृहं एषां द्वे एषु आजं ब्रह्मसंनधि अंगुलं हित शुभं स्यात् । जल-
शपस्तटाकादिः आराम अनयोर्विधौ कार्ये नृपालये राजगृहे निधौ निधाने वेष्णावं विष्णुसं-
नधि अंगुल हितं स्यात् । अन्यत् रौद्रांगुलं अन्यगं क्षेत्रक्रोशादिके हित स्यात् ॥ २७ ॥

ध्वजध्वप्रहरिध्वगोखरा द्विरदो ध्वांश्च इहायकाः क्रमात् ॥

ननु चापकरांगुलोन्मिता गदिता मंडलशालधामसु ॥ २८ ॥

अथ वैताल्लोयेनात्राष्टौ आयकानाह—ध्वजेति ॥ ननु निश्चितं मंडलशालधामसु वृषेश-
प्रगृहेषु इह क्रमात् ध्वजादय आयका गदिताः प्रोक्ताः । ध्वजः १ धूम्रः २ हरिः सिंहः ३
श्वा श्वानः ४ गो वृषः ५ खरो रासयः ६ द्विरदो गजः ७ ध्वांश्च काकः ८ इति किंभूता
एते चापकरांगुलोन्मिता, धनुर्हस्तांगुलप्रमिताः ॥ २८ ॥

ध्वजपूर्वं इहायुष्टभिर्विहते क्षेत्रफले समोऽशुभः ॥

निखिलासु हरिस्त्वंलं ध्वजो व्यपराशासु च केसरी वरः ॥ २९ ॥

अथायाना ग्राहस्थानान्याह—ध्वज इति ॥ इह शालदौ अष्टभिर्विहते क्षेत्रफले सति
ध्वजपूर्वो ध्वजप्रमुख आयः समः समसंख्याक अशुभ स्यात् । अलमित्यवधृतौ निखिलासु
हरिस्त्वंलं ध्वज आयो वरः श्रेष्ठः स्यात् । च पुनर्व्यपराशासु पश्चिमदिश विना सर्वदिशु
केसरी सिंहो वरः श्रेष्ठः स्यात् ॥ २९ ॥

करिजोऽनकदिङ्मुखे शुभोऽनु च सुत्रामदिगानने वृषः ॥

ध्वजसिंहगजर्षभा हिताः क्षितिदेवाननजातिषु क्रमात् ॥ ३० ॥

करिज इति ॥ अंतकदिङ्मुखे करिजो गजायः शुभ स्यात् । अनु पश्चाच्च पुनः सुत्रामदि-
गानने इन्द्रदिङ्मुखे वृष शुभ स्यात् । क्षितिदेवाननजातिषु विप्रप्रमुखजातिषु ध्वजसिंहगजर्षभा
हिताः शुभाः स्युः क्रमात्क्रमेण ॥ ३० ॥

इह ये खलसत्त्वजीविनो मनुजास्तच्छरणादिकर्मणि ॥

खलसत्त्वगमायुर्त्तमं गदितं गाणितिकैरसंशयम् ॥ ३१ ॥

इहेति—ये खलसत्त्वजीविनः क्रूरप्राणिजीविनो मनुजा अत्यजाः संति असंशय निश्चित
तच्छरणादिकर्मणि तेषां चाद्याद्यानां गृहादिकार्ये गाणितिकैर्योतिर्वीक्ष्यैः खलसत्त्वगमायुः
क्रूरजीवाभिषानं आयुः उत्तमं गदितं प्रोक्त । अत्र आयुशद्वयस्य आयुष इति
पर्यायोऽभिहितः ॥ ३१ ॥

द्विरदैर्गुणिते फले हते त्रिघनेनोऽर्ध्वरितं भमुच्यते ॥

भगणेऽष्टहते व्ययस्थलं व्ययहीनं त्वधिकायमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

अथ वास्तुनक्षत्रादिज्ञानं साधयति—द्विरद्वैगिति ॥ फले क्षेत्रफले द्विरद्वैरष्टभिर्गुणिते पुनस्त्रि-
घनेन हते सप्तविंशतिभाजिते यत् उर्वरिते शेषं तत् भं वास्तुनक्षत्रमुच्यते । सप्तविंशतिभाजिते
यत् क्षेत्रफलं तद्गणनसंज्ञं तस्मिन् भगणेऽष्टद्वयेऽष्टाभिर्भाजिते यच्छेषं तत् व्ययः व्ययसंज्ञं
स्यात् । तु पुनर्यत्र वास्तुनि व्ययहीनं व्ययस्त्वलता अधिकायं आयाधिकं एवं यत् स्थलं
तदुत्तमं ॥ ३२ ॥

व्ययान्विते क्षेत्रफले समन्विते ध्रुवादिवर्णैस्त्रित्तरैः शका गृहे ॥

हयंतकोर्वीपनयो यमोऽशुभः स्वनामवर्णैस्तु परत्र कीर्तिताः ॥ ३३ ॥

अथ क्षेत्रफलादिभिरंशकान् साधयति—व्ययान्वित इति ॥ क्षेत्रफले व्ययान्विते व्यययुक्ते
पुनः क्षेत्रफले ध्रुवादिवर्णैर्ध्रुवादयोऽंशगृहनामाद्वैश्च समन्विते युक्ते पुनः क्षेत्रफले त्रिद्वये
त्रिभिर्भाजिते सति गृहे हयंतकोर्वीपनयः इंद्रः यमः राजा अंशका इति सज्ञाः कीर्तिताः एषु
यमोऽशुभोऽशुभः स्यात् । तु पुनः स्वनामवर्णैर्निजनामतुल्यैरेते कीर्तिताः करिम् परत्र पर-
स्मिन् कोऽर्थः सर्वे स्वनामतुल्यफलदा इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

सिंहायुरिष्टोऽचलमौलिशाले शाले गजायोऽबुवृतौ व्ययान्विते ॥

ककुद्गदायोऽवनिगव्हरस्थे ध्वजो हि सर्वत्र यथाव्ययः स्यात् ॥ ३४ ॥

अथ पर्वतप्राकारादिषु आययोभ्यतामाह—सिंहायुरिति ॥ व्ययेन ऊने हीने व्ययोने
व्ययस्वरूपताया सत्यामिति सर्वत्र योग्यं अचलमौलिशाले पर्वतमूर्ध्नि प्राकारे सिंहायु इष्ट-
स्यात् । आयु शब्द उकारातोऽपि शब्दप्रभेदे ॥ अबुवृतौ जलवेष्टितशाले गजाय इष्टः शुभः
स्यात् । अवनिगव्हरस्थे भूमिस्थे शाले ककुद्गदायो वृषभाय इष्टः स्यात् । 'उक्षान्द्वान् ककुद्गान्
गौ' इति हेमः । हि युक्तार्थे सर्वत्र ध्वज इष्टः स्यात् किंभूतो यथाव्ययः
व्ययस्वरूपतेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

प्राकारपूर्गेहकभर्तृतायोः सभाजनं दोर्ग्रहवद्विलोकयेत् ॥

निजोदितेऽनेहसि शस्त्रयंत्रकैः प्रपूरितः पूरितशो हि शालकः ॥ ३५ ॥

अथ वप्रादिनक्षत्रकर्तृनक्षत्रमेलापकेन शालपूरणमाह—प्राकारेति ॥ मुषी प्राकारो वपः पुः
नगरीगेह एषा भ नक्षत्रं वर्तुतारा तत्प्राकारकपुरुषस्य नक्षत्र एतयो सभाजनं परस्पर सख्यलक्षण
विलोकयेत् निवत् दोर्ग्रहान् पाणिग्रहणतुल्या मेत्री कस्मिन् निजोदिते प्राकारादिषु उक्तेऽ-
नेहसि काले हि युक्तार्थे शस्त्रयंत्रकैः खड्गादिपाषाणादियंत्रकैः प्रपूरितः सन् शालकः प्रा-
कारः पूरितशः स्यात् पूरिता शा लक्ष्मीर्यस्मिन्निति लक्ष्मीपूर्णदुर्ग इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

समीरसुत्रामभदेवमृद्धाभिर्मृदूडुभिः क्षिप्रयुतैः सुकंटके ॥

विदारमंदान्यदिनेषु सत्तिथौ स्थिरादये संघटयेत्प्रतोलिकाम् ॥ ३६ ॥

अथ प्रतोलिकाकरणशुद्धिमाह—समीरेति ॥ मुषीः प्रतोलिका संघटयेत् कारयेत्
कैः समीर स्वाती सूत्रावभ ज्येष्ठा देवमृद्ध पुनर्भुम्ब एषा द्वे एभिः पुनः कैर्मृदूडुभिः

किंभूते. तिम्रयुते. चरनक्षत्रयुक्ते पुन कस्मिन् स्थिरादये स्थिरलभे किंभूते सुकरके शुभ-
महयुक्तकेद्रे पुन केपु विदारमदान्यदिनेषु बुधो भौमः शनिरेतान् विहाय अन्यग्रहदिनेषु
पुनः कस्मिन् सत्तिथौ ॥ ३६ ॥

विकर्तनाक्रांतमतो द्विपार्श्वगं तन्मौलितो दिक्षु चतुष्टयं न्यसेत् ॥
द्वयं विदिक्षु त्रयमंतरे क्रमादधो विदिक्स्थं न शुभं भमंडलम् ॥ ३७ ॥

प्रतोलिकाचक्रे नक्षत्रस्थापन तत्फलं च दर्शयति—विकर्तनेति ॥ सुधीर्विकर्तनाक्रांतमत
सूर्यसक्रमणनक्षत्रात्तन्मौलित प्रतोलीमस्तकात् द्विपार्श्वगं दिक्षु चतुष्टयं विदिक्षु द्वयं भ
सरे विषाले त्रयं क्रमात् न्यसेत् स्थापयेत् । कोऽर्थं प्रतोलीमस्तकात् सव्यापसव्याद्वि
मार्गत्तश्चतुर्षु दिक्षु चत्वारि२ नक्षत्राणि इति षोडश देयानि चतुर्षु विदिक्षु द्वयं द्वयं अष्टौ
इति देयानि मध्ये त्रयं देयामिति सप्तविंशतिभानि देयानि । प्रतोल्या अधो विदिक्स्थ
अधोगतं विदिक्स्थित भमंडलं न शुभं स्यात् ॥ ३७ ॥

प्राकारदेवायतनाननेऽसौ क्रमो भवक्रममणस्य चित्यः ॥

सदैव पार्श्वभ्रमरीतिभेदो गृहादिकद्वार्युदितैश्च भागैः ॥ ३८ ॥

अथ भवक्रमस्य भेदं दर्शयति—प्राकारेति ॥ प्राकारदेवायतनानने दुर्गेदेवालयद्वारेऽसौ भवक्र
ममणस्य क्रमश्चित्य स्यात् वैरुतिर्भागैः प्रोक्तभागैश्च पुनर्गृहादिकद्वारि पार्श्वतो
भवक्रममणेन भवश्चित्य स्यात्स निरतम् ॥ ३८ ॥

वशादिभाजिष्णुदिशोऽश्रुमालिनि त्रये त्रये दिक्ष्वपि वत्ससंस्थितिः ॥
वत्से पुरोगे विशिखा च पृष्ठगे ज्वालानिवेशे न हिता भवेदिह ॥ ३९ ॥

अथ दिग्वत्सचक्रं दर्शयति—वशेति ॥ वशादिभात कन्यादिराशितत्त्रये त्रये राशित्रिके
त्रिकेऽश्रुमालिनि सूर्ये सति मिष्णुदिशं पूर्वतो दिक्षु अपि निश्चित वत्ससंस्थिति स्यात् । इह
दुर्गे विशिखा प्रतोलिका हिता शुभा न भवत् कस्मिन् पुरोगेऽमगे च वत्से सति किंभूते
वत्से ज्वालाया ज्वालामालादिशस्तस्या निवेश प्रवेशो यस्मिन् स ॥ ३९ ॥

विधुंतुदे नैव विधौ च संमुखे रथ्याकृतिर्वैकृतिदायिनी भवेत् ॥

अदुर्गपुर्या भतमोऽब्जवत्सजां शुद्धिं विना निस्सरणं समादृतम् ॥ ४० ॥

अथ प्रतोलीकरणे सन्मुखं राहु चंद्र च त्यजसाह—विधुंतुद इति ॥ अत्रैव दुर्गे विधुंतुदे राहौ
विधौ चंद्रे च सन्मुखे सति रथ्याकृति प्रतोलीकर्म विकृतदायिनी विरूपकारिणी भवेत् 'रथ्या
प्रतोलीं विशिखा समा' इति हैम । अदुर्गपुर्या दुर्गरहितस्य नगरस्य निस्सरणं मुखं समादृत
मगीकृत का विना भं नक्षत्र तमो राहु अन्नश्चंद्र वत्स एव्यो जाता शुद्धिं विना निस्सरण
'मृतौ उपाये मेहादिमुखे' इति हैम । येन गृहादिषु मणिरयते निर्गम्यते तन्निस्सरण ॥ ४० ॥

उदीरितायव्ययतारकाबलो नभोगशुद्धिः स्मृतनीतिसजितः ॥

समुक्तकालादृतसर्वसत्क्रियो विराजते मंडलशासिता स यः ॥ ४१ ॥

अथ निर्दोषकृतं शालं वर्णयति—उदीरितेति ॥ यः शालो वर्तते किंभूतः शालो उदीरिताः प्रोक्ता आयव्ययतारकास्तासां वर्त यस्मिन्सः पुनः किंभूतः शालः नभोगानां ग्रहाणां शुद्धिः निर्दोषता यस्मिन्सः पुनः किंभूतः शालः स्मृता प्रोक्ता या नीतिस्तया सजितो निर्मितः पुनः किंभूतः शालः समुक्तः सम्यक् प्रकारेण प्रोक्तो यः कालस्तेन आदृता अंगीकृता सर्वा सत्क्रिया यस्मिन् स इति स शालो मंडलशासिता देशरसाकरः सन् विराजिते ॥ ४१ ॥

अरातिमत्तेभनिकायकुंभदो निराग्रहः शस्त्रनखोपघातकृत् ॥

निःशाणनादोऽचलमौलिशालको दधात्यसौ केसरिपौरुषश्रियम् ॥ ४२ ॥

अथ शैलस्थशालस्य सिंहोपमानं दर्शयति—अरातीति ॥ असौ अचलमौलिशालकः पर्वत-शृंगदुर्गः केसरिपौरुषश्रियं सिंहविक्रमशोभां दधाति विभर्ति किंभूतोऽसौ अरानयः शात्रवा एव मत्तेभा मदगमितकुंभिनस्तेषां निकायः समूहस्तस्य कुंभं कुम्भस्थलं द्यानि खंडयति इति पुनः किंभूतो निराग्रहः निर्गुण आग्रहो अग्रहं यस्य स पुनः किंभूतः शस्त्राण्येव नखास्तैरुपघातकृत् विनाशकारकः पुनः किंभूतो निःशाणाना नाराः शब्दा यस्मिन्सः सिंहोऽप्येवंविधः स्यात् ॥ ४२ ॥

विरोधिवीरद्रुमसंघभंगो गंभीरभेरीध्वनिघोरघोषः ॥ ४३ ॥

असह्यपार्थः परिवारिशालो वहत्यसौ मत्तगजेंद्रलीलाम् ॥ ४३ ॥

अथ जलवेष्टितशाल हस्तितुल्यं वर्णयति—विरोधीति ॥ असौ परिवारिशालः सर्वतो मल-वेष्टितदुर्गो मत्तगजेंद्रलीलां वहति दधाति किंभूतोऽसौ विरोधिवीराः शत्रुसुमटा एव द्रुमा वृक्षा-स्तेषां संगः संगमस्तस्य भंग उन्मूलनं यस्मात् सः पुनः किंभूतो गंभीरभेरीध्वनिभिर्घोर-उत्कटो घोषो यस्मिन् सः पुनः किंभूतः असह्यः सोढुं अशक्यं पार्थ सासीप्यं यस्य स इत्येवंविधः स्यात् ॥ ४३ ॥

दूराभियातीन्प्रति संक्षतक्षमः पलायनं वाञ्छति वेष्टितोऽवनौ ॥

मुखग्रहाभूतपुरोऽतिगर्जितो दुर्गो वशी स्यात्सगुणो गुणग्रहः ॥ ४४ ॥

अथ भूमिशालं श्वानतुल्यं वर्णयति—दूरेति ॥ अवनौ दुर्गोऽतिगर्जितः शब्दायमानः श्वगुणः शुनः श्वानस्य गुण इव गुणो यस्य स श्वानतुल्यः स्यात् । किंभूतो दूराभियातीन् दूररिपून् प्रति संक्षतक्षमः सम्यक् प्रकारेण वाताय क्षमः समर्थः । पुनः किंभूतो वेष्टितः सन् दुर्गः पलायनं वाञ्छति आधारे आपेयोपचारात् तत्रस्थननः । पुनः किंभूतो मुखग्रहाभूतपुरः मुखस्य निस्तरणस्य ग्रहो ग्रहणं तेन आधूतं केषितं पुरं नगरं अग्रभागो वा यस्य सः । पुनः किंभूतः गुणग्रहः गुणेन भेदेन ग्रहो ग्रहणं यस्य सः 'कार्योद्देशे गुणो भेदे' इत्यनेकादृशी हेमः । अतएव किंभूतो वशी स्वायत्तः स्वाप्येवविधो गुणेन रज्ज्वा बद्धः सन् वशी स्यात् ॥ ४४ ॥

पार्श्वश्रितामित्रविघातसत्त्वो भीमाननः काहलवाद्यनादः ॥

✓ अंतर्बहिर्धावनवल्गनौजाः स्यात्पुंडरीकप्रतिमोऽन्यदुर्गः ॥ ४५ ॥

अथ गव्हरशाल व्याघ्रतुल्य वर्णयति—पार्श्वेति ॥ अन्यदुर्गा गव्हरशाल पुंडरीकप्रतिमो व्याघ्रसदृश स्यात् 'व्याघ्रो द्विषी पुंडरीक' इति ह्ययुज ॥ पार्श्वश्रिता समीपस्था येऽमित्रा शत्रवस्तेषा विघाताय हननाय सत्त्व बल यस्य स । पुन किंभूतो भीमानन मयानकमुख पुन किंभूत काहलवाद्यनाद स्पष्ट पुन किंभूत अन्तर्बहिर्ध्वे बाह्य धावने शीघ्रगमने वल्गने उत्पत्तने ओजो बल यस्य स अंतर्बहिर्धावनवल्गनौजा इति ॥ ४५ ॥

अनेकशाला भुवि संति दुर्गमा ये भूखीराः स्फुरदन्नसंकुलाः ॥

स्वार्यप्रतापोज्ज्वलिता नतीकृताः श्रीविक्रमार्कसितिपेन पालिताः ॥ ४६ ॥

अथ दुर्गग्रहणेन श्रोत्रकर्मार्कं बल वर्णयति—अनेकेति ॥ येऽनेकदुर्गा दुर्गमा गृहीतुमशक्या भुवि पृथिव्या साति किंभूता ये भूखीरैर्वहुभुजैः स्फुरदन्नेकतन्निनशस्त्रैः संकुलाः शाला श्रीविक्रमार्कसितिपेन ते दुर्गा पूर्वं नतीकृता नन्नाकृता पश्चात् पालिता सेवकभावेन रक्षिता किंभूतास्ते स्वार्थ स्वस्य अर्थ स्वामी श्रीविक्रमार्कस्तस्य शुभ, प्रतापस्तेन उज्ज्वलिता मानमलरहितीकृताः ॥ ४६ ॥

दुर्गारंभस्य योऽनेहाः प्रोदितोऽमौ मयाधुना ॥

दुर्गमध्यपुरारंभे ग्राह्यो भूमिभुजादरात् ॥ ४७ ॥

अथ शालशुद्धयुतसहारमाह—दुर्गेति ॥ मया योऽमौ दुर्गारंभस्यानेहा काल प्रोदितो गदित सोऽमुना कालो भूमिभुजादरात् आग्रहात् ग्राह्य, कस्मिन् दुर्गमध्यपुरारंभे वनस्य मध्यनगरारंभे ॥ ४७ ॥

अशालनगरारंभे गदितः कालनिर्णयः ॥

विशेषो यस्तमेवाहं ब्रवीमि सदपीरितम् ॥ ४८ ॥

अथ स्वागतया पुरऽनुक्तशुद्धिं दर्शयन्नाह—अशालने ॥ अशालनगरारंभे प्राकाररहितनगरारंभे कालनिर्णयो गदित प्रोक्त पुनर्ब काले विशेषोऽस्ति अहं तमेव कालं ब्रवीमि किंभूतं सदपीरितं शुभश्लेषिप्रोक्त ॥ ४८ ॥

जित्मृगोऽमृगः १० घटा ११ ज १ भसंस्ये वासयेत्पुग्मशीतलकेतौ ॥

पौषपट्वाति वाश्विनमार्गादित्यजूक ७ भरिलीमुखयोगे ॥ ४९ ॥

अथ संक्रात्यादिशुद्धौ पुरवासमाह—जित्मेति ॥ सुधी पुर वासयेत् कस्मिन् जित्म मित्युन गौर्ध्वं मृगो मकर घट उभ अजो मेघ एषु राशिषु सन्धेऽशोतलकेतौ उष्णमात्रि सूर्यं चिन्ते सूर्य पौषपट्वाति पौषादिपग्मासयुक्ते वाऽपवा आश्विनेति आश्विने मासे मार्गमासे अदित्यजूकमाशिलीमुखयोगे सूर्यतुलासकमणवृश्चिकसंक्रमणयोगे ॥ ४९ ॥

लेय५गेऽमरपुरोधसि मौढ्ये वक्रगे पतितमास्यधिके वा ॥

हारिपूरचनमास्फुजितोऽस्ते क्षीणचंद्रमासि नो पुरकर्तुः ॥ ५० ॥

अथ गुर्वादिदोषे पुरारंभं निषेधति—लेयेति ॥ पुरकर्तुः नगरकारकस्य पूरचनं नगरकरणं हारि शुभं नो स्यात् कस्मिन् लेयगे सिंहराशौ अमरपुरोधसि शुभौ पुनर्मौढ्येऽस्तंगते वक्र-
गते सति च पुनःपतितमासि क्षीणमासेऽधिकमासे च पुनरास्फुजितोऽस्ते शुक्रास्ते पुनः क्षीण-
चंद्रमासि क्षीणचंद्रे ॥ ५० ॥

दुष्टयोगहरत्तज्जनिरिक्ता४।९।१४मंदमंगलबुधाः स्थुरभीष्टाः ॥

उग्रमिश्रकभदारुणतारा नैव संवसथसाधनकाले ॥ ५१ ॥

अथ ग्रामकरणशुद्धिमाह—दुष्टेति ॥ संवसथसाधनकाले ग्रामकरणकाले एते नैवाभीष्टा नै-
शुभाः स्युस्तानाह दुष्टयोगा हरस्य तद्दि तद्दये जनिर्जन्य यस्याः सा विष्टिः रिक्तास्ति-
थयः ४।९।१४मंदः शनिः मंगलः बुधः एषां द्वंद्वे उग्रभानि मिश्रे द्वे को वायुस्तस्य भं स्वाती
दारुणताराः क्रूरभानि आसा द्वंद्वे ॥ ५१ ॥

राम३वेद४युग४पावका३गमां४भोधि४राम३यम२भैस्तु तारकैः ॥

ग्रामवत्स इनभाच्छमुद्रसं स्थैर्यमादरकभीलयाः क्रमात् ॥ ५२ ॥

अथ रथोद्धतया ग्रामवत्सचक्रे भानि स्थापयति—रामोति ॥ ग्रामवत्से रविभात्
सूर्याकांतभात् रामादिमितैस्तारकैः क्रमात् शादयः स्युः । कोऽर्थः ग्रामवत्से सूर्यनक्षत्रात्
रामैस्त्रिभिस्तारकैः शं मुखं स्यात् । एवं वेदैश्चतुर्भिर्भैरुद्रसं जनशून्यं पुनर्युगैश्चतुर्भिर्भैः स्थैर्यं
स्थिरता पुनः पावकैस्त्रिभिर्भैर्मा लक्ष्मीः स्यात् ॥ आगमैश्चतुर्भिर्भैर्दोरो भयं स्यात् । अंभोधिभि-
श्चतुर्भिर्भैः कं धनं स्यात् । रामैस्त्रिभिर्भैर्भाभयं स्यात् । यमपैर्द्विभिर्भैर्भैर्लो मृत्युः स्यात् । एषां
द्वंद्वः एवं सप्तविंशतिनक्षत्राणि देयानि । यतः 'यस्मिन्ननुभवे ज्ञानुस्तदादौ त्रीणि मस्तके ॥ द्वे-
द्वे च पादयोर्न्यस्य स्थापयेन्मोणि पृष्ठतः ॥ १ ॥ चत्वारि वामकुक्षौ च याभ्यां चत्वारि
एव च ॥ पुच्छे श्रीणि च संस्थाप्य नासिकां द्वे नियोजयेत् ॥ २ ॥ नासिका स्वामिने भक्षेदुद्रास-
मयपादयोः ॥ शिरः पृष्ठे भवेच्छस्मीः स्थिरं पश्चिमपादयोः ॥ ३ ॥ वामकुक्षौ च दारिद्र्यं यस्या
चैव धनागमः ॥ पुच्छे च जायते हानिर्वृषचक्रमुद्राद्वनं' ॥ ४ ॥ इति ॥ ५२ ॥

वत्सशुद्धिवति भे विपश्चितः प्रोक्तपूर्वलयभादिसंपदि ॥

नव्यपूरचनमाहुरैदवं पाकपस्य च वलं समीक्ष्य भे ॥ ५३ ॥

अथ वत्सादिभशुद्धौ पुररचनमाह—वत्सेति ॥ विपश्चितः पंडिताः नव्यपूरचनं नूतनपु-
रीकरणमाहुः कथयंति कस्मिन् वत्सशुद्धिवति वत्सशुद्धियुके भे नक्षत्रे पुनः कस्यां प्रोक्त-
पूर्वलयभादिसंपदि कथितनगरचक्रनक्षत्रादिशुद्धिमासौ सत्यां पुनः किं कृत्वा भे नगर-
राशौ एदवं वलं चंद्रवलं च पुनः पाकपस्य नगरदशापनेर्बतं समीक्ष्य विच्छेदय ॥ ५३ ॥

विधीयते चेद्विशिखा तदा स्यात्तद्वत्समीक्ष्याखिलशुद्धिरस्मिन् ॥

यदा पुरे निःसरणप्रपंचो विनैव तच्छुद्धिमयं विधेयः ॥ ५४ ॥

अथ पुरप्रतोलीकरणशुद्धिमाह—विधीयतइति ॥ चेत् यदा सुधिया विशिखा प्रतोली विधीयते तदास्या प्रतोल्या तद्वत् पूर्वोक्तपुरशुद्धितुल्याखिलशुद्धिः समीक्ष्या विलोकनीया ॥ पुनरस्मिन् पुरेऽयं निःसरणप्रपंचो गृहादीना मुखविस्तारो विधेयः कर्तव्यः कां विना तच्छुद्धिं तस्याः शुद्धिं विना एव निश्चितं ॥ ५४ ॥

अमीनकीटद्वितत्त्वचरोदये सत्कंटके संकरणं पुर-
स्य तत् ॥ असाधुभिर्वोपचया ३६।१०।११। नुगै-
रुतांगिरोविधू चेद्वनःमानः०गौ तथा ॥ ५५ ॥

अथ लग्नशुद्धौ पुरकरणमाह—अमीनेति ॥ पुरस्य नगरस्य तत् संकरणं सम्यक्-
प्रकारेण करणीयं स्यात् कस्मिन् अमीनेति मीन कीटः कर्को द्वितनू द्विस्वभावलग्न चरोदयश्चरलग्न
विधेते एते यस्मिन्स तस्मिन् मीनादिरहिते उदये सति किंभूने उदये सत्कटके संतः शुभ-
ग्रहाः कंटके यस्य स तस्मिन् उत वितर्के च पुनः चेत् यदि उपचयानुगै त्रिपद्दश-
मेकादशभावगैरसाधुभिः खलग्रहे. कृत्वागिरोविधू गुरुचंद्रौ वनमानगौ चतुर्थदशमभावगौ
भवतस्तदा तथा पुरस्य करणं स्यात् ॥ ५५ ॥

विशेदधिष्ठानमथायने नवं सौम्येऽवकीर्णाशुविसारवासरे ॥

सहोनभोहेल्यलिसिंहसंगमे दीपोत्सवचूदरमासि वा क्वचित् ॥ ५६ ॥

अथ पुरप्रवेशस्य शुद्धिमाह—विशेदिति ॥ अथ पुरकरणानंतरं सुधीधिष्ठान पुर
विशेत् प्रविशेत् 'निवेशनमधिष्ठानं' इति हेम. ॥ कस्मिन् सौम्येऽयने उत्तरायणे किंभूतेऽयनेऽ
यहीर्णाशुविसारवासेर मीनार्कदिनरहिते वा पश्चातरे सहो मार्गशीर्षः नभः श्रावणः हेति.
सूर्यः अर्द्धिर्धृश्रिकः सिंह एषा सगमे संयोगे सति क्वचित् दीपोत्सवस्य एव दिन
उदरे मध्ये यस्य स एवंविधो वा मासस्मिन् कार्तिकमासे इत्यर्थः ॥ ५६ ॥

प्राचेतसश्वासनतिष्यवासवस्थिरश्रवोदोर्मृदुभिर्नवं विशेत् ॥

शालं पुरं चाशुभयोगवर्जितैरनाखारेषु सदैवद्वद्युषु ॥ ५७ ॥

अथ पुरप्रवेशे भवारशुद्धिमाह—प्राचेतसेति ॥ सुधी. नवं नवीन शालं वा पुरं वा गृहं
वा विशेत् प्रविशेत् के प्राचेतसं शततारा श्वासनं स्वाती तिष्यः पुष्य यासव धनिष्ठा
स्थिरसंज्ञानि श्रव. श्रवण. दोर्हस्त. मृदुनि एषा द्वे एभिर्नक्षत्रैः किंभूतेर्नक्षत्रैः अशुभयो-
गवर्जितैः पुनः केषु सदैवद्वद्युषु शुभचाद्रदिनेषु किंभूतेषु अनारवारेषु मौमरहितदिनेषु ॥ ५७ ॥

स्थिरोदयेऽद्विपितर्केद्रधीशुभे सपत्नवीर्यायखले भवेन्नवः ॥

पुरप्रवेशोऽधिकले विधौ हितो वलैर्दशाजन्मपराजमंत्रिणाम् ॥ ५८ ॥

अथात्र प्रवेशे लग्नशुद्धिमाह—स्थिरोति ॥ नवो नूतनः पुरप्रवेशो हितः शुभो भवेत्
कस्मिन् स्थिरोदये स्थिरलगे किंभूते स्थिरोदये अदृषिताः दूषणरहिताः केंद्रभावाः ॥१४॥
१० पंचमभावः ५ शुभः पुण्यो नवमभावश्च यस्मिन् स तस्मिन् पुनः किंभूते सपरने पटे
वीर्ये तृतीये ३ आये एकादशे ११ खलाः क्रूरग्रहा यस्य तस्मिन् पुनः कस्मिन् अधि-
कले अधि अचिकाः पूर्णाः कला यस्य स तस्मिन् एवंविधे विधौ धंद्रे 'अधिबले' इत्यादि
पाठः पुनः कैः दशाजन्मपराजमंत्रिणां दशापतेः नन्यपतेः राजश्रद्धस्य मंत्रिणो गुरोश्च
रक्षां बलैः ॥ १८ ॥

प्रयाणदिक्खेचरयोगशुद्ध्या जीवे कवौ दर्शितमंडले स्यात् ॥

छंदोध्वनौ वाद्यसुगीतघोषे पुरं समावेशितमर्थसिद्धये ॥ ५९ ॥

अथ पुरप्रवेशे शेषशुद्धिं प्रयाणशुद्धिवत् दर्शयति—प्रयाणेति ॥ समावेशितं प्रवेशी-
कृतं पुरं नगरमर्थसिद्धयै कार्यनिष्ठास्ये स्यात् कया प्रयणदिक्खेचरयोगशुद्ध्या यात्रायां
यथा दिग्ग्रहयोगानां शुद्धिस्तथात्रैव विलोकनीया इत्यर्थः पुनः कस्मिन् जीवे गुरौ कवौ शुक्ले
दर्शितमंडलेऽस्तवर्जिते पुनः कस्मिन् छंदोध्वनौ वेदघोषे सति ॥ ५९ ॥

दद्याद्धयं दैवविदे पुरोधसे वसुंधरामर्थचयं द्विजव्रजे ॥

संतोषयेच्चैलधनैश्च मागधान् दीनानिहानैरुपवेशितो नृपः ॥६०॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे प्राकारपुरसाधनप्रवेशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ प्रवेशिनस्य मूपस्य वदान्यतामाह—दद्यादिति ॥ नृपो भूप इह उपवेशितः पुरोपवे-
शितः सन् दैवविदे दैवज्ञाय हयमश्वं दद्यात् पुनः पुरोधसे पुरोहिताय वसुंधरां भुवं दद्यात्
पुनर्द्विजव्रजे विप्रेऽर्थचयं धनसमूहं दद्यात् पुनर्मागधान् मंगलपाठकान् चैलधनैर्वस्त्रद्रव्यैः
संतोषयेत् पुनर्दीनान् दीनजनान् अन्नैः संतोषयेत् ॥ ६० ॥

इति श्रीपरिणीतक्षिप्पभावरत्नविरचिताया श्रीकालिदाससंहृतज्योतिर्विदाभरणस्य सुखबो-
धिकाया प्राकारपुरसाधनप्रवेशोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

गृहप्रवेशदेवताप्रतिष्ठाप्रकरणम् ।

गार्हस्थो विपुलयशा यदाश्रमाणां धर्मो वेदवचनकर्मसारधर्मः ॥

तेदेवादिजमनुजाखिलाप्तकामो वक्ष्येऽहं कुलकरणस्य कालनीतिम् ॥१॥

अथ प्राकारपुरसाधनानंतरं तत्र गृहसाधनं घटतेऽतः प्रहर्षिण्या गृहारंमनिर्णयं संदधाति—
गार्हस्थ इति ॥ यत् यस्मात् कारणात् आश्रमाणां चतुर्णां मध्ये गार्हस्थो गृहस्थसंबन्धी
धर्मो गृहस्थाचारो विपुलयशाः विस्तीर्णकृतिः स्यात् । किंभूतो गार्हस्थो वेदवचनेन यत् कर्म
रूपं तेन सारः शुभो धर्मो न्यायो नीतिर्यस्मिन् सः । यदुक्तं 'धर्मोऽयमोपमापुण्यस्वभावाचा-

रथन्वसु । सत्सगोऽर्हत्गर्हिसादौ न्यायोपनिषदोऽपि ॥१॥ धर्मदानादिके' इति हैम ॥ पुन किंभूतो
गार्हस्थो देवा हरिहरादय आदिजा विप्रा मनुजा क्षत्रियादयस्तेरखिल समस्त आस
प्राप्त काम ईप्सित यस्मात्स इति तत् तस्मात्कारणात् अह कुलकरणस्य गृहविधानस्य
कालनीतिं समयनिर्णय वक्ष्ये कथयिष्यामि ॥ १ ॥

वृत्रारिस्वपतिवनेश्वरांतकानां दिक्षु स्याद्भवनमिहादिजादिकानां ॥
वर्णानां विदिशि शुभं च संकरस्य प्रासादे हरिशिवयक्षदिग्विमध्यम् ॥२॥

अथ गृहकरणे दिग्गोच्यतामाह—वृत्रेति ॥ आदिजादिकानां विप्रादीनां वर्णानां भवन
गृह शुभ स्यात् वृत्रा दीनां दिक्षु वृत्रारिर्द्रुस्तस्य दिशि विप्राणां गृह शुभ स्यात् । स्वपतिर्धनद
स्तस्य दिशि क्षत्रियाणां गृह शुभ वनेश्वरो वरुणस्तस्यदिशि वैश्यानां गृह शुभ भक्तो
यमस्तस्य दिशि शूद्राणां गृह शुभ च पुन संकरस्य संकरजातीनां विदिशि गृह शुभ स्यात्
पुनरिह प्रासादे हरिदिग् शिवदिग् यक्षदिग् आसा विमध्य यस्मिस्तत् मध्यभाग गृह वर ॥१॥

नागांऽगेऽन१२युग४नवा९ग७भूय११धिष्ण्यैर्नागारं हरिह-
रितो वरं ककुप्सु ॥ जन्मोत्थैरनु परमैः पुरस्य मध्ये स्यादेवं
यमवति भस्थले नराणाम् ॥ ३ ॥

अथ दिग्ग्राश्वोरमेऽनेन दुषणमाह—नागाग इति ॥ नराणां मनुष्याणामगार गृह वरं
न स्यात् कासु हरिहरित पूर्वदिशात् ककुप्सु वैर्जन्मोत्थैर्नागादिमितधिष्ण्ये राशिभि
अनु पश्चात् परमै वृषमियुनसिंहमकरराशिभि कोऽर्थ पूर्वदिशि नरस्य नागराशिनाऽगारं
वरं न स्यात् वृश्चिकराशिमान् पुरुष पूर्वस्या न वसेदित्यर्थ । एवं नरस्य अगेन कन्याराशिना
अग्निदिशि, पुनरिनेन मीनराशिना दक्षिणस्या, पुनर्युगेन कर्कराशिना नैऋत्या पुनर्नवाभि
र्धनूराशिना पश्चिमाया, पुनरगेन सप्तमराशिना वायव्या, पुनर्भुवा मेघराशिना उत्तरस्या
पुनरग्रेण ईश्वरेण कुमराशिना ईशान्यामिति पुन कस्मिन् यमवति शनियुक्ते भस्थले
नक्षत्रचक्रे ग्रामचक्रे यत्र शनियुक्त भ राशिस्थानं स्यात्तदा त स्थाने गृह वर न
स्यात् इत्यर्थः ॥ ३ ॥

मीना १२ली ८भरिपु५भवन्नरिष्टमोकः प्रागास्यं मकर-
१०वशादकुलीर४भस्य ॥ याम्यास्यं जितुमश्नुलास्त्रभ९स्य
पुंसः पश्चात् द्वापरभवन्नु१२१२१रुत्तरास्यम् ॥ ४ ॥

अथ दिङ्मनराशयोर्मेऽनेन गृहसन्मुख शुभमाह—मीनेति ॥ मीन अलिर्बृश्चिक इभरिपुभ सिं
हराशि. अत्यर्थं वत् तेन एभिर्युक्तस्य नु पुरुषस्य प्रागास्य पूर्वदिङ्मुख ओको गृहमिष्ट
शुभ स्यात् । पुनर्मकरवशाकुलीरभस्य मकरकन्याकर्कराशिर्यस्य स तस्य पुनो याम्यास्य
दक्षिणादिङ्मुख ओको वर पुनर्जितुमनुलास्त्रभस्य मियुननुलापनूराशिर्यस्य स तस्य पुंसः

पश्चात्तद्वाः पश्चिमादिद्वमुखं ओको वरं द्वाःशब्दो हस्तांतः पुनरपरमवस्तुः उक्तेभ्योऽन्यराशियुक्त-
पुरुषस्य उत्तरास्यं ओको वरम् ॥ ४ ॥

फाल्गुने नभासि सहस्यदः सहस्ये वैशाखे शरणमशेषं
विधत्ते ॥ आरब्धं द्वितनु ३।६।९।१२। भभानुयोगयुक्ते
निलेयामरसचिवादिभूतगास्ते ॥ ५ ॥

अथ गृहारंभे मासादिशुद्धिमाह— फाल्गुन इति ॥ अदः शरणं गृहं वर्तुपदं आरब्धं प्रा-
रंभितं सत् अशेषं समस्तमुखं विधत्ते करोति करिम्न आरब्धं फाल्गुने मासे अत्र दीर्घ
उकारः शब्दप्रभेदाद् दृश्यते । नभासि श्रावणे सहासि मार्गशीर्षे सहस्ये वैषं वैशाखे किंभूते
एतन्मासे द्वितनुभानुयोगयुक्ते द्विस्वभावरशौ सूर्ये योगयुक्ते सति पुनः किंभूते निः निर्गतः
लेयामरसचिवः सिंहदुरश्च आदिभुवौ खगौ विप्रग्रहौ गुरुशुक्रौ तयोरस्तश्च यस्मात्सः
सिंहगुरुहिते गुरुशुक्रास्तरहिते इत्यर्थः ॥ ५ ॥

मासेऽपागयनगतेऽपि चौकसः स्यादारंभोऽतिवरफलोऽत्र
वेशनं न ॥ भेदत्वाद्धटननिवेशदेवतानां रिक्तामा ४।९।१४।
३०। शुभयुतिविष्टिमुक्तपक्षः ॥ ६ ॥

अथ गृहारंभे अयनादिशुद्धिमाह— मास इति ॥ ओकसो गेहस्यारंभोऽतिवरफलो भूषं
फलवत् स्यात् । करिम्न अपागयनगते दक्षिणायनगते मासेऽपि पुनरत्र दक्षिणायनगते मासे
वेशनं गृहप्रवेशो न स्यात् घटननिवेशदेवतानां भेदत्वात् घटनमुहूर्तस्य भिन्नदेवाः प्रवेशनमु-
हूर्तस्य भिन्नदेवास्तेनेति किंभूत आरंभः रिक्तास्तिथयः अशुभयुतिर्दृष्टयोगः विष्टिर्भद्रा एता-
भिर्भुक्तस्तर्क्तः पशोऽङ्गीकारो यस्य सः ॥ ६ ॥

भानौ केसरिणि ५ मृगे १० च कुंभ११कक्योर्ध्रं द्वाशा-
परवदनं निशांतमुक्तं ॥ गो२जूक ७भ्रमर८पशू१८णदृष्टि
योगे कीनाशस्वपतिदिगाननं प्रवेकम् ॥ ७ ॥

अथोचितदिशि गृहसंमुखत्वमाह— भानाविति ॥ केसरिणि भानौ सिंहसंक्रातौ मृगे
मकरसंक्रातौ च कुंभकक्योः कुंभसंक्रातौ कर्कसंक्रातौ च द्वाशापरवदनं पूर्वपश्चिमादिद्वमुखं
निशांतं गेहं प्रवेकं श्रेष्ठमुक्तं प्रोक्तं पुनर्गोवृषः जूकस्तुल्य भ्रमरो वृश्चिकः पशुर्मेघः एत-
द्वाशिषु उष्णवृष्णयोगे सूर्यसंक्रमे कीनाशस्वपतिदिगाननं दक्षिणोत्तरमुखं निशांतं श्रेष्ठं
मेकं ॥ ७ ॥

मासो दर्श३० युगलकालमो यथा यो ग्राह्योऽसौ निलय
कृता प्रमाणासिद्धः । सर्वत्रैव सुस्थुनीकलिदजांतदेशे
स्यादपविधुघसमध्यवर्ती ॥ ८ ॥

अथ गृहकरणे मासप्रमाणतामाह—मास इति ॥ यथा योऽसौ मासो दर्शयुगलकालेन अमावास्यायुग्मकालेन मीयते ॥ इति दर्शयुग्मकालप्रमाणो दार्शिको मासः स्यात् इत्यर्थः ॥ असौ मासो निलयवृत्तौ गृहकरणे प्रमाणसिद्धोऽधिकस्यकालमुक्तः सर्वत्र सर्वदेशे ग्राह्यः स्यात् । तथा सुप्रधुनी गंगा कलिंदजा यमुना एतयोरंतर्देशे विचालेऽपविषुष्यत्तमध्यवर्ती अपगतो विधुश्रंदो यस्याः सकाशात् सा अपविधुः अमावास्या तस्या घट्टं यस्य मध्ये वर्तते इत्येवं शलिं यस्य स पौर्णिमासिको मासो ग्राह्यः स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

सद्वारे करणमुतोर्जस्य भानौ तिष्यश्वासनमृदुवासवैर्नधैः ॥

आधत्ते सुपमफलं सवारुणैरुत्सृष्टाशुभप्रयोगविद्धविंशैः ॥ ९ ॥

अथ गृहकरणे वारनक्षत्रशुद्धिमाह—सद्वारः इति ॥ उत वितर्के उरजस्य गृहस्य वरणं सुपमफलं मनोहरफलं 'वामरुच्यसुपमाणि शोभन' इति हैमः ॥ अथवा कवर्गीयरवकारोऽपि 'लं सुखं ज्ञानमित्यपि' इति एकाक्षरे । सु अतिशयेन लं सुखं तेन मीयते इति तत् च फलं च इत्यपिशब्दार्थः । आधत्ते विभृयात् कस्मिन् सद्वारे शुभग्रहादिने पुष्यार्तनौ सूर्यवारे पुनः कैः तिष्यः श्वासनं स्वाती मृदूनि वासवं घनिष्ठा ऐनं हस्तः धीराणि एतैर्नक्षत्रैः किंभूतैः सवारुणैः शततारासहितैः पुनः किंभूतैर्नक्षत्रैः उत्सृष्टानि त्यक्तानि अशुभप्रयोगेन पापग्रहयोगेन विद्धानि विंशानि यैस्तानि तैः पापग्रहयोगविद्धमंडलरहितैः ॥ ९ ॥

पूर्वस्ते क्रमरविधिष्यचक्रभेदैस्त्रिंशद्विंशत्रिंशयमार

श्विरवेदः दृग्गैः ॥ दृग्मा २ त्रैः शवृजिनकायरुक्

शर्धैर्य दारिद्र्यं दरमरणे क्रमेण कर्तुः ॥ १० ॥

अथ मत्तभेदेनेह वत्सचक्रमाह—पूर्वस्ते इति ॥ पूर्वस्ते नगरचक्रे क्रमरविधिष्यचक्रभेदैः सूर्याः क्रांतनक्षत्रचक्रभेदैः किंभूतैः त्रिधादिमितैः दृग्माः त्रैश्च क्रमेण कर्तुः शालादिकारकस्य शश्वजिनादिकं स्यात् । कोऽर्थः सूर्याक्रांतनक्षत्रचक्रे वत्सस्य शीर्षादिषु त्रिभिर्नक्षत्रैः कर्तुः सुखं स्यात् एवं दृग्मा घृजिनं पावं अर्थसामर्थ्यात्कष्टं अन्विष्यतुर्भिर्नक्षत्रैः सुखं धनं वा स्यात् । त्रिभिर्नक्षत्रैः छात्रः स्यात् । गुणैस्त्रिभिर्नक्षत्रैः रुक् रोगः स्यात् । यमैर्द्वौ भाभ्यां शं सुखं स्यात् ॥ अन्विष्यत्तं दृग्मां भाभ्यां धैर्यं स्यात् । वेदैश्चतुर्भिर्दार्ढ्यं स्यात् । दृग्माः द्विमानाभ्यां माम्बा दूरो मयं स्यात् । दृग्माः द्विभित्तं संख्याभ्यां भाभ्यां मरणं स्यात् । दरमरणे इति द्वे द्वे प्रथमाद्विचक्रं दृग्मां द्विभित्तं अग्रं संख्या येषां ते तैः अग्रग्रहशब्दः संख्यावाची शवृजिनादीनां द्वैर्नक्षत्रैः नगरवत्सचक्रात् इदं मत्तभेदात् ज्ञेयमिति ॥ १० ॥

शाले पुरे चाष्टाविभागभेदो दिग्भागः १० भेदो मठमंदिरादौ ॥

भेदाः पडत्रामरधाम्नि धीरैरन्यत्र वा द्वादशः १२ वत्सचक्रे ॥ ११ ॥

अथ वत्सचक्रे शालादीनां विभागभेदानाह—शालइति ॥ अत्र वत्सचक्रे शाले पुरे वा धौरेर्बुधैरष्टविभागभेदः अष्टौ भागा भेदाः स्थाप्याः । पुनर्मठमंदिरादौ दिग्भागभेदः दशभागाः स्थाप्याः । पुनरमरधाम्नि देवगृहे पद्मभेदाः अन्यत्र द्वादशभेदाः स्थाप्याः ॥ ११ ॥

स्युः सप्तसप्तानलभादुद्धूनि प्राच्याश्चतुर्दिक्षु निशांतचक्रे ॥

पुरोगपृष्ठस्थमिहोपधीशं त्यक्त्वा तदारंभणमिष्टमुक्तम् ॥ १२ ॥

अथ गृहे दिग्द्वारमचक्रमाह—स्युरिति ॥ इह निशांतचक्रे गेहचक्रे प्राच्याः पूर्वातश्चतुर्दिक्षु भनलभात् कृत्तिकातः सप्त सप्त उद्धूनि स्युः । तदारंभणं तस्य गेहस्य प्रारंभणमिष्टं शुभं मुक्तं प्रोक्तं किं कृत्वा पुरोगपृष्ठस्थं अग्रगतं पश्चाद्भागस्थं ओपधीशं चंद्रं त्यक्त्वा ॥ १२ ॥

निकेतनं स्यान्निविधं हि मृण्मयं हर्म्यं सदा पर्णकुटं बुधैः स्मृतं ॥

एको नयस्तत्करणस्य चोच्यते तथापि तत्प्रोक्तविशेषतन्मयः ॥ १३ ॥

अथ निविधं गृहमाह—निकेतनमिति ॥ निकेतनं गृहं निविधं त्रिधा स्यात् हि अवधारणे एकं मृण्मयं मुक्तिकापिष्टवद्धं १ द्वितीयं हर्म्यं 'यन्निष्ठिकाद्यै रचितं तद्देहं हर्म्यमादिशेत्' इति यादवः ॥ 'हर्म्यं तु धानेनां गृहं' इति हैमः ॥ २ तृतीयं पर्णकुटं 'तृणपत्रादिभिर्वद्धं गेहं पर्णकुटं स्मृतं' इति यादवः ॥ 'पर्णशालोत्तन' इति हैमः ॥ सदा अति बुधैः स्मृतं वत्करणस्य तेषां मृण्मयादिगृहाणां एको नयोऽस्ति वा पश्चांतरे तथापि तत्प्रोक्तः तेषु गृहेषु प्रोक्तश्चासौ विशेषश्चासौ तन्मयः स एव नयश्च इति तथापि विशेषनयोऽस्ति इत्यर्थः ॥ १३ ॥

न हारि हर्म्येऽभिमुखं तमः स्यात् दृश्यं न तत्पर्णकुटादिगेहे ॥

क्षपाकरः पर्णकुटेऽभिवक्त्रो न दर्शनीयोऽन्यकुले स दृश्यः ॥ १४ ॥

अथ हर्म्यादीनां दर्शनीयदोषमाह—न हारोति ॥ हर्म्ये गृहविशेषेऽभिमुखं सन्मुखं तमो राहुर्हारि श्रेष्ठं न स्यात् । पर्णकुटादिगेहे तत्तमो राहुर्न दृश्यं न विच्छेदनीयं स्यात् । क्षपाकरः पर्णकुटेऽभिवक्त्रः सन्मुखो न दर्शनीयः स्यात् । अन्यकुले शृष्टिकादिमूर्तिरादिराचिते गेहे सन्मुखश्चंद्रो दृश्यो विच्छेदनीयः ॥ १४ ॥

लघुश्रवोधीरमृगांत्यचित्रामित्रांगिरामैत्रासिताख्यवरैः ॥

न्यासं शिलादारुकृतं सुधायाः कुर्वति लेपं निविडं च धिष्ण्योऽद

अथ गृहे शृष्टिकादिचयनसुधालेपशुद्धिमाह—लघ्विति ॥ सुधिया धिष्ण्ये एकभूमिद्विभूम्यादिगेहे शिलादारुकृतं पाषाणकाष्ठकृतं न्यासं प्रथमं शृष्टिकादिचयनं च पुनः सुधाया लेपं कुर्वति किंभूतं निविडं ददं कैः कृत्वा लघूनि श्रवः श्रवणः घीराणि मृगो मृगशीर्षं अंत्यं रेवती चित्रा मित्रोऽनुराधांगिरा गुरुः मैत्रः शनिवारः सितः शुक्रवारः एषा द्वेष्ट एभिः ॥ १५ ॥

अथ वत्सचक्रे शालादीनां विभागभेदानाह—शालइति ॥ अत्र वत्सचक्रे शाले पुरे वा
भीरुर्ध्वरेष्टाविभागभेदः अष्टौ भागा भेदाः स्थाप्याः । पुनर्मठमंदिरादौ दिग्भागभेदः दशभागाः
स्थाप्याः । पुनरमरधानि देवगृहे पद्मभेदाः अन्यत्र द्वादशभेदाः स्थाप्याः ॥ ११ ॥

स्युः सप्तसप्तानलभादुद्धूनि प्राच्याश्चतुर्दिक्षु निशांतचक्रे ॥

पुरोगपृष्ठस्थमिहौपधीशं त्यक्त्वा तदारम्भणमिष्टमुक्तम् ॥ १२ ॥

अथ गृहे दिग्द्वारमचक्रमाह—स्युरिति ॥ इह निशांतचक्रे गेहचक्रे प्राच्याः पूर्वतश्चतु-
र्दिक्षु भनलभात् कृत्तिकातः सप्त सप्त उद्धूनि स्युः । तदारम्भणं तस्य गेहस्य प्रारम्भणमिष्टं शुभ-
शक्तं प्रोक्तं किं कृत्वा पुरोगपृष्ठस्थं अग्रगतं पश्चाद्भागस्थं औपधीशं चंद्रं त्यक्त्वा ॥ १२ ॥

निकेतनं स्यान्निविधं हि मृण्मयं हर्म्यं सदा पर्णकुटं बुधैः स्मृतं ॥

एको नयस्तत्करणस्य चोच्यते तथापि तत्प्रोक्तविशेषतन्त्रयः ॥ १३ ॥

अथ त्रिविधं गृहमाह—निकेतनमिति ॥ निकेतनं गृहं त्रिविधं त्रिधा स्यात् हि अवधारणे
एकं मृण्मयं मृत्तिकापिण्डवद्धं १ द्वितीयं हर्म्यं 'यन्निष्ठिकायै रचितं तद्देहं हर्म्यमादिशेत्' इति
वाक्यः ॥ 'हर्म्यं तु धानेनां गृहं' इति हैमः ॥ २ तृतीयं पर्णकुटं 'तृणपत्रादिभिर्वद्धं गेहं पर्णकुटं
स्मृतं' इति वाक्यः ॥ 'पर्णशालोटज' इति हैमः ॥ सदा इति बुधैः स्मृतं वत्करणस्य तेषां मृण्मया-
दिगृहाणां एको नयोऽस्ति वा पश्चांतरे तथापि तत्प्रोक्तः तेषु गृहेषु प्रोक्तश्चासौ विशेषश्चासौ
तन्त्रयः स एव नयश्च इति तथापि विशेषनयोऽस्ति इत्यर्थः ॥ १३ ॥

न हारि हर्म्येऽभिमुखं तमः स्यात् दृश्यं न तत्पर्णकुटादिगेहे ॥

क्षपाकरः पर्णकुटेऽभिवक्त्रो न दर्शनीयोऽन्यकुले स दृश्यः ॥ १४ ॥

अथ हर्म्यादीनां दर्शनीयदोषमाह—न हारीति ॥ हर्म्यं गृहविशेषेऽभिमुखं सन्मुखं तमो

ससितोदयश्चैव ॥ विनिर्मितं न विद्योक्तनीयं स्यात् । क्षपाक-

कर्तुरुदारसंपत् ॥ २३ ॥

ससौम्येति ॥ चेत् यदि ससौम्यराज्यः पुन्युकदशमम-
सुपेसहितैकादशो भावः स्यात् । पुनः सपूजकेंद्रः गुरुयुककेंद्रं स्यात् । पुनः ॥
कक्षं स्यात्तदा यच्छरणं गृहं विनिर्मितं कृतं तत्र गृहं कर्तुः पुंसश्चितं दैविकं च
रण्यं शरणे रक्षणे साधु भवेत् किंभूतं गृहं उदारा प्रदाना संपन्नं समृद्धिरस्ति तत्र ॥ २३ ॥

समंगलं मातुलवर्द्धमादरात्सविक्रमं ३ सुखगारसाधने ॥

गुरुं कविं सोदयश्मिच्छसि स्थितिं गृहाण चेद्वदरातद्वयं गृहिन् ॥ २४ ॥

समंगलमिति ॥ चेद् यदि हे गृहिन् त्वं अवदन्तद्वयं द्विशतं वर्षेभ्यः स्थितिं इच्छसि गेहसंरक्ष-
नेष्वसदा सुखगारसाधने गृहकरणे आदरात् मातुलवर्द्धं पठमानं सनंगलं भवत्युक्तं गृहण

नभस्यमासं परिहाय पक्षं त्विपोर्जयोरादिममंत्यमाहुः ॥

शुचेर्बुधा. पर्णकुटक्रियां वा समस्तवारेषु सितांगिरोऽस्तम् ॥१६॥

अथ पर्णकुटकार्यशुद्धिमाह—नभस्येति ॥ बुधाः पडिता पर्णकुटक्रियामाहु कथयति किं कृत्वा नभस्यमासं माद्रपद परिहाय त्यक्त्वा च पुन इपोर्जयोः आश्विनकार्तिकयोरादिम पक्षं विहाय पुन शुचेरापादस्यात्यं पक्ष विहाय वा पुन सितांगिरोऽस्त शुक्रगुर्वोरस्त परिहाय केषु समस्तवारेषु ॥ १६ ॥

कर्णत्रयं हारमृदुधुवाख्यैर्युतं सतिष्यानलमूर्ध्वभूमेः ॥

आरंभकृत्ये कृतिनो नयन्ति ज्ञादित्रये भूषणभाजि वारे ॥१७॥

अथोर्ध्वभूम्यारंभमाह—कर्णेति ॥ कृतिनो बुधा ऊर्ध्वभूमेरारंभकृत्ये कर्णत्रयं श्रवणत्रयं नयन्ति कथयतीत्यर्थं प्राप्नुवति वा किंभूत कर्णत्रय हरस्येद हार आर्द्रा मृदूनि ध्रुवाख्यानि एभिर्युत युक्तपुन किंभूतं सतिष्यानल पुण्यकृतिकामहित कस्मिन् ज्ञादित्रये बुधगुरुशुक्रवारे किंभूते भूषणभाजि कुयोगविष्टिरिक्तापर्वभ्योऽन्यसुयोगभूषणयुक्ते ॥ १७ ॥

स्यात्तद्विप्रकृत्यचरराशुदये सर्वेद्वैः सद्भिः सदोपचयव-

द्विरसद्भिरोकः ॥ सर्वर्द्धये त्युत विदांगरसा ख १० गे-

नागारा ४ नुगेन नरराशुदये च सिद्धयै ॥ १८ ॥

अथ वसततिलकेन गृहकरणे लग्नशुद्धिमाह—स्याद्विप्रेति ॥ सदा हि अवधारणे उत वितर्के ओक्ते गेह सर्वर्द्धये समस्तसमृद्धयै स्यात् ॥ कस्मिन् द्विप्रकृत्यचरराशुदये द्विस्वभावलग्ने स्थिरलग्ने च पुन. कै सर्वेद्वै वैद्विरसद्भिरोक सद्भिः शुभग्रहे पुनः कै उपचयवद्वि ११।१०। ११। उपचयमवनयुक्तैः सद्भिः पापग्रहे च पुन नरराशुदये खगेन दशमभावगेनागारा नुगेन चतुर्थभावगेन विदा नुगेन अगिरसा गुरुणा च ओक सिद्धयै स्यात् ॥ १८ ॥

दुष्टारिनाशउदयोऽपि कुले सुखाप्त्यै दुष्टारिदनाश

८ उदयो न कुले सुखाप्त्यै ॥ आरंभकालवति

दुष्टमदोदयश्चेदारंभकालवति दुष्टमदोदयः स्यात् ॥ १९ ॥

दुष्टारोति ॥ दुष्टानामरीणा शत्रूणा नाशो यस्मिन् स एवंविध उदयो भाग्योदय कु गोत्रे सुखाप्त्यै सुखलाभाय स्यात् । अपि सभावनाया कुले गेहे दुष्टारिनाशउदय दुष्टो क्लृप्तग्रहदुपितौ षष्ठाष्टमभावौ यस्मिन् स एवंविध उदयो लग्न सुखलाभाय न स्यात् । चेद्यदि आरंभकालवति उक्ते गृहकरणप्रारम्भगे दुष्टमदोदयो दूषितमप्तमभावः स्यात्तदा आरंभकालवति मारंभिते कर्मणि दुष्टमदोदयः दुष्टाना नायादादीना मदोऽहकारस्तवोत्पत्त्यान्योन्य दष्टिः स्यादिरपर्यं । 'मदो रेतस्वहकारे मये हंभेदानयो. कस्तुरिकाया द्वेये च' इति हेम ॥१९॥

गुरौ घने १ राजसुते निवृत्तौ ७ मैत्रे वले ३ मातुल ६ आजि मित्रे ॥

कवौ कुले ४ भूभुवि विद्धि लाभे ११ क्षयं समारंभितमक्षयं हि ॥ २० ॥

गुराविति ॥ हि युक्तार्थे हे गृहकर्तः त्वं क्षयं गृहं समारंभितं प्रारंभितमक्षयमविनाशि विद्धि । जानीहि कस्मिन् प्रनेत्रे गुरौ सति निवृत्तौ सप्तमात्रे राजसुते नुषे सति वले तृतीयमात्रे मैत्रे शनौ सति मातुलमाजि मित्रे पष्ठमात्रे सूर्ये सति एतावता एको योगो ज्ञेयोऽथवा पुनः कुले गेहे चतुर्थे भावे कवौ शुके पुनर्लाभे एकादशे भूभुवि भौमे सति ॥ २० ॥

सराजमंत्री कुलमान १० वर्ती सहस्रभूमंगललाभ ११ भावः ॥

निशांतकर्तुश्चिरधामसौख्यं यदोत जंवालचरोदयेऽब्जः ॥ २१ ॥

सराजेति ॥ यदा उत वितर्के कुलमानवर्ती चतुर्थदशमभावः साराजमंत्री चंद्रयुक्तगुरुः स्यात् ॥ पुनः सहस्रभूमंगललाभभावः लाभमावगतशान्तियुक्तभौमः पुनः जंवालचरोदये जंवाले यंके चराति-गच्छतीति कर्कसस्योदये कर्कलग्नेऽब्जश्चंद्रः स्यात्तदा निशांतकर्तुः गृहकारकस्य चिरधामसौख्यं दीर्घकालं गृहमुखं स्यात् ॥ २१ ॥

ग्रहेश्वरे नष्टवले गृहेश्वरो विधौ वधू मंत्रिणि शं च राः सिते ॥

क्षयं समेति क्षयसाधनेऽथवा नीचाश्रयिण्यंशुविलुप्तमंडले ॥ २२ ॥

ग्रहेश्वर इति ॥ हि अवधारणे क्षयसाधने गृहकरणे ग्रहेश्वरे सूर्ये नष्टवले सति गृहेश्वरो गृहस्वामी पुमान् क्षयं समेति प्राप्नोति पुनर्विधौ चंद्रे नष्टवले सति वधूः स्त्री क्षयं समेति पुनर्मंत्रिणि गुरौ नष्टवले सति शं सुखं कर्तृपदं क्षयं समेति च पुनः सिते शुके नष्टवले सति रा लक्ष्मीः क्षयं समेति वाऽथवा नीचाश्रयिणि नीचराशिगते ग्रहे सति अशुविलुप्तमंडलेऽस्तग्रहे एवं कलं ॥ २२ ॥

ससौम्यराज्य १० श्र सभास्वदायः ११ सपूज्यकेंद्रः १४।७।१०

ससितोदयश्चेत् ॥ विनिर्मितं यच्छरणं शरणं भवेच्चिरं

कर्तुरुदारसंपत् ॥ २३ ॥

ससौम्येति ॥ चेत् यदि ससौम्यराज्यः बुधयुक्तदशमभावः स्याच्च पुनः सभास्वदायः सर्वसहितैकादशो भावः स्यात् । पुनः सपूज्यकेंद्रः गुरुयुक्तकेंद्रं स्यात् । पुनः ससितोदयः शुक्रयुक्तलग्नं स्यात्तदा यच्छरणं गृह विनिर्मितं कृतं तत् गृहं कर्तुं पुनश्चिरं दीर्घकालं शरणं शरणे रक्षणे साधु भवेत् किंभूत् गृहं उदारा प्राना संपत् समृद्धिर्भविष्यत् ॥ २३ ॥

समंगलं मातुलवर्धमादरात्सर्विक्रमं ३ सूरमगारसाधने ॥

गुरुं कविं सोदयश्मिच्छसि स्थितिं गृहाण चेद्वदरात्तद्वयं गृहिन् ॥ २४ ॥

समंगलमिति ॥ चेद् यदि हे गृहिन् त्वं अबदशाद्वयं द्विशतं र्थमिता स्थितिं इच्छसि गेहसंपत्तिं शेषस्तदा स्वमगारसाधने गृहकरणे आदरात् मातुलवर्ध पठमात्रं समंगलं भौमयुक्तं गृहाण

पुनरेव सविक्रमं तृतीयमावयुक्ते सूरं सूर्यं गृहाण पुनर्गुरुं कर्षे च सोदयं लग्नसहितं
गृहाण ॥ २४ ॥

कुलमानः० गौ यदि च राजगुरु स्तः कुलमानदौ यदि निकेतनकर्तुः॥
कुसुते च मंदवति वै भवः११ भावे कुसुतेऽपि संभवति वेभवभावः॥२५॥

अथ कुटजनामच्छंदाह—कुलेति ॥ यदि राजगुरु चंद्रगीष्पती कुलमानगौ चतुर्थदश
मभावगौ स्तस्तदा तौ चंद्रगुरु निकेतनकर्तुः कुलमानदौ गोत्रसन्मानदायकौ स्यातां च पुनर्य
निश्चितं भवभावे एकादशभावगते कुसुते भौमे मंदवति शनियुक्ते सति निकेतनकर्तुर्वैभवभावः
समृद्धिभावः संभवति संजायते कस्मिन् कुसुतेऽपि दुष्टपुत्रेऽपि सति इति भ्रमर इत्यन्यः इति
छंदोऽनुशासने हेमः ॥ २५ ॥

उदये कविर्भवति सोचपदश्रीरमृतादनार्चितपदो वनवर्ती ॥

कुरुते कुलक्रमवृषं कुलकर्तुर्यदि वा यमो धटगतिर्भवः११ शाली ॥२६॥

उदय इति ॥ यदि सोचपदश्रीरुच्चस्थानश्रीसहित उच्चगतो मोनस्थ इत्यर्थः एवंविधः कविरूपे
छन्द्रे भवति वायवा अमृतादना अमृतभोजिनो देवास्तैरर्चितौ पादौ यस्य स गुरुर्वनवर्ती च
तुर्थभावस्थः कर्कस्थो भवति ॥ अथवा यमः शनिर्धटगतिस्तुलास्थो भवशाली एकादशभावस्थो
भवति तदा एवंविधः शुक्रो गुरुः शनिश्च कुलकर्तुर्गृहकारकस्य कुलक्रमवृषं स्वगोत्रवर्षं
कुरुते ॥ २६ ॥

स्वगृहोच्चसुहृत्कुलांशयातैरनिलाध्वानुचरैः प्रभूतकालं ॥

परितिष्ठति पस्त्यमर्थयुक्तं कृतनिर्माणमतोऽन्यगैरनर्थम् ॥ २७ ॥

अथ मालभारिण्याह—स्वगृहेति॥ अनिलाध्वामरुन्मागो व्योम तस्मिन्नुचरति गच्छतीति
ग्रहास्तैः कृतनिर्माण कृतसाधनं पत्य गृहं कर्तृपदे प्रभूतकालं प्रचुरकाल यावत् परितिष्ठति
किंभूत पस्त्यमर्थयुक्तं धनभूतं किंभूतैरनिलाध्वानुचरैः स्वगृह उच्चस्थानं सुहृत्कुलं मित्रगृहं
अशः स्वगृहादिनवाशः एषु स्थानेषु यातैः गतैः 'पस्त्य संस्त्याय आश्रयः' इति हेमः ॥ एष्व
स्थानेभ्योऽन्यगैरन्यस्थानगतैर्ग्रहे कृत गृहमनर्थं दारिद्र्याद्य भवति ॥ २७ ॥

द्युचरः परभागगो यदेको मदगो वापवलोऽपि वर्णनाथः ॥

राचितं सदनं समेति सत्यं समया तच्छ्रयमेकया परस्य ॥ २८ ॥

द्युचरेति—यदा एको द्युचरो ग्रहः परभागगो शत्रुनवाशगतो भवेत् वायवा एको
मदगः सप्तमभावगतो वायवा वर्णनाथः यथा विप्राणां गुरुशुक्रौ स्वामिनौ क्षत्रियाणां
सूर्यभौमौ इत्यादिवर्णपतिर्ग्रहोऽपवर्णे निर्गतचलोऽपि भवेत्तदा सत्यं निश्चितं रचितं किंदि
तत् सदनं गृह कर्तृपदे एकया समया गुरुवर्षेण परस्य शत्रोः श्रयं दत्तं संमेति मानेति
परहस्तगत भवेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

गणकं बहुशास्त्रभेददक्षं कृतहस्तं सदयक्षमं सुशीलं ॥

परिपृच्छथ समारभेदगारं गतलोभं प्रतिष्ठाभिमानमुक्तम् ॥ २९ ॥

अथ गणकादेशेन गृहारंभमाह—गणकमिति ॥ सुधीरगारं गृहं समारभेत् प्रारभेत् किं कृत्वा गणकं 'ज्योतिर्विदं परिपृच्छथ संकथ्य किभूतं गणकं बहुशास्त्रभेददक्षं अनेकशास्त्रभेदे कुशलं पुनः किभूतं गणकं कृतहस्तं शिक्षितं 'कर्म हस्तमुखाः कृताः' इति हैमः । पुनः किभूतं सदयक्षमं दयाक्षमायुक्तं पुनः किभूतं सुशीलं शोभनाचारं पुनः किभूतं गतलोभं पुनः किभूतं प्रतिघः क्रोधः अभिमानोऽहंकारस्ताभ्यां मुक्तं रहितं ॥ २९ ॥

तदुदीरितकालनीतिशुद्धौ खलु तेनैव सुसूत्रधारयुक्त्या ॥

घटयेदुरजं यथोपसारो नृवरो निर्मलमानसः सुदेशे ॥ ३० ॥

अथ सूत्रधारैर्गृहकरणमाह—तदुदीरितेति ॥ खलु निश्चितं नृवरो नरश्रेष्ठस्तथा तत् उरजं गृहं घटयेत् कस्यां तेनैव गणकेनैव, उदीरितकालनीतिशुद्धौ कथितकालनिर्णयशुद्धौ कथा कृत्वा सुसूत्रधारयुक्त्या सुशिल्पियुक्त्या किभूतो नृवरः यथोपसारः यथा उप समीपे सारो द्रव्यं यस्य स पुनः किभूतो निर्मलमानसः स्वच्छचित्तः पुनः कस्मिन् सति सुदेशे उत्तमदेशे सर्वा शुद्धिर्भात्या इत्यर्थः अन्यत्र यथाप्तशुद्धौ वा ॥ ३० ॥

आसन्ना ये कंटकक्षीरशाला ह्यावासे स्युः पर्यवस्थातृकामाः ॥

अभ्यर्णोर्द्रियोऽवकेशी स शश्वत्तत्कर्तारं नष्टसूतिं विधत्ते ॥ ३१ ॥

अथ शालिन्या समीपदुष्टवृक्षगृहं सापवादमाह—आसन्नेति ॥ हि अवधारणे ये आसन्ना गृहसमीपस्थाः कंटकीवदर्याक्षीरशालाः क्षीरवृक्षा राजादनादयः शालाः साधारणा वृक्षा 'शालः सर्जस्रुः स्मृतः' इति वैजयंती । आवासे गृहे पर्यवस्थातृकामाः पर्यव गृहं तत्र तिष्ठतीति पुमान् तस्यातृकामो मरणकामो येषां ते मरणदायका इत्यर्थः । पुनरभ्यर्णो गृहसमीपस्थो योऽद्रिर्वृक्षोऽवकेशी 'बंध्यवृक्षोऽवकेशी स्यात्' शश्वन्निरंतरं स बंध्यवृक्षस्तत्कर्तारं गृहकर्तारं नष्टसूतिं नष्टा मृता सूतिः संततिर्यस्य स तं विधत्ते करोति ॥ ३१ ॥

अर्कोन्मत्तः स्नुह्यारिष्टाख्ययासाः शाकव्याधग्रंथ्यपामार्गमुख्याः ॥

उद्धर्तव्यास्ते समूला मनुष्यैर्धामोन्मानक्षोणिगा धामकृत्ये ॥ ३२ ॥

अथ धामस्थानस्थानकर्मादिवृक्षानुच्छेदनीयानाह—अर्कोन्मत्त इति ॥ ये अर्कः प्रतीतः उन्मत्तो घत्तूरः स्नुहिः धोहरिः 'स्नुहिर्वज्रो महातरुः' इति हैमः । अरिष्टाख्यः फेनिलः निंबो यियासः 'यवासक' इति निबंटः । द्वेष्टे बहुवचनं शाकः सागः व्याधः 'कर्णिकारे परिव्याधश्च व्याधवत्' इति शब्दप्रभेदः । अस्थितरुभेदः अपामार्गः अवाडो इति माषा इति मुख्याः प्रमुखाः संति मनुष्यैस्तेऽर्कोदयो वृक्षाः समूला उद्धर्तव्या उत्पाटनीयाः कस्मिन् धामकृत्ये गृहनिर्माणे किभूतास्ते धामोन्मानक्षोणिगा गृहप्रमाणभूमिगताः ॥ ३२ ॥

अग्न्यो बोधिः पृष्ठमश्वेदवासः स्यादावासे निर्मितोऽनंतरस्थः ॥
शस्ता धिष्ये पूजिताश्चाग्निपा ये नैकट्यास्तद्योगतस्तेऽपि शस्ताः ॥३३

अथ गृहसमीपबोधिवृक्षादिफलमाह—अग्न्य इति ॥ चेद्यादि अग्न्य आवासस्याग्रगतः च पुनः पृष्ठम आवासपृष्ठगतो बोधिरश्वत्थ स्यात् । अनंतरस्थोऽंतररहितो निर्मित आवासः अवास न विद्यते वासो वसनं यस्मिन् स शून्य स्यात् इत्यर्थः । च पुनः ये अग्निपा वृक्षा पूजिता पूजा प्राप्तास्ते धिष्ये गृहे शस्ता शोभना स्युस्तद्योगतः पूजितवृक्षसयोगात् ये नैकट्याः समीपववास्तेऽपि वृक्षा गृहे शस्ताः ॥ ३३ ॥

शाखी निंद्यो नीरसो निबुशालस्तालः कालो द्वारि वाराशयश्च ॥
प्रासादो नो मंजुलः पृष्ठदेशे वानस्पत्यं दारु नेयं न गेहे ॥ ३४ ॥

अथ गृहमाश्रित्य शुष्कवृक्षादिदूषणमाह—शाखी इति ॥ द्वारि गृहद्वारे नीरस शुष्कः शाखी वृक्षो निंद्य स्यात् । निबुशालो निंद्य स्यात् । कालः कृष्णस्तालो निंद्य स्यात् । च पुनर्वा-
राशयो जलाशयः कृपादि निंद्य स्यात् । पुनः पृष्ठदेशे गृहपृष्ठे प्रासादो देवगृहं मंजुलः शो-
मनो न स्यात् । पुनर्गेहे वानस्पत्यं दारु काष्ठं न देयं न नेयं 'फलति ये विना पुष्पं वनस्प-
तीन् विदुर्बुधा' इति हल्ययुषः ॥ ३४ ॥

शालारंभे चेदपांपित्तकीला दृष्टा सन्नावासदाहादिपीडा ॥

ओतुर्वाहिस्तत्र दृष्टोऽरिपुष्टिर्वादो मांघं रोदनं संश्रुतं स्यात् ॥ ३५ ॥

अथ गृहारंभेऽग्निज्वालादिदूषणं दर्शयति—शालारंभेति ॥ चेद्यादि शालारंभे गृहारंभे
अपांपित्तकीलाऽग्निज्वाला दृष्टा स्यात्तदा आसन्ना समीपभूता आवासदाहादिपीडा भवेत्
१६९९कालेन गृहं भस्मसाद्भवेदित्यर्थः । पुनस्तत्र गृहारंभे ओतुर्माज्जरोऽहि सर्पो वा दृष्ट-
तदाऽरिपुष्टिः शत्रुशुद्धिः स्यात् । यदा रोदनं मार्जारदीनां संश्रुतं स्यात्तदा वादो
मांघं वा स्यात् ॥ ३५ ॥

शालादोष्णां साधने सूत्रपाते छेदोऽर्त्यं चेद्ग्रंथिरार्त्यं च कर्तुं ॥

कैलोभंगः स्याद्भुजे क्ष्मानिमग्नः कीलः गून्यं विस्मयः खातदेशो ॥ ३६ ॥

अथ गृहारंभे सूत्रकीलच्छेदे दोषमाह—शालेति ॥ चेद्यादि शालादोष्णा गृहभुजानां
सूत्रपाते सूत्रन्यासकरणे उदस्त्रोटनं ग्रंथिर्वा भवेत्तदा कर्तुर्गृहकारस्य आर्त्यं एव वा
दायै भवेत् । खातदेशो कैलोभंगः कीलभंगता रुने रोगाय स्यात् । यदा क्ष्मानिमग्नः कील-
स्तदा शून्यं विस्मय आश्चर्यं स्यात् ॥ ३६ ॥

खाते ताम्रं खन्यमाने प्रपथ्येद्यावाणं वा केशमंगारमस्थि ॥

चर्मायश्चेदापदो राजर्भितेः सत्सिद्धिं सद्भस्तु दृष्टं तनोति ॥ ३७ ॥

अथ खाते दृष्टवस्तुफलमाह—खात इति ॥ 'चेद्यादि', खन्यमाने खाते । सुधीस्तावत् प्रथम आवाण वा केश वाऽगार वाऽस्थि वा चर्म वाऽयो लोह वा प्रपश्येत्तदा राजभीते. रान भयात् आपद स्यु । सद्रस्तु शुभवस्तु दृष्ट सत् सत्सिद्धि शुभसमृद्धिं तनोति विस्तारयति ॥ ३७ ॥

सौम्येऽनेहस्यादृते साधयित्वा खातं तावत्स्वाययुग्गेहपीठं ॥

दृश्यं प्रोक्तं तद्व्याद्यं हि सर्वं मित्रं पश्चादुत्तराद्यं विधेयम् ॥ ३८ ॥

अथ गृहारमे उत्तरायणादिशुद्धिमाह—सौम्य इति ॥ सौम्ये उत्तरायणेऽनेहसि काष्ठे आदृतेऽङ्गीकृते तावत् प्रथम खात साधयित्वा स्वाययुग् शुभाययुक्त गेहपीठं दृश्यं वि लोकनीय च पुनस्तद्व्याद्यं सर्वं मित्रं च प्रोक्तं पूर्वोक्तं 'दृश्यं' विलोकनीयं पश्चात् उत्तराद्य उत्तरदिग्गतं गृह विधेयं कर्तव्यं ॥ ३८ ॥

धारामंडलशालपत्तनकुलप्रासादवापीप्रपाकासारांगुष्ठ पीठमंडप-

दरीपट्टासनद्वारु च ॥ संसत्पीठनृत्यानवारणगृहानोमंगिनीखा-

रिकामंजूषाशयनादिचिवरगणे ग्राह्यः सदायो बुधैः ॥ ३९ ॥

अथ शुभायस्य ग्राह्यस्थानमाह—धारेति ॥ बुधे सदाय शुभायो ग्राह्य केपु धारा मंडलं एषिवीपीठ शाल प्राकार पत्तन नगर कुल गृह प्रासादो देवालय वापी प्रपा पानी पशाला कासार सर अधु कूप एषा द्वेष्टे एषु पुन कासु पीठ मंडप जनाश्रय दरी कैदरा पट्टासन द्वार आसु पुन कस्मिन् संसत्पीठ सभापीठ नृत्यान याव्ययान वारणगृह अंबारी अन शकट रथादि मंगिनी नौका खारिका मंजूषा पेदा शयनादिर्मन्त्रिकादि चिवर एषा गणे समूह ॥ ३९ ॥

वेदीपीठसमस्तकुडरचनापट्टातपत्रध्वजक्षेत्राराममुखास्त्रतुर्यशिवि-

रासंदीवितानेष्वपि ॥ सौम्यायोर्हृतमो भवेदिति सति क्षमादे-

वताया ध्वजो राजन्ये नखरायुधो विशि गजो गौःपत्सवेऽन्येऽन्यगः ॥ ४० ॥

अथाधूरायस्य ग्राह्यस्थानमाह—वेदीति ॥ वेदी पीठ समस्तकुडरचना पट्टातपत्रं छत्र ध्वज क्षेत्र आरामो वाटिकादि मुखा प्रमुखा अस्त्र शस्त्र तुर्य वाद्य शिचिर पटमंड पादि आसदी वेत्रदृष्टपट्टासन 'स्याद्वेत्रासनमासदी' इति हैम ॥ वितान उल्लोच एषा द्वेष्टे एषु सौम्य आयोऽर्हतम शुभतमो भवेत् इति सत्यपि क्षमादेवताया विभे ध्वज आय शुभतमः स्यात् । राजन्ये शत्रिये नखरायुध सिंहाय शुभतमो भवेत् 'राजन्ये बाहुसंभव' इति हैम । पुन. विशि वैश्ये गज आय शुभतमो भवेत् । पत्सवे पादजाते शुद्ध गोराय शुभतमो भवेत् । अन्ये खला आया अन्यगो कुर्विदधर्मकारा दिवर्णप्राप्ता शुभतमाः स्यु ॥ ४० ॥

करणे व्ययर्हाने स्यात्सिद्धिरायाधिके सदा ॥

विपरीतेऽन्यथा प्राग्वद्गौर्मित्रं सदत्र चेत् ॥ ४१ ॥

अथ व्यये आये न्यूनाधिके षडमाह—करण इति ॥ 'करण कारण विद्या वारणं क्षेत्रमुत्तम ॥
करणो जातिभेदश्च करणानां द्वियाण्यपि ' ॥ १ ॥ इत्यनेकार्थध्वनिमजया । करणे क्षेत्रे गृहे सदा
व्ययर्हाने आयाधिके सति अत्र गृहे सिद्धिः स्यात् विपरीतो व्ययाधिक आयर्हानोन्यथाऽ
सिद्धिः स्यात् । चेत् यदि प्राग्वत् पूर्ववत् भाद्यै राश्यादिभिर्मित्रं स्यात्तदात्र गृहे सत्
शुभ स्यात् ॥ ४१ ॥

गेहं षोडशभेदमुक्तमाद्यैः प्रस्तारैर्दिगर्लिदभेदभृतैः ॥

वक्ष्ये तानहमेभिरन्यभेदास्त्वन्यत्रापि सदेति साधनीयाः ॥ ४२ ॥

अथ ग्रहाणां षोडशभेदानाह—गेहमिति ॥ आद्यैराचार्यैः षोडशभेद गृहमुक्तं प्रोक्तं
कैः दिग् दिगर्लिदः ' प्रमाणः प्रवणोऽर्लिद ' इति हैम ॥ एतयोर्भेदभूतेर्भेदोत्पन्नैः प्रस्तारै-
रन्यभेदाः साधनीया इति हेतोरह तान् प्रस्तारान् वक्ष्ये ॥ ४२ ॥

विलिखेत्करणानुमानं गुरुप्रथमाधो लघुमाग्न्यरूपकान् ॥

लघुपृष्ठगुरुस्ततोऽखिला लघवो यावदयं विधिर्भवेत् ॥ ४३ ॥

अथात्र प्रस्तारं दर्शयति—विलिखेदिति ॥ सुधीराग्न्यरूपकान् प्रथमरूपकान् करणानुमानं
क्षेत्रप्रमितान् गुरुन् विलिखेत् । 'करण क्षेत्रमात्रयो' इत्यादि हेतुमानेकार्थ ॥ तत् प्रथमाधो लघुं
न्यसेत् लघुपृष्ठगुरुन् लिखेत् यावत् अखिला लघवो भवति तावदयं विधिर्भवेत् ॥ यत् ' पादे सर्व
गुरावाद्ये लघुं न्यस्य गुरोरध । यथोपरि तथा शेष भूय कुर्यादमु विधिम् ' १ अन्यच्च 'पुढम
गुरुदिद्व्यागे लघुया पिठविअप्यत्रादि एसरि सासरि सापती उवरिया पछिम देहि' २ ॥ ४३ ॥

सदनाभिमुखादिहभ्रमादपसव्यान्यदिशो लघुस्थले ॥

स्युरर्लिदमुदीरितं बुधैरिति षोडशभेदजा गृहाः ॥ ४४ ॥

अथ लघुप्रमाणस्थानं दर्शयति—सदनेति ॥ बुधैरेह लघुस्थलेऽर्लिदमुदीरितं प्रमाण
प्रोक्तं वस्मात् सदनाभिमुखात् गृहसन्मुखात् भ्रमान् अपसव्यान्यदिशं वामराष्ट्रात् वै
निश्चित इति षोडशभेदजा गृहाः स्युः ॥ ४४ ॥

ध्रुवश्चान्ये २ जय ३ नदो ४ स्वर ५ कांत ६ मनोरमं ७ सुमुखं ८ ॥

कुमुखं ९ क्रुर १० विपक्षे ११ धन १२ क्षया १३ क्रंद १४ विपुलानि १५ ॥ ४५ ॥

विजयं १६ षोडशभेदेरभिरूपेरुदीरितानि नामानि ॥

नाम्ना फलमिति सदृशं कलितं च वास्तुविभोरनिशाम् ॥ ४६ ॥

अथ षोडशगोहनामान्याह—ध्रुवेति ॥ विजयेति ॥ युग्मं अभिरूपैः पंडितैः सदृशरूपै-
र्मनोरमैर्वा षोडशभेदैर्ध्रुवादीनि नामानि उदितानि प्रोक्तानि च पुनरनिशं निरंतरं वास्तु-
विमोर्गृहस्वामिनो नाम्ना ध्रुवादिनाम्ना सदृशं फलं कलितं कथितं ॥ ४९ ॥ ४९ ॥

परे वदंतीति बुधा दुष्टाख्यं तत्सदंत्यजातीनां ॥

शुभवर्णानां सौम्यं केचित्सर्वाणि सर्ववर्णेषु ॥ ४७ ॥

अथ वर्णभेदेऽत्रमतमाह—पर इति ॥ परे बुधा इति वदति इतीति किं अत्यजातीना तत्
ध्रुवादि गृहं दुष्टाख्यं दुष्टनाम सत् शुभं स्यात् । शुभवर्णानां द्विजातीनां सौम्यं सौम्यसंज्ञं गृहं
वरं स्यात् । केचिदिति वदंतीति किं सर्ववर्णेषु सर्वाणि शोभनानि स्युः ॥ ४७ ॥

एवं द्विश्चयाद्दिक्षुशुभिर्भवंति धामन्यनेकधा भेदाः ॥

एभिश्च खडमेरोर्ज्ञानाय जायतेऽत्र किल सिद्धिः ॥ ४८ ॥

अथानेकधा गृहभेदान् दर्शयति—एवमिति ॥ एव धामनि गृहेऽनेकधा भेदा भवति
कामिर्द्विश्चयादिकुमिर्द्विश्चयादिभूमिभिः च पुनः किलेति सत्येऽत्र खडमेरोर्ज्ञानाय सिद्धिर्ना-
यते कैरोभिः ॥ ४८ ॥

मूलं भित्तेर्धर्मराजाशमुक्तं वारुण्याशं वा तदग्राशमग्रं ॥

कल्प्या भागा मूलतो व्योमगानामर्कादीनां द्वारमिष्टं सदंशे ॥ ४९ ॥

अथ दिगाश्रितभिन्नमूलफलमाह—मूत्रमिति ॥ धर्मराजाशं दक्षिणदिग्गतं भित्तेर्मूलमग्रं
श्रेष्ठं स्यात् वाऽथवा वारुण्या पश्चिमदिग्गतं वा तदग्राश उत्तरदिग्गतं भित्तेर्मूलं श्रेष्ठं
स्यात् । पुनरर्कादीनां व्योमगानां ग्रहाणां मूलतो भागाः कल्प्या पुनः सदंशे शुभग्रहाणा-
मक्षैर्द्वारमिष्टं श्रेष्ठं स्यात् ॥ ४९ ॥

शालाल्पत्वान्नवकाशः सदंशे द्वारो वान्यागारकोणादिवेधात् ॥

पापांशे तद्वामशाखा न दुष्या शेषं नेयं तत्तदा सौम्यभागे ॥ ५० ॥

अथ द्वारे नवाशादिशुद्धिमाह—शालेति ॥ सदंशे शुभग्रहनवाशे द्वारो द्वारस्य अव-
काशो न स्यात् कस्मात् शालाल्पत्वात् पट्टशालास्तोक्त्वात् वाऽथवाऽन्यागारकोणा-
दिवेधात् पुनः पापांशे दुष्टग्रहाशे तद्वामशाखा तस्य गृहस्य वामशाखा न दुष्या स्या-
तदा सौम्यभागे तद् द्वारमशेषं नेयं कर्तव्यं ॥ ५० ॥

दुष्टांशे तत्संभवश्चेत्तदा स्याद्द्वारे तत्र द्वारिकान्यत्र साध्वी ॥

कार्या केचित्सव्यगं तन्निभागं मुक्त्वा द्वारं ज्ञागिरींश्शस्थमाहुः ॥ ५१ ॥

अथ द्वारद्वारिकामोचनविधिरुमाह—दुष्टांश इति ॥ चेयदि दुष्टांशे तत्संभवो द्वारसंभवः स्यात्
तदा तत्र द्वारं स्यात् । पुनरन्यत्र अग्रभित्तौ वा यथावकाशस्थले साध्वी शोभना द्वारिका
कार्या न ह्यत्र द्वारमिति द्वारिका इति विग्रहः कर्तव्यः । केचित् उवाचः ज्ञागिरींश्शस्थमाहुः पुन-

शुरुनपांशगतं - द्वारमाहुः किं कृत्वा तन्निभागं तस्य - गेहस्य त्रिभागं - सव्यगं - वामगं
स्य कथा ॥ ५१ ॥

एवं दुर्गे पूर्वतो द्वारशुद्धिर्ज्ञेया द्वारे स्तंभकूपाद्रिमार्गेः ॥

नीचोच्चोर्वीदेवताभिश्च वेधस्त्याज्यश्रोचर्चद्वारि नैवं गवाक्षे ॥ ५२ ॥

अथ दुर्गादिद्वारे वेधं त्यज्यन्नाह-एवं दुर्ग इति ॥ सुघोभिरेवं दुर्गे निर्धृतौ दुर्गे कृते सति
द्वारशुद्धिर्ज्ञेया च पुनर्द्वारे वेधस्त्याज्यो वर्जनीयः कैः स्तंभकूपाद्रिमार्गेः स्थूणाकूपवृक्षमार्गैश्च
पुनर्गोचोच्चोर्वीदेवताभिः उच्चनीचभूमीभिः देवतामूर्तिभिश्च पुनरूर्ध्वद्वारि गवाक्षे एवंविधो वे
धस्त्याज्यो न स्यात् ॥ ५२ ॥

वेधे सत्यप्यत्र वेधो न दृश्योऽतश्चेत्तद्विघ्नैकसूत्रेण दूरे ॥

स स्यात्सर्वत्रैव वेधप्रबोधो ज्ञेयो विद्वज्ज्ञानिभिर्नित्यवेध्ये ॥ ५३ ॥

अथ दूरवेधे निर्दोषतामाह-वेध इति ॥ चेत् यदि अतो द्वारतस्तद्विघ्नैकसूत्रेण गृहात् द्वि-
णसूत्रेण दूरवेधे सति अत्र द्वारवेधो न दृश्यो विलोकनीयो न स्यात् । अपि निश्चितं स वेध
प्रबोधो वेधज्ञानं सर्वत्रैव विद्वज्ज्ञानिभिर्वेधज्ञैर्ज्ञेयः स्यात् कस्मिन् नित्यवेध्ये निरंतरवेधत्वमात्र-
देशे यथा शरेण वेध्यं तत् शराख्यकं अन्यथा न ॥ ५३ ॥

मृदुलघुपुरुहूतर्क्षादितेयानिलेषु त्रिदशसचिवसोमज्ञोशनोवासरैश्च ॥

वलजकृतिरभीष्टा दुष्टयोगाद्यदुष्टैर्युवतिर्धजितुमर्धरक्षोदये साधुकेंद्रे ५४

अथ द्वारकरणे नक्षत्रशुद्धिमाह-मृद्विति ॥ वलजस्य द्वारस्य कृतिः करणमभीष्टा शुभा
स्यात् केषु मृदूनि लघूनि पुरुहूतो ज्येष्ठा आदितेयं पुनर्वसू आनिलं स्वाती एषु च पुनः
कैः त्रिदशसचिवो गुरुः सोमः ज्ञो बुधः उशनाः शुक्रः एषां वासरैर्दिनैः किंभूतैः दुष्टयोगादि-
भिरजुष्टैरभिष्टैः पुनः कस्मिन् युवतिः कन्या नितुमं मिथुनं धीरर्क्षाणि स्थिरराशयः एषा उ-
दये लभे किंभूते साधुकेंद्रे ॥ ५४ ॥

दिनकरकिरणाक्रान्तर्क्षतो द्वारचक्रे युग४यम २युग४दृग्वेद-

४द्वि२वेद४द्वि२रामैः ३॥ मितमुडगणभागं विन्यसेदूर्ध्वतो-

तर्नियममखिलदिग्गं नाप्यधःकोणभं सत् ॥ ५५ ॥

अथ द्वारचक्रे भाविन्यस्यति-दिनेति ॥ मुषीरूर्ध्वतोऽनरनियम मध्यपर्यंतं उडुगणभागं न्य-
सेत् कस्मिन् द्वारचक्रे कस्मात् दिनकरकिरणाक्रान्तर्क्षतः सूर्याक्रान्तनक्षत्रान् किंभूतः उडुगण-
भागं युग चत्वारः ४यमः द्वौ २ युगानि चत्वारः ४दृग् द्वौ २ वेदाः चत्वारः ४ द्वौ २ वेदाः
चत्वारः ४द्वौ २रामाख्य ३युग्मौ न अपि निश्चिनं अखिलदिग्गं मन्ये समस्तदिग्गतं ॥ अथ
कथं ॥ अथ कोणभं अधोदिग्गत्वं चतुर्दिग्गत्वं च नष्टं सन् शुभं न स्यात् ॥ ५५ ॥

ध्रुवधिपणभमेपादित्यदेर्मित्रचित्रारुरुकवसुभपौष्णैर्मौ
लिदारु प्रदद्यात् ॥ तराणिधिपणकाव्याहःसुधीस्त्र
लम्ने विक्रयुतिषु च ताराजवीर्ये सुघस्त्रे ॥ ५६ ॥

अथ मोमदारुमोचने नक्षत्रादिशुद्धिमाह—ध्रुवेति ॥ सुधीः मौलिदारु पदकं प्रदद्यात्
मोम भारवद् इति भाषा स्यापयेत् कैः ध्रुवाणि विपणमं पुण्यः मैशं श्रवणः आदित्यं पुनर्वसू
दोर्हस्तः मैत्रमनुराधा चित्रा रुरुमृगशीर्षं को वायुः स्वाती वसुमं धनिष्ठा पौष्णं रेवती एतद्वैः
पुनः केपु तराणिः सूर्यः धिपणो गुरुः काव्यः शुक्रः एषामहस्तु दिनेषु किंभूतेषु विक्रयुतिषु
कुर्यादितिषु च पुनः कस्मिन् धीरे स्थिरे लम्ने पुनस्ताराजवीर्ये चन्द्रबले सुघस्त्रे सत्तियौ ॥ ५६ ॥

शालास्वशेषास्वयमादृतो विधिः प्रपाश्रमाद्यापणमंदुराहिषु ॥

गर्वाणगेहे वलजोर्ध्वदारुजा दृश्या न शुद्धिः कचिदित्युदीरितं ॥ ५७ ॥

अयोपसंहारेणाह—शालेति ॥ वृक्षैरयं विधिरादृतोऽङ्गीकृतः क अशेषासु शालासु
अथ पुनः प्रपा जलपर्व आश्रमादिः आश्रमस्तु मुनिस्थानं आपगः हृष्टः मंदुरा 'वानीशाला
सु मंदुरा' इति हैमः । पुनर्गर्वाणगेहे देवगृहे वलजोर्ध्वारुजा द्वारोर्ध्वकाष्ठजाता शुद्धिर्न दृश्या
नो विलोपनीया इति कचित्स्थाने उदीरितं ॥ ५७ ॥

गृहे न रामायणभारतावहं चित्रं कृपाणाहवर्मिद्रजालवत् ॥

शिलोच्चयारण्यमयं सदासुरं भीष्मं कृताक्रन्दनं त्वनंवरम् ॥ ५८ ॥

अथ गृहे दुष्टलेख्यानि निषेधानि—गृह इति ॥ गृहे एतच्चित्रं आलेख्य न सत् श्रेष्ठं
न स्यात्तदाह रामायणभारतावहं रामायणभारतयुद्धयुक्तमालेख्यं कृपाणाहव त्वङ्गयुक्तं
चित्रं इन्द्रजालवत् इन्द्रजालयुक्तं चित्रं शिलोच्चयारण्यमयं पर्वतवनस्वरूपं चित्रं आसुरं असुर-
संबन्धि चित्रं भीष्मं भयानकं चित्रं कृताक्रन्दनं दीनरोदनकृत्तराचित्रं अनंरं दिगंबरचित्रं ॥ ५८ ॥

वराहशार्दूलशिवापृदाकवो गृध्राभिधोलूककपोतवायसाः ॥

शशैणगोधादिवकादिपत्रिणो विचित्रिता नो शरणे शुभावहाः ॥ ५९ ॥

अथात्र दुष्टपशुपक्षिचित्रं निषेधति—वराहेति ॥ एते विचित्रिताः शरणे गृहे शुभावहाः
सुखकारका न स्युः । तानाह वराहः सूकरः शार्दूलो द्वीपी शिवा फेरत्र पृदाकुः सपः
गृध्राभिवः सिंघाणकः उलूकी वृकः कपोतः वायसः शशः एणो मृगः गोसादिः वकादिः
पक्षी पक्षी एषां द्वंद्वे एते ॥ ५९ ॥

एतत्तु रामायणभारतादिकं चित्रं गृहाग्राह्यमगर्हितं ग्रहे ॥

तदेव यच्चादरतो विचित्रितं मत्प्रसादादिषु पुण्यसारदम् ॥ ६० ॥

अथ चित्रोपसंहारेण ग्रासादिपानिषेधतामाह—एतदिति ॥ एतत् रामायणभारतादिर्न
चित्रं गृहाग्राह्यं गेहे न स्यात् । तु पुनर्ग्रहे नवग्रहग्रासादिषु अगर्हणं श्रेष्ठं स्यात् । च पुनर्यद
तदेव आदरतः सादरेण मठग्रासादादिषु विचित्रित पुण्यसारद धर्मबलकरं भवेत् ॥ ६० ॥

सुधावलेपश्च चितेरुपक्रमः स्यादिष्टकानामिनजेनवारयोः ॥

लघुध्रुवैर्द्रांत्यमृगश्रवस्वलं स्थिरोदये वैद्रसुवस्तिकाहनि ॥ ६१ ॥

अपेष्टकाचयनादिकृत्यमाह—सुधेति ॥ अलमित्यवधारणे इष्टकानां चितेरुपक्रमः यय-
नक्रिया च पुनः सुधावलेपः छोलपः स्यात् । ऊ इनजः शानिः इनः सूर्यः एतद्धारयोः पुनः
मेघे लघूनि ध्रुवाणि ऐंद्रं ज्येष्ठा आत्यं रेवती मृगो मृगशीर्षं श्रवः श्रवणः एषु च पुनः
स्थिरोदये स्थिरलग्रे वा इति पश्चात्तरे इंद्रस्य सुवस्तिकः पुरोहितो गुरुस्तस्याहनि 'पुरोभास्तु
पुरोहितः सुवस्तिकः' इति हैमः ॥ ६१ ॥

अनारमंदारुणसूतवासरा वैरंचनैरैनचलाद्यधैपणैः ॥

समैत्रवर्गैरुदिता नृभोदये सौधे कुलेऽन्यत्र च चित्रकर्मणि ॥ ६२ ॥

अथ सौधादौ चित्रकर्मशुद्धिमाह—अनारोति ॥ सौधे कुले सौधं तु नृपमंदिरं सुधाव-
लेपगृहेऽन्यत्र च चित्रकर्मणि अनारमंदारुणसूतवासरा उदिताः प्रोक्ताः आरो भौमः मंदः
शानिः अरुणसूत्रः अरुणः सूतः साराधिर्यस्य स सूर्य एभ्योऽन्यवासराः सौम्यवारा इति
कैः वैरंचं रोहिणी नैर पूर्वाषाढा ऐन हस्तः चलसंज्ञानि आद्यं अश्विनी धैपणं पुण्यः एषां द्वे
एभिः किंभूतैः समैत्रवर्गैः भैत्रसंज्ञानक्षत्रयुक्तं पुन कस्मिन् नृभोदये नृलग्रे सति ॥ ६२ ॥

स्वस्थानमंत्र्यां च महानसः शुचेर्दिश्यर्णसोंऽशःसमवर्तिनोऽस्त्रगोः ॥

कव्यादकोणेशनगोऽपौर्यगा सस्यस्थलं सद्विशि मातरिश्वनः ॥ ६३ ॥

कुलकं । अथ पूर्वोद्दि घनन्यासादिगृहाणि दर्शयति—स्वयेति ॥ एषा दिशि स्वस्थान
घनगृहं सत् शुभं स्यात् । च पुन शुचेर्दिशि अग्निदिशि महानसः पाकस्थानं सत् । पुनः सम-
वर्तिनो यमस्य दिशि अर्णसो जलस्वाशो जलस्थानं सत् शुभः । 'समवर्तिनालौ' इति हैमः ॥ पुन
कव्यादकोणे नैर्ऋत्या नक्षत्रस्य आयुधस्य गौर्भूमिरायुधगृहं सतीत्यर्थः । पुनः अपौर्यगा
अपःशब्दः सकारांतोपि छोवालिग इति शब्दप्रभेदस्तेन अपौर्यगा इति वाक्यसिद्धिः । नक्षत्रा-
भिदिग्गताऽश्चनगोर्भोजनभूः शुभा पुन सस्यस्य गान्धस्य स्थलं गृहं मातरिश्वनो वायोर्दिशि
सत् इति ॥ ६३ ॥

स्थलं भवेदोकासि शायनं शुभं स्वपालदिग्गं च सुरार्चनस्थलं ॥

शिवाशमाद्येरिति भापिनं बुधैस्तत्पार्श्वं मध्यमतोऽन्यथाधमम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीराविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदापरणे गृहारंभाध्यायः षोडशः ॥ १६ ॥

स्पष्टमिति ॥ ओषादि गृहे स्वपाददिग्गं घनशदिग्गं शायनं शयने भनं स्थले

शुभं भवेत् । शिवाशं ईशानकोणगतं सुरार्चनस्थलं देवार्चनगृहं शुभं भवेत् । च पुनस्तत्पाश्वर्यं
मध्यं मध्यमं अतोऽन्यथाधमं शायनस्थलं वेदगृहं च स्यात् इति आद्यैर्वैभोषितं ॥ १४ ॥

इति श्रौतौगिमीय गच्छानिरात्रनद्यरपुरदरथी महिमाप्रभसूरीश्वरचरणसरोहचच-
रोकायमानक्षिप्यभावस्त्वविरचिताया श्रीकाळिदासकृतज्योतिर्विदामरणस्य मुखनो-
भिकायां गृहप्रवेशाध्यायः षोडशः ॥ १६ ॥

गृहप्रवेशप्रकरणम्

अथेह शालारचनादनन्तरं ब्रुवेऽहमावेशविनिर्णयं तथा ॥

यथा चतुर्वर्गफलं श्रियं कुलं प्रविश्य गेही लभतेऽपसंशयम् ॥ १ ॥

अथ शालादीनां करणान्तरं प्रवेशो घटतेऽनः प्रवेशाध्यायसंधानमाह—अय इति ॥
अपान्तरं इहाध्याये शालारचनान्तरं गृहकरणान्तरं तथा तेन प्रकारेणाहमावेशवि-
निर्णयं गृहप्रवेशनिश्चयं ब्रुवे यथा येन प्रकारेणापसंशयं निश्चयेन गेही गृहस्थश्चतुर्वर्गफल-
श्रियं चतुर्वर्गाणां फललक्ष्मीं लभते प्राप्नोति किंलुत्वा कुलं गेहं प्रविश्य ॥ १ ॥

निकेतनावेशविधेरहर्पतेरमीनसौम्यायनमातनोति शं ॥

शुक्रांत्यवैशाखतपःसहस्यगं सुरासुराचार्यसुदर्शनावहम् ॥ २ ॥

अथ गृहप्रवेशेऽयनादिशुद्धिमाह—निकेतेति ॥ अहर्पतेः सूर्यस्य अमीनसौम्यायनं
कर्तृपदं शं सुखमातनोति पिस्तारयति कस्य निकेतनस्य गेहस्य आवेशविधिः प्रवेशविधि-
रस्य स तस्य पुरुषस्य किंभूतममीनसौम्यायनं शुक्रो ज्येष्ठः आत्यः काल्गुनः वैशाखः तयो
माघः सहस्यः पौषः एषां द्वे एषु गतं पुनः किंभूतं सुरासुराणां देवदेत्याना आचार्य
गुरुशुक्रौ तयोः सुदर्शनावहं शुभदर्शनधारकं ॥ २ ॥

रिक्ताकलाचारिणि राजनि प्रियो गृहप्रवेशो न च पर्वगामिनि ॥

कुयोगभद्रापमसाम्यवादिने दुष्टैर्दशामूतिभलग्रपेण्डुभिः ॥ ३ ॥

अथ बलहानचंद्रादिदोषे प्रवेशं निषेधति—रिक्तेति ॥ गृहप्रवेशः प्रियो न हितो नो
स्यात् कस्मिन् रिक्ताकलाचारिणि रिक्ताकलाः रिक्तास्तिययः ४।९।१४। ताम् गामिनि
पर्वगामिनि च राजनि चंद्रे सति पुनः कस्मिन् कुयोगः भद्रा अपसाम्यं फातिसाम्यं एतानि प्रति
अस्येति एतद्युक्तदिने पुनः दशापः मूतिभपः जन्मनक्षत्रत्वामी लग्नो लग्नशामी इंदुः एषां
द्वे शभिः किंभूतेः दुष्टैर्दशामूतिभलग्रपेण्डुभिः ॥ ३ ॥

दैत्यादितेयार्चितपादविद्यमाचारा वरा वस्तुनिवेशने भृशं ॥

साधारणोऽत्र द्विजराजवासरे विगर्हितो राजनभोगवासरो ॥ ४ ॥

अथ गृहप्रवेशे वारशुद्धिमाह—दैत्यादोति ॥ भृशमत्यर्थं दैत्यादितेयौ असुरसुरौ
ताम्यार्मर्चितौ पादौ ययोस्तौ शुक्रगुरु विन्बुज शनि एषा द्वे एते वारा वरा श्रेष्ठा स्यु
कस्मिन् वास्तुनिवेशने गृहप्रवेशे पुनरत्र प्रवेशे द्विजराजवासरश्चद्रदिन साधारण स्यात् ।
पुनरत्र राजनभोगवासरौ क्षत्रियग्रहवासरौ रविभौमौ विगर्हितौ सक्तौ स्त ॥ ४ ॥

मरुदांगिरसोऽडुवासवध्रुवयादोऽर्यभैत्रवर्गभैः ॥

प्रविशेन्नवमालयं नरो गतदोषैरपि भूषणार्चितैः ॥ ५ ॥

अथ वेतालीयेन गृहप्रवेशे भृशुद्धिमाह—मरुदाति ॥ नर पुमान् नवमालय नूतनगृह
प्रविशेत् कै स्फुरति सूर्याक्रमणरहितानि आगिरसोऽडु पुष्यवासव धनिष्ठा पुष्यणि यादोर्य
भ यादसा जलगतनामर्थे स्वामी वरुणस्तस्य भ शततारा मेत्रवर्गभानि मित्रसत्त्वानि
एषा द्वे एतै किंभूतैर्गतदोषैर्दोषवर्जितैरपि पुनर्भूषणार्चितै सुयोगाल्भै ॥ ५ ॥

भरवीदुषु यैर्निवेशनं कलितं द्वित्वमिहापि जीवकैः ॥

इदमाहतमेभिरोक्तसोऽभिजिदं शुच्युसहो नभोनुगम् ॥ ६ ॥

अथात्र जैनमतं स्वमतं द्रष्टव्यम्—भरवीमिति ॥ यर्चोक्तै क्षणैर्विगबरेरिति शब्द-
र्याया श्वेतावरैरपि इह लोके भरवीदुषु राशिसूर्यचन्द्रेषु द्वित्व द्वौ द्वा कलित प्रोक्त 'द्वौ द्वौ
र्वातू भगणौ' इति शिरामणौ । 'द्वोऽशशिदोरविपेटमे' इति जैनदर्शनेोक्ते । 'जीवको वृद्धिनी
विनि । क्षणे प्राणके पीतसालसेवकयोर्द्वे ॥ १ ॥ 'यालग्राहे' इति हेम ॥ 'जीवको जैन इति
हलायुध' तैरेभिर्वावरैरपि ओक्तसो मेहस्य निवेशनं प्रवेशनमाहतमगीकृत किमत निवेशन
अभिनिश्चय अशुच्य सूर्यदिन सहा मार्गशीर्षा नम श्रावण एषु अनुग प्राप्त अतो मयापि
एषा मतमगीकृतमित्यर्थ ॥ ६ ॥

कलशेऽशुभचक्रसंप्रभे कुरुतापचक्रागराममे ॥

कदिगंतरकठपायुगे तलकठापरसौम्यभैर्वस्म ॥ ७ ॥

अथ कशचक्र तानि स्थापयति—कश इति ॥ कशे कुम्भे किंभूते अशुभचक्रसंप्रभे
सूर्यचक्रात् चक्रप्रभगे पुन किंभूते कु एव । कशे चतुर्गो मानचक्रं मर्षादीदृश्य ४।
४।४।४।रामास्त्रीणि ३ राम स्त्राणि भानि यस्मि ३ तस्मिन् पुन किंभूते क मूर्द्धनि
७क्षिप्तु चतुर्दिक्षु १६ अतरे मध्ये ४ कठे ३ पायी गुदे ३ एतन्स्थानगते इति 'पान पायुर्गुदे
ज्युति' इतिहेम ॥ एव सप्तविंशतिभानि स्थाप्यान् ॥ अ कशमाह प्रवेशने कलशस्थापन वर
स्यात् । कै गुदे तल ३ कठे ३ अपरपश्चिम ४ सौम्य उत्तरस्या ४ एषु गतभर्तृक्षत्र, दृत्वा ॥ ७ ॥

अमृतादनवैद्यम कचिद्ददित धामनिवेशने शुभ ॥

शरणं ह्युत यदिगानन नृवरस्तद्विदास्यभे विरोत् ॥ ८ ॥

अथात्र किंचिद्विशेष दर्शयति—अमृतानि । नानि एतान् अमृतादना मुखाभ्यां दवास्तना
वैद्यो तयोर्भगवन्निर्वा धामनिवेशने गृहप्रवेशने शुभ गोदान प्राक्त । रि अवधारणे उत विवर्क

यादिगाननं दिङ्मुखगत शरण गेह भवेत् नृवरो नृपस्तत् गेह विशेत् कस्मिन् हरिदास्यमे
दिगमुखनक्षत्रे ॥ ८ ॥

अतिमिद्विशरीरभस्थिरानुदयानाहुस्मारवेशने ॥

चरमत्स्यलवान्यभागगानभिरूपाः शुभयोगवीक्षणात् ॥ ९ ॥

अथ गृहप्रवेशे लग्नशुद्धिमाह—अतिमीति ॥ अभिरूपा पंडिता अगारवेशने गेहप्रवेशने
उदयान् लग्नानि आहु कस्मात् समययोगवीक्षणात् शुभयोगविलोकेन किंभूतान् उदयान्
अतिमिद्विशरीरभस्थिरान् मीनवर्जिताद्विस्त्रमात्रस्तिरलग्नानि पुन किंभूतान् उदयान् चरम-
त्स्यलवान्यभागगान् चरमीननवाशेभ्योऽन्यनवाशगतान् ॥ ९ ॥

स्थिरराश्युदये प्रवेशनं विदधीतेति जगाद गालवः ॥

अपजूकनरोदये क्वचित्सदितीहोभयमादृतं मया ॥ १० ॥

अथात्रान्यमतेन स्वमत द्रव्यति—स्थिरास्ते ॥ गालवकपिरिति जगाद इति किं सुधी
स्थिरराश्युदये प्रवेशनं विदधीत पुन क्वचित्स्थानेऽपजूकनरोदये तुलारहिते नृराश्युदये
प्रवेशनं सत् शुभ इति हेतोरिह प्रवेशे मया उभयमादृतमगीकुन ॥ १० ॥

प्रतिभापध्वरकेंद्रगैः शुभैरशुभैः केंद्रलयात्स्यभान्यगैः ॥

प्रविधाय निवेशमौकस विविधं धामपदे शमश्नुते ॥ ११ ॥

अथ गृहप्रवेश भावगतग्रहफलमाह—प्रतिभेति ॥ गेही धामपदे गेहास्पदे विविधं श सुखं
मश्नुते प्राप्नोति किं कृत्वा ओकस गृहसवविन निवेश प्रविधाय कै. प्रतिभा पचमभाव ९
अध्वरो नवम ९ केंद्राणि ११४७१२० एषु गते शुभैर्ग्रहे पुन कै केंद्राणि ११४७१२०
ल्योऽष्टमः ८ आत्य भे द्वादशस्थान एभ्योऽन्यगतैरशुभैर्ग्रहे ॥ ११ ॥

जनिभादुत जन्मलग्नतः पृथुसारोऽत्र स राशिरोद्गमः ॥

चरराशिमपास्य तत्र वे कुलमावेशितमेति शं कुलात् ॥ १२ ॥

जनिभेति ॥ उत वितर्क जनिभान् जन्मराशितो जन्मलग्नतः पृथुसाग बहुवोय उपचयमवन
गत इत्यर्थः । उद्गम मन एवंविध स राशि स्थिरद्विस्त्रभायराशि स्यात्तदा तत्र समये
चरराशिमपास्य विहाय गेहिना कुल गेहमावेशित प्रवेशित सन् गेहा श सुखमेति प्राप्नोति
कस्मात् कुलात् गृहात् ॥ १२ ॥

सवनः कविमूनुरुद्धमे समदो राजसुतो मदा तदा ॥

ससुग्वो गुरुलयाश्रयादनिशं शसितशं तदालयम् ॥ १३ ॥

सवन इति ॥ यदा उद्गमे ग्रहे सवनस्त्वनुभावस्य कविमुनः शुरु स्यात् । समद सप्तमभावस्था
राजसुतो बुध स्यात् ॥ ससुग्वोश्रवणभावगतो गुरु स्यात्तदालयाश्रयात् गृहप्रवेशात् अनिश

सदा तद् गृहं शीतितश कथितसुखं स्यात् । किंभूतं गृह आ लक्ष्मीस्तस्या आलयः स्थानं य-
स्मिन्तत् ॥ ११ ॥

उदये १ च रसातले ४ शुभैरतितेजोभिर्गारवेशनं ।

निखिलश्रियमावहत्यदोऽपखलातर्यचरे पुरोदये ॥ १४ ॥

उदयइति ॥ अदोऽगारवेशनं कर्तृपद निखिलश्रियं सपूर्णलक्ष्मीमावहति विमर्ति कैरुदये
उग्रे रसातले चतुर्थभावे चातितेजोभिर्बहुबलयुक्तै शुभैर्गहैश्च पुन पुरोदये तनुलमेऽग्रे
स्थिरलमे किंभूतेऽपखलातरि अपगता खलाः क्रूरा अतरि मृत्यौ भावे यस्मिन् स तस्मिन् ॥ ११ ॥

उदितं सुरसूड सूतिकावसथस्याद्यबुधैर्विनिर्मितौ ॥

चतुराननशौरिभांतरे स्मृतभे हारि च तत्प्रवेशनम् ॥ १५ ॥

अथ सूतिकागृहकर्मशुद्धिमाह—उदितमिति ॥ सूतिकावसथस्य 'अरिष्ट सूतिकागृह' इति
हैम । तस्य विनिर्मितौ निर्माणकर्मणि आद्यबुधैः पुराणपटितै सुरसूड देवमातृनक्षत्रं पुन-
र्वसु उदित प्रोक्तं च पुनस्तत्प्रवेशन तस्य सूतिकागृहस्य प्रवेशन हारि शुभ स्यात् कस्मिन्
चतुराननो ब्रह्मा रोहिणी शौरिभं श्रवण. एते अंतरे मध्ये यस्मिन्स्तत्तस्मिन्नेवविधे स्मृतभे प्रो-
क्तनक्षत्रे ॥ १५ ॥

शयाश्विने शांकरसप्तिवास्तुनः सुत्रामभं सिंधुरबंधसद्भनः ॥

कोशौकसौऽतर्भसुपर्णकेतुभे प्रवेशनिर्माणविधौ विगृह्यते ॥ १६ ॥

अथ वृषभतुरगमादीनां शाळाकर्माह—शयेति ॥ शांकरा वृषभा सप्तयस्तुरगमा एषा
वास्तुनो गेहस्य प्रवेशनिर्माणविधौ सुवीभि शयाश्विने शया हस्त आश्विन अश्विनी अनयो
द्वे द्वे प्रथमाद्विवचनेन पद विगृह्यते अर्थवशान् विभक्तिपरिणाम पुनरपि सिंधुरमयसद्भनो इ-
स्तिबधनगेहस्य प्रवेशनिर्माणविधौ सुत्रामभ उयेष्टा विगृह्यते पुन । कोशौकसो भट्टारगेहस्य
प्रवेशनिर्माणविधौ अतर्भमभिनिह नक्षत्रानर्गतत्वात् सुपर्णकेतुर्गुरुद्वयनो विष्णुस्तस्यभ श्रवण
इमे द्वे कर्मपदे विगृह्यते सगृह्यते ॥ १६ ॥

आवासनिर्माणमृगांकभीरवः सादित्यनासत्यशयक्षशौरिभाः ॥

आरंभणे देवकुलस्य मंजुला मुक्तादितेयाश्विनमाद्रमामठे ॥ १७ ॥

अथ देवगृहादिकर्मशुद्धिमाह—आवासंति ॥ देवगृहादिकर्मगे देवगृहारभे आवासनिर्माण-
मृगांकभीरव गृहप्रारंभनक्षत्राणि मनुज शोभना स्यु किंभूता आदित्य पुनर्वसु ना-
सत्यमश्विनी शयर्थ हस्त शारिभ श्राण एते सहजतमाना पुनरिमास्तारा मठे छात्रप्रतिनो
गेहे मंजुला किंभूता मुक्ते त्यक्त आदिनेय पुनर्वसु आश्विनभ इमे द्वे याभिस्ता ॥ १७ ॥

सदोचितं पुष्करभं प्रपाह्नावदृश्यवेशोघटनं च तारयोः ॥

भगाजयोः क्षुद्रगणाश्रमक्रियापूर्वात्रयशेषापि नैव गर्हिताः ॥ १८ ॥

अथ जम्बूगृहादिकर्मशुद्धिमाह—सदोचितमिति ॥ प्रपाकृतौ पानीयशालाकरणे सदा पुष्करभ जलभ पूर्वापादा उचित योग्य । अदृश्य आपणस्य वेश प्रवेशो घटन मूर्त्यादिकृत्य च मगानयोस्तारयो पूर्वाकल्पुनीरोहिण्योवपये शुभ स्यात् । शुद्रगणाश्रमक्रिया तुद्यदेवस्थानानि इत्यर्थः लघुदेवगणाना देहरी इत्यादि गृहकर्मणि नेव गर्हिता शुभा इत्यर्थ । केपु पूर्वात्रयैशे अपि पूर्वाग्रिकं ऐशमाद्रा एषु ॥ १८ ॥

विशेष एषोऽत्र मयोदितः पृथक् शेषं ह्युभाद्यं निखिलं गृहोदितम् ॥
ग्राह्यं प्रवेशे च तथा विनिर्मितौ तथैव तत्क्षुद्रवदासुरोरजम् ॥ १९ ॥

अपोपसहारेणाह—विशेषोति ॥ यथात्राध्याये एष विशेष एषक उदित प्रोक्त । यथा प्रवेशे निर्मितौ च शेष निखिल भाद्य नक्षत्रादिकं गृहोदित गृहेषु प्रोक्त ग्राह्य स्यात् । तथैव तत्क्षुद्रवत् लघुदेवगणवत् देहल्याद्या तुल्य आसुरोरज असुरगेह न गर्हित ॥ १९ ॥

उग्रे नृपोत्तारमुपैति तीक्ष्णे राज्ञः कुमारः किल राजपत्नी ॥
मिश्रे क्वचित्कृत्तिकयाग्निदाहः समस्तभेदोरजसन्निवेशात् ॥ २० ॥

अथ गृहप्रवेशे उग्रादिमानि सापभादा-याह—उग्रइति ॥ उग्रे उग्रसङ्गे भे समस्तभेदो-
रजसन्निवेशात् ग्रहान् सपूज्य प्रवेशात् समग्रग्रहवास्तुपुननात् नृपोत्तार मृत्युमुपैति । एवं तीक्ष्णे नक्षत्रे राज्ञः कुमारो नृपसुतो मृत्युमुपैति मिश्रे नक्षत्रे राजपत्नी मृत्युमुपैति क्वचित् कृत्तिकया सहाग्निदाह इत्यात् ॥ २० ॥

नोल्कानिपातावनिकंपवासे काले निवेशोऽत्र वरो न दुर्दिने ॥
यानोदिताः सच्छकुना विलोमगा यच्छति शं धामनिवेशकारिणः ॥ २१ ॥

अथोल्कादिदोषप्रवेशमाह—नोल्केति ॥ अत्र गृहे निवेश प्रवेशो न वरः भेदो नो
स्यात् कस्मिन् उल्कानिपातोऽपानिकपो यस्मिन् दिने इमो जातो तद्दिने इत्यर्थ । अनयो-
र्वासरे वारे पुनरकाले दुर्दिनेऽकालजातमेवजाततमसि न वर ॥ अथ विलोमगा यानो
दिता मयाणोदिता सच्छकुना शुभशकुना शं मुख यच्छति ददति कस्य धाम-
निवेशकारिण ॥ २१ ॥

न योगिनी मंदिरपृष्ठयोगिनी त्रियोजिनी वेश्मनिवेशिनो वशा ॥
भवेद्यदा शूलमगारपृष्ठं त्वगाश्शूलो निलयप्रवेशकृत् ॥ २२ ॥

अथ गृहप्रवेशे योगिन्यादिदोष त्यनमाह—न योगिनीति ॥ यदा योगिनी मंदिर-
पृष्ठयोगिनी गृहपञ्चानुगामिनी न भवेत्तदा वेश्मनिवेशिनो गृहे प्रवेशकर्तृवशा स्त्री
त्रियोजिनी विशेषण योगिनी सयोगयुक्ता भवेत् । तु पुनर्यदागारपृष्ठं शूल भवेत्तदा
निष्ठप्रवेशकृत् गृहप्रवेशकर्ताऽगारशूलो गृहान् शूल रोगो यस्य स अपरा काष्ठकाष्ठक
मायग्रहो भवेत् 'शूल रुग्णशे ॥ यागे शूल तु पश्यत्या वरहेतुब कीलक' इति हेम-॥ २२ ॥

काले निकाय्यानुगते निवेशिनो काले निकाय्यानुगतिस्त्वं भवेत् ॥
पाशेऽपशोभे हि सराजमंडले स्वमंडले मंडलतामुपैति ना ॥ २३ ॥

काल इति—आदित्य उत्तरे काल इत्यनुसारेण निकाय्यानुगते गृहपृष्ठगते कोने
सति निवेशिनः प्रवेशकर्तुर्नरस्य अरं शीघ्रं निकाय्यानुगतिः प्रेतगतिर्मृत्युर्भवेत् ॥ तु
पुनः पाशे मे पाशनक्षत्रे निकाय्यानुगते सति अपगता शा लक्ष्मीः शं मुख वा यस्मात्
अपश एवंविधो ना पुमान् भवेत् । हि युक्तार्ये राजमंडले निकाय्यानुगते न ना पुमान् स्वमंडले
स्वजनवर्गे मंडलता प्रभुत्वमुपैति ॥ २३ ॥

विधाय वामं द्युमणिं पुरोग्रजां सनीरकुंभं विमलांगमानसः ॥
नरश्च वेदध्वनिभिः सुमंगलैः सतोरणद्वारमगारमाविशेत् ॥ २४ ॥

अथ गृहप्रवेशविधिमाह—विधयेति ॥ नरः पुमान् सतोरणद्वारं तोरणयुक्तद्वारमगारं
गेहमाविशेत् किरुत्वा वामं द्युमणिं सूर्यं विधाय पुनरग्रजान् विप्रान् सनीरकुंभं जलभृतवटं च
पुरोऽग्रे विधाय कैवेदध्वनिभिः सुमंगलैश्च किंभूतो नरो विमलांगमानसः निर्मलकायचित्तः ॥ २४ ॥

प्रविश्य पस्त्यं किल कालवेदिनं गुरुं च गोचीरधनैः समर्चयेत् ॥
विद्वांसमाप्तं गृहपस्तु शिल्पिनं दीनांस्तथा धान्यचयैश्च मागधान् ॥ २५ ॥

अथ गृहप्रवेशानंतरं कृत्यमाह—प्रविश्येति ॥ किलेति युक्तं गृहपो गृहस्वामी पस्त्यं
गेहं प्रविश्य कालवेदिनं दैवज्ञं गुरुं च गोचीरधनैः सुरमित्रत्वनैः समर्चयेत् पूजयेत्
पुनर्विद्वांसं कोविदं भातं प्रधानं राजनादिकं वा तु पुनः शिल्पिनं कारु समर्चयेत् । तथा
दीनान् भागधान् मगलपाठकान् धान्यचयैर्धान्यसमूहैश्च समर्चयेत् ॥ २५ ॥

तिष्येशानासत्यशयश्रवस्थिरेरलिंजरालीं च वितानमालये ॥
कोष्ठादिकं तल्पमहानसस्थितिं सदन्त्वशेषं तदुपस्करं न्यसेत् ॥ २६ ॥

अथ गृहे मांडादिनिवेशशुद्धिमाह—तिष्येति ॥ पुमान् सदन्विह शुभदिने आलये गेह-
शेषं समस्तं तदुपस्करं न्यसेत् स्थापयेत् । तान्याह अलिंजरालीं 'उत्रेवदि' इति भाषा ॥ वितान
चंद्रोदय कोष्ठादिकं धान्यकोष्ठादिकं तल्पमहानसस्थितिं शय्यास्थानं शुद्धिस्थानानि
के तिष्यः पुष्यः ईश आर्द्रा नासत्यमग्निनी शयो हस्तः श्रवणः स्थिरसंज्ञानि तैः ॥ २६ ॥

न दर्शरिक्ताकुयुगीश्वरांगजाः कृत्स्नक्षयोपस्करसाधने हिताः ॥
खट्वांगमृदारुतृणादिबुल्लिका नयेन् वा वासवपंचके कुलम् ॥ २७ ॥

अथ गृहोपस्करसाधनशुद्धिमाह—न दर्शेति ॥ उत्स्नतयोपस्करसाधने नमस्तगृहसम-
ग्रीसाधने दर्शरिक्ताकुयुगीश्वरांगजा हिता न स्युः । दर्शाऽप्या रिक्तास्तिवयः कुयुग्ं दुष्टयोः
ईश्वरांगजा भद्रा अथवा पत्न्यनरे गृहे नानवपंचके सनिष्ठापंचके खट्वांगमृदारुतृणादिबुल्लि-
काः कुटं गृहं न नयेत् । द्विकर्मकयनुत्तान् कुर्यादिति अभिहरणे कर्म ॥ खट्वांगानि च

श्यादीनि मृत्कार्यं तृणकाष्ठादिसंग्रह इति कोऽर्थः अविष्टोत्तरार्द्धादिपाणिपर्यन्तमेव पूर्व-
मत्रगर्हितमिदमापि वा पश्चात्तरेण धनिष्ठादिपंचके इति विशेषः ॥ २६ ॥

मघामृतगैनेज्यकुशर्क्षधरिभादितेयमैत्रेयु च वासवद्वये ॥

कवीज्यसोमेष्वुदकुम्भ्यधिक्रिया भद्राख्यरिक्तान्यतिथौ जलोदये ॥ २७ ॥

अथ गृहे जलस्थानस्थापनमाह—मघेति ॥ उदकुम्भ्यधिक्रिया जलकुम्भाधिकरणं पानी-
याभारणं स्थापनं स्यात् केषु मघा मृगो मृगशिरः ऐनं हस्तः ऐज्यं पुष्यः कुशर्क्षं मल्लं
पूर्वाषाढा धीराणि ध्रुवाणि आदितेयं पुनर्वसु मैत्रमनुराषा एषा द्वेष्टे एषु च पुनर्वसुसवद्वये धनिष्ठा-
युग्मे पुनः कस्मिन् कविः शुक्रः इज्यो गुरुः सोमः एषा वारि पुनर्मद्राख्यरिक्तातिथि-
भ्योऽन्यतिथौ पुनर्नलोदये जलराशिलग्रे ॥ २७ ॥

नवेऽमरस्थापनमामरे दिनेऽथो मंदिरे दृष्टसितार्यमंडले ॥

उत्सृष्टविश्वर्क्षमघार्यवासरे समाचरेद्राजवले दले सिते ॥ २८ ॥

अथ गृहे देवमूर्तिस्थापनशुद्धिमाह—नव इति ॥ अथामंतरं नवे नूतने मंदिरे सुधीरमर-
स्थापनं समाचरेत् कुर्यात् । कस्मिन् आमरे दिने उत्तरायणे पुनर्दृष्टसितार्यमंडले शुक्रगुरु-
दये सति पुनः उत्सृष्ट त्यक्तं विश्वर्क्षमुत्तराषाढा मघा च आर्यवासरश्च येन स तस्मिन्
उत्तराषाढामघागुरुदिनवर्जिते सिते दले शुक्लपक्षे राजवले चंद्रवले सति ॥ २८ ॥

रिक्ताशिवापक्षतिदर्शमुक्तैर्लघुध्रुवादित्यमृगांत्यमैत्रैः ॥

सकर्णयुग्मैर्गुरुसौम्यवारे नरोदये स्थापनमिष्टमस्य ॥ २९ ॥

अथ कृष्णमूर्तिस्थापनमाह—रिक्तेति ॥ अः कृष्णस्तस्य स्थापनमिष्टं शुभं अपवा
इष्टा मा लक्ष्मीर्यस्य स इष्टमो नारायणस्तस्य स्थापनं कर्तव्यमिति कैः रिक्तास्तिपयः शिवा
विष्टिः पक्षतिः प्रतिपत् दशोऽमा एषा द्वेष्टे एभिर्मुक्तैर्लघुनि ध्रुवाणि आदित्यं पुनर्वसु मृगो
मृगशिरः अंत्यं रेवती मैत्रमनुराषा एषा द्वेष्टे एतैः किंभूतैः सकर्णयुग्मैः अथधनिष्ठायुक्तैः
पुनः कस्मिन् गुरुसौम्यवासरे पुनर्नरोदये नृराशुदये ॥ २९ ॥

संस्थापयेत्स्थाणुमिहाभिजिच्छ्रवोभूतेशभाचार्यहिमांशुभीरुभिः ॥

ऐनीनजीवद्युपु भूभुवि कचिद्वमा३८कुर्योगैर्जितुमो३दयेऽनिराम् ॥ ३० ॥

अथात्र शिवलिंगस्थापनमाह—संस्थापयेदिति ॥ अनिशं मन्त्रा सुबोरेह गृहे स्थाणु शिव
संस्थापयेत् ॥ काभि अभिनिज्ज् अथः भूतेश ईश्वरस्तस्य भगवद्भाचार्यः पुष्यः हिमांशु-
भीरवस्तारा इत्यर्थः ताभिः पुनः केषु ऐनीः जनिः इनः सूर्यः नीलो गुरुः एषा द्युपु पुनः
केत्यंमाकुयोगैः अमाकुयोगराहितैः पुनर्नितुमोदये निपुनरग्रे कचिद्वसाने भूभुवि भौमवारे
स्थाणुस्थापनमुक्तम् ॥ ३० ॥

तिष्याभिजित्तामरसोदयाजभैर्विकर्तनाचार्यविदामहर्गतैः ॥

संस्थापितोऽजस्तनुते चतुर्विधं निपोदये वर्गफलं व्ययोगकैः ॥३१॥

अथ ब्रह्मस्थापनमाह—तिष्येति ॥ अजो ब्रह्मा चतुर्विधं वर्गफलं धर्मार्थकाममोक्षसं
बन्धु तनुते विस्तारयति किंभूत संस्थापित के तिष्य पुष्य अभिजित् तामरसोदय कम
रजो ब्रह्मा रोहिणी अजम श्रवण एषा द्वे एतैः किंभूतैर्विकर्तन सूर्य आचार्यो गुरु
विद् बुध एषा अहर्गतेर्दिनप्राप्ते पुन किंभूतैर्व्ययोगकै कुयोगराहितै पुन. कस्मिन् निपोदये
'कलशः कलसो निष' इति हेमोदये ॥ कुमोदये ॥ ३१ ॥

रुह्यत्तमागे शिवभे शिफाया श्रुतौ शये शक्तिगणप्रतिष्ठा ॥

शस्ता रवागिरसेऽर्यमेवा शस्त्रगंगनाक्षजित्मरविस्तरलग्ने १२ ॥ ३२ ॥

अथ भवान्या गणस्थापनमाह—रुह्यत्तमेति ॥ शक्तिगणप्रतिष्ठा देवीगणस्थापना शस्ता
शुभा स्यात् कस्मिन् रुह्यत्तमागे मृगशीर्षे शिवभे आर्द्राया पुन शिफाया मूले पुन श्रुतौ
श्रवणे शये हस्ते पुन रवौ वारे आगिरसे गुरौ यमे शनौ वा पुन शस्त्रौ धनु अगना कन्या
निराम मिथुन विसारो मीन एषा लग्ने ॥ ३२ ॥

नृभोदये पाण्यजिच्छ्रवत्सु बलाननोपेद्रगणान्प्रतिष्ठयेत् ॥

शुभे दिनेऽर्येषु च भाग्यरेवतीमित्रार्यमक्षेषु रवि रवौ हरौ ॥ ३३ ॥

अथ रामकृष्णादिगणस्थापनमाह—नृभोदय इति ॥ सुधीर्वैज्ञाननापेद्रगणान् बलभद्र
प्रमुखकृष्णगणान् प्रतिष्ठयेत् कस्मिन् नृभोदये नुराशुभ्ये वा पुन पाणिर्हस्त अभिजित्
श्रव श्रवण एष पुनः शुभे दिने ॥ अथ सुवा रवि सूर्य स्थापयेत् केषु एषु विष्णुगणप्र
तिष्ठावारभेपु पुन भाग्य पूर्वाकाशगुनी रेवता मित्रोऽनुरावा अर्यमा उत्तराकाशगुनी एतेषु
पुन रवौ सूर्यादौ हरौ सिद्धये ॥ ३३ ॥

पौष्णद्रियोरंगुसिताशुजन्मना वारेषु वाजाग्रियुगेऽसृजि क्वचित् ॥

गुहाखुयानादिपिनाकभृद्गगनास्थापयेद्युग्ममरदभोदये ॥ ३४ ॥

अथ स्कन्दगणेशशिवगणस्थापनमाह—पौष्णेति ॥ सुधीर्गुहाखुयानादिपिनाकभृद्गगान्
स्कन्दगणेशादिशंकरगणान् आस्थापयेत् कयो पौष्णाद्र्यो रेवत्याद्र्यो पुन केषु अंगु
सूर्य सिन शुक अशुन-मा शनिरेवा वारु वा पुन कचित्स्थाने आनाग्रियुग अनपाद्युग
पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा एतयो असृजि भौमवारे पुनयुग्म मिथुन मरदो भ्रमरा
गृश्चिह्न अनयोदये लग्ने ॥ ३४ ॥

महावलर्क्षश्रुतिशेखरदोर्भग संस्थापन त्वद्यतरं हनूमतः ॥

प्रभाकरादित्रिदिनेषु वा शुभे स्थिरोदयेऽत्रैव मरुद्गणस्य च ॥ ३५ ॥

अथ हनूमत्स्थापनमाह—महेति ॥ हनूमतो वज्रहस्तस्य संस्थापनं त्वद्यतरं श्रेष्ठतरं
स्यात् किंभूतसंस्थापनं महानर्तकं वायुसंस्थापनं भूति श्रवण शैल्यद्रो दोहस्त एष गङ्गा

पुनः केषु प्रमाकरादित्रिदिनेषु सूर्यादित्रयाणां वारेषु वा पक्षांतरे च पुनर्मरहणस्य देवगणस्य संस्थापनं शुभं स्यात् । करिम् अत्र हनूमरस्थापनमुहूर्ते पुनर्गुरौ वारं स्थिरोदये ॥ ३३ ॥

सप्तर्षिसंस्थोऽपि संप्रतिष्ठामृषिप्रजस्याहुरजेज्यमे वा ॥

जीवान्हि वा जीव१।१२गृहोदये सत्केन्द्रे क्वचित्सोमदिनेऽपि संतः॥३६॥

अथ ऋषिगणप्रतिष्ठामाह—सप्तर्षीति ॥ संतः सज्जनाः 'ऋषिप्रजस्य' संप्रतिष्ठामाहुः कथयंति केषु सप्तर्षिसंस्थोऽपि सप्तर्षीणां संस्था प्रतिष्ठा तस्यां यानि उद्भूनि तेषु वा पुनरनेज्यमे अन्नः कृष्णस्तस्यमं श्रवणः इज्यमं पुष्यः पुनर्बा जीवान्हि गुरुदिने वा पुनर्मावस्य गुरो गृहं धनुर्मानश्च तयोरुदये किंभूते सत्केन्द्रे क्वचित्सोमदिनेऽपि ॥ ३६ ॥

सरोहिणेयाहनि वासवर्षे संस्थापयेद्योषिति लोकपालान् ॥

सितत्र्यहःशेवशिफासु शस्ता चरे च यक्षादिगणप्रतिष्ठा ॥ ३७ ॥

अथ लोकपालस्थापनामाह—सरोहिणेयेति ॥ सुधीर्लोकपालान् संस्थापयेत् कस्मिन् वासवर्षे चानिष्ठायां किंभूते वासवर्षे सरोहिणेयाहनि बुधयुक्तादिने पुनः कस्यां योषिति कन्यालग्ने ॥ पुनर्यक्षादिगणप्रतिष्ठा शस्ता शुभा स्यात् कामु सितात् शुक्रात् त्रयः शुक्रशनिः आदित्यः एषामहर्दिने शैवमार्द्रा शिफा मूलं एषां द्वे आसु च पुनश्चरे लग्ने ॥ ३७ ॥

न्यंकूतमांगश्रुतितिष्यहस्तैरब्जार्जयोः सर्वसुरप्रतिष्ठा ॥

अर्हा सभूपैरपदोपदोपैर्जीवेक्षिते वारणवैरिलग्नौ ॥ ३८ ॥

अथ समुच्चयदेवप्रतिष्ठामाह—न्यंकूतमेति ॥ सर्वसुरप्रतिष्ठा अर्हा शुभा स्यात् कैः न्यंकूतमांगं मृगशीर्षं मृगभेदा रुद्र न्यंकु, इति हेमः ॥ श्रुतिः श्रवणः तिष्यः पुष्यः हस्तः एषां द्वे एभिः किंभूतैः सभूपैः सुयोगसहितैः पुनः किंभूतैरपगता दोषाः कुयोगा एव दोषा राः त्रियेभ्यस्तानि तैः पुनः कयोरब्जार्जयोश्चंद्रशुक्रदिनयोः पुनर्वारणवैरिलग्नौ किंभूते जीवेक्षिते गुरुणा दृष्टे ॥ ३८ ॥

मघाशतानंदमसौम्यशार्ङ्गिभैः संस्थापितः पितृगणः प्रजाश्रिये ॥

शूरोपधीशामरवंधवासरे रिक्ताविमुक्तैर्व्यालिधीरभोदये ॥ ३९ ॥

अथ पूर्वजगणस्थापनामाह—मघोनि ॥ पितृगणः पूर्वजगणः संस्थापितः प्रजाश्रिये संतानलक्ष्ये स्यात् । कैः मघा शतानंदो ब्रह्मा रोहिणो 'स्थविरः शतानंदपितामहो' इति हेमः ॥ सौम्यं मृगशीर्षं शार्ङ्गं श्रवणः एषा द्वे एभिः पुनः कैः शूरः सूर्यः ओषधीशश्चंद्रः अमरवंद्यो गुरुः एषा वासरेः किंभूते रिक्ताविमुक्तैः रिक्तानिधिरहितैः पुनः कस्मिन् व्यालिधीरभोदये कृश्नकरदिनस्तिरलभोदये ॥ ३९ ॥

चेत्येऽथ जैनप्रतिमास्थलं न्यसेचरे चरक्षोदयवत्यनेहसि ॥

ज यासु पूर्णासु बुधे सिते विधौ क्वचिच्च चित्राश्विनभेऽपि वा रवौ ॥४०॥

अथ नैनानिवप्रतिष्ठाशुद्धिमाह—चेत्य इति ॥ सुधी चेत्ये जिनसन्नि नैनप्रतिमास्पृक्त
मिनप्रतिमाया स्थल यथासणादिग्रासादिकं न्यसेत् । कस्मिन् चरे चरलग्रे चरलोदये चरराशु
ययुक्तेऽनेहसि काष्ठे पुन कासु जयासु पूर्णासु तिथिषु पुन कस्मिन् बुधे सिते शुक्ले विधौ वा
च पुनश्चित्राश्विनभे वा पक्षातरे क्वचित् स्थाने रवौ सूर्यवारेऽपि ॥ ४० ॥

यस्यामरस्य क्रियते प्रतिष्ठा वारे तिथौ भे च भवेत्तदीये ॥

सुयोगलग्ने शुभराशिलग्नौ लग्ने सुशुद्ध्योदितमासकालके ॥ ४१ ॥

अथ यस्य प्रतिष्ठा क्रियते तस्य देवस्य वारादिग्राह्यतामाह—यस्येति ॥ यस्यामरस्य
देवस्य प्रतिष्ठा क्रियते तदिये तस्य देवस्य सवधिनि वारे तिथौ भे नक्षत्रे च पुन
कास्मिन् सुयोगलग्ने शुभयोगमासे पुन शुभराशिमासे एवंविधे लग्ने पुन सुशुद्ध्योदितमा
सकालके शुद्ध्या निर्वोपेण प्रोक्तमामकाष्ठे ॥ ४१ ॥

स्वाम्नायभेदोदितहोमकर्मणा दानैरिभाध्याश्वतुलारसाननैः ॥

शास्त्रागमज्ञो ननु कालवेदिनः संतोष्य विप्रानिह देवता न्यसेत् ॥ ४२ ॥

अथ देवगृहे देवस्थापनमाह—स्वाम्नायेति ॥ ननु निश्चित शास्त्रागमज्ञ इह देवगृह
देवता न्यसेत् । केन स्वाम्नायभेदः स्वसंप्रदायभेदस्तेन उदित प्रोक्त होमकर्म तेन किं कृता
कालवेदिनो देवज्ञानं विप्रान् च संतोष्य कैरिभा हस्तिन आध्या गाव अश्वस्तुला रसा
भूमि प्रमुखानि येषु तैर्दाने ॥ ४२ ॥

अनेकदेवायतनानि भारते कृतानि येनाप्तशकोऽधिदेवतः ॥

सस्थापिता वेदविधानदानतः श्रीविक्रमार्कोऽवनिषो विराजताम् ॥ ४३ ॥

इति श्री कविकाक्षिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे नवगृहप्रवेशद्वाराप्रतिष्ठाध्यायः सप्तदश ॥

अथोपसंहारेण विप्रानुप वर्णयति—अनेकेति ॥ येन विक्रमार्केण भाग
भरतभेदेऽनेकदेवायतनानि देवगृहाणि कृतानि पुरार्थेनाधिदेवता देवेश्वरा सस्थापिता
नतिष्ठापिता स विक्रमार्कोऽवनिषो भूमिपतिर्विराजता भातु । किंभूत आप्तशकः प्राप्तशक
अपशक इति पाठे अपगता शका भूतेषा यामात्म क्षयोरुपभूतेषा इत्यर्थः । अथवागपत
शको यस्मात् पूर्वशकनिवृत्तिकृत् निनशरप्रवृत्तिकृत् इत्यर्थः ॥ ४३ ॥

इति श्रीपरमहंससंन्यासधराजभाष्यपुरंदरश्रीमद्विभाषभट्टराजवरणगरादिवच

रिवाचमानाद्यस्य भवनविनियोगा आकाशदासकृतज्यानि विद्याभरणस्य मुख्यं-

पञ्चाशो नवगृहप्रवेशाध्यायः सप्तदशः ॥ १७ ॥

अग्न्याधानादि विशेषसंस्कारप्रकरणम् ।

भूत्वा गृही बन्धिपरिग्रहं चरेत्स दारकालेऽशुमदुत्तरायणे ॥
दायाद्यकालेऽप्युत सोमपग्रहावनस्तगौ स्तो ननु चेदजुर्गुरुः ॥ १ ॥

अथ गृहप्रवेशानंतरं अग्निसेवनं घटेऽनोऽग्न्याधानाध्यायंस्त्वानमाह—भूत्येति ॥
गृही भूत्वा गृहस्थता प्राप्य स नरो बन्धिपरिग्रहमग्न्याधानं चरेत् कुर्यात् कस्मिन् दारकाळे
विशहकाले पुनरंशुमदुत्तरायणे उत्तरायणगते सूर्ये पुनर्दायादे भगो दायाद्यो भ्रातृणा
वनविभागस्तस्यकाले समयेऽपि उत चेत् सोमपग्रहौ द्विनग्रहौ गुरुशुक्रौ अनस्तगौ स्तो भवत
अस्तारहितौ इत्यर्थः ननु निश्चित चेत् गुरुः ऋतुरवकः स्याच्चदा ॥ १ ॥

स्ववेदशाखोदितकर्मकालो मुख्योऽथ दक्षैरिह मानितः स्यात् ॥
तच्छास्त्रिनोऽसौ कचिदंतकाशेऽयनेऽपि वा तद्विषयानुकूलः ॥ २ ॥

अथाग्न्याधाने समयं दर्शयति—स्ववेदेति ॥ अथेह अग्न्याधानविधौ दक्षैर्निपुणैः स्ववेदशा-
खोदितकर्मकालो निमवेदशाखाप्रोक्तकृत्यसमयोऽसौ मुख्यो मानितोऽंगीकृतः स्यात् । कस्य व-
च्छास्त्रिनस्तस्य वेदस्य शस्त्रिनो नरस्य कचित्स्थाने वा पश्चातरंस्तकाशेऽयने दक्षिणापने-
ऽपि तद्विषयानुकूलस्तस्य कालस्य गोचरानुकूलः स्यात् ॥ १ ॥

सदारकालोऽभिहितश्चतुर्थीकर्मोत्तरस्तत्र परिग्रहोऽग्नेः ॥

दायाद्यकः सोदरसारभागस्तुपासिताम्रौ जनकेऽग्रजे च ॥ ३ ॥

अथ दारादिकालेऽग्न्याधानमाह—सदारिति ॥ चतुर्थीकर्मोत्तरो विवाहश्चतुर्थदिने
शेमविधानादुर्ध्वं सदारकालः शुभद्वारकालो विवाहकाळोऽभिहितः प्रोक्तः । तु पुनः सोदराणा
भ्रातृणा सारभागो द्रव्यविभागो दायाद्यकोऽभिहितः प्रोक्तस्तत्र सदारकाळे दायाद्यकाळे
वाऽग्नेः परिग्रहोऽग्न्याधानं स्यात् । कस्मिन् उपासिताम्रौ सेविताग्न्याधाने जनके पितरि भग्नने
भ्रातरि च सति ॥ ३ ॥

तदाज्ञया वाग्निपरिग्रहोऽस्मिन्सौम्यायने भूषणभाजि काले ॥

कलौ स्वशाखादृतकर्मसिद्धौ यथावकाशे तदसंभवत्वात् ॥ ४ ॥

अथ आज्ञयाग्निपरिग्रहं दर्शयति—तदेति ॥ वा पश्चातरे कलौ अस्मिन् दारकाळे वा
दायाद्यकाले तदाज्ञया पितृभ्रात्राज्ञयाग्निपरिग्रहः स्यात् । कस्मिन् भूषणभाजि निदेशे
गुरुसितविकृतधाररहिते काले ॥ अथ तदसंभवत्वात्तयोर्ननुऽप्येवभ्रात्रादेरभावात्तदा-
वकाशे यथाप्राप्तकाले स्वशाखाभिर्निनशाखाभिरादृतं कर्म तेन सिद्धौ निष्पन्नोऽग्निपरिग्रहः
स्यात् ॥ ४ ॥

रिक्तातिरिक्ते रविसूनुमुक्ते भद्रोद्भिज्जते पक्षयुगे व्ययोगे ॥

धूमध्वजाधानमुशंति संतः संतोषभूपाः सति सोमवीर्ये ॥ ५ ॥

अथाग्निपरिग्रहे कुयोगान्निषेधति-रिक्तेति ॥ संतोषभूपा संतोषभूषणा संतो धूमध्वजाधा
नमग्निपरिग्रहमुशति वाछनि कस्मिन् रिक्तातिरिक्ते रिक्तातिविर्जिते रविसूनुमुक्ते शनिर्वर्जिते
भद्रोद्भिज्जते विष्टिर्वर्जिते व्ययोगे कुयोगवर्जिते एवविधे पक्षयुगे पुन कस्मिन् सति शुभग्रहे
सोमवीर्ये सति ॥ ५ ॥

वृद्धश्रवोवन्हिमधीरभेषु वृद्धश्रवोवन्हिमजीवभेषु ॥

कुरंगमूर्द्धात्यभयोरशंसन्धनंजयाधानविधानमार्याः ॥ ६ ॥

अथाग्निपरिग्रहे भद्रादिशुद्धिमाह-वृद्धेति ॥ आर्या आचार्या धननयाधानविधानकर्म असंख्यं
अकथयन् केपु वृद्धश्रवा इन्द्रो ज्येष्ठा वन्हिमं कृत्तिका जीवभ पुष्य एषा द्वेष्टे एष पुन क्रवो
कुरंगमूर्द्धा मृगशीर्ष अत्यभ रेवती तयोः ॥ ६ ॥

वैरोचनादित्यभविश्वकर्मभैरजगाद कश्चिद्धतभुक्पुत्रिग्रहं ॥

एतेषु युक्तेष्वपि सर्वशाखिना नासौ क्षये मास्यधिके च हायने ॥ ७ ॥

वैरोचनेति ॥ कश्चित् हुतभुक्पुत्रिग्रह नगाद केपु वैरोचन रोहिणी आदित्यभ पुनर्वसु विश्व
कर्मभं चित्रा एषा द्वेष्टे एभिर्युक्तपु एतेषु पूर्वोक्तयोगेषु केपा सर्वशाखिना सर्ववेदशाखिना विना-
णा । अथासौ वन्हिपरिग्रहो न स्यात् कस्मिन् सत्ये मासि अधिके मासि च हायने वर्षे ॥ ७ ॥

निपेक्षकुली रेक्षकलिश्च्युतोदये मृगे १० तदंशेऽपि विभावरीविभौ ॥

निर्मथदारुप्रभवस्तनूनपाच्छमं समीयादिति कोविदा विदुः ॥ ८ ॥

अथ कुमादिग्रहे नूतनाग्निपरिग्रह निषेधति- निष इति ॥ निर्मथदारुप्रभवो मयनका
ष्ठसभवस्तनूनपात् अग्नि शममुपशान्ति क्षयमित्यर्थः समीयात् प्राप्नुयात् । कदाग्रिसभवस्त
दाह उत वितर्के कस्मिन् निपे षटे कुलीरे कर्के शकलिनि मोने मृगे मकरे उद-
रमे तदंशे तेषा षटादीना नवांशेऽपि विभावरीविभौ चद्रे सति इति कोविदा पठित
विदुः ॥ ८ ॥

तपोऽमनीषाऽवललब्धिश्चैन्द्रगो मित्रत्रयार्यो तनुतोऽग्निसंग्रहे ॥

स्तोमश्रियं वा द्रविणाश्च ११ मानश्च १० धीऽप्यधूपगस्तारकराजनदनः ॥ ९ ॥

अथाग्निपरिग्रहे वारादिशुद्धिमाह-तपइति ॥ मित्रत्रयार्यो मित्रात् सूर्यात् ब्र
ह्मणे सोमो भीमश्चेति त्रय आर्यो गुरु इमो अग्निग्रहे स्तोमश्रियं यज्ञे शोभा बहुश्रियः
तनुतो विस्त रयत किंभूतो मित्रत्रयार्यो तपो नवम ९ मनीषा पचम ५ लल लृतीय ३ चैन्द्र

१ वृद्धश्रवा इन्द्रो वन्हिममपि उभ शिवा वा । द्वेष्टे वृद्धश्रवः कृत्तिका जीवभ पुष्येति
श्रवा विष्णुः धवण वन्हिम कृत्तिका जीवभ पुष्येति

१।४।७।१० एषु गतौ ॥ वा पुनस्तारकराजन्दनो बुधः स्तोमश्रियं तनोति किंभूनो द्राविणं
द्वितीयं २ आय एकादशं ११ मानो दशमं १० धीः पंचमं ९ बंधुश्चतुर्थं ४ एतद्-
वनोपगतः ॥ ९ ॥

यज्वा गुरौ शरुयुदयेऽग्निसंग्रहे क्रियेऽऽमृजि व्योम्नि १० मदेऽच सत्फलं
मित्रे विमानोपचये ३।६।११ त्रिनेत्रजे तथैव मंदे च विधुंतुदे भवेत् ॥ १० ॥

यज्वेति ॥ यज्वा यज्ञकृन् अग्निसंग्रही सत्फलः प्राप्तशुभफलो भवेत् कस्मिन् शरुयुदये
चतुर्लक्षस्ये गुरौ पुनः क्रिये मेपराशौ वा व्योम्नि दशमे वा मदे सप्तमभावेऽमृजि भौमे सति
पुनर्विमानोपचये दशमभाववर्जिते उपचये ३।६।११ मित्रे सूर्ये सति तथैव मंदे शनौ
सति च पुनर्विधुंतुदे राहौ सति ॥ १० ॥

वशा लयं याति लयेऽविधौ खले नरश्च साधाबुभयोरिहामयः ॥
नीचे जितेऽसाधुभिरुद्गमप्रभावधोगतिं याति कृशानुकोपतः ॥ ११ ॥

वशेति ॥ लयेऽष्टमभावे विधौ चंद्रे सति वशा स्त्री लयं लयं याति च पुनर्लये खले
ग्रहे सति नरो लयं याति पुनरिह लयेऽष्टमभावस्थे साधौ साम्यग्रहे सति उभयोर्द्विपत्योरा-
मयो रोगः स्यात् । पुनर्नीचे नीचभावस्थेऽसाधुभिः खलग्रहैर्मिते वा एवंविधे उद्गमप्रमौ
लमश्चामिनि सति नरोऽधोगतिं नरकगतिं याति कस्मात् कृशानुकोपतः आहिवा-
ग्निकोऽष्टमभावात् ॥ ११ ॥

स्वनीचगैरंशुमदंशुसंकुलैः सुत्राममंत्रीद्विजराजमंगलैः ॥
स्वर्पयस्वातृष्टहोपवर्तिभिर्नैवानलाधानमिने मधावजे ॥ १२ ॥

स्वनीचेति ॥ अनलाधानं अग्न्याधानं नैव स्यात् केः सुत्राममंत्री इन्द्रगुरुः द्विजराजश्चन्द्रः भौम
एषां द्वे तैः किंभूतैः स्वनीचगैर्नैजनीचराशिगतैः पुनः किंभूतैः अंशुमदंशुसंकुलैः सूर्यकिं-
रणलुप्तैः पुनः किंभूतैः स्वर्पयस्वो निजरिपुः अत्ताष्टमभावः अनयोर्द्वेहोपवर्तिभिः स्वशत्रुगृह-
मृत्युगृहगतैः पुनः कस्मिन् मघौ चैत्रेऽने मेपत्ये इने सूर्ये सति ॥ १२ ॥

दिनावसानप्रहरोदयो दयां द्यति द्विजस्याहितकृष्णवर्त्मनः ॥
तमी तदाधानविधौ मरुतमी तदा समस्तागमतात्रदायता ॥ १३ ॥

अधोग्रिपरिग्रहे कालशुद्धिनाह—दिनेति ॥ दिवावसानप्रहरोदयश्चतुर्थमहरलक्षं द्विजस्य
दया द्यति खंडयति किंभूतस्य द्विजस्य आदिनरुन्धवर्त्मनः स्वापिनात्रेः तथा तदावानविधौ
मरुतमी देवरात्रिर्दक्षिणायनं तमी दक्षिणायनरजनी अत्ता नाशस्तस्यादायता अत्रदायता
आयुर्दायका इत्यर्थः । समस्तागमता सर्वशास्त्रप्रमाणता स्यात् ॥ १३ ॥

हुताशनोपासनकालवत् कचिद्याम्यायनं सत्समुदीरितं हि तत् ॥
श्रुतिप्रमाणान्यतया न तद्वचः प्रमाणमस्माद्विमुक्तयणम् ॥ १४ ॥

अथात्र कस्यचिन्मतं दूषयाति-हुताशनेति ॥ काचित्स्थाने हि यस्मात् तत् याम्यायनं स
शुभं समुदीरितं प्रोक्तं किंभूतं याम्यायनं हुताशनोपासनकालवत् अग्न्याधानसेवनकाल्युक्तं
तद्वचः प्रमाणं न स्यात् कथं श्रुतिप्रमाणान्वयतया वेदप्रमाणतो वैपरीत्येन अस्मात् कारणात्
उत्तरायणं ऋतं सत्यं स्यात् ॥ १४ ॥

कृतावसथ्यावनिदेवताभिः स्ववेदभेदोदितकालसाध्याः ॥

तत्पाकयज्ञाश्च हविष्यसंस्थाः सप्तैव सप्तानु च सोमसंस्थाः ॥१५॥

अथ संस्थानां त्रिकं सेव्यमाह—कृतेति ॥ कृतावसथ्यावनिदेवताभिर्विहिताग्न्याधानस्था
नविप्रेतस्याकयज्ञास्तस्यावसथ्यस्य पाकयज्ञाः सप्त च पुनर्हविष्यसंस्था घृतपज्ञसंस्था सप्त
अनु पश्चाच्च सोमसंस्थाः संस्काराविशेषयज्ञाः सप्त एवं स्ववेदभेदोदितकालसाध्या निरति
नवेदशाखावेदोक्तकालेन साधनीयाः ॥ यतः ॥ अग्न्याधेय. १ अग्निहोत्र २ दर्शपूर्णमास्यौ
चातुर्मास्यानि वैश्वदेवपर्व वरुणप्रवासपर्व शाकमेधापर्व शुभासीरीयपर्व ४ पशुबंध. ५ सो
त्रामणी ६ पाकयज्ञ इति सप्त हविष्यसंस्थाः १ ॥ श्रवणाकर्म १ आश्वयुजीर्तम २ आग्रहायणी
३ अपूषाष्टका ४ मासाष्टका ५ आकाष्टका ६ वर्षाष्टका ७ इति पाकयज्ञसंस्थाः सप्त
अग्निष्टोमः १ अत्यग्निष्टोमः २ उक्थरः ३ षोडशी ४ अतिरात्र. ५ वाजपेयः ६ आतोर्वाय ७
इति सोमसंस्थाः सप्त ॥ अथः आवसथ्यप्रसंगद्वेदिकामानं लिख्यते ॥ 'पंडरस्त्रिपाशा
मध्ये पंचसु चिन्हिता ॥ द्विरस्त्रेऽगुलपटे च त्रिष्यष्टादशकेषु च ॥ १ ॥ सार्द्धहस्ते च पाशः स्युः
वेदी स्यात्पौर्णिमासिकी । एव रज्जु विनिर्माय वेदिं कुर्यात् ॥ तत्प्रकारस्तु 'मूत्रे प्राविश्यात्स्य
तथुकोः पाशौ प्रमुच्य तौ ॥ पंडगुलगतं चिन्हमाकर्षयेत्कृतीदिशं ॥ एवं कृते द्विहस्तो
शंकुमारोपयेत्तदा ॥ पंडगुलगतं चिन्हमाकर्षयेद्वायुगा दिशं ॥ २ ॥ तत्रापि द्विकरे चिन्हे शकुमारो
प्य तं त्यजेत् ॥ कृत्वा पश्चिमे श्रोणिं अंशौ पूर्वं प्रमायेयत् ॥ ४ ॥ तस्या रज्जोश्चतुर्धा कृत्वा
दक्षिणा दिशं ॥ आकृष्य रज्जुगे चिन्हे पंचमे शंकुमावेहेत् ॥ ५ ॥ एवमेवोत्तरे भागे आकृ
पेदी गगा दिशं ॥ पचाके शकुरत्रापि तेषु मूत्राणि वेष्टयेत् ॥ ६ ॥ मध्ये सप्तहस्तकारोऽसि
तत्रैव ॥ आनीय रज्जुं पूर्वादिनां पश्चाद्वै यावदेव ॥ द्विगुणोक्तस्य ता रज्जुमते तस्याऽग्रे
कुको ॥ ७ ॥ भ्रामयेत्तेन मानेन तया रज्ज्वाष्टभागया ॥ वा पृथुस्ततुरीयेण मध्येनान्विष्य सप्तहस्त
॥ ८ ॥ अथवा ॥ वेदिश्रोण्यशयोर्मध्ये तथा रज्ज्वाष्टभागया । निखिलेन्मध्यतो वेदी सप्तहस्त
मध्यसंमहः ॥ ९ ॥ अपरामेता वा वेदिं कुर्यात् ॥ त्रिगुणोदामानं उत्तमज्य गार्हपत्याहवनीययोर्तु
रात् पोदा सप्तया वा गंतुममं त्रेया विभज्यापश्चिन्नीयलघुणेन दक्षिणायाम्य तस्मिन्प्रतिवे
पर्यास्योत्तरास उत्करः ॥ अतश्चतुरस्रस्तु पूर्वस्यात्रे. सरो भवेत् ॥ रथचक्ररुनिः पश्चाच्चर्च
इव दक्षिण ॥ १ ॥ अग्रेऽदृष्टं सार्द्धे वायुने मध्यं ततोऽलिखेद्वृत्तमेकैकं. वैश्याया प्राची या मध्य
भवेत् ॥ उदग्दे विपरीतं स्यात् रेवरो दक्षिणस्य तु ॥ गार्हपत्यमदल सार्द्धं योऽगुगुणोऽनेन
मूत्रधमेण निष्पादनीयं । गार्हपत्यस्य पुरस्तादष्टमुसक्रमेणैकादशमु द्वादशमु मत्या राहवनीय
इत्यल ॥ १५ ॥

दैत्यादितेयार्चितमौढ्यकालस्तथोपरागक्षयवृद्धयनेहाः ॥

संक्रांतिरादुष्यति पाकयज्ञानेष्वन्यदोषप्रकरो न दुष्टः ॥ १६ ॥

अथ शुक्रास्तादिदुष्टं काले पाकयज्ञानाह—दैत्येति ॥ दैत्यादितेयार्चितमौढ्यकालः शुक्र-
गुर्वेस्तकालस्तथा उपरागो ग्रहणं तथा क्षयवृद्धयनेहाः क्षयाधिकमासादिस्तथा संक्रांतिः
पाकयज्ञान् दुष्यति पुनरेषु पाकयज्ञेषु अन्यदोषप्रकरो न दुष्टः स्यान् ॥ १६ ॥

मयौ निदाघे शिशिरे च मेनिरे बुधा हविःसोमविधानमादरात् ॥

श्रितानलाधानदिनोडुयुग्मगणं स्फुरत्तनौ वेदविभौ द्विजगृहे ॥ १७ ॥

मघाविति ॥ बुधा आदरान् सोमविधानं मेनिरे बुधुविरे कस्मिन् मयौ वसन्ते निदाघे
उष्णकाले शिशिरे च सति पुनर्द्विमौ गुरुशुक्रौ तयोर्गृहं धनुर्धानौ वृन्तुर्धौ जानिर्वादेकव-
चनं तस्मिन् द्विजगृहे वेदविभौ वेदस्वामिनि किंभूते वेदविभौ स्फुरत्तनौ अस्तरहिते किंभूते
सोमविधानं श्रितानलाधानदिनोडुयुग्मगणं प्राप्तान्यावानदिननक्षत्रयोगगणं ॥ १७ ॥

सौम्यायने दूयणमुक्तवासेऽनिशं महाहोमविधिं समाचरेत् ॥

पूर्णाजयानंदवतीनसदिनैः सुगोचरे वैकृतकालवर्जिते ॥ १८ ॥

अथ होमविधानशुद्धिमाह—सौम्येति ॥ अनिशं सदा सुधीर्महाहोमविधिं समाचरेत्
कृपात् कस्मिन् सौम्यायने उत्तरायणे किंभूते दूयणमुक्तवासे दोषवर्जितदिने पुनः किंभूते
सुगोचरे शुभग्रहगोचरे पुनः किंभूते विहृतौ भौ वैकृतः कालस्तेन वर्जिते पुनः कैः पूर्णा-
स्तिथयः जयास्तिथयः नंदास्तिथयः इत्यसदिनानि सूर्यशुभग्रहदिनानि एषां
द्वे एतैः ॥ १८ ॥

हुताशनाधानहितर्षवर्गे शैवश्रवोऽजांघ्रिशयान्वितेऽस्मिन् ॥

विदुर्महारुद्रमुखाननेकान् होमानभिज्ञा हि सुयोगयोगे ॥ १९ ॥

अथ होमे भशुद्धिमाह—हुताशनेति ॥ हि अवधारणे अभिज्ञाः पंडिताः अनेकान् म-
हारुद्रमुखान् होमान् विदुः कस्मिन् अस्मिन् हुताशनाधानहितर्षवर्गे अग्न्याशनशुभकारकन-
क्षत्रसमूहे किंभूते शैवमाद्री श्राः श्रवणः अजो रोहिणी अंधिः पूर्वभाद्रादा शयो हस्तः एषां
द्वे एभिर्गन्त्रे युक्ते पुनः किंभूते सुयोगयोगे शुभयोगे शुभयोगप्राप्ते ॥ १९ ॥

पूर्णाहुतिः पुण्यतमा सदाहुतौ पूर्णातियो पुण्यधिया प्रतस्यते ॥

नंदाजयास्मावभृतं निमज्जनं पूर्णासु वा सन्मृदये सदह्वयि ॥ २० ॥

अथ कृताहुतौ यज्ञांतत्त्वानशुद्धिमाह—पूर्णाति ॥ पुण्यधिया पवित्रादिना नरेषु
पुर्णाहुतिः पुण्यतमा अतिशयेन पुण्या मघस्यो कस्यां सतां शुभरक्षणा आहुतिधिया
पूर्णातियो । नरेणाभूतो यज्ञांतत्त्वस्मिन् भानाभूतं निमज्जनं न्नात्र मघस्यो कान् न-

राज्यासु तिथिषु वा पूर्णासु तिथिषु सदन्वयपि शुभग्रहदिनेषु किंभूतं निमज्जनं सत्ता
नृणां शुभनरराश्यानामुद्यो ल्गनं यस्मिंस्तत् ॥ २० ॥

उदीरितं चावभृताभिपेचने नृपाभिपेके वलयत्रयं क्रमात् ॥

विराजि सम्राजि च राज्यदस्तथा हयाधिपे सिंधुरपे नराधिपे ॥२१॥

अथ यज्ञांतत्त्वानि राजमुद्राचक्रं दर्शयति—उदीरितमिति ॥ अत्रभृताभिपेचने नृपाभि
पेके च वलयत्रयं कलशचक्रत्रयमुदीरितं प्रोक्तं कस्मिन् विराजि विशेषेण राजते इति विराद्
तस्मिन् तथा सम्यक्प्रकारेण राजते इति सम्राट् तस्मिन् राजते इति राट् तस्मिंश्च क्र-
मात् क्रमेण हयाधिपेऽश्वपतौ सिंधुरपे गजपतिपतौ नराधिपे चादशचक्रत्रयं प्रोक्तं ॥ यतः
'अग्निहोत्रादिकर्ता यो ब्राह्मणो राट् प्रकीर्तितः ॥ सम्राट् वै बानपेयेन विराट् तत्पूर्व-
ज्ञतः' ॥ १ ॥ इति यज्ञाते विप्राणां भूपानामाभिपेके वेद चक्रत्रयं ज्ञेयमिति हार्द ॥२१॥

एतक्रमेणोत्तरपूर्वयाम्यगं भपंचनाडीपरिभिन्नमालिखेत् ॥

सदैव नासत्यमघाशिकादिकन्निभेदतारापटलावहं त्वदः ॥२२॥ ७

अथ तच्चक्रत्रये नक्षत्रस्थापनं दर्शयति—एतक्रमेति ॥ सुधीः क्रमेण उत्तरपूर्वयाम्यगं
उत्तरपूर्वदक्षिणदिगात् भपंचनाडीपरिभिन्नमेतच्चक्रत्रयमालिखेत् पुनः सुधीरदशचक्रत्रय
सदैव नासत्यमघिनी मघा शिका मूलमित्यादिकेन अश्विन्यादिप्रथमेन त्रिभेदतारापटला-
वहं भेदत्रयेण नक्षत्रसमूहभूतं लिखेत् । कोऽर्थः प्रथममश्वपतिच्छत्रचक्रं नक्षत्रपंचनाडिका-
विहं तत्र प्रथमं मस्तकेऽश्विनी देया ततो भरणी कुरा मृ आ.पु पु.अ. इति । एवं द्वितीयं
गजपतिच्छत्रचक्रं तत्र प्रथमं मस्तके मघा दातव्या तत पू.उ.ह वि स्वा.वि.अ.उ.ये. इति ।
तृतीयं नरपतिच्छत्रचक्रं तत्र प्रथमं मस्तके मूल दातव्यं ततः पू.उ.श्र.प.श.पू.उ.रे. इति
वलयत्रय ॥ २२ ॥

अतोऽपरेषु क्षितिपेषु यज्वसु स्वकीयनामाक्षराभादिकं त्विदं ॥

आधारनामासनपट्टसिंहवत् सिंहासनानीत्यपि भेदपंचकं ॥२३॥ ७

अथ विशेषेण पञ्चभेदं सिंहासनत्रयचक्रमाह—अत इति । यज्वसु यज्ञकर्तृषु अश्वपति
अश्वपतिगजपतिनरपतिषु इदं च त्रयं साधारनामासनपट्टसिंहवत् ४ सिंहासनमपि आ-
धारः आसनं पट्टः सिंहः सिंहासनमित्यापि ईदृशमपि भेदपंचकं सिंहासनत्रयं चक्रं भवति ।
तु पुनः अतोऽश्वगदिभ्योऽङ्गरेषु क्षितिपेषु राजसु स्वकीयनामाक्षराभादिकं नृनाम-
नक्षत्रतः स्थापनीयमिति चक्रं स्यात् ॥ तथाचोक्तं 'आदौ चक्रं समाच्छेद्य उत्तरत्रयमुद्योमनं ।
अश्विन्यादि न्यसेत्तत्र सप्तविंशति भावि च ॥ १ ॥ अश्विन्याद्यं मन्त्राद्यं च मूलार्थं च अ-
भेण च । उत्तरे पूर्वदक्षिणे एतच्छत्रत्रयं मत ॥२॥ प्रतीचीमध्यरेखाया ईशानाग हयाधिप ।
आग्नेयात मनावीशस्तदने च नराधिपः ॥३॥ अश्वपतिगजपतिनरपतिः क्रमेण च । एतं

छत्रविभोगेन ज्ञातव्यं च शुभाशुभं ॥ ४ ॥ अमीषां भूभूतामृषं यत्र-छत्रे व्यवस्थितं । तच्छत्रं
तस्य भूपस्य शुभाशुभफलप्रदं ॥ ५ ॥ चामरं कलशं वीणां छत्रं दंडं पतद्वहं । आसनं
कीलकं रज्जुर्नव भेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥ यस्य छत्रे स्थितः सौरिर्भगं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ इत्यादि
फलं ज्ञेयमिति ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रं सिंहासनत्रयं । येन विज्ञातमात्रेण क्रियते राज्य-
निर्णयः ॥ १ ॥ सप्तविंशतिश्लेषस्तु एकैकं च नवात्मकं । आश्विनीमघमूलाद्यं पंचनाडीवि-
भेदकं ॥ २ ॥ अश्विन्याद्युत्तरे भागे मवाद्यं पूर्वतः स्थितं । मूलाद्यं दक्षिणे चापि ज्ञातव्यं
नृपतित्रयं ॥ ३ ॥ इतरेषु च राज्येषु नृपनामक्षेप्तो वदेत् । शुभाशुभमिदं सर्वं यस्य यस्यास-
नस्थितं ॥ ४ ॥ नाडिकापंचभेदेन एकैकस्यासने भवेत् । आधारमासनं पट्टं सिंहं सिंहासनं
तथा ॥ ५ ॥ आधारादिकलं सर्वमेकैकस्य वदाम्यहं । ग्रहवेषध्वजाश्चैव सौम्यकूरैः शुभाशुभं
॥ ६ ॥ नृपस्याधारमाद्यर्थे यदा पट्टोऽभिषेचितः । पराधीनगतो राज्यं कुल्ले नात्र संशयः ॥ ७ ॥
आसनस्थेन क्रमेण नीतियुक्तो भवेन्नृपः । प्रधानपुरुषादेशी प्रजाशांतिकरो भवेत् ॥ ८ ॥ पट्ट-
श्लेषे यदा राजा चोपविष्टो य आसने । पूर्वराज्यस्थितस्तुस्यां चिरं पालयते महीं ॥ ९ ॥ सिं-
हक्री भवेद्वाजा सिंहश्लासने स्थितः । संग्रामस्य प्रियो नित्यमसाध्यो मंत्रिणामपि ॥ १० ॥
सिंहासने गते श्लेषे तेजस्वी भीषणाकृतिः । चलयित्तो महाक्रोधी प्रजापीडाकरो नृपः
॥ ११ ॥ इत्याद्यत्र ग्रहाणामपि फलं ज्ञेयं ॥ २३ ॥

यज्वा च राजा गतधर्मलक्ष्मीराधारनामोडुनि नीतिसंपत् ॥

इहासनक्षेत्रेऽनु च पट्टधिष्ये प्रजाप्रियो भेऽर्थवल्लोऽस्ति सिंह ॥ २४ ॥

अथात्र चक्रं स्थितनक्षत्रक्रममाह—यज्ज्वेति ॥ इह चक्रे आधारनामोडुनि आधारस्थिते श्लेषे
यज्वा राजा च गतधर्मलक्ष्मीः परहस्तगतराज्यलक्ष्मीर्भवेत् । एवमासनक्षेत्रे सति नीतिसंपत् नीति-
युक्तो भवेत् । अनु पश्चाच्च पट्टधिष्ये सति प्रजाप्रियो भवेत् । सिंह भे सिंहश्लेषे सति अर्थ-
वल्लोऽस्ति ॥ २४ ॥

सिंहासने शासनलोकशोको धिष्ये भवेदत्र विपापवेधे ॥

तत्कालचंद्रोडुनि साध्ववस्थेऽभिषेकितोऽसौ सुखभृन्नृलम्बे ॥ २५ ॥

सिंहेति ॥ सिंहासने धिष्ये सति शासनलोकशोकः प्रजादुःखकारको नृपो भवेत् । अतो
नृपः सुखभृन् सुख गारकः स्यात् किंभूतोऽत्र विपापवेधे पापग्रहवेषध्वजिते साध्ववस्थे शुभावस्था-
या स्थिते तत्कालचंद्रोडुनि अभिषेकचंद्रनक्षत्रे नृलम्बे बाभिषेकिनः सन् ॥ २५ ॥

भद्रासनेऽसद्वधगेऽभिषेकभे सदन्विते वेतशिवोऽध्वरी नृपः ॥

भद्रासने सद्वधगेऽभिषेकभे सदन्विते वेतशिवोऽध्वरी नृपः ॥ २६ ॥

अथात्र चक्रे पापग्रहविद्धमकलमाह—भद्रेति ॥ भद्रासनेऽसद्वधगे पापग्रहवेषध्वजिते सदन्विते
पापग्रहयुक्तेऽभिषेकभे सति अध्वरी यज्वा नृपो वा इन् निर्गन् शिवं कल्याणं यस्मात् स एवविधः
स्यात् ॥ वा पुनर्भद्रासने सद्वधगे शुभग्रहवेषध्वजिते सदन्विते शुभग्रहयुक्तेऽभिषेकभे इन् प्राप्तं
शिवं कल्याणं येन स एवविधः स्यात् ॥ २६ ॥

सिंहासनारव्यवलयं कचिदेतदेवं राज्याभिषेकविषयं किल केवलं स्यात्
नैत्याध्वरांतसमयस्नपनं प्रसिद्धं जैना जगुर्निगमकर्मविरोधभावात् २७

अथ वसततिलकेन यज्ञकर्मणिनाप्यदश्रकं विधेयं तदाह—सिंहेति॥ किलेति संभावनाय
एतत् बाह्यसनाख्यवलयं पुत्रपुसक वलयं च कर्तृपदं काचित् स्थाने एव पूर्वरीत्या स्यात्
राजाभिषेकाविषयं सिंहासनारव्यवलयं केवलं स्यात् । इति हेतोर्जैना अध्वरांतसमयस्नपनं
प्रसिद्धं प्रकटं अवभृथस्नानं न जगु न ऊचु वस्मात् निगमकर्म निश्चयकर्म वेदकर्म ॥
तस्य विरोधभावात् ॥ २७ ॥

तुरंगमेशस्य तुरंगमे च गजाधिपस्येति गजे भशुद्धिः ॥

नराधिपस्यानसि चितनीया विराजि सम्राजि च राजि यज्ञात् ॥ २८ ॥

अथाध्वपिपादीना 'अग्निहोत्रादिकर्ता यो ब्राह्मणो राट् प्रकीर्तितः ॥ सम्राड् वै बानपेयेन
विराट् तत्पूर्वयज्ञत ' मुख्यशुद्धिमाह—तुरंगमेति ॥ तुरंगमेशस्याध्वपिपतेस्तुरंगमे
भशुद्धिर्नक्षत्रशुद्धिश्चितनीया ॥ अपुनर्गजाधिपे गजे भशुद्धिश्चितनीया ॥ नराधिपस्यानसि
शफटे भशुद्धिश्चितनीया कस्मात् विराजि सम्राजि राजि च यज्ञात् यज्ञत अग्नि
होत्रादिकर्तृत्वादिश्लोक ॥ २८ ॥

गंधर्वचक्रे लपनां च कश्रवः शिरांसि लुनांश्च्युदराणि पृष्ठकं ॥

न्यसेद्वचक्रं द्विरयमरद्विरदोर्भुजा रगजेऽपुऽवाणा-

५ तुमभागमश्वमात् ॥ २९ ॥ ॐ

अथ तुरंगचक्रे भानि स्थापयति—गणर्वेति॥ मुवीर्त्तपनं वदनं अवक्रे नेत्रे श्रवसी कर्णौ शिरो
मस्तक एषा द्वे एतानि लूनं पुच्छं अघ्रय पादा उदरमेघा द्वे एतानि पृष्ठकमिति गंधर्वचक्रं
अश्वचक्रे मचक्रं नक्षत्रगणं न्यसेत् कस्मादश्वभात् तुरंगमनामनक्षत्रात् किंभूतं भचक्रं द्वौ २ यमौ
२ द्वौ २ दो २ भुजौ २ गजा ८ इषु ५ वाणा ५ एषा द्वे एभिरेतुमीयने स चासौ भागश्च ॥ २९

शुभप्रदेशा सुखनेत्रगर्भाः सप्तेरसौम्यास्त्वपरप्रदेशाः ॥

शुभांशगेऽत्रातिजनौ समग्रं गांधर्वकृत्यं वरमादृत्यः ॥ ३० ॥

अथाश्वचक्रगतमश्वमाह—शुभमिति ॥ सप्तेरश्वस्य सुखनेत्रोदराणि शुभप्रदेशा स्युः ।
तु पुनरपरप्रदेशा अवयवा असौम्या अनिष्टा स्युः ॥ आदृत्यं प्रोक्तमश्वैः समग्रं
गंधर्वकृत्यं घोटककार्यं वरं श्रेष्ठं स्यात् ॥ अत्रिक्तपिस्त्रस्मान् इत प्राप्तो जनिर्जन्म येन स
चद्रस्तस्मिन् शुभांशगे शुभनवांशगते सति ॥ ३० ॥

दुष्टांशगेऽथ यदि ह्येत्यपत्यं तदाश्वकृत्यं पट्यं वनं त्युत ॥

मखाभिषेको ह्येतद्वन्मृगं वलक्षयं तत्र हरः क्रमात् स्यात् ॥ ३१ ॥

अथाश्रावयवे शनिफलमाह—दुष्टांशग इति ॥ यदि दुष्टांशगेऽश्वे हेत्यपत्यं शनिः स्यात्तदा क्रमात्क्रमेण अश्वकृत्यं तुरंगमकार्यं हयद्वत् तुरंगक्षयकृत् स्यात् ॥ मखाभिपेकस्त्वत्र हरः कुला-
तकृत्स्यात् ॥ 'तंत्रंशास्त्रकुलं तंत्रं' इत्याद्यनेकार्थध्वनौ ॥ तथाचा ॥ अथातरतौरगं चक्रं कथयामि
सुरेश्वरि ॥ इंगितं निपुणं ज्ञात्वा हयानां राजवाहनं ॥ १ ॥ अश्वाकारं लिखेच्चक्रमश्वविष्ण्या—
दितारकाः ॥ वदनात् सृष्टिगा देया अष्टाविंशतिसंख्यया ॥ २ ॥ मुखास्तिकर्णशीर्षेषु
पुच्छांघ्रिषु युगं युगं ॥ पंचपंचोदरे षष्ठे सौरिर्यत्र फलं ततः ॥ ३ ॥ मुखाक्ष्युदरशीर्षस्थो यदा
सौरिस्तुरंगमे ॥ तदारिर्भगमायाति रणेऽन्यत्र पराजयः ॥ ४ ॥ कर्णांघ्रिपुच्छषष्ठस्थो यदा यस्य
हयस्य ॥ ५ ॥ विभ्रमं भगहानी च करोत्यन्यो महाहवे ॥ ६ ॥ एतत्स्थानस्थितः सौरिर्यदा काले
हयस्य ॥ ७ ॥ पट्टबंधे गमे युद्धे वर्जयेत्तं हयं नृपः ॥ ८ ॥ इत्यादि फलं ज्ञेयं ॥ ११ ॥

अथास्यशुंदांश्चककर्णमौलिपक्षांगुलपृष्ठोदरगं न्यसेदिभे ॥
गजर्क्षतो द्वि२द्विश्यम२द्वि२दो२र्गज८द्वि२श्वेद४वेदा४नुममृक्षपंजरं३२७

अथ गजचक्रे भानि स्थापयति—अथास्येति ॥ अथाश्वचक्रानंतरं सुधारिभे गजे
क्षपंजरं नक्षत्रगणं न्यसेत् स्थापयेत् । कस्मात् गजर्क्षतो गजनामनक्षत्रात् किंभूतं क्षपंजरं
मुखं शुंदा शुंदा अंके नेत्रे कर्णौ मौलिः शीर्षे पादौ लांगूलं पुच्छं पृष्ठं उदरं एषां द्वेष्टे एषु
गतं पुनः किंभूतं द्वौ २ द्वौ २ यमौ २ द्वौ २ तौः २ गजा अष्टौ ८ द्वौ २ वेदाश्चत्वारः ४
वेदाश्चत्वारः ४ एषां द्वेष्टे एभिरनुमीयते इति अनुमं प्रमितमिति मुखे २ शुंदायां २ नेत्रयोः
२ कर्णयोः २ शीर्षे २ चरणेषु ८ पुच्छे २ पृष्ठे ४ उदरे ४ इति स्थापनीयं ॥ ३२ ॥

भवेयुरत्रास्य१शिरो२क्षि३संधिनी४गर्भा५वरांशास्त्वपरेऽशुभांशकाः ॥
शुभप्रदेशे करिकर्म भेश्वरे प्रियं सदोदीरितमैरुदीरितम् ॥ ३३ ॥

अथ गजचक्रगतभकलमाह—भवेयुरिति ॥ अत्र गजचक्रे आस्याशिरोक्षिसंधिनी-
गर्भा मुखमस्तकनेत्रशुंढोदराणि वरांशाः शुभावयवा भवेयुः । तु पुनरपरेऽशुभांशका
अन्येऽवयवा अशुभाः स्युः ॥ शुभप्रदेशे गजशुभावयवे भेश्वरे चंद्रे सति सदा करिकर्म
गजकार्यं प्रियं श्रेष्ठमुदीरितं प्रोक्तं वैरुदीरितभैः प्रोक्तनक्षत्रैः ॥ ३३ ॥

गजे कुदेशे यदि हंससंततिर्न वाजपेयादिमखांतमज्जनात् ॥
पट्टाभिपेकादनु चैति संगरात्सम्राडिलेशश्च यशो जयश्रियम् ॥ ३४ ॥

अथ गजचक्रे शनिफलमाह—गज इति ॥ यदि चेत् गजे गजचक्रे कुदेशे दुष्टावयवे
हंससंततिः सूर्यपुत्रः शनिः स्यात्तदा सम्राट् उल्लेख्यो भूपो यशो नयाश्रियं नेति नमामोति
कस्मात् वाजपेयादिमखांतमज्जनात् संज्ञाविशेषयज्ञप्रमुखयज्ञान्नानात् । अनुपश्चात् पट्टाभिपेकात्
पुनः संगरात् संग्रामात् ॥ तथा चोक्तं ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रमांतगनामकं ॥ येन
विज्ञातमात्रेण यात्रायुद्धे जयो भवेत् ॥ १ ॥ गजाकारं लिखेच्चक्रं मर्वावयवसंपुनं । अष्टाविंशति

ऋक्षाणि देवानि मृष्टिमार्गतः ॥२॥ मुखशुंदाग्रनेत्रेषु कर्णशीर्षाघ्निपुच्छके । द्विकं द्विकं च
दातव्यं पृष्ठोदरे चतुश्चतुः ॥३॥ इत्यादि ज्ञेयं ॥ ३४ ॥

देयं रथे भानुमदक्षपूर्वं भपंजरं तन्नवभागसंस्थं ॥

रथाग्रमध्यावधिगं च सौम्यं रथांगमध्येष्वपरेष्वसत्स्यात् ॥३६॥ •

अथ रथचक्रे भानि स्थापयति—देयमिति ॥ सुधीभी रथे रथचक्रे भानुमदक्षपूर्वं सूर्याग्रं-
तनक्षत्रादिकं भपंजरं नक्षत्रवृन्दं देयं स्थापनीयं । किंभूतं भपंजरं तन्नवभागसंस्थं तस्य
रथस्य नवसु भागेषु स्थितं ॥ अथ रथांगमध्येवधिगं चक्रमध्यमर्यादागतं भंसौम्यं शुभ स्यात् ।
च पुनरपरेषु रथांगमध्येषु रथावयवेषु गतं भमसत् नेष्टं स्यात् ॥ ३५ ॥

रथिनो यदि नामभं शुभांगे हरिजस्तत्स्थलगो मत्वाभिपेकः ॥

न समाहितवन्निहना च राज्ञा क्रियते पट्टरथाधिरोहणम् ॥ ३६ ॥

अथ मालभारिण्याग्र रथचक्रे शनिकलमाह—रथिन इति ॥ यदि चेत् शुभांगे रथचक्रे
शुभारपवे रथिनो रथिच्छेदना नामभं स्यात् । पुनस्तत्स्थलगो रथिकनामनक्षत्रस्थानस्थितो हरिः
शनिः स्यात्तदा समाहितवन्निहना अग्निहोत्रिणा राज्ञा मत्वाभिपेको यज्ञात्तन्नाम च पुनः
पट्टरथाधिरोहणं न क्रियते दूषणात्वादिति ॥ ३६ ॥

इति सत्रविराममञ्जनं त्र्युदितं यल्लिखितं मयैतदत्र ॥

त्रिविधावनिपाभिपेककाले त्रिविधैतद्वलयेक्षणोपयोगः ॥ ३७ ॥

अथ चक्रोपसंहारेणाह—इति नेति ॥ सत्रविराममञ्जनं यज्ञात्तत्प्रभुपस्नानमुदितं प्रोक्तं
मया एतच्चिभेदचक्रं यत् यस्माद्विहितं तस्मादेतोरप्रावसरे त्रिविधावनिपाभिपेककाले
त्रिप्रकारभूगभिपेकसमये त्रिविधं चेत्तद्वलये च तस्य ईक्षणं विज्ञेयं नमः
उपयोगः स्यात् ॥ ३७ ॥

विहितेषु महामन्त्रनेषु प्रविद्यायामरसुप्तिकालमास्त्यं ॥

कविमार्गमगौपनीशसारेऽपरमंस्कारविधिं च सर्वकालं ॥ ३८ ॥

लघुधीरभधूर्जर्दोदुभांत्यश्रुतियुग्मामरमृदुभिस्त्वरण्यं ॥

आर्द्रा इदुनं मृगशीर्षं आत्यं रेवती श्रुतियुग्मं श्रवणघनिष्ठे अमरसूक्ष्मात्ता तस्या उडु पुनर्वसु एषां द्वे एभिः पुनः कैः सदहोभिः शुभग्रहदिनैः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

शिरसोदयभाजिः कंटके सन्निहिते दीक्षणाधीस्थले विदीज्ये ॥

विपिनाश्रममादरेण भिक्षुं खलु वैखानसमीरयेदजस्रम् ॥ ४० ॥

अथात्र लग्नशुद्धिमाह—शिरस इति ॥ खलु निश्चितमजस्रं निरंतरं विपिनाश्रमं कर्तुं पदमादरेण वैखानसं वानप्रस्थं भिक्षुं संन्यासीनमीरयेत् प्रेरयेत् कस्मिन् शिरसोदयभाजि शीर्षोदयलग्नयुक्ते सन्निहिते शुभग्रहव्याप्ते कंटके सति पुनर्दीक्षणं दीक्षाधर्मः नवमं धीः पंचमं एतयोः स्थाने विदीज्ये बुधधिषणे सति अनयोः समाहारैकत्वं आश्रमशब्दः पुनर्पुनः ॥ ४० ॥

संन्यासः श्रुतियुगले शये शिवक्षे वैरंचे रुरुशिरसाद्रूपजितक्षे ॥

नीरिक्ते स्थिरसदनेऽपवर्गसिद्धये सोमज्यज्ञखरंकरेषु चोत्तरासु ॥ ४१ ॥

अथ—प्रहर्षिण्या संन्यासे नक्षत्रादिशुद्धिमाह—संन्यासेति ॥ संन्यासोऽपवर्गसिद्धये मोक्षप्राप्तये स्यात् कस्मिन् श्रुतियुगले श्रवणे घनिष्ठायां शये हस्ते शिवक्षे आर्द्रायां वैरंचे रोहिण्यां रुरुशिरसि मृगशीर्षे इन्द्रपूजितक्षे पुष्ये नीरिक्ते निगतो रिक्तः कुम्भो प्रस्मात् कुम्भराशिवर्जिते स्थिरसदने स्थिरराशयुदये सति च पुनः सोमश्चंद्र इज्यां गुरुः सोः बुधः खरंकरः सूर्यः एषां द्वे एषां दिने उत्तरासु च ॥ ४१ ॥

एतद्भेष्वदितियुतेष्वभर्गभेषु त्वाधत्ते नरभवनोदये सभूपे ॥

सद्दीक्षासुदितदिनेषु साधुमर्त्यः सन्मास्यातुरपुरुषोऽनु सर्वकाले ॥ ४२ ॥

अथ दीक्षाग्रहणशुद्धिमाह—एतद्भेष्विति ॥ हि निश्चितं साधुमर्त्य उत्तमनरः सद्दीक्षाभाषते पुण्याति केपु एतद्भेषु उक्तनक्षत्रेषु अदितियुतेषु अभर्गभेषु आर्द्रारहितेषु सत्सु पुनर्नरभवनोदये नृराशयुदये सभूपे शुभग्रहयोगविलोकिते पुनरुदितदिनेषु मोक्षप्राप्तये पुनः सन्मासि शुभे मासे अनु पश्चात् चेत् आतुरपुरुषो दीक्षाग्रहणे शीघ्रस्तदा सर्वकाले दीक्षां वत्ते ॥ ४२ ॥

पूर्वावारुणसुरवैद्यभेषु दीक्षा मैत्रक्षेष्वादितिभवासवेनभेषु ॥

ऐनीनज्ञसितदिनेस्तु वीतरागाः शस्ता पुंसि चरणजे विपर्वरिक्तैः ॥ ४३ ॥

पूर्वेति ॥ चरणने शूत्रे पुंसि विषये वीतरागा निर्गतरागद्वेषलक्षणा दीक्षा शस्ता शुभा स्यात् । केपु पूर्वात्रयं वारुणं क्षततारा सुरवैद्यमभ्युनी एषां द्वे एषु पुनर्मैत्रक्षेपु मैत्रसंज्ञभेषु पुनरादितिरं पुनर्वसु वासवं घनिष्ठा इनभं हस्तः एषां द्वे एषु तु पुनः कैः ऐनिः शनिः इनः सूर्यः शोः बुधः सितः शुकः एषां दिनेः किम्यत्रैवंपर्वरिक्तैः पर्वरिक्तातिविजितैः ॥ ४३ ॥

दयार्द्रभावेन सुधर्मकर्मणामारंभमूचुर्लघुमैत्रधीरभैः ॥

शयेशभादित्यभवासवैर्विशो रिक्ताकुयुङ्मुक्तपतंगसद्व्युषु ॥४४॥

अथ धर्मकर्मण आरंभमाह—दयेति ॥ सुधियो विश्वां नृणां दयार्द्रभावेन सुधर्मकर्मणा-
मारंभमूचुर्नगुः कैः लघूनि मैत्राणि धीराणि एषा हृद्रे एभिः पुनः कस्मिन् शयो हस्त ईशभ
आर्द्रा आदित्यभं पुनर्वसु वासवं घनिष्ठा एषा हृद्रे एभिः पुनः केपु रिक्तास्तितयः कुयु
दुष्टयोगः एभिर्मुक्तपतंगसद्व्युषु वर्जितसौरशुभग्रहदिनेषु ॥ ४४ ॥

पारायणं वेदपुराणपद्धतेरमंदवारेषु वरं विदारुणैः ॥

व्युग्रैश्चभैर्मुक्तगलयहैर्भवेदारंभितं सदृषधीनृमोदये ॥ ४५ ॥

अथ समग्राध्ययेन वारादिशुद्धिमाह—पारायणमिति ॥ वेदपुराणपद्धतेः आगमपुराणपद्धतेः
पारायणं साकल्येन सामस्त्येन वचनमस्ययनमिति 'साकल्यवचनं पारायणं' इति हेम. ॥ १४ ॥ अहं
रपात् केपु अमंदवारेषु शनिवर्जितसर्ववारेषु पुनः कैर्विदारुणैर्भैर्द्विरुक्तगलराहितनक्षत्रैः पुनर्-
दपुराणपद्धतेराभिर्न पारायणं सन् शुभ भवेत् । केव्युग्रैर्भैरुक्तसंज्ञवर्जितनक्षत्रैः किंभूतैर्मुक्तगलपदे
पुनः कस्मिन् वृषधीनृमोदये नवमपचममावस्थे नृराशुदये ॥ ४५ ॥

रिक्ताविमुक्तास्तु तिथिष्वसृग्यमैर्वारैः पुराणोत्तरुधाश्रुतिः त्रियै ॥

मृदुस्तिरविप्रचलत्रिपूर्विकाकीर्णेषु सरैर्द्वचरोदये भवेत् ॥ ४६ ॥

अथ पुराणरुधाश्रयशुद्धिमाह—रिक्तेति ॥ पुराणोत्तरुधाश्रुतिः पुराणोद्गताश्रुतिः
त्रियै भवेत् केपु रिक्तविमुक्तास्तु रिक्तातिथिवर्जितास्तु तिथिषु पुनः केरयत् भौमः यमः शनि
आभ्यां वर्जितैर्वारैः किंभूतास्तु तिथिषु त्रिरिक्तास्तु मृदुनि स्थिराणि क्षिप्राणि चलाणि त्रिपूर्विका एता
पदे रभिराकीर्णेषु शुकेषु पुनः कस्मिन् सरैर्द्वचरोदये शुभग्रहैर्द्वचराराशुदये ॥ ४६ ॥

गुप्यन्तान् रुवासस्तपनसुखविधिर्मज्जुलः शुद्धकाले काण्वर्यापादे

नमस्थे त्रिपमलमगहायंदुमंघ्रनधिवं ॥ वारे धिष्ये च सौर्ये

धवलपुदिवमे धपगे दारुणोत्तरुमृष्टैर्भारिक्तं भवति कुयुतिवि-

ष्टगुद्विज्ञते सौम्यलये ॥ ४७ ॥

एतेषु कृत्येष्वखिलेषु मंत्रिणं कविं किलास्त्यं विधुमंगिरोहारं ॥ विक-
र्तनं चाप१तिमि१२स्थितं तथा क्षयाधिमासद्युसमाः परित्यजेत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणेऽग्न्याधानादिविशेषसं-
स्काराध्यायोऽष्टादशः ॥ १८ ॥

अथोपनात्योपसंहारमाह—एतेष्विति ॥ किञ्चेति सत्ये सुवोः मंत्रिणं गुरुं कविं शुक्रमास्त्य-
मस्ते भवं तथा विधुं चंद्रं तथागिरोहारं सिंहगुरुं तथा चापतिमिस्थितं धनुर्मानस्यं विकर्तनं
सूर्यं तथा क्षयाधिमासद्युसमाः क्षयाधिकमासं क्षयाधिकदिनं क्षयाधिकवर्षं परित्यजेत् केषु
अखिलेषु एतेषु पूर्वोक्तेषु कृत्येषु कर्मसु ॥ ४८ ॥

इति श्रीकविकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणसुखबोधिकायामग्न्याधानविशेषसंस्कारपुण्यसाध-
नाध्यायोऽष्टादशः ॥ १८ ॥

मिश्रप्रकरणम् ।

हुताशनाधानविधेरनंतरं वदामि मिश्रव्यवहारकर्मणाम् ॥

कृपिस्वगोपण्यसरोः क्रियावतां नयं हि लोकव्यवहारवृत्तये ॥ १ ॥

अथाग्न्याधानविधेरनंतरं मिश्रव्यवहारकर्म घटतेऽतो मिश्रव्यवहारकर्माध्यापसंपानमाह—
हुताशेति ॥ हुताशनाधानविधेरग्न्याधानविधानादनंतरं हि युक्तार्थे मिश्रव्यवहारकर्मणां
साधारणव्यवहारकार्याणां कृपिः कर्षणं स्वं वनं गौर्वेतुः पण्यं विक्रेयं सरो जहाशय एषां
ब्रह्मे एषां क्रियावतां क्रियायुक्तनराणां नयं निर्णयं वदामि कथयामि कस्यै लोकव्यवहार-
वृत्तये जनव्यवहारप्रवर्तनाय ॥ १ ॥

क्रियाविधानेऽनु च वक्ष्यमाणे दुष्टा हि विष्टिः क्षयकायराजा ॥

रिक्ताकुयोगाखिलपर्वकालो दुष्टस्तथा राजविरुद्धराशिः ॥ २ ॥

अथ क्रियाविधानशुद्धिमाह—क्रियेति ॥ नु वितर्के हि युक्तार्थे वक्ष्यमाणे क्रियाविधाने
विष्टिर्दुष्टा स्यात् । तथाच क्षयकायरानां सौम्यचंद्रस्तथा रिक्ताकुयोगाखिलपर्वकालस्तथा राज-
विरुद्धराशिर्दुष्टचंद्रराशिश्च दुष्टोऽशुद्धः स्यात् ॥ २ ॥

सदन्वि कीर्णे लघुवारुणात्यभादितेयशक्राग्निभशाक्रनासवेः ॥

शस्ता समस्तानडुही क्रिया तथा वत्सक्रिया वत्सलयोगवर्धिनी ॥ ३ ॥

अथ गवा कर्मशुद्धिमाह—सदन्वीति ॥ समस्ता सर्वाण्यडुही क्रिया गोक्रिया गर्भिणी स्त्रियं
नवप्रभृता वृद्धा वंश्या इत्यादिभेदानां गवां कर्म इत्यर्थः शस्ता शुभा स्यात् ॥ तथा वत्सक्रिया
शस्ता स्यात् किन्तु वत्सक्रिया वत्सलयोगवर्धिनी स्नेहव्ययोगवर्धिनी करिन्त् सद-

मिह शुभग्रहादिने सधूनि वारुणं शतभिषक् आत्यम् रेवती आदित्यं पुनर्वसुं शक्राग्निं ति-
शास्त्रा शक्रो ज्येष्ठा वासव धनिष्ठा एषां द्वेष्टे एभिः कौर्णे व्यासे ॥ ३ ॥

सनातनर्क्षार्जभविश्वकर्मभोत्तरात्रये भूत१४दिनेऽष्टमीतिथौ ॥

दर्शो३०निवेशश्च विनिर्गमो रवौ चतुष्पदानां क्रयविक्रयौ न हि ॥ ४ ॥

अथ चतुष्पदाना प्रवेशादिकर्म निषेधति—सनातनेति ॥ चतुष्पदाना गवादीना निवेश
प्रवेशस्तथा विनिर्गमो गृहाद्विनिष्कासन नया क्रयविक्रयौ नहि स्युः कस्मिन् सनातनो
विष्णुस्तस्य भक्त श्रवण अजम रोहिणी विश्वकर्मभिन्ना उत्तरात्रय एषा द्वेष्टे कस्वेऽस्मिन्
पुनर्भूतदिने चतुर्दश्या पुनरष्टमीतिथौ पुनरमावास्याया दर्शो रवौ सूर्यवारे ॥ ४ ॥

पूर्वाविशाखांत्यशिक्षैर्द्वार्यभैः सवासवादित्यभपाशपाणिभैः ॥

क्षिप्रैश्च सोमेनसितांगिरोदिनैरजाविकालीप्रविधानमर्थकृत् ॥ ५ ॥

अमानादीनां कृत्यशुद्धिमाह—पूर्वेति ॥ अना प्रतीता अविषेपी काली माहिपी आसा प्रवि-
धानमुत्कृष्टकार्यमर्थकृत् संपदाकृत् स्यात् । कै पूर्वोत्रय विशाखा आत्य रेवती शिखा मूल ऐश्वर्य
मृगशीर्ष आर्यमं पुष्य एषा द्वेष्टे एतैः किंभूतैश्च धनिष्ठा आदित्यमं पुनर्वसु पाशः पाणौ
यस्य स पाशपाणिर्वरुणस्तस्य भे शनवारा एषा द्वेष्टे एभिश्च पुनः क्षिप्रैः पुनः कः सोम इव
सितः शुक्ल अगिरा गुरुषा दिने ॥ ५ ॥

कराद्यपर्जन्यमृदूडुपावनं सकाश्यपीदैवतमाह पेशलम् ॥

वामीगरुत्मत्सरनौक्रियाविद्यौ कश्चिच्छनीदूष्णगुहाव्यवासे ॥ ६ ॥

अथ वटवादीनां कर्मशुद्धिमाह—करेति ॥ कश्चि १ सुखी करादिभं पेशल मनोहरमाह क-
षपति । करो इस्त आयमधिनी पर्जन्यस्य इन्द्रस्येद पार्जन्य उपठा मृदूनि पवनस्येद पा-
पने ह्यती एषा द्वेष्टेत्तत् । किंभूतं सक इयपीदैव । पुनर्वसुमहिने वस्मिन् वामी वटवा गरुड
पक्षी विषयेऽस्थेति गरु मान् पक्षी कुकुचादि 'पक्षी गरुडद्वारावि' इति हेम ॥ पेशराक्षम नौ
महिनी आसा क्रियाविध न वस्मिन् इति इदु अंगगु मूर्ध रात्र्य गुरु एषां वामो ॥ ६ ॥

क्रयोऽनोर्विक्रय एव देवमूर्ध्निगानुसंधांत्यमवाजग्राहिभैः ॥

द्विदेवपूर्वांसु समृद्धये भवेन्नदांसु पूर्वांसु च काव्यजीययोः ॥ ७ ॥

अथ क्रयविक्रयशुद्धिमाह—क्रय इति ॥ अवनयमे क्रयो विक्रयश्चैव समृद्ध-
ये भवेत् । देवमूर्ध्निगानां पुनर्वसु नृगो मृगशीर्ष अतुराधा जलस्य रेवती मघा नदा द्वेष्टे
अदिभ आलेषा एषा द्वेष्टे एभिः पुनः क्रय द्विदेव विद्याया पूर्वात्रय आमु पुनर्वसु पूर्वा
च पुनः काव्यजीयया शक्रगुणां ॥ ७ ॥

प्राचेतसादित्यमयेज्यराधापानीय गिराञ्जनायश्रविष्ठाः ॥

कास्तारमाप्यनुनुते च चाना नीगराये सोमसितार्पणायः ॥ ८ ॥

अथ तटाकादिजलाशयानां करणशुद्धिमाह—प्राचेतसेति ॥ कासारस्तटागो वापी अंधुः
कूप इत्यादौ नीराशये जलाशये विषये प्राचेतसादितारा वामाः श्रेष्ठाः स्युः । प्राचेतसं शततारा
आदित्यं पुनर्वसु मघा ऐज्यं पुष्यः राधा विशाखा पानीय पूर्वाषाढा धीरसंज्ञानि अठनस्य
चंद्रस्येद आव्जं मृगशीर्ष शशो हस्त ध्रुविष्ठा घनिष्ठा एताश्च पुनः सोमसितार्धवाराश्चंद्र-
शुक्रगुरुवाराः श्रेष्ठाः स्युः 'विशाखेन्द्राग्निदेवता राधा' इति हेमः ॥ ८ ॥

पुराद्धृताशानिलराक्षसाशामुक्तान्यकाष्ठासु सुवारिदोऽधुः ॥

वानीरदूर्वाकुशवामल्लरक्षोण्यां भवेत्स्वादुजलं च शीघ्रम् ॥ ९ ॥

अथ कूपकरणे दिक्शुद्धिमाह—पुरादिति ॥ अंधुः कूपः सुवारिदः स्वादुजलदायको भवेत्
कासु पुरात् नगरात् ग्रामात् वा हुताशो बन्धि अनिलो वायु राक्षस एषायाशां दिशं
मुक्त्वा अन्यकाष्ठासु च पुनः शीघ्रं स्वादु जलं भवेत् कस्यां वानीरो वेतसवृक्षः दूर्वा कुशः
शामल्लो वल्मी कूटं एषा क्षोण्या भूमौ ॥ ९ ॥

आद्यार्जुनोदुंबरसिंदुवाराः पर्णप्रवालातिसुशालशाखाः ॥

वल्मीकपार्श्वाः स्युरगाहि यत्र तत्रावु निर्देश्यमलं समाशु ॥ १० ॥

अथ शीघ्रनलव्यनकदेशमाह—आद्येति ॥ यत्र स्थानेऽग्रा वृक्षा एवंविधाः स्युः
किंभूताः आद्या अर्जुनः ककुमवृक्ष उदुंबरः सिंधुर्वतारी निर्मुडी एषा ते ते पुनः किंभूताः
पर्णप्रवालैः पत्राकिसलयैरतिसुशाला सुशोभमाना शाखा एषा ते ते पुनः किंभूताः वल्मीकः
कमिपर्वतस्तस्य पार्श्वे सामीप्य एषा ते हि अवधारणेऽलं पूर्णं समाशु शीघ्रतरं तत्र स्थानेऽह
मलं निर्देश्यं कथनीयम् ॥ १० ॥

योष्मातिशीतलवसत्तृणपुष्टिर्ह्य सा स्वादुसांद्रसलिला

किल शीघ्रवार्दा ॥ इत्थं विलोक्य वसुधामिह

कूपवापीकासांखंडखननं विदधीत शश्वत् ॥ ११ ॥

योष्मेति ॥ या उर्वी भूमिरूष्मातिशीतलवसत्तृणपुष्टि उत्पन्नि प्रोष्मकालेऽति-
शीतले न वसंति उद्रच्छति तृणानि तेषां पुष्टिर्यस्या सा एवंविधा स्यात् किलेति भावना-
यां सा भूमिः शीघ्रवार्दा ज्ञातेति नलदायिनी स्यात् । किंभूता भूमे स्वादुसांद्रसलिला मि-
ष्टगंभीरपानीया शश्वत् सदा मुधीरित्य वसुधा भूमिं विलोक्य इह भूमौ कूपवापीकासार-
कृतानि एषा खननं विदधीत कुर्वति ॥ ११ ॥

सिंधुप्रतानमरूकार्णवगौडगेशेऽनिमं धरांतरगमंयु निस-

र्गभावात् ॥ क्षाराम्लकुंठतरुवट्टवि निस्तृणोर्व्यां तद्वन्नं

विकृतिमण्डमाहुरार्याः ॥ १२ ॥

अथ नीचगतजलदेशमाह—सिंधिवाति ॥ सिंधुप्रतानं सिंधुनदीतटं मरुको देशः अण्डः
समुद्रोः गौडो देश एषु गतेऽशभागे एतेषा भूमेकदेशभागे घातरगं भूमितलगतमंबु जलं
निमर्गभावात् स्वभावात् निम्नं नीचतलं स्यात् ॥ आर्या आचार्याः सारो वृक्षः आम्बुशः
कुण्डतरुः पल्लवादिर्वर्जिततरु एतद्वती भूस्तस्या तद्वत् निस्तृणोर्व्या तृणरहितभूमौ वनं नलं
विकृतिमद्गुणं रोगकरस्वभावमाहुः ॥ १२ ॥

ग्रामादुदीरितहरित्युशनोब्जभागे क्षेत्रे भमंडलवि-
भागवति प्रशस्तं ॥ वाच्यं वनं तदिह गर्भकर्वीदुभागे
निम्नार्द्रभूमितटिनीनगदिक्शिराभिः ॥ १३ ॥

अथ शुभनलज्ञानमाह—ग्रामादिति ॥ वनं जलं प्रशस्तं शुभं वाच्यं वक्तव्यं कं ग्रामात्
उदीरितहरिति प्रोक्तदिशि क्षेत्रे किंभूते उशनोऽब्जभागे शुक्लचद्रस्थितिप्रदेशे पुनः किंभूते
भमंडलविभागवति नक्षत्रगणविभागयुक्ते पुनः किंभूते गर्भकर्वीदुभागे मध्यगतशुक्लचद्रविभागे
इह स्थाने पुनः कामे निम्ना नीचा आर्द्रा भूमिस्तटिनी नदी नगं पर्वत एषा द्वे एषां
दिक्शिराभिरेताद्विगतजलशिराभिः कृत्वा ॥ १३ ॥

सूरे सुधाशनदिने वितिमीनकाले विषयोपधीशधि-
पणोदयभाजिकूपः ॥ वापी सरो भवति हेत्यलिमार्ग-
योगे कुंडं तथा कचिदपाधिकहीनमासे ॥ १४ ॥

अथ कपादिकरणे शालशुद्धिमाह—सूर इति ॥ वितिमीनकाले मीनक्रांतिवर्जितकाले
विषयोपधीशधिपणोदयभाजि शुक्लचद्रगुरुग्रहयुक्ते सुधाशना अमृतमोमिनो देवास्तेषां दिग्भे
उत्तरायणे सूरं सूर्यं सति कूपस्तथा वापी तथा सरतज्ञानो भवेत् । अपि च हेत्यलिमार्ग
योगे शत्रियुक्तशत्रुमंक्रुडिमार्गशीर्षयोगे कुंडं भवति किंभूते हेत्यलिमार्गयोगे
अवाधिकहीनमासे निर्गताधिकलयमासे सति ॥ १४ ॥

स्याद्रोहिणीविदनतारकमंडलाख्यं मध्याह्नपूर्वमुख-
दिक्षु सवांधुचक्रे ॥ केंद्रांतकेशमरुता नवधा विभक्तं
दिक्षु स्थितं तदिह वैहृतचारि मृते ॥ १५ ॥ ७

अथ रूचके भनि स्थपयानि—स्याद्रोहिणीति ॥ मदापुषके रूचके रोहिणीविदनतार-
रुमंडलाख्य रोहिणीनक्षत्रप्रगणं चतुर्दश मध्याह्नपूर्वमुखदिक्षु मध्य अक्षे यातो
तात्त्विकं पूर्वादिदिक्षु अस्तायुः स्यात् । किंभूते रोहिणीविदनतारकमंडलाख्य नक्षत्र
विभक्तं नवधा मरी रूचकमध्वे मध्य रोहिणीविदनं देयं तत्र पूर्वादिदिक्षु

सर्वममंदलं त्रिकं त्रिकं देयमित्यर्थः । तदु रोहिण्यादिममंदलं कर्तुपदं वैकृतवारि दुष्टजन्मं
सूते ननयति किंभूतं तद् इह केंद्रांतकेशमरुतां दिक्षु संस्थितं सत् कस्य जलस्येन्द्रः स्वामी
वरुणः अंतको यम ईशानो मरुत् वायुरेवा दिक्षु ॥ १५ ॥

कोष्ठे धिष्ण्यचतुष्टयं विधिमतो नाभिस्तथा हृदले

नेत्रे वाममवामकं भयुगलं तद्वच्च पादौ पराः ॥

अष्टौ राजवशाः सदैषु फलता सत्पुष्करं वा द्रुतिर्धीनाशः

स्थिरता कलिर्द्रविणतानर्थो हि वाप्यां क्रमात् ॥ १६ ॥

अथ वापीचक्रे भानि संस्थाप्य फलमाह—कोष्ठ इति ॥ वाप्या वापिकायां कोष्ठे
विधिमतो रोहिणोतो धिष्ण्यचतुष्टयं नक्षत्रचतुष्कं स्यात् ॥ पुनस्तथा नाभिस्तथा हृदये
गलस्तथा, नेत्र वाममवामकं तद्वच्च पादौ एषु स्थानेषु राजवशाश्चंद्रात्रियस्ताराः फलदा
स्थिता इत्यर्थः ॥ यथा नाभौ चत्वारि भानि हृदि, भचतुष्कं गले चत्वारि भानि नेत्रयोः सध्या
पसध्ययोर्भयुगं पादयोर्भचतुष्कं ॥ अथ फलमाह ॥ तत्र हि अवधारणे सदा एषु कोष्ठादिस्थानेषु
क्रमेण क्रमेण सत्पुष्करादि फलं स्यात् । कोष्ठे सत्पुष्करं शुभमल वाऽपवा द्रुतिर्भलवेगता
स्यात् नाभौ धीनाशो बुद्धिविनाशो हृदि स्थिरता गले कलिर्नेत्रयोर्द्रविणता धनत्वं
पादयोरनर्थः स्यात् ॥ १६ ॥

कासारं कमलासनोद्भवदनो नन्दांशमो दीयते मध्यै-

द्यादिहरित्सु पेशलमिदं मध्यापरा यातुदिक् ॥ कुंडे

धिष्ण्यगणः कभत्रिकतले काष्ठाचतुष्को विदिग्युग्मः

स्याद्द्रविणेशयातुदहनांतस्थः शुभो भांशकिः ॥ १७ ॥

अथ तडागचक्रे भानि स्थापयति—कासार इति ॥ कासारे तटाकचक्रे कमलासनोद्भवद्व्या
तस्योद् रोहिणी सा वदनं प्रमुखं यस्य स नन्दांशमो नवात्रिकसप्तविंशतितुल्यभागो दीयते
कासु मध्यैद्यादिहरित्सु मध्यतः पूर्वतः सर्वादिक्षु ॥ अथ फलमाह—अत्र मध्यो मध्यभागो
परा पश्चिमा दिक् यातुदिक् नैर्ऋतादिक् एतत्रयस्थानगतामिदं धिष्ण्यत्रिकं पेशलं मनो
हरं स्यात् । अथ कुंडचक्रे भानि स्थापयन्फलमाह । को व्रज्जा तस्य भत्रिक रोहिणीत्रिकं
गले यस्य पुनः कोष्ठाचतुष्कः चतुर्षु दिक्षु चतुश्चतुष्कं पुनर्विदिग्युग्मश्चतुर्षु विदिक्षु
युग्मचतुष्क एवं धिष्ण्यगणः स्थाप्यः । तत्र द्रविणेशयातुदहनांतस्थः उत्तरनेर्ऋतामिदिग्-
मध्यस्थितो भांशको नक्षत्रभागः शुभः स्यात् ॥ १७ ॥

परिखापरिखातस्वारिणां खननं निम्नुमुखैररोहिताश्वैः ॥

वियमारदिनैः सजैष्णवेशैरपविष्टादिकयुग्मलग्नहाख्यैः ॥ १८ ॥

अथ परिखादिखनने भृशुद्धिमाह—परिखेति ॥ परिखापरिखातः समस्तखात अपर
 खारिका मानविशेषप्राप्ता आसा खनन स्यात् ॥ कैर्निग्नमुखेरघोमुखनक्षत्रै किंभूतेररोहिताभूः
 रोहिताभ्वोऽग्निस्तस्येदं भं कृत्तिका तथा वर्जितैः पुन किंभूतैर्वियमारक्षितै शनिभौमदि
 नरहितै पुन किंभूतै सजैष्णवेश् ज्येष्ठार्द्राद्युक्तै पुनरपविष्ट्यादिकुयुग्लग्रहाख्यैर्विष्टि
 कुयोगगलग्रहवर्जितै ॥ १८ ॥

मिहिराकुलितर्क्षतो विचिंत्याः परिखायां हरितो हि पोडशर्क्षाः ॥

विदिशोऽष्टमभास्त्रिगर्भतारा न शुभा यातुयमानिलानलाशाः ॥ १९ ॥

अथ परिखाचक्रे भानि स्थापयति—मिहिरेनि ॥ हि अवधारणे मिहिराकुलितर्क्षतो
 रविमात् परिखाया खातिकाया सुचीभि पोडशर्क्षा पोडशनक्षत्राणि यासु ता हरितो दिशो
 विचिंत्या पुनरष्टमानि अष्टममितानि भानि यासु ता विदिशो विचिंत्या पुनस्त्रिगर्भतारा मध्ये
 त्रितारा विचिंत्यास्तत्र यातुर्निर्धत्ति यमः अनिलो वायुरनलोऽग्निरेषामाशाः शुभा न स्युः ॥ १९ ॥

रविभादिह पंच पंच दिक्षु प्रमदाः शीतलगोस्तले च सप्त ॥

तलपूर्वकुबेरदिग्गताराः सफलाः सन्ति सदैव खारिकायाम् ॥ २० ॥

अथ खारिकाया भानि स्थापयति—रविभादिति ॥ इह खारिकाया शीतलगोश्चद्रस्य
 प्रमदास्तारा दिक्षु पंच पंच तले मध्ये सप्त देया कस्मात् रविमात् सदैव खारिकाया तलो
 मध्य पूर्वदिक् कुबेरदिक् आसु गतास्तारा सफला सति ॥ २० ॥

न तिमीनयुतौ शुचौ नभस्ये नभसि स्यात्परिखा च खारिकाख्या ॥

क्षयोरोचिपि राजनीह तद्वच्छुभभान्योदयवैर्द्रदुष्टतायाम् ॥ २१ ॥

अथ मीनार्क्षौ खारिकाटिकर्म निषेधति—नतिमीति ॥ परिखा खारिका च न स्यात्
 तिमीनयुतौ मीनार्कयोगे शुचौ आपादे नभस्ये भाद्रपदे नभसि श्रावणे क्षयोरोचिपि क्षीणकौ
 रानि चद्रे तद्वत् शुभमेव्य शुभराशिभ्योऽन्योदयस्यान्य उग्रस्य केंद्रदुष्टताया सत्यामिह ॥ २१ ॥

नंदा च भद्रा घटनेऽर्कसद्दिनं भवेदयोगेश्वरभोदयैः शुभैः ॥

मूलाद्यतिप्याजमृदुश्रवोद्वयादितेयवातैर्घटयेत्तरीं तथा ॥ २२ ॥

अथ घटनकर्मशुद्धिमाह—नंदेति ॥ घटने घटनकर्मणि नंदातिपिर्भद्रातिरिक्तं
 सद्दिनं सूर्यशुभग्रहाणां दिनं च भवेत् कैरयोगैः सुयोग विनापि। तथा सुधींस्त्रीं नाव घटयेत्
 कारयेत् कर्मिन् चरभोदये चरराशुदये पुन कै शुभैः सुयोगैः मरु आद्यमश्विनी तिथ्य
 पुष्य मृद्वि अश्लेषा श्रवणानिष्ठे आदितेय पुनर्वसु यात स्वाती एषा द्वे एव ॥ २२ ॥

लघुश्रवोवासवभैत्रराजर्भर्निवेशयेद्वारि दिनेर्विवित्सताम् ॥

जयासु पूर्णासु सचंद्रिकाद्रिकास्विमां नावं नवामिदुवले जलोदये ॥ २३ ॥

अथ जले तरीमोचेशुद्धिमाह—लघ्विति ॥ इंदोश्चंद्रस्य बलं यस्य स इंदुबलो नरो
नवां नूतनां नावं तरां वारि जले निवेशयेत् प्रवेशयेत् कैलघूनि श्रवः श्रवणः वासवं ध-
निष्ठा मैत्रमनुराधां राजन्म मृगशीर्ष एषां द्वंद्वे एतैः पुनः कैर्विविस्ततां बुधवर्जितशुभग्रहाण
दिनैः पुनः कामु जयासु तिथिषु पूर्णामु तिथिषु सचंद्रिकासु ज्योत्स्नायुक्तासु पुनर्जलोदये
नक्षत्राशिलग्रे ॥ २४ ॥

लग्नेऽलिमुक्ते धिपणे बुधे वा खलैरसारैश्च सिते नभस्थे ॥

निशीथिनीशे जलचारिराशौ जलेऽखिलं कर्म तदिष्टयंत्रैः ॥ २४ ॥

अथ लग्नादिना नौकायंत्रणशुद्धिमाह—लग्न इति ॥ जले तदिष्टयंत्रैस्तस्या नाव
इष्टयंत्रणैरखिलं समस्त्वं कर्म स्यात् । कस्मिन् अलिमुक्ते वृश्चिकराहिते लग्ने धिपणे गुरौ
बुधे वा च पुनरसारैर्वंलरहितैः खलैः क्रूरग्रहैः पुनर्नभस्थे दशमस्थे सिते शुके पुनर्जलचा-
रिराशौ निशीथिनीशे चंद्रे ॥ २५ ॥

कूपाग्रगं सैष्यगतं च सेनभं मध्ये पडास्येऽयुडु भत्रयं त्वदि ॥

पाठाणमेकं परतत्त्रयं त्रयं सुपाणगं मध्यमपदं सदंतरम् ॥ २५ ॥

अथ नौकाचक्रे भानि स्थापयति—कूपेति ॥ सैष्यगतं एष्यमाणनक्षत्रयुक्तं सेनभं सूर्यांशो-
नक्षत्रं एतावता नक्षत्रयुग्मं कूपाग्रगं कूपस्तंभाग्रगतं स्यात् । च पुनर्मध्ये पदं भानि स्युः । आस्ये
शुकेऽयुडु त्रयं स्यात् । द्वदि भत्रयं स्यात् । पाठाणमेकं भं स्यात् । परतोऽग्रतत्त्रयं स्यात् । सुपाणगं
त्रयं स्यात् । मध्यमपदं मध्ये मपदं स्यात् । अथ फलमाह । अत्र चक्रे अंतरं विचालंगतद्वावशनक्षत्रं
सत् शुभं स्यात् ॥ २६ ॥

प्राचेतसोमेशरमेशभोत्तराः सरोहिणीवासववासवाच्यभाः ॥

वरा विविक्तेनयमास्वसरा नवे तरीकूपकपट्टबंधने ॥ २६ ॥

प्राचेति ॥ नवे पर्वने तरीकूपकपट्टबंधने मंगिनीकूपस्तंभपट्टबंधने प्राचेतसादयस्तारा वराः
श्रेष्ठाः स्युः । प्राचेतसं शततारा उमेश ईश्वर आर्द्रा रमेशो विष्णुस्तद्धं श्रवणः उत्तरा उत्तरा-
त्रयं किंभूताः रोहिणी वासवं धनिष्ठा वासवं इन्द्रस्तस्याच्यो गुरुस्तस्य गं पुष्य एभिः
सहिताः पुनः किंभूताः विगता रिक्तातिथिः इनः सूर्यः यमः शनिः आरो भौम एषां वासराश्च
षाभ्यः स्ताः ॥ २६ ॥

पूर्णाजयानंदवतीषु सद्युभिः प्रपूरयेन्नावमनेकवस्तुभिः ॥

स्थिरे मृदुक्षिप्रजयास्वसौ भवेद् बृहद्मानेहसि मंगिनीगमः ॥ २७ ॥

अथ नौकायां वस्तुमंपूरणशुद्धिमाह—पूर्णेति ॥ वणिक् अनेकवस्तुभिर्नौकं प्रपूरयेत् ।
केषु पूर्णातिथिः जयातिथिः नंदवती नंदातिथिः आसां द्वंद्वे आसु पुनः केः सद्युभिः

शुभग्रहवासरेः ॥ असौ मंगिनीगमस्तरीप्रयाणं भवेत् कस्मिन् स्थिरे स्थिरसंज्ञे मृदूनि क्षिमां
नपातिपिः आसां द्वेद्वे आसु पुनर्वृहदमानेहासि वृहस्पत्याणकालेऽतिदूरगमनकाले ॥ २७ ॥

सवारिवारीशतमीशतारकालघुध्रुवाधोक्षजभाववासवान् ॥

यमार्यमार्यास्फुजितो निराकुलानुशंत्यविद्वान्नवसेतुबंधने ॥ २८ ॥

अथ जले सेतुबंधनशुद्धिमाह—सवारीति ॥ मुधियो नवसेतुबंधने जले नूतसेतुबंधने यमा-
दीन् उशंति वाछति । यमः शनिः अर्यमाः सूर्यः आर्यो गुरुः आस्फुनिच्छुक्रः एषा द्वेद्वे इमान्
किंभूतान् सवारीति वारि जलं पूर्वाषाढा वारीशो जलस्वामी शतभिषक् तमीशश्चंद्रस्तस्य
तारका मृगशीर्षं लघुनि ध्रुवाणि अधोक्षजो विष्णुः श्रवणः भवस्य ईश्वरस्येदं भावमार्द्रा वासव
पनिष्ठा एषा द्वेद्वे एभिः सहितान् पुनः किंभूतान् निराकुलान् सूर्याक्रमणवर्जितान् पुनरविद्वान्
ग्रहैरभिन्नमंडलान् ॥ २८ ॥

पादेऽशुभात्पंच तु पंच चांसे सप्तोदरे पंच परांसके स्युः ॥

पादे सदा पंचमिताः परस्मिस्तारा वराः सेतुसमूर्ध्वसंस्थाः ॥ २९ ॥

अथ सेतुबंधचक्रे मानि स्थापयति—पाद इति ॥ अंशुमात् सूर्यमात् पादे पंच ताराः
स्युः । तु पुनरंसे स्कंधे पंचताराः स्युः । च पुनरुदरे मध्ये सप्त ताराश्च पुनः परांसकेऽपर-
स्कंधे पंचताराः स्युः । परस्मिन् पादे परपादे पंचमितास्ताराः स्युः । सदा सर्वकाले सेतुसमूर्ध्व-
संस्थाः सेतुचक्रे उपरितनास्तारा वराः श्रेष्ठाः स्युः ॥ २९ ॥

लेये तिमौ तावुरिभे निपेऽस्त्रिणि द्विंशंसि लग्ने सप्तदंवरायने ॥

चतुष्टये विक्रमवैरिलाभगैरसाधुभिः सेतुनिबंधनं श्रियै ॥ ३० ॥

अथ सेतुबंधने छत्रशुद्धिमाह—लेय इति ॥ सेतुबंधनं पानीयपक्तिबंधनं श्रियै स्यात्
क लेये सिंह तिमौ मीने तावुरिभे वृषराशौ निपे कुंभे अस्त्रिणि धनुषि द्विंशंसि मिथुने
छत्रे चतुष्टये केंद्रे किंभूते सप्तदंवरायने शुभग्रहे सहिते पुनः कैरसाधुभिः छत्रमर्द्धविक्रमसू-
तीयं ३ वैरी पञ्च इच्छाम एकादशं ११ एतद्वचनमैतैः ॥ ३० ॥

मघाशिफोपार्यभदां दशूकत्रिपूर्विकावारुणभेषु वामं ॥

सदन्दि मूरे जलयंत्रकर्मारिकेऽब्जदीप्तौ जलभोदयेऽब्जे ॥ ३१ ॥

अथ अरहट्टकचरणकर्माह—मघोति ॥ जलयंत्रकर्म अरहट्टकचरण वामं श्रेष्ठं स्यात्
केषु मघा शिफा मूलं उषार्यो रजनीश्वंद्रो मृगशीर्षं ददशूकं ददशूकस्य सर्वस्येदमच्छेपा
त्रिपूर्विकाः पूर्वात्रयं वारुणं शताभिषक् एषा द्वेद्वे एषु सदन्दि शुभग्रहवारे मूरे
रविवारे अरिके रिक्तातिपिबर्जिते अब्जदीप्तौ चंद्रज्योत्स्नाया शुक्लपक्ष इत्यर्थः । जलभोदये
मलराशुदयेऽब्जे चद्रे सति ॥ ३१ ॥

सौम्यायने क्षमामखेटदर्शने सहस्यपीज्यालयतोऽन्यराशिगे ॥

विकर्तने शंवरयंत्रसाधनं न बाधते कूपवनश्रियं क्वचित् ॥३२॥

अथ अखेटकयंत्रे मतमाह—सौम्यायने ॥ कचित्स्थाने शंवरयंत्रसाधनं जलयंत्रकर्म कर्तृपदं कूपवनश्रियं कूपजललक्ष्मीं न बाधते न पीडयति क्व सौम्यायने उत्तरायणे क्षमामरौ द्विजौ गुरुशुक्रौ च तौ खेटौ च तयोर्दर्शनेऽस्तरहिते सहासि मार्गशीर्षेऽपि पुनरिज्यो गुरुस्तस्या-
लयौ धनुर्मानौ ताम्यामन्यराशिगे विकर्तने मूर्धे सति ॥ ३२ ॥

यंत्रे शिरःपंजसर्गकाग्रमालातलेषु क्रमतोऽशुधिष्ण्यात् ॥

पंचाक्षमाः पंच च पंच सप्त तारा वराः स्युस्तलमौलिसंस्थाः ॥३३॥

अथारषट्चक्रे भानि स्थापयति—यंत्र इति ॥ यंत्रऽखेटचक्रेऽशुधिष्ण्यात् मूर्धनक्षत्रात् क्रमतः शिरो मस्तकं पंजरं गर्भः काग्रं मस्तकाग्रं मालातलं एषु पंच अक्षमाः पंच च पुनः पंच सप्त ताराः स्युः कोऽपि द्विपार्श्वतो मस्तकयोः पंच पंच भानि घटमालिकामध्ये पंच-
भानि घटमालिकामस्तके पंच भानि घटमालिकातले सप्त भानि इति ॥ अथ फलमाह ॥ तलमौ-
लिसंस्थास्तारा वराः स्युः ॥ ३३ ॥

शुद्धिस्त्वयं सलिलयंत्रविधावशेषे नेयांधुचक्रवलये

भगणांक ९ भागाः ॥ मध्येद्रदिङ्मुखहरित्सु विलेखनीया

दुष्टांशकाः श्वसनयातुयमाग्निदिक्स्थाः ॥ ३४ ॥

अथ कूपचक्रे दुष्टांशकान् दर्शयति—शुद्धिरिति ॥ अशेषे समस्ते सलिलयंत्रविधौ नलयं-
त्रकार्ये इयं शुद्धिर्नेया ज्ञेया मुधीभिंधुचक्रवलये कूपचक्रमंडले भगणांकभागा नक्षत्रगण-
विभागा विलेखनीयाः कासु मध्ये मध्यभागे इन्द्रदिङ्मुखहरित्सु पूर्वप्रमुखकाष्ठामु अत्र श्वसनो
वायुः यातुर्निकृतिर्यमः कालोऽग्निरेषा दिक्स्था दुष्टांशका अशुभभागाः स्युः ॥ ३४ ॥

आद्यांत्यपाणिद्वयमेत्रयुग्मे सवासवादित्यभधैपणे स्यात् ॥

सदन्हि रिक्ताशुभयोगसुक्ते तत्सिद्धये तैलिकयंत्रकर्म ॥३५॥

अथ तैलिकयंत्रशुद्धिमाह—आद्यमिति ॥ तैलिकयंत्रकर्म कर्तृपदं तत्सिद्धये तैलिनः
संपदे स्यात् । आद्यमश्विनी आद्यां रेवती पाणिद्वयं हस्तः चित्रा मेत्रयुग्मं अनुरावा ज्येष्ठा
एषां द्वंद्वैकत्वे किंभूते आद्यांत्यपाणिद्वयमेत्रयुग्मे वासवं धनिष्ठा आदित्यमं पुनर्वसु धैपणं
पुष्य एभिः सह वर्तमाने सदन्हि शुभग्रहदिने किंभूते सदन्हि रिक्तातिथिः अशुभयोगा
श्चिभुक्ते वर्जिते ॥ ३५ ॥

शृंगांतस्तलकर्णदारुयुगसंभारेण भास्वद्रतः सप्ताऽग्नि३

द्यश्चाश्वन्हि३ सायक५मितास्तारा न्यसेयुः क्रमात् ॥

संपच्छोकविपद्जनद्वयसुखता यच्छन्ति तास्तैलिके यन्त्रे-
ऽन्यत्र रसक्रियेऽपि शुभमे लभ्ये ससत्कण्टके ॥ ३६ ॥

अथ शार्दूलशक्तिरहितेन तैलिकयन्त्रचक्रे भानि स्थापयति-शृंगातिइति ॥ तैलिके यन्त्रे सुधिये
भास्वद्वतः सूर्यनक्षत्रात् क्रमात् सप्त ७ अग्निस्रयः ३ द्वौ २ अगाः सप्त ७ बन्दिस्त्रयः ३ सायकाः
पञ्च ५ एभिर्मितास्तारा न्यसेयुः स्थापयेयुः । केषु शृंगं अंतर्बन्धं तलः कर्णः दारुणं संभाराः
एषां द्वेष्टे एषु । ताः सप्तादिताराः संपत् ७ शोकः ३ विपत् २ धनं ७ ऋद्धिः ३ सुखं ५ एषा
भावे तांतामिति यच्छन्ति ददति कास्मिन् शुभमे शुभराशौ किंभूते शुभमे ससत्कण्टके शुभग्रहयुक्तं
केंद्रे सति अन्यत्र रसक्रिये क्षुरसादियन्त्रकर्मण्यपि इदं ज्ञातव्यं ॥ ३६ ॥

दिक्षु ताराश्चतस्रो विदिक्षु त्रयं हेलिभादीशकोणात्सभाशासने ॥
मृष्टिमार्गाच्च शून्यस्थिती बन्दिभीर्धीश्च भौ राजशं चौरभीः शं क्रमात् ३७

अथ लघ्विषया चतुरो (चतुस्तलं) इत्यादिभाषा चक्रे भानि स्थापयति—दिक्ष्विति ॥ हेलि-
भात् सूर्यनक्षत्रात् मृष्टिमार्गात् सभाशासने आस्थानसभायां (चतुरो) इति भाषायां चतस्रस्ताराः
स्थाप्याः । च पुनरीशकोणात् ईशानकोणात् विदिक्षु त्रयं भत्रयं देयं । क्रमात् नक्षत्रचतुष्के शून्यं
एवं त्रये स्थितिः अनयोर्द्विद्वः चतुष्के बन्दिभीरग्निभीतिः त्रये धीर्बुद्धिः चतुष्के भीर्मयं त्रये
राजशं भूरसुखं चतुष्के चौरभीः चौरभयं त्रये शं सुखं स्यात् ॥ ३७ ॥

दारुणोग्राण्यमूलानि मिश्राण्यवाःपितृभान्यांत्यवातादितेयानि च ॥
प्रोज्झ्य शेषेषु भेष्वर्कसद्भासरे सत्तिथौ सत्सभालिंदमासाधयेत् ॥ ३८ ॥

अपाहिंदकृत्यशुद्धिमाह—दारुणेति ॥ पुमान् सत्सभालिंद शुभसभाप्रवाणमासाधयेत्
कुर्यात् किरुत्वा दारुणोग्राणि दारुणसंज्ञानि उग्रसंज्ञानि अनुत्थानि मूलवर्णितानि मि-
श्राणि द्वे कृत्तिकाशब्दो बहुवचनात्तत्त्वाद्वहुवचनं घटते अवाःपितृभानि वार्जलं पूर्वाषाढा
पितृभयं मघा आभ्यां वर्णितानि पितृणामिदं पितृभयमन्यथा छेदोभाः आंत्यं रेवती वात-
स्वाती आदित्यं पुनर्वसु एषा द्वेष्टे एतानि च प्रोज्झ्य विहाय शेषेषु भेषु अर्कसद्भासरे सूर्य-
दिने शुभग्रहदिने सत्तिथौ ॥ ३८ ॥

द्विशयमिश्रभपावनदारुणान्युपलदारुविदारणकर्मणि ॥

विपुरसिद्धिवसाननमातिथीश्चपलराश्युदयेऽन्वसदन्विते ॥ ३९ ॥

अथ पाषाणकाष्ठविदारणशुद्धिमाह—द्विशयेति ॥ उपलाः प्रस्तराः दारु काष्ठ एषा
विदारणकर्मणि द्विवाकरणकार्ये द्विशयो हस्तयुग्मं हस्तचित्रे मिश्रभानि पाषाण स्थानी
दारुणानि दारुणसंज्ञानि एषां द्वेष्टे इमानि स्युः । च पुनर्विगतं नष्टं पुरं शरीरं यस्माद्यस्य वा
विपुरोऽनंगः कंदरिस्त्रयोदश १३ सिद्धयोऽष्टौ ८ वः शतः एकादश ११ सः सूर्यां द्वादश

१२ आः स्वयंभूस्तस्याननानि मुखानि चत्वारि एभिर्मातीति एतन्मिता तिथिः त्रयोदशी अष्टमी एकादशी द्वादशी चतुर्थी चेति शुभा स्यात् । 'वो वाते वरुणे रुदे' इति 'सः सूर्ये च परोक्षे च' इति 'विरिचौ आश्व पुष्टिग' इत्येकाक्षरकोपे ॥ पाठांतरेणापि यदुक्तं लोकभाषायां 'तरोति अष्टमी' चौदशी चोधि नवमीति हिंसाहाणटंरुणदारुणकज्जिचारिपुनिमङ्गलहङ्काराणां ' इति कांकटं ॥ करिम्न चपलराशयुदये किंभूतेऽसदन्विते खलग्रहयुक्ते ॥ ३९ ॥

रविभतो भुजयानुशरैस्ततो मुहुरिहोपचयेन विगर्हितम् ॥

यदुडु तज्जिनदिक्प्रमितं तथा दृपदयोमणिदारुविदारणे ॥४०॥

अथ पापाणादौ विदारणे भानि चिंतयति—रविभत इति ॥ सूर्यनक्षत्रात् भुजया हस्तेन नक्षत्रयुग्मेन अनु पश्चात् शरैर्नक्षत्रपंचकेन ततो मुहुरारं वारं उपचयेन पुनः पुनः पंचवृ-
द्धिविधानेन यत् उडु जिनदिक्प्रमितं चतुर्विंशतितमं दशमं च ह्यात्तथा तन्नक्षत्रं चतुर्विंशं दशमं च विगर्हितं त्याज्यं करिम्न दृपत् पापाणः अयोमणिर्लहमणिः रत्नं दारु काष्ठं एषां विदारणे भिन्नकरणे ॥ ४० ॥

चित्राजमित्राजभराजरेवतीसावित्रसुत्रामककाश्यपीज्यभैः ॥

सदन्हि सौरक्षदशेन्द्रभान्यभैः पटक्रियायंत्रविधौ नृभोदये ॥ ४१ ॥

अथ वस्त्रक्रियायंत्रविधौ भादिशुद्धिमाह—चित्रेति ॥ यंत्रविधौ 'ताणो चडाववो' इति भाषा पटक्रिया स्यात् कैः चित्रा अजो विष्णुः श्रवणः मित्रोऽनुराधा अनो ब्रह्मा तस्य भं रोहिणी राजा चंद्रो मृगशीर्ष रेवती सावित्रं सविता सूर्यस्तस्येदं भं हस्तः सुत्रामा इंद्रो ज्येष्ठा को वायुः स्वाती काश्यपी पुनर्वसु इज्यभं पुष्यः एषां द्वे एभिः पुनः कैः सौरक्षात् सूर्यभात् दश दशमं इंद्रं चतुर्दशं नक्षत्रं आभ्यामन्यभैः सूर्यनक्षत्रादशमचतुर्दशमितन-
क्षत्रवर्जितनक्षत्रैः क सदन्हि शुभग्रहदिवसे नृभोदये नराशयुदये ॥ ४१ ॥

आदित्यमादित्यमृदूग्रधन्वभं सांत्याजवाताजभर्मकसद्युगम् ॥

चरोदये वारिचरोदयेनजे सत्कंटके हारि कुलालकर्मणि ॥४२॥

अथ कुंभकारकर्मणि भादिशुद्धिमाह—आदित्येति ॥ कुलालकर्मणि कुंभकारकार्ये आदित्यादिनक्षत्रं हारि शुभं स्यात् । आदित्यं पुनर्वसु आदित्यं भं हस्तः मृदूनि उग्रधन्वा इंद्र-
स्तस्य भं ज्येष्ठा किंभूत आत्यं रेवती अनो विष्णुस्तस्य भं श्रवणः वातः स्वाती अनो ब्रह्मा रोहिणी एभिः सहितं पुनः किंभूतं अक्रमद्युगं सूर्यशुभग्रहदिनयुक्तं पुनः करिम्न चरोदये चरलमे वारिचरोदयेनजे मलचरलग्रयुक्तशनो सत्कंटके ॥ ४२ ॥

अथः समाशापरिधौ निपस्थले दंडे सचंडच्छविभाद्रमंडलं ॥

कुलालचके कमतो नगांशमं घटापरोदक् च तदेतदर्थकृत् ॥४३॥७

अथ कुलचक्रे भानि स्थापयति—अथ इति ॥ कुलचक्रे सचडच्छविभात् सूर्ययुक्तं नक्षत्रात् नगाशम सप्ताना चतुष्कमितेन अष्टाविंशतिर्भमडलं स्थाप्य कस्मिन् कमात् अथ समाशाश्रितौ अथ स्थाने शंखस्थाने समदिक्षु परिधौ निपस्थले कुम्भस्थाने दंडे च अत्र धटापरोक्षं कुम्भस्थानगत पश्चिमदिग्गत उत्तरदिग्गत तत् एतत् नक्षत्र अर्थकृतं कुम्भस्थानस्य सात्करं स्यात् ॥ ४३ ॥

शैलूपारोहयंत्रे तपनविधिमतोऽङ्गशमं मूर्ध्नि मध्ये
पूर्वाद्याशा वरत्रास्वनु तलविषये तारकामंडलं स्यात् ॥
वामं वेणाववामं त्वपरमिह सदैतत्कलाकर्तृसार्द्राचित्रा-
धीराच्युतर्क्षत्रितयधिपणभैः सत्सदकैः सुलभे ॥४४॥

अथ स्वधरया ध्वजाणिकाना वशाःरोहणयत्रचक्रे भानि स्थापयति—शैलूपेति ॥ शैलूपो नदस्तस्यारोहयंत्रे वशस्थापनयत्रणे तपनविधिमतो रविनक्षत्रात् अष्टशम सप्ताना चतुष्कमितेन सप्तविंशतिस्तारकामंडलं मूर्ध्नि मस्तके मध्य गर्भे पूर्वाद्याशावरत्रासु पूर्वप्रमुखदिग्गुरुषु वाम अवाम सव्यापसव्येन गत अनु पश्चान् तलविषये वशतले स्यात् । इह वेणौ वशे मस्तकं मध्यतलाना त्रये आर्द्राचित्रात्रीराणि अच्युतर्क्षत्रितय श्रवणत्रय त्रिपणभ पुष्यः एषा द्वे एभि सत् शुभ स्यात् । कस्यैतत्कलाकर्तुर्नदस्य कै सदर्कैः शुभग्रहमूर्त्यै सुलभे सति च पुनरप्य सव्यापसव्यरगुरुषु गत नक्षत्र इह कामविनाशकं स्यात् ॥ ४४ ॥

विडलभाडलभैरपहस्तितैरसदहानि युतान्यसदुद्गमे ॥

त्रियुगदारुणमिश्रशयद्वयैरुपलदारुविदारुणकर्मणि ॥४५॥

अथोपलदारुविदारुणे वीरादिशुद्धिमाह—विडलेति ॥ उपलदारुविदारुणकर्मणि पापाणं काष्ठभेदनकायसदहानि खलग्रहदिनानि स्युः किम्भूतानि असदहानि युतानि युक्तानि कैरपह- स्तितैर्हस्तवर्जितैर्विडलभाडलभैः विडलनक्षत्रयागीराडलनक्षत्रयोगे त्रियुग पूर्वात्रय उत्तरात्रये दारुणसंज्ञानि मिश्रसंज्ञे शयद्वय दक्षश्रित्रा एषा द्वे एतैः कासदुद्गमेऽशुभग्रहाणा लभे ॥४५॥

शयमृगश्रुतिमूलपुनर्वसश्वसनभेशभवासववासवे ॥

निचितनिर्जरवर्द्धकिर्भवेद्विदि च चर्माविधानमहो सिते ॥४६॥

अथ चर्मकार्ये मादिशुद्धिमाह—शयेति ॥ चर्मविज्ञान चर्मकार्यं भवेत् के शयो हस्त मृगो मृगाशिर श्रुति श्रवण मूल पुनर्वसु श्वसनो वायुस्तज्ज स्वाती ऐशभ आर्द्रा वासर धनिष्ठा वासर इदो ज्येष्ठा एषा द्वे एभि किम्भूतैर्निचितं नियुक्तं निर्जरवर्द्धकिर्द्वमृगशर स्तज्ज चित्रा एषु वै पुन च विदि युगे पुनरहो मूर्त्यै सिते शुक्ले वारे ॥ ४६ ॥

नवकमडलपूर्वपयोग्रहो वस्तरो गुरुराजसितेषु च ॥

वरुणवातमृगाश्विनधीरर्भेवसुभमूलमघादित्तिजीवमे ॥४७॥

अथ नवीनकमंडलौ जलमरणशुद्धिमाह—नवेति ॥ नवकमंडलुपूर्वपयोग्रहो नूतनकमंडलो
 [मपानीयग्रहणं वरतरः शुभः स्यात् केपु गुरुराजसितेषु गुरुचंद्रशुक्राणां वारेच पुनः कैः
 ऋणः शतभिषक् वानं वनस्य जलस्येदं पूर्वापाठा मृगो मृगशिरः आश्विनमश्विनी धीरमानि
 एषां द्वेद्वे एभिः पुनः कैः वसुभं धनिष्ठा मूलं मघा अदितिः पुनर्वसु जीवो गुरुतत्तं पुन्य
 एषां द्वेद्वे एतैः ॥ ४७ ॥

प्रपादिपानीयविधानमेवं विहाय विष्टिक्षयसोमरिक्ताः ॥

जलोदये राजनि वांगुगे तच्छुद्धे त्रिकोणाष्टचतुष्टये स्यात् ॥ ४८ ॥

अथ जलकार्यशुद्धिमाह—प्रपेति ॥ तत् प्रपादिपानीयविधानं जलशालादि जल-
 कार्यमेवं स्यात् किंरुत्वा विष्टिं भद्रां क्षयसोमरिक्ताः क्षीणचंद्रं रिक्तातिथीन् विहाय कस्मिन्
 जलोदये जलराशौ राजनि चंद्रे वाभांगुगे चतुर्थभावगते चंद्रे वा त्रिकोणा ९ । ९ ८-
 चतुष्टये १ । ४ । ७ । १० । त्रिकोणाष्टमकंद्रे शुद्धे सति ॥ ४८ ॥

मृदुध्रुवक्षिप्रशिफाविशाखाप्राचेतसांभोभगणो वरेण्यः ॥

वल्लीवसानद्रुमरोपणे स्यात्सौम्योदयः सत्तिथिवारसूरः ॥ ४९ ॥

अथ वल्लीवसानद्रुमरोपणे वारादिशुद्धिमाह—मृद्वेति ॥ वल्लीवसानद्रुमरोपणे वल्लीना वसानं
 आच्छादयन् वल्लीमंडपरोपणं वृक्षरोपणं च द्वेद्वेकत्वे तस्मिन् सौम्योदयः शुभलभं सत्तिथि-
 वारसूरः शुभतिथिः सूर्यवारः पुनर्द्वेद्वेदिनसत्राणां गणो वरेण्यः शुभः स्यात् । मृदूनि ध्रुवाणि
 क्षिमाणि शिफा मूलं विशाखा प्राचेतसं शतभिषक् अभो जलं पूर्वापादामं एषा द्वेद्वे एषां
 गण इति ॥ ४९ ॥

हलप्रवाहे जनजीवनोद्यमे कृपीवलो मंगलविद्यमांस्त्यजेत् ॥

कृपीटयोन्यंतकभीमभोगिभत्रिपूर्विकैर्द्राणि चतुष्टयुक्तिथिः ॥ ५० ॥

अथ हलप्रवाहे वारादिशुद्धिमाह—हलेति ॥ हलप्रवाहे सौरकर्पणे जनजीवनोद्यमे
 जीवनमानीविज्ञा तस्योद्यमे कृपीवलः कुटुंबी कर्तृपदं मंगलो भोगः विद् बुधः यमः क्षत्रिः
 एषां द्वेद्वे इमान् च पुनः कृपीटयोन्यंतकः कृत्तिका अंतको भरणी भोगो भग आर्द्रा मोगी
 सौम्योऽश्लेषा त्रिपूर्विका ऐंद्रं ज्येष्ठा एषा द्वेद्वे इमानि पुनर्द्वेष्टयुक्तिथिः कुपेगतिपीत्यप्यजेत्
 वर्मेयेत् ॥ ५० ॥

नेवाडले भे द्विकलोनमंडले वार्मण्डले लांगलवाहमारभेत् ॥

कुटुंबिराशावपराजसत्फले ज्येष्ठादिमार्द्धं च तथैव भद्रया ॥ ५१ ॥

अथादृष्टादौ हलरूपेण निषेधनि—नैवेति ॥ कुटुंबी लांगलवाहं हलप्रवाहं नेवाचरेत्
 न कुप्यात् करिष्यन् अडले भे अडलयोगनष्टे पुनर्द्विकलोनमंडले द्विकलाभ्यामूनं हीन
 मंडलं यस्य स तस्मिन् कलाशब्देन तिथिः द्विकलोनमंडले इति कोऽर्थः द्विकलाः समस-

रूपास्तिथय २।४।६।८।१०।१२।१४ इति । यत् पाठात्तेरणाप्युक्त ॥ दशम्येकादशी
चैव तृतीया च त्रयोदशी । सप्तमी पचमी चैव प्रतिपच्च सुखावहा ॥१॥ इति शुभफलमाश्रित्य
प्रोक्तमिति तासु धर्मिण्डले चद्रे सति 'मृगाकां जलमण्डल' इति ब्रह्मसिद्धात जलस्वरूपत्वात् ॥
पुनरपगत राजश्रद्धस्य सफल यस्मात् सोपराजसत्फलो गतचन्द्रबलस्तस्मिन् कुटविराशौ कार्यं
कनामराशौ सति पुनर्ज्येष्ठादिमार्द्धे ज्येष्ठमासपूर्वार्द्धस्तस्मिन् पुनस्तथैव भद्रया विष्टया ॥५१॥

समूरतारादिभतस्त्रयं त्रयं त्रयं शरोन्मं त्रितयं तु पंचकं ॥

त्रिकं द्विकं तारकमण्डलं क्रमादसच्छुभं सीरविमध्यफालदिक् ॥५२॥

अथ हलचक्रे भानि स्थापयति—ससूरोत्ति ॥ समूरतारादिभत सूर्याक्रातनक्षत्रात् त्रय
३ त्रय ३ त्रय ३ शरैरुन्मीयते इति शरोन्म बाणमित ९ त्रितय ३ पुन पंचक ९ त्रिकं ३
द्विकं २ इति हलचक्रे तारकमण्डल स्यात्तत्र क्रमादसत् शुभं च स्यात् । कोऽर्थं योक्रात
त्रयमशुभ त्रय शुभं त्रयमशुभ पंच शुभ त्रयमशुभमिति । पुन सीरविमध्यफालदिक् हलस्य
मध्यभाग प्रोह्य फालदिग् हलस्य द्वयो प्राते शुभ मध्ये नेष्टमित्यर्थ ॥ ५२ ॥

न कंदमूलादिकृपावनिष्टः सीरप्रवाहे भगणाशकः कचित् ॥

शंपागतस्तन्मतमुद्धतं वा सर्वत्र शस्तं हि मदुक्तमेव ॥ ५३ ॥

अथात्र कस्याचिन्मत दूषयन् स्वमत दृढयति—न कदेति ॥ कदमूलादिकृपा कदमूलो
त्पन्नने कचित् शम्पागत शमल' इति भाषा तत्र गतो भगणाशको हलप्रवाहे न इष्ट स्यात्
वा इति पश्चात्तरे तन्मत तस्य ज्योतिर्विदो मतमुद्धतमनर्गत्र हि युक्तार्थे मदुक्त मया प्रोक्तम्
सर्वत्र शस्तं शुभ ज्ञेयमित्यर्थ ॥ ५३ ॥

तमीधराश विनयेद्वलं सदा केदारमादौ सप्तलक्षभेरित ॥

सीरोत्तराग्रोत्सुखदिदुमुखी मृगांकदिक् शुद्धिवतीह सत्फला ॥५४॥

अथ क्षेत्रकर्षणविधिमाह—तस्मात्ति ॥ सदा निरतर आदौ कृत्वा हल केदार क्षेत्रतमाध
राश चन्द्रदिशमुत्तराशागत विनयेत् प्राप्नुयान् । द्विक्रमकत्वात् केदारमित्याधारे कर्म । विष्णु
हल सप्तलक्षभेरित चठिष्ठमश्वराशिप्ररित इह क्षेत्रे मृगांकदिक् उत्तराशा सत्फल
शुभफलदायिनी स्यात् । विष्णुत मृगांकदिक् शुद्धिवती कुयोगराहिना पुन विष्णु
सीरोत्तराग्रोत्सुखदिदुमुखी सीरेण हरेण उत्तरा स्यात् । उत्तरादगग्रत ओत प्रो
सुखेति मुख पृथ ददुमुख यस्या सा सीरोत्तराग्रोत्सुखदिदुमुखी इति । सा सीरोत्तरा ।
पाठ मित्या ददुख्यया शय तथैव ॥ यत् सोमो दिश प्राति त्रिर नयन ५०
रेखा उत्पद्यते ॥ यथा त्रयमगमननेका आवनन द्वितीया पुनस्तथा प्राति द्वितीय
नेन तृतीया पुनरावर्तनेन चतुर्थी पुनरुत्तरा प्राति तृतीयगमनेन चमरी रेखा उत्पद्यतश्चित्

न कार्या तथा चोक्त ॥ शस्तासु चंद्रतारासु शुचिः शुद्धेन वासमा । स्नात्वा गर्धश पुण्ये
पूजयित्वा विशेषतः ॥ १ ॥ पृथिवीं ग्रहमयुक्तं पूजयित्वा प्रजापतिं । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दानव्या
च प्रदक्षिणा ॥ २ ॥ रुगो वृषौ नियोक्तव्यौ नवीनैश्च युनेन वा ॥ हेमपट्टद्वाराग्रेण उत्तररेखा
न कारयेत् ॥ ३ ॥ उत्तरामिमुखो भूत्वा क्षीरेणार्चं प्रदापयेत् । विरलं छिन्नलागुलं कविल-
वृषभं त्यजेत् ॥ ४ ॥ हलप्रवाहणं कार्यं नीलगर्भैर्वृषकर्षकं । हलदिभिर्द्वैः सेमं कुट्टनं
शुभं भवेत् ॥ ५ ॥ वृषभा यदि युद्धेचरन् तस्य विघ्नं सदा भवेत् । तस्य सर्वप्रकारेण निर्दिष्ट
कारयेत्तदा ॥ ६ ॥ एका जयकरी रेखा तृतीया चार्थवृद्धिदा । पचमी च भवेद्रक्षा बहुस-
ह्यफलप्रदा ॥ ७ ॥ अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या महादोषस्तनो भवेत् । स्मर्तव्या वपवः शुकः पृथु-
नामा सर्वद्रमाः ॥ ८ ॥ पराशरो हली चैव सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ इति ॥ अत्र दुर्निमित्तानि तत्रैवो-
क्तानि ॥ हलं प्रवाह्यमाणे तु कूर्म उत्पद्यते यदि । गृहिणो मृत्युरेतस्य ततोऽग्नेश्च भयं भवेत्
॥ ९ ॥ इषाभंगो यदा क्रुद्ध सतापो जीविनस्य च । सुतनाशो युगे भूमे समाने त्रियते
शिशुः ॥ १० ॥ योऽक्रच्छेदे तु व्यासगः सस्यहानिश्च जायते ॥ ११ ॥ हले प्रवाह्यमाणे तु गौरे-
कः प्रपतेद्यदि । प्रपतेद्युक्तमात्रस्तु बंधनं च प्रयच्छति ॥ १२ ॥ ज्वरातिसाररोगेण रुषि-
भंगं विनिर्दिशेत् । प्रवहेद्युक्तमात्रस्तु ततो गौः खनते यदि ॥ १३ ॥ नहेन युक्तमात्रस्तु तदा
सस्य चतुर्गुणमिति ॥ १४ ॥

योक्तादिकोपस्करसाधनेऽनसो हलस्य वा स्युः सशुभेनवासराः ॥

पूर्णाजयानंदवतीयुता व्यमा मृदुस्थिरक्षिप्रजटाचराचिताः ॥ ५५ ॥

अथ योक्तादिसाधनशुद्धिमाह—योक्तेति ॥ अनसः शकटस्य वा योक्तादिकोपस्करसाधने
योक्ताद्युपस्करकार्यं सशुभेनवासराः शुभग्रहयुक्तमूर्धादिनां स्युः । किंभूतः सशुभेनवासराः
पूर्णाजयानंदवतीयुताः पूर्णातिथिः जयातिथिः नशातिथिः आभिर्युक्ताः पुनः किंभूता व्यमा
अमावास्यावर्जिता पुनः किंभूता मृदूनि स्थिराणि क्षिप्राणि जटा मूष नराणि एषा द्वे
एतद्वाराचिताः व्याप्ताः ॥ ५६ ॥

मेत्रेष्वलोलेषु लघुष्विहानले मूलश्रविष्ठाग्रजभेषु सद्दिने ॥

रिक्ताविमुक्तेश्चमदन्दिह वानमे समस्तबीजोत्तिरभीष्टसिद्धये ॥ ५६ ॥

अथ बीजवापने भादिशुद्धिमाह—मेत्रेष्विति ॥ ममस्तुबीजोपि ममग्रहोत्तममनोऽपि ह्ये
वाग्निस्कार्याय स्यात् क मेत्रेषु भेषु छेदेषु लघुष्वग्रजेषु ऋषु आनते र्भूतिनाम मूष
श्रविष्ठा अनिष्ठा अग्रतो विप्युत्तस्य च श्रावः एषा द्वे एषु सद्दिने शुभग्रहदिने वागुनः
सूर्यवारे रिक्ताविमुक्ते रिक्तानिषिर्दिने पुनश्चमत्तमिच्छेन्नामासास्या यत्नित्वं मनसि ॥ ५७ ॥

कूपांशुसिद्धान्नकवापने कविन्मघाश्यावंशुविदो विर्गहितो ।

समादृतं वारिभमत्र केनचिद्वीजोत्तिरिष्टाश्रितसन्नुभोदये ॥ ५७ ॥

अथ कूपनलवापकार्ये मनमाह—कूपति ॥ कचिन् स्थाने कूरावुसिद्धान्नकापने कूपनलेन नि
वात्रान्यवापने मवाशयो मवाहस्यो अशुविदो सूषेवुषौ विगर्हितौ वान्तौ । अत्र केनचिन्
वारिम पूर्वावादा समादृतमगीकृत । पुनर्वान्तौसिर्वीजवापनमिष्टा श्रेष्ठा स्यात् कस्मिन् आशि
तसप्तमोदये शुभग्रहयुक्त नृराशुदये ॥ ५७ ॥

शिरस्त्रिमा राममिता गलोऽर्कमा गर्भश्च तद्योऽनु च लूनकं पराः ॥
पुच्छाग्रमिदुप्रमदाःपिचंडगा वराः पृदाकोरुडतोऽन्नवापने ॥ ५८ ॥

अथ बीजवापविषये कणिचक्रमाह—शिर इति ॥ पृदाको सर्पस्य राहोरित्यर्थः । यत्र
राहोस्तु कणीति नाम अवातरप्रसिद्धमेति तस्योडुत्रो नक्षत्रात् इदुमनसास्ताराः त्रिमल्ल
मिता शिर स्यात् । एव राममिताल्लयमिता गल स्यात् । अर्कमा द्वादशमिता गर्भो मध्य-
भाग स्यात् । अनु पश्चाच्चनत्तो लूनकं पुच्छ स्यात् । परा अग्रेनास्ताराः पुच्छाग्र स्यात्
अवाहिषकेपिचंडगा उदरगास्तारा वरा श्रेष्ठा स्युः 'पिचंडो जठरोदरे' इति हेम ॥ ५८ ॥

सीरप्रवाहद्युभशुद्धकाले गोदारणारंभणमाहुरार्याः ॥

क्षेत्रे च बीजोसिभघसशुद्धौ गृहे नयेत्सीत्यचयं कुटुंबी ॥ ५९ ॥

अथ धान्यच्छेदनशुद्धिमाह—सीरेति ॥ आर्या पठिता गोदारणारंभण कुहालकः यमाहु
कपयंति 'गोदारण तु कुहाल' इति हेम । कस्मिन् सीरप्रवाहद्युभशुद्धकाले हलप्रवाहस्य दिन
सत्राणां शुद्धकाले च पुनः कुटुंबी सीत्यचयं धान्यपुनं गृहे नयेत् प्राप्नुयात् 'धान्य तु सप्त
सीत्य च' इति हेमः । कस्या बीजोसिभघसशुद्धौ बीजवापनस्य नक्षत्रदिननिर्देशितायास्तथा ॥ ५९ ॥

विधूलयंत्यावकैः करीपैः सधूलिभिः क्षेममलं विशश्चेत् ॥

सदन्दि शुद्धेऽतिशुभं चराद्यं क्रव्यादभावाजपट्टसपुण्यैः ॥ ६० ॥

अथ क्षेत्रे करीपादिशेषणमाह—विधूलोति ॥ चेन् यदि अलमवधारणे विश कुटुंबिन
क्षेत्रं विधूलयति धूलियुक्तं कुर्वति (खानरनाखनु) इति भाषा के करीपै शुष्कगोमयगमैः
किंभूतै करीपै अवकै सकै भवा जावकगमै पुन किंभूतै सधूलिभि धूलियुक्तैः कस्मिन्
सदन्दि शुभग्रहाणां दिने किंभूतै सदन्दि शुद्धे निर्दोषप्राप्ते के चराद्यानि चरनस्रप्रयुक्तानि
कम्पादो राशसो मूल भवस्येदं भावमार्द्रा अनवटस अनपादम पूर्वभाद्रपदा पुष्य प्रषा द्वाद
रेतै किंभूतै क्षेत्रं अतिशुभ ॥ ६० ॥

आजीवमिच्छयपि ना यदा यो गोधान्यभूमिव्यवहारतोऽसौ ॥

चरेच्चरसिप्रमृदुध्रुवर्षस्तदुद्यनं सत्तिथिवारकीर्णः ॥ ६१ ॥

अथ गवादीना व्यवहारशुद्धिमाह—आजीवमिति ॥ यदा चेन् यो ना पुमान् आजाव
आजीविकामिच्छति वाछति 'आजीवो जीवन वार्ता' इति हेम । कस्मान् गार्हो धान्य भूमि-

क्षेत्रादिः आसा द्वेदे आसां व्यवहारतो व्यापारात्तदामौ । नरस्तद्व्यमं तेपु गवादिषु उप-
क्रमं चरेत् कुर्यात् । कैः चराणि त्रिप्राणि नृद्वानि चतुष्पाणि एषा द्वेदे एतदे । किंभूतैः सत्तिपि-
वारकीर्णैः शुभतिथिवारव्याप्तै ॥ ६१ ॥

नवोक्षगोर्कर्म समेत्य शुद्धे द्वीशादितैर्यदलघुश्रविष्ठाः ॥

सवारुणांत्याः सशुभद्युयोगाः शीर्षोदये प्रापयति प्रियार्थम् ॥ ६२ ॥

अथ नूतनवृषस्य कृत्यमाह—नवोक्षेति । शुद्धे निर्दोषकाले नवोक्षगोर्कर्म नूतनवृषस्य
कर्म कर्तृपद प्रियार्थं वाञ्छितपदार्थं प्रापयति किञ्चत्वा द्वीशं विशाखा आदितेयं पु-
नर्वसु ऐंद्रं ज्येष्ठा लघुनि श्रविष्ठा धनिष्ठा आमा द्वेदे एतास्ताराः प्रति समेत्य प्राप्य किं
भूताः सवारुणांत्याः शतभिषकूरेवनीसहिताः पुनः किंभूताः सशुभद्युयोगाः शुभग्रहदिन-
योगयुक्ताः क शीर्षोदये शीर्षलभे ॥ ६२ ॥

मूलादितेयद्वयवारुणांत्यत्रिपूर्विकाक्षिप्रमृगश्रविष्ठाः ॥

सद्वीश्वरा वृष्यजकात्तरीणा क्रियासु सेनास्फुजिदैर्निसोमाः ॥ ६३ ॥

अथ मेघादिना कृत्यशुद्धिमाह—मूलादीति ॥ वृष्णिर्मेघः अजश्रमः कासरी महिणी
आसा क्रियासु कर्मसु मूलादिताराः स्युः । मूळ आदितेयद्वय पुनर्वसु पुष्यः वारुणं शतभिषक्
आर्त्यं रेवती त्रिपूर्विका पूर्वाश्रय क्षिप्रमृगो मृगशीर्ष श्रविष्ठा धनिष्ठा आमा द्वेदे इमा-
स्तारा किंभूता इमाः सद्वीश्वरा विशाखायुक्ताः पुनः किंभूताः मेनेने इन सूर्यः आस्फुजित्
शुक्रः ऐनिः शनि सोम एषा द्वेदे एषा सहनर्भानाः ॥ ६३ ॥

अथोष्ट्रवामीखरकर्म पाणौ पौरंदराद्यानिलमैत्रवर्गे ॥

पुनर्वसौ हंससितैर्निवारै गरुत्मता कर्म समृद्धये तु ॥ ६४ ॥

अथेति ॥ अथानंतरं उष्ट्रशमीखरकर्त उष्ट्रैस्तरादेकत्राणा कृत्यं तु पुनर्गरुत्मता
पक्षिणा कर्म कर्तृपद समृद्धये संपदायै रत्नात् । क पाणौ हस्ते पौरंदरं ज्येष्ठा आद्यमश्विनी
आनिल स्नाती मेघमनुष्या एषा वर्गे मृगे पुन पुनर्वसो अदितिमे पुनर्वसुश्रद्ध एकवचना-
तोऽप्यत्र पुन हंसः सूर्यः शनि शुक्र ऐनिः शनि एषा द्वेदे एषा वारे ॥ ६४ ॥

अमा३०ष्टमी८भूत१४दिनानि आस्करं चित्रोत्तराधोक्षजभाजभानि च ॥

परित्यजेन्निर्गमने निवेशने सदा पशूनां स्थितितोऽर्कसंक्रमम् ॥ ६५ ॥

अथ पशूना निर्गमनिवेशशुद्धिमाह—अमेति ॥ सदा पुमान् पशूना स्थितितः स्थानान्
निर्गमने निवेशने प्रयागे प्रवेशने एतानि त्यजेत्तन्माह ॥ अमा अनावसौ अष्टमी ८
मूलादेन चतुर्दशी एषा द्वेदे एतानि च पुनर्भास्कर रविदिन च पुनश्चित्रा उत्तरा अतोत्तमो
विष्णुस्तद्ध्रं धरणः अतोत्रया रोहिण्येषा द्वेदे इन निमानि पुनरर्कसंक्रममिति कर्मरदानि ॥ ६५ ॥

लघुश्रवोवासववासवांत्यभैस्तिष्यादितेयद्विपविश्वकर्मभैः ॥

जीवस्वधात्वंवरधान्यवस्तुजः क्रयस्तथा विक्रय एव सत्वद्युनि ॥६६॥

अथ क्रयविक्रयशुद्धिमाह—लघ्विति ॥ जीव पशु ह्य धन वातुर्लोहादि अंबर वस्त्र धान्य एषा द्वे इत्यादीना वस्तूना क्रयस्तथा विक्रय एव स्यात् । कै लघुनि श्रव श्रवणः वासव धनिष्ठा वासव इन्द्रो ज्येष्ठा आत्य रेवते एषा द्वे एतद्वैः पुन कैः तिष्यः पुष्य आदितेय पुनर्वसु द्वीप द्विस्वामिक विशाखा विश्वकर्मभ चित्रा एषा द्वे एभिः पुनः सत्वद्युनि शुभग्रहाणा दिने ॥ ६६ ॥

एभिश्च यादोऽर्यतमीशभोत्तराभूतेशभैर्द्वीश्वरजैष्णवोद्भिज्जतैः ॥

विविद्यमारद्युपुच स्थिरोदये सत्कण्टके वस्तुविनामयो वरः ॥ ६७ ॥

अथ वस्तूना विनिमय (पाठरण) शुद्धिमाह—एभिश्चेति ॥ वस्तुविनामय एक वस्तु दत्त्वान्यवस्तुग्रहो वरः श्रेष्ठ स्यात् कैरेभि पूर्वोक्तध्वानिद्वयत्रै किंभूतैरेभि द्वीश्वर विशाखा जैष्णव देव ज्येष्ठा आभ्यामुद्भिस्तैर्वाजितैश्च पुनर्य दोऽर्यो जलस्वामी वरुण शतभिषक् तमीशश्चन्द्रो मृगशीर्षभ उत्तरात्रय भूतेशभमार्द्रा एषा द्वे एतै पुन केषु विगता निर्गता विद् बुध यम ज्ञानिः आरो भीमश्चेते येम्यस्तेषा द्युपु रविचंद्रगुरुशुक्रदिनेषु पुनः स्थिरोदये स्थिरलम्बे सत्क-
टके शुभग्रहयुक्त कटके ॥ ६७ ॥

अलोलसाधारणदारुणोग्रैर्धनं प्रदत्तं कुसिदेहया यत् ॥

हृतं बलान्यस्तमिदं च दैवान्न याति पाणिं पुनरेव तत्स्वम् ॥६८॥

अथ कालांतरवनापणशुद्धिमाह—अलोलेत ॥ दैवात् कुसीदो वृद्धिजीवन तस्या ईहा इच्छा तथा कालातरेच्छया कृत्वा यत् वन प्रदत्तं च पुनर्यत् वन हृतं चोरेण इति शेषः पुनरप्यवा बलान्यस्त भूमौ क्षिप्तं 'बला लक्ष्मीर्लला मही' इति अन्वयार्थः ॥ तत् इदं धन कर्तृपद पाणि नायाति हस्तात् न भाति तन्मस्येति शेषः । कुसीदामन्त्र 'हस्व इकार शब्दभेदात् दृश्यते ॥ ६८ ॥

भद्रा२।७।१२तिथौ मंगलसौरिमंत्रिणस्त्रिपुष्करः स्याद्विपमाग्निभं यदा ॥

वृद्धौ पिनष्टे च हृते मृते फले योगस्तदासौ त्रिगुणप्रवृद्धिर्हृतः ॥ ६९ ॥

अथात्र त्रिपुष्करयाम दर्शयति—भद्रेति ॥ यदा भद्रातिथौ मंगलसौरिमन्त्रणो भीमशानि गुरु तिथौ ॥ यदा ॥ १२१ ॥ राग सत्र च स्युस्तदा त्रिपुष्करनामा योग स्यात् । असौ त्रिपुष्करो वृद्धः प्रवृद्धने फल विनष्टे नाशे फले हृते चारा देना हारिते फले मृते मरणे फल त्रिगुण प्रवृद्धिर्हृतः शुभ त्रिगुण शुभ अशुभे त्रिगुणमशुभ स्यात् ॥ ६९ ॥

ध्रुवलघुमृदुलोर्जीनकार्येदुवारेः कुयुतिशजानिरिक्ता-

मा३०विमुक्तैर्नलम् ॥ नवकुसुमफलानां वादरार्द्रापीनां

रसकृपिकणिताना संग्रहो भोगसिद्धये ॥ ७० ॥

अथ नवीनपुष्पादीनां संग्रहमाह—ध्रुवेति ॥ नवकुसुमफलानां पुष्पदरः कर्णामः
आर्द्रौषधयः आसा पुनः रसो घृतादयः कृषिः कणिशं घान्यशिरः एषा द्वे एषा संग्रहो भो-
गवृद्धये सुखमोगप्रवर्द्धनाय स्यात् । कैः ध्रुवाणि मृदूनि लघूनि छोढानि एषा द्वे एतैः पुनर्जीवो
शुरुः काव्यः शुक्र इंदुश्चंद्र एषा वारैः किंभूतैः कुयुतिः कुयोगः शः शंभुस्तस्माज्जानिर्जन्म
यस्याः सा भद्रा रिक्तातिथिः अमामावासी आभिर्विमुक्तैर्वर्जितैः ॥ ७० ॥

नवसलिलफलान्नप्राशनं सज्जनानां श्रुतिशयकभणौ-
ष्णादिद्वयेषूत्तरासु ॥ सरविशुभादिनेष्वेवानुराधासु
शस्तं नितुमश्धट७ककुशलेय५कन्या५९खिलमे ॥ ७१ ॥

अथ नवीनजलादीनां प्राशनमाह—नवेति ॥ नवसालिष्ठं नूतनजलं नूतनफलं नवीनां
एषां प्राशनं खादनं शस्तं शुभं स्यात् । केषां सज्जनानां नृपादीनां क श्रुतिः श्रवणः शयो
हस्तः को वायुस्तं स्वाती पौष्णं रेवती आदिद्वयं अश्विनी भरणी एषा द्वे एषु पुनः उ-
त्तरासु उत्तराश्रये पुनः सरविशुभादिनेषु रविवारे शुभग्रहवारे पुनरनुराधासु पुनर्नितुमं मिथुनं
षटः कुंभः ककुब्दान् वृषभो वृषराशिः लेयः सिंहः कन्याऽस्त्री धन्वी धनुरेपा लग्न एव
निश्चितं ॥ ७१ ॥

कृष्णाभयानागरपूर्वसेवनारंभो विधेयो लघुभेऽत्यभे मृगे ॥

श्रवस्त्रयेऽर्केदुसितेज्यवासरैः पूर्णाजयानंदवतीषु धीमता ॥ ७२ ॥

अथ हरीतक्यादिसंवनशुद्धिमाह—कृष्णेति ॥ धीमता विदुषा कृष्णा पिप्पली अमया
हरीतकी नागर गुंठी एषा पूर्वसेवनारंभः प्रथमं खादनमारंभो विधेयः कर्तव्यः क लघुमे
लघुसंज्ञनक्षत्रेऽत्यभे रेवत्या मृगे मृगशीर्षे श्रवस्त्रये श्रवणवनिष्ठाशतभिषासु पुनः कैः अर्कैः
सूर्ये इंदुश्चंद्रः सितः शुक्र इज्यो गुरुरेषा वासरैः पुनः क पूर्णातिथिर्नयातिथिर्नंदवती नंदातिथिः
आसा द्वे आसु ॥ ७२ ॥

मृगांकसूतादिरसांगसाधनं मिश्राद्यमूलैश्चमृगेंद्रवासवैः ॥

शये कुजार्केज्यजया३।८।१३स्वमोद्वयोर्जीवारयोरीज्यगृहान्यगेहरो७३

अथ रसांगसाधनशुद्धिमाह—मृगेति ॥ मृगांकः सूतः पारद इत्यादि रसांगमाधनं स्यात्
कैः मिश्रमंज्ञमानि आद्यमश्विनी मूल ऐश्वमार्द्रा मृगो मृगशीर्षे इंद्रा ज्येष्ठा वामनं घनिष्ठा
एषा द्वे एतैः पुनः क शये हस्ते पुनः कुजो यौमः अर्कः इज्यो गुरुः नयातिथिः आसा
द्वे आसु पुनः क नीवारयोगैरुपमयोरमौदज्योरस्तवर्निवयोः पुनरीज्यगृहे गुरोर्गृहे घ-
नूर्मानौ आभ्यामन्यगे हरो मूर्ये धनुरर्कमार्द्रावर्जिते इत्यर्थः ॥ ७३ ॥

लोले मृदुसिप्रगणे च पूर्णया सनंदयाब्जेज्यसितांशुमशुभिः ॥

युते नृलग्ने भिषजोपधप्रिये पूर्णे विधौ हारि रसांगसेवनम् ॥ ७४ ॥

अथ रसागसेवनमाह—लोल इति ॥ रसागसेवन हारि श्रेष्ठ स्यात् क लोले चरनक्षत्रे पुन
मृदूनि क्षिप्राणि एषा गणे समेहे च पुनर्नद्रया तिथ्या २।७।१२ किंभूतवा भद्रया सनद्रया
नदातिथियुक्तया १।६।११ पुन क अठ्ठ इदु इज्यो गुरु सित शुक्र अशुमान् सूर्य
एषा द्वेष्टे एषा द्युभिर्दिनेर्युते युक्त नृलगे नरराश्युदये किंभूते नृलगे भिपजा वैद्यस्य औषध
तस्य प्रिये इष्टे पुन क पूर्णे समग्रकलायुक्त विधौ चद्र भिपग् भिपज भिपजना' इति
शब्दप्रभेद अथवा औषधमिय नरे इत्यपिशब्दार्थ ॥ ७४ ॥

हुताशेरताः पुरहूतकुंडलीप्रभंजनक्षैरधिकत्रिपूर्विकैः ॥

अवाप्य योऽपाट्वमेत्यसंशयं स्वर्वैद्यरक्षोऽपि नरो यमालयम् ॥ ७५ ॥

अथ रोगोत्पत्तौ तद्वतभफलमाह—हुताशति ॥ य स्वर्वैद्यरक्षोऽपि देवर्वैद्यो रक्षा यस्य
स स्यात् स पुमान् असंशय निश्चित यमालय मृत्युमेति प्राप्नोति किंकृत्वापाट्व रोग
मषाप्य प्राप्य कै हुताशेरता शमुर द्वा 'वन्हेरेता' शिवोऽस्मिन्ना' इति हैम ॥ पुरहूत
इष्टो ज्येष्ठा कुंडली सर्गोऽक्षेपा प्रभंजनक्षै स्वाती एषा द्वेष्ट एभि किंभूतैराधिकत्रिपूर्विकै
पूर्वात्रयेण पूर्ण ॥ ७५ ॥

मृगेशसाधारणवारुणोग्रैः सवासवव्यालभपापवारैः ॥

पष्ठीचतुर्थीनवमीतवारै रोगी नरोऽन्तारमुपैति सत्यम् ॥ ७६ ॥

मृगेति ॥ रोगी नर सत्य निश्चितमन्तार मृ युमुपैति प्राप्नोति के मृगो मृगशीर्ष ऐशमार्द्रा
साधारण मिश्रसंज्ञभ वारुण शतनारा उग्रसंज्ञानि एषा द्वेष्ट एभि किंभूतैरासव धनिष्ठा
व्यालभमक्षेपा पापवारा एषा द्वेष्ट एभि सहवर्तमाने पुन किंभूत पष्ठी चतुर्थी नवमी
आसा षष्ठ आसु तिथिषु इत प्राप्ता वारोऽवसरा यस्ते तै वेलावाराववसर' इति हैम ॥ ७६ ॥

मैत्रेयस्य भे कृच्छ्रतया निरामयो नरोऽनुमासेन मृगाख्यवैश्वयो ॥

मघासु घसैनखमैर्युमैस्तथा द्विदैवतव्रधभवासवेऽपि ॥ ७७ ॥

अथ रोगोत्पन्नभेषु रोगावधिमाह—मैत्री इति ॥ मैत्रेयानुधाया आत्मे रेवत्या नर
कृच्छ्रतया कष्टेन निरामयो रोगी भवेत् । अनु पश्चादेव मृगाख्यवैश्वयोर्मृगशार्पे उत्तरापादाया
मासा निरामयो भवेत् । मघासु नखमैर्यैर्विशतिदिनैरनिरामयो भवत् ॥ ७७ ॥

नवद्युभिर्यातुभरुत्तिकाधिभिर्याम्यश्रमोत्तराणविश्वकर्मभै ॥

एकादशाहोभिरजेज्यकाश्यपीतारार्यभै सप्तदिनेरुपात्यभै ॥ ७८ ॥

नैवादि ॥ यातुभ मूल रुत्तिका आश्विनमश्विना एषा द्वेष्ट एभि रेवत्या नवद्युभिर्नवदिनैरनिरा
मयो भवेत् । याम्य भरणी श्रव श्रवण वारुण शतभिषग् विश्वकर्मा तद्व । चत्वार एषा द्वेष्ट
एभि रुत्वा एकादशाहोभिरैकादशदिनैरनिरोगी भवत् । अजो ब्रह्मा राहिणी इष्य पुष्य
काश्यपी तारा पुनर्वसु अर्यभ उत्तराफाल्गुनी एषा द्वेष्ट एभि ११ मृत उपात्यभै उत्तरा
भाद्रपदासहितै सप्तदिनैरनिरोगी भवत् ॥ ७८ ॥

कार्शान्वेद्राग्निभराजमौलिभैर्मघाशिफाशामनदंशूकभैः ॥

दष्टे नरो यः श्वसनाशनेन वै स तार्क्ष्यसख्योऽपि जहाति जीवितम् ७९

अथ सर्पदष्टे तद्वतभफलमाह—कार्शान्वेति ॥ वै निश्चितं यो नरः श्वसनाशनेन सर्पेण दष्टः स्यात् कैः कार्शान्वं कृत्तिका इन्द्राग्री तद्वं विशाखा राजमौलिश्रंद्रशेखरः शिव आर्द्रा एषा द्वंद्वे एतद्वैः पुनर्मेघा शिफा मूलं शामनं भरणी दंशूकमं सर्पभं आश्लेषा एषा द्वंद्वे एभिः स पुमान् जीवितं आयुर्नहाति त्यजति किंभूतः स तार्क्ष्यसख्योऽपि गरुडमित्रोऽपि ॥ ७९ ॥

पौष्णद्वये दोस्त्रितये मृगे चले विमारुते धैपणमैत्रयातुभे ॥

मंत्रीनसोमद्युषु सत्तिथौ भवेद्वैपज्यकर्म द्युपतापमुक्तये ॥ ८० ॥

अथ रोगिण्य ओषधदानमाह—पौष्णेति ॥ वैपज्यकर्म ओषधकृत्यं भवेत् किमर्थं तुः नरस्य उपतापो रोगस्तस्य मुक्तये विनाशाय, 'उपतापो गदः समाः' इति हेमः ॥ क पौष्णद्वये रेवत्यामश्विन्या दोस्त्रितये हस्तत्रये मृगे मृगशीर्षे, पुनर्विमारुते स्वातीराहिते चले चरसंज्ञमे पुनर्धैपणं पुष्यः मैत्रमनुराधा यातुभं मूलं एषां द्वंद्वैकत्वे पुनर्मंत्रौ गुरुः इनः सूर्यः सोम एषां द्युषु दिनेषु पुनः सत्तिथौ शुभतिथौ ॥ ८१ ॥

साधारणे वारुणदारुणाश्विनत्वाष्ट्रिपूर्वासु वलाजहंसयोः ॥

इ ताशशस्त्राद्युपचर्ययामयो व्रणोद्भवो याति विनाशमाशु च ॥ ८१ ॥

अथ क्षिप्रमतिक्रियामाह—साधारणेति ॥ व्रणोद्भव आमयो रोगो हुताशशस्त्राद्युपचर्यया अग्निपरिणतशस्त्रादिक्रियया क्षिभादिक्रियया आशु शीघ्रं विनाशं सयं याति क साधारणे मिश्रनक्षत्रे च पुनर्वारुणं शतभिषक् दारुणसंज्ञं आश्विन त्वाष्ट्रं चित्रा त्रिपूर्वा आसा द्वंद्वे आसु पुनर्वला भूमिस्तज्जो मौमः हस्तः सूर्य अनयोर्द्वंद्वे 'उपचर्योपचार्यौ च' इति हेमः ॥ ८१ ॥

दुष्टे विधौ पंचकलोनविवे राशौ महोराशिमहीजवारे ॥

रिक्ताद्यचित्रानलवासवाढ्ये मुक्तोपतापस्य नुराष्टवः स्यात् ॥ ८२ ॥

अथ रोगमुक्तत्तानमाह—दुष्टे इति ॥ मुक्तोपतापस्य त्यक्त्ररोगस्य नुर्नरस्य आष्टवः स्नानं स्यात् क दुष्टे दुष्टराशिगते विधौ चंद्रे पुनः पंचकलाभिरूनं हीनं विवं यस्य स नस्मिन् राशौ क्षीण चंद्रराशौ सति पुनर्महसां तेजसा राशि-महोराशिः सूर्यः महीनो मोनः अनयोर्वारे किंप्रते रिक्ता-तिथिः आयमाश्विनौ चित्रा अनलः कृत्तिका वासवं धनिष्ठा एषा द्वंद्वे एभिराढ्ये मुक्ते ॥ ८२ ॥

चलोदये व्याधिसले सदंवरे खलाहिते मज्जनमंगिनो वरं ॥

गदावसाने त्वशुभद्युनि कचिस्तिथरांत्यपेन्नानिलसर्पभान्यभेः ॥ ८३ ॥

चओदेति ॥ अंगिनो नरस्य गदावसाने रोगप्राप्ते मज्जनं वरमस्ति क चओदये नरलब्धे व्याधिसलेऽष्टमभागतमूरग्रहे सदंवरे दशननामगतशुभग्रहे पुनः सज्जहिते षष्ठमावगतलब्ध-

ग्रहे पुनरशुमद्युनि अशुमग्रहाणा दिने क्वचित् स्थिराणि मानि आत्य रेवती पैत्र मघा आनिष्ठ
स्वाती सार्वमच्छेषाम एषा द्वेष्टे एभ्यो मेभ्योऽन्यभैरन्यनक्षत्रै ॥ ८३ ॥

शयैदवानुश्रुतितिष्यवासवादितेयनासत्यमसंहतौ भवेत् ॥

आतंकमुक्तस्य नुरोकसो बहिर्गमो वरः सद्युनि मस्तकोदये ॥ ८४ ॥

अथ रोगमुक्तनरस्य बाह्यगमनशुद्धिमाह—शयैदवेति ॥ आतंकमुक्तस्य रोगमुक्तस्य नुरोकस्य
ओकसो गृहात् बहिर्गमो वरो भवेत् क शयो हस्त ऐदव मृगशीर्ष अनु श्रुति श्रवण
तिष्य पुण्यो वासव धनिष्ठा आदितेयं पुनर्वसु नासत्यममश्विनो एषा द्वेष्टे एषा सहतौ गणे
सति पुन सद्युनि शुभग्रहदिने पुनर्मस्तकोदये शीर्षोदयलग्ने ॥ ८४ ॥

पापे दिने काव्यदिने सदामिपं निषेवणं मादकवस्तुमद्ययोः ॥

विपर्वकाले शततारकोग्रभे सदारुणे तावदुदग्रवीर्यकृत् ॥ ८५ ॥

अथ माससेवनमाह—पाप इति ॥ तावत् प्रथम पापे दिने खलग्रहदिने काव्यदिने
शुक्रवारे आमिप माससबाधि निषेवणं सत् शुभ स्यात् । पुनर्मादकमद्ययोर्वलिष्ठवस्तुमदिरयो
निषेवणं उग्रवीर्यकृत् उत्कटवीर्यकर स्यात् क शततारका शतमिपक् उग्रभ उग्रसङ्गम एषा
द्वैक्त्वे किंभूते विपर्वकाले दर्शादिर्वर्जिते पुन किंभूते सदारुणे दारुणसङ्गनक्षत्रयुक्ते ॥ ८५ ॥

चराचरेदूढुलघूडुचित्रा विपाशने भानुकर्वीदुभौमान् ॥

य ईहतेऽनेकविधानि तावत्स कालकूटानि सदैति वै ना ॥ ८६ ॥

अथ विपाशने भादिशुद्धिमाह—चरेति ॥ वै निश्चित यो ना पुमान् सदा निरंतरमनेक
विधानि कालकूटानि विपाणि ईहते भक्षणाय वाछति स ना पुमान् तावत्प्रथम विपाशने
कालकूटादिस्त्रादने चरादिताराश्च पुनर्भान्वादिवारान् एति प्राप्नोति चरादीनाश्रित्य
भक्षयतीत्यर्थ । अथवा यस्तावत्प्रथम विपाशने विपभक्षणे निमित्त अनेकविधानि कालकूटा
नि एति भक्षयतीत्यर्थ स सदा निरतर चरादितारा भान्वादिवारान् ईहते वाछति विपाशनमु
हूर्ते गृह्णातीत्यर्थ । चराणि खलसङ्गानि अचरसङ्गानि इदुडु मृगशीर्ष लघूदूनि चित्रा आसा
द्वेष्टे एता प्रति पुनर्भानु कविः शुक्र इदुर्मौम एषा द्वेष्टे इमान् ॥ ८६ ॥

अज्ञातजातिगुणरूपविधानकानामन्नादिबीजरसपुष्पफलोपधीना ॥

संसेवनं सुकृतसौख्ययशोभिवृद्धयै निःसशयं नखरैर्विदधीत नात्रा ॥ ८७ ॥

अथ निघादिप्रोक्तज्योतिरिक्ताना द्रव्याणा भक्षण निषेवति—अज्ञातजति ॥ नि सशय नि
श्चित नखर सत्पुमान् अत्र लोके सुकृतसौख्ययशोभिवृद्धयै पुण्य सुख कार्ति आसा बर्द्ध
नाय अज्ञातबीजरसपुष्पफलोपधीना संसेवनं न विदधीत न कुर्यात् किंभूतानामन्नादीना
अज्ञात अविदित जाति गुण रूप विधानं च नातिद्रव्य गुणैः शुभाशुभरूप सङ्गाव
विधानक कृत्यं येषा तानि तेषा ॥ ८७ ॥

दि१० ग्विश्व१३ दो२ रग७ नवां१ ग६ खराम३० घ३ः सूर्यारिमंजु-
शनसां दिवसान शस्ताः ॥ निःशाकदारुणमघातकमिश्रतारा-
स्तैलाभिमजनविधौ किल पर्वकालाः ॥ ८८ ॥

अथ दशम्यादिषु तैलस्नानं निषेधति—दिग्विश्वेति ॥ किल संभावनाया तैलाभिमज्ज-
नविधौ तैलमर्दनपूर्वकस्नानकार्ये एते न शस्ता न शुभाः स्युस्तानाह ॥ दिग् दशमी विश्वे
त्रयोदशी दोर्द्वितीया उरग सप्तमी नव नवमी अग पष्ठी खरामोऽमावासी एतत्सख्या-
युक्तपक्षा दिवसाः पुनः सूर्य आरो मौम मंत्री गुरुशुक्रा शुक्र एषा दिवसाः पुनर्नि-
शाकं ज्येष्ठात्रय्य दारुणसप्तम मघा अंतको भरणी मिश्रताराः आसा द्वे एता पुन
पर्वकालाः पर्वणा समयाः ॥ ८८ ॥

अभ्यंगदूषितादिनेष्वपि जन्मघस्ते पाणिग्रहे च विजयासुनित-
र्पणान्दि ॥ होलाविरामदिवसे बलिवासे स्यादभ्यंग ईरित-
शिवो नियतं नराणाम् ॥ ८९ ॥

अथ जन्मादिदिने स्नान निर्दोषमाह—अभ्यंगेति ॥ नियत निश्चित नराणा पुंसा ईरित
प्रेरित शिव कल्याण येन स ईरितशिवोऽभ्यंगस्तैलविमर्द स्यात् । अभ्यंगदूषितादिनेषु तैल
मर्दनदोषदिनेष्वपि जन्मघस्ते जन्मादिने च पुनः पाणिग्रहे उद्वाहे पुनर्विजयासुनितर्पणान्दि
विजयादशम्या दूषितर्पणदिने पुनर्होलाविरामदिवसे होलिकाते रजःपर्वणि पुनर्बलिवासे
बलिपुजनदिने त्रयोदश्यादिदीपालिकादिनत्रये ॥ ८९ ॥

दुष्टे यमे भवति तेलनिमज्जनं यन्नित्यं विदन्दि च य-
मान्दि न दूषितं तत् ॥ निद्येऽप्यनेहसि सदाबलिवा-
सरेषु संसेवितुं प्रसववासिततैलमर्हम् ॥ ९० ॥

अथ क्रूरग्रहे नित्य स्नानमाह—दुष्ट इति ॥ दुष्टे यमे दुष्टराशिगते शनो सति नित्य
यत्तैलनिमज्जन तैलस्नान भवति तत् स्नान न दूषितं स्यात् क विदन्दि इधवारं च पुन-
र्यमान्दि शनिवारे इति । अथ वासिततैल निर्दोषमाह । सदा प्रसववासिततैल चंपकादि-
पुष्पवासिततैल सेवितुमर्ह योग्य स्यात् केषु निद्येऽनेहमि दुष्टकाले अपि अस्ति बलिवासेषु ॥ ९० ॥

शीर्षं कपालकमथांत्रिकवल्लचर्मवैत्वानि चामलकमत्र
परान्नमद्यात् ॥ नैवाष्टमीप्रभृतिचांद्रदिनेषु शश्वदशे तु
मंथनजपद्रुमघातनं वा ॥ ९१ ॥

अथाष्टम्यादितिथौ नालिकेरादिमक्षण निषेधति—शीर्षमिति ॥ शश्वत् निरतर नरोऽ-
ष्टमीप्रभृतिचाद्रदिनेषु शीर्षादिक नैव अद्यात् न भक्षयेत् । अष्टम्या शीर्षे नालिकेर नवम्या
कपालक तुक्क अथ पुनर्दशम्या आनेक नालीशाकं एकादश्या वल्ल नल इति तत्राने
वालुलि इति द्वादश्या चर्म कदलीफल त्रयोदश्या विल्व विल्वफल एषा द्वे एताति च पुन
श्रतुर्दश्या आमलक पूर्णिमायां परान्न न भक्षयेदत्र लोके इति तु पुनर्दर्शेऽमावास्याया
मथन गोरसमथन जपो मंत्रजप द्रुमघातन वृक्षच्छेदन वा एषा द्वैकत्व ॥ ९१ ॥

धूमध्वजद्रुहिणपर्वतराजपुत्रीलंबोदराहिगुहहंसपिनाकि-

दुर्गाः ॥ कीनाशविश्वहरिकाममहेशसोमा दर्शाततः

सुकृतिभिर्गदिता नराणाम् ॥ ९२ ॥

अथ तिथीशानाह—धूमेति ॥ कृतिभिः शुभपडितैर्दर्शाततः प्रतिपत्त तिथिपाला
धूमध्वजादयस्तिथीशा गदिताः प्रोक्ताः ॥ धूमध्वजो बन्धिः १ द्रुहिणो ब्रह्मा २ पर्वतराजपुत्री
गौरी ३ लंबोदरो गणेशः ४ आहिः सर्पः ५ गुहः स्कन्द ६ हंस सूर्य ७ पिनाकी शुभ ८
दुर्गा ९ कीनाशो यम १० विश्वे ११ हरिर्विष्णुः १२ कामः कदपः १३ महेश ईश १४
सोमश्चद्र १५ एषा द्वे एते ॥ ९२ ॥

स्थाणुः शिवा गुहजिनौ विधिविष्णुकालास्तुष्टौ स्वेर्निग-

दिता ग्रहवारपालाः ॥ यस्यामरस्य तिथिवारभकाल-

साध्यं तस्य व्रतादि जपभोजनहोमदानम् ॥ ९३ ॥

इति श्री कविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदामरणे मिश्रकाध्याय एकोनविंशतितम ॥ ९१

अथ सप्तवाराणां स्वामिन आह—स्थाणुरिति ॥ पडिते रवेः सूर्यात् स्थाण्वादयो ग्रहपाला
बारनायका निगदिताः प्रोक्ताः ॥ सूर्यस्य स्थाणु १ च शिवा गौरी २ म गुह स्कन्दः ३ बु
निन कृष्ण ४ इमौ वृ विधिविष्णो ५ शु निष्पुर्दिद्रः ६ श काल यम ७ एषा द्वे एते
यस्यामरस्य देवस्य व्रतादिजपभाजमहोमदान क्रियते तदा तस्यामरस्य तिथिवारभकालसाध्य
व्रतादितुष्टौ सतोपाय स्यात् ॥ ९२ ॥

इति श्री पार्णिमीयगच्छाधितचमशरकरपुरदरभा महिमाप्रमसुराश्वरचरणसरोदचचरा-

कायमानशिष्यभावरनावरचिताया श्रीसावित्रिदामरुत ज्योतिर्विदामरणस्य

मुपवाधकाया मिश्रकाध्याय एकोनविंशतितम ॥ ९३ ॥

वर्णाश्रमकर्मसाधनप्रकरणम् ।

कासारदेवायतनादिकर्मणामुत्सर्गकालस्य विनिर्णयं तथा ॥ १ ॥

अनेकवर्णाश्रमकर्मसाधनं ब्रुवेऽहमत्राखिलवर्गसाधनम् ॥ १ ॥

अथ मिश्राध्यायकथनान्तरं कर्मसाधनं घट्यतेऽनोऽनेकवर्णाश्रमकर्मसाधनाध्यायसंज्ञानमाह—कासारेति॥अत्राध्यायेऽहं कासारदेवायतनादिकर्मणा तद्यकदेवगृहकृत्यानामुत्सर्गकालस्य नीलोद्वाहनाविशेषस्य विनिर्णयं निश्चयं ब्रुवे । तथा पुनरनेकवर्णाश्रमकर्मसाधनं चतुर्वर्णानां कृत्याविधानं ब्रुवे किंभूतं अनेकवर्णाश्रमसाधनं आखिलवर्गसाधनं समस्तवर्गार्थिकाममोक्षाणां साधनमुपायः 'साधनं सिद्धिसैन्ययोः ॥ उपायो' इत्यादि हेमोऽनेकार्थः ॥ १ ॥

सूरे चरत्यैलविलाशमाहता कासारकूपादिजलाशयेयनं ॥

जलप्रतिष्ठा च नवे महर्षिभिः प्रासादिकोत्सर्गविधिस्तथोदितः ॥ २ ॥

अथ जलाशयानां प्रतिष्ठामाह—सूरेति ॥ महर्षिभिः कासारकूपादिजलाशये नवे नवीने जलप्रतिष्ठा आहता अंगीकृता कस्मिन् ऐलविलं धनदमश्नुते प्राप्नोति इति ऐलविलाशं उत्तरदिक् प्राप्तमयनं चरति गच्छति शत्रुप्रत्यये सूरे सूर्ये सति तथा पुनः प्रासादो देवगृहं कं नलं अनयोः उत्सर्गविधिर्नीलोद्वाहविधानं उदितः प्रोक्तः ॥ २ ॥

शुभैव सा फाल्गुनमाधवाख्ययोर्मध्या सहस्ये च तपस्युदीरिता ॥

शुक्लेऽधमा शुद्धसमाद्यनेहसा शुद्धेऽभिरूपैः श्रुतिधर्ममानिभिः ॥ ३ ॥

अथात्र प्रतिष्ठायां मासशुद्धिमाह—शुभैवेति ॥ श्रुतिधर्ममानिभिर्वैदर्भविद्विरभिरूपैः पंडितैः फाल्गुनमाधवाख्ययोः फाल्गुनवैशाखयोः सा प्रतिष्ठा शुभा उदीरिता प्रोक्ता । एवं च शुभः सहस्ये नौके ज्ञानि मन्त्रमात्रे सा सन्ना । पुनः शुक्ले ज्येष्ठमासे साऽधमा पुनः आद्यनेहसा प्रथमकालेन शुद्धे सति सा शुद्धतमा इति ॥ ३ ॥

कल्प्या कचिन्मार्गशिरस्यलीनगे युग्मेनयोगे मलधारिणा शुचो ॥

घनप्रसूनामरधामसंस्कृतिर्विगर्हिता साप्यधमाधमा बुधैः ॥ ४ ॥

अथात्र मतं दर्शयन्नाह—कल्प्येति ॥ कचित् मार्गशिरसि मासेऽश्वीनगे वृश्चिकराशितगतसूर्ये घनप्रसूनं जलं अमरधाम । देवगृहं अनयोः संस्कृतिः प्रतिष्ठा कल्प्या कर्तव्या 'मेवपुष्पकमलान्यापः पयः पाथसि' इति हैम । मलधारिणा मलिनवेदसारिणा दर्शनान्तरेण युग्मेनयोगे मिथुनसंक्रातिसूर्ययोगे सा प्रतिष्ठा कल्प्या बुधैः सा प्रतिष्ठाऽऽमाऽऽमा-विगर्हिता तिरस्कृता ॥ ४ ॥

नीचे द्विपारौ च गुरौ प्रतिष्ठा प्रासादवाराशययोरजसं ॥

जीवालये जीवासितास्तकाले कार्या विधौ दृष्टतरेन कर्त्रा ॥ ५ ॥

अथ सिंहगुर्वादौ प्रतिष्ठा निषेधति—नीच इति ॥ अजसं निरंतरं कर्त्रा नरेण प्रासाद-
वाराशययोः देवगृहजलाशययोः प्रतिष्ठा न कार्या क नीच नीचराशिगते द्विपारौ सिंहराशि-
गते गुरौ जीवे सति पुनर्जीवालये धनुरकं मोनाकं सति पुनर्जीवासितास्तकाले गुरुशुक्रा-
स्तसमये पुनर्दृष्टतरे विधौ चंद्रे सति ॥ ५ ॥

विहाय दशोदस्वारपंचकं रिक्तामंदान् यमघंटमाडलं ॥

भद्रामशेषे समये मठाभसामलं प्रतिष्ठाखिलवर्गसिद्धये ॥ ६ ॥

अथ प्रतिष्ठाया निर्यादिशुद्धिमाह—विहायेति ॥ मठाभसा डात्रादिदृष्टाणा जलानां
च प्रतिष्ठाखिलवर्गसिद्धये स्यात् किं कृत्वा दशोदस्वारपंचकं द्विपार्श्वतोमावासीमध्यग-
तदिनपंचकं १३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।
पुनर्यमघंट प्रतीतं पुनः आडल योगं भद्रा विष्टि च विहाय त्यक्त्वा अशेषे समये समस्त-
कालेऽलमित्यर्थः ॥ ६ ॥

श्रवस्त्रयादित्यमृदुधुवोडुपु क्षिप्रैर्वविद्धेषु सभूपणेष्वपि ॥

तडागवाग्नादिमठप्रतिष्ठया प्रतिष्ठिनः स्यादंनुराजसंसदि ॥ ७ ॥

अथ प्रतिष्ठाया भद्रशुद्धिमाह—श्रव इति ॥ श्रवस्त्रय श्रवणत्रय आदित्य पुनर्वसु
मृदुनि शुक्राणि बुधमशेष एषा द्वंद्वे एषु पुनः क्षिप्रैः क्षिप्रसत्तनसत्रेषु किंभूतेषु अवि-
द्धेषु ग्रहेरभिन्ननडलपु पुनः किंभूतेषु सभूपणेषु शुभयोगयुक्तेषु सत्सु तडागवाग्नादिमठप्र-
तिष्ठया कृत्वा नु पश्चात् स नरो राजसंसादि भूपसमाया प्रतिष्ठिनः शोभायुक्तः स्यात् ॥ ७ ॥

जलालयस्ये जलचारिराशौ जलप्रतिष्ठा जलगोलमूर्ती ॥

लग्ने सुकंद्रे शुभदायवा स्याच्छीर्षोदये वारिविधौ शुभे खे ॥ ८ ॥

अथ जलप्रतिष्ठाया लग्नशुद्धिमाह—जलेति ॥ जलप्रतिष्ठा शुभदा स्यात् क जल-
लयस्ये जलराशिप्राप्ते जलगोलमूर्ती चंद्रे सति जलचारिराशौ जलचरराशिषुक्तं लग्ने पुनः
सुकंद्रे शुभग्रहयुक्तकंद्रेऽथवा पक्षावरे शीर्षोदये लग्ने वारिविधौ चतुर्धभावगते चंद्रे खे
शुभे दशमभावगतशुभग्रहे सत्येवं स्यात् ॥ ८ ॥

सुरप्रतिष्ठा गदितैव पूर्व विष्णुप्रतिष्ठोडुपु वा प्रशस्ता ॥

तथापि कोत्सर्गविधानकालेऽखिलप्रतिष्ठापि न दोषदात्री ॥ ९ ॥

अथ नीलोद्वाहमाश्रित्य प्रतिष्ठामाह—सुरेति ॥ पूर्व सुरप्रतिष्ठा गदितैव मोक्षा एव ।
वायवा विष्णुप्रतिष्ठोडुपु ननार्दनप्रतिष्ठानसत्रेषु प्रशस्ता शुभा तथापि कस्य न उन्त्योत्सर्ग-
विधानकाले नीलोद्वाहसमयेऽपि अखिलप्रतिष्ठा सर्वप्रतिष्ठा दोषदात्री दोषदायिनी
न स्यात् ॥ ९ ॥

वर्णक्रियारंभणमादारादहं तत्कर्मसाधारणसाधनप्रियं ॥

वदाम्यथो येन समस्तवर्णजक्रियाफलस्यापि विनिश्चयो भवेत् ॥१०॥

अथ चतुर्वर्णानां कृत्यसंघानमाह—वर्णंति ॥ अथो जानतयं हं आदारात् तत् वर्णक्रियारंभणं चतुर्वर्णानां कृत्यानां प्रारम्भणं वदामि कथयामि । किंभूत वर्णक्रियारंभणं तत्कर्मसाधारणसाधन-
प्रियं कर्मणा सामान्योपायप्रियं येनारंभणेन समस्तवर्णक्रियाफलस्यापि चतुर्वर्णजाता क्रिया
तस्याः फलस्यापि विनिश्चयो भवेत् ॥ १० ॥

द्विजो भुजाभूविडिमे द्विजातयस्तुरीयवर्णेऽग्निज एव
कीर्तितः ॥ परेऽत्यजा ये त्वपरे शकादिका मनीषिभिः
संकरजातयः स्मृताः ॥ ११ ॥

अथ वर्णविवेकमाह—द्विज इति ॥ द्विजो विप्रः भुजामूः क्षत्रियः विडू वैश्यः इति एते
त्रयो द्विजातयः स्युः । अग्निजः शूद्रः तुरीयवर्णः शूद्रः कीर्तितः प्रोक्तः । तु पुनः परे शूद्रेभ्यो
ऽत्यजाः स्मृताः प्रोक्ता मनीषिभिर्विषैरपरे ये शकादिका म्लेच्छादयस्ते संकरजातयः
स्मृताः प्रोक्ताः ॥ ११ ॥

अध्यापनं चाध्ययनं च याजनं दानं द्विजे स्युर्यजनं
प्रतिग्रहः ॥ कर्माणि पण्डे यजनापवर्जने त्रिकर्मवानध्य-
यनं तथेति राट् ॥ १२ ॥

अथ विप्रकृत्यमाह—अध्यापनमिति ॥ वै निश्चितं अध्यापनं पात्रेभ्यो विद्यासमर्पणं १
अध्ययनं प्रतीति २ याजनं अन्येषां यज्ञकरणं ३ स्वयं दानं ददाति ४ दानं प्रतीति स्वयं
पनति यजनं प्रतीति ५ प्रतिग्रहः अन्यस्य दानग्रहः ६ चेति षट्कर्माणि द्विजे विप्रे स्युः ।
अथ क्षत्रियकृत्यमाह । तथा यजनापवर्जने यजनं यज्ञकरणं दानं अध्ययनं चेति त्रिकर्मवान्
त्रैकर्मयुक्तो राट् क्षत्रियः स्यात् ॥ १२ ॥

वैश्यः सदा प्रापणिकोऽग्निजन्मा द्विजन्मसेवारतिरेतदीयं ॥

कर्मत्यकृत्यव्यवहारजानि कर्माण्यनेकान्यपरांत्यजानाम् ॥ १३ ॥

अथ वैश्यकृत्यमाह—वैश्य इति । सदा वैश्यः प्रापणिको व्यवहारस्तु इति एतदीयं कर्म ।
अथ शूद्रकृत्यमाह—अग्निजः शूद्रो द्विजन्मसेवारतिः विप्रसेवारक्तः इत्येतदीयं कर्म । अ-
पात्यनादीनां कृत्यमाह । तु पुनः अपरांत्यजानां अत्यन्तम्लेच्छादीनां अकृत्यव्यवहारनानि
कुर्मव्यवहारजातानि अनेकविधानि कर्माणि स्युः ॥ १३ ॥

यद्वर्णकर्माणि तदेककाले संसाधितान्येव हि यांति सिद्धिं ॥

तत्स्वस्यकर्मव्यवहारकालं नयेन्मनीषी युगपन्नयार्द्धिम् ॥१४॥

अथ स्ववर्णं स्वकृत्यासिद्धिं दर्शयति—यद्वर्णइति ॥ हि निश्चितं तदेककाले तस्मिन् एककाले संसाधितानि सम्यक्प्रकारेण विहितानि यद्वर्णकर्माणि येषां वर्णानां कृत्यानि सिद्धिं निष्पत्तिं यांति प्राप्नुवन्ति । इणोघातोरूपं । मनीषी बुद्धिमान् तत्स्ववर्णव्यवहारकालं एषा स्वकीयस्वकीयवर्णानां व्यवहारकालं युगपन्नयाद्धिं समकालन्यायसंपदं नयेत् प्राप्नुयात् द्विकर्मत्वात् ॥ १४ ॥

शमो दमः सत्यमथार्जवं क्षमा शौचं तपो ज्ञानकथामरार्चनं ॥

तीर्थं तथास्तिव्यमभिज्ञसंगतिः स्वभावकर्माग्रजनेर्मखव्रतम् ॥ १५ ॥

अथ विप्राणां स्वभावकृत्यमाह—शम इति ॥ शमः शांतिः दमः पंचेन्द्रियनिग्रहः सत्यं प्रतीतं आर्जवं मायात्यागः क्षमा शांतिः शौचं पावित्र्यं तपो ज्ञानकथा अमरार्चनं देवपूजा तीर्थं गोदावर्यादि तथा आस्तिव्यं श्रद्धात्वं अभिज्ञसंगतिः पंडितसंगमः मखव्रतं यज्ञव्रतं इति अग्रजनोर्वेदस्य स्वभावकर्म निसर्गकृत्यं स्यात् ॥ १५ ॥

शौर्यं बलं धैर्यं धृतिर्धृतिर्मृधं विद्या सुदीक्षेश्वरतापवर्जनं ॥

क्षमाभृतः कर्म निसर्गजं विशो वाणिज्यगोजीवनकर्षणं त्विती ॥ १६ ॥

अथ सत्रिणां स्वभावकृत्यमाह—शौर्यमिति ॥ शौर्यं शूरत्वं बलं धैर्यं धृतिर्धैर्यधारणं धृतिः संतोषो मृधं संश्रयः विद्या सुदीक्षा ईश्वरता अपवर्जनं दानं इति क्षमाभृतः क्षत्रियस्य निसर्गजं स्वाभाविकं कर्म स्यात् ॥ अथ वैश्यानां निसर्गकृत्यमाह—वाणिज्यगोजीवनकर्षणमिति ॥ विशो वैश्यस्य निसर्गजं कर्म स्यात् ॥ 'वाणिज्यं पाशुपात्यां च कर्षणं च' इति व्रतय इति हैमः ॥ १६ ॥

द्विजातिसेवावनिदेवताज्ञया धर्मो विधिः शूद्रनिपेककर्म च ॥

स्वभावकर्म प्राविहाय योऽन्यथा स्वयं चरेत्सोऽत्यजकर्मनर्मभाक् ॥ १७ ॥

अथ शूद्राणां निसर्गकृत्यमाह—द्विजेति ॥ द्विजातिसेवा विप्रसेवा पुनरवनिदेवताज्ञया विप्राज्ञया धर्मो विधिश्चेति शूद्रनिसर्गकर्म शूद्राणां स्वाभाविकं कर्म स्यात् ॥ अध्यात्मजानां कृत्यमाह ॥ यः स्वभावकर्म प्राविहाय त्यक्त्वाऽन्यथा नीचत्वं स्वयमात्मना चरेत् कुपार्थं सोऽत्यजकर्मनर्मभाक् अत्यनर्थायैकादासेवी स्यात् ॥ १७ ॥

तिप्याजपाणिश्रुतिराजविश्वभैरवं समारंभितमग्रजन्मनः ॥

कर्मनकाव्येज्यभवारशुद्धयोररिक्तयोरार्यसित्युनार्भवेत् ॥ १८ ॥

अथ विप्रकृत्ये भादिशुद्धिमाह—तिप्येति ॥ अग्रजन्मनो विप्रस्य तमे समारंभितं मारुतिं वैरं धेष्टुं स्यात् कैः निष्पः पुष्पः अग्ने बह्मा रोहिणी पाणिहस्तः श्रुतिः धरणः राजा चन्द्रो मृगशीर्ष विश्वभ उत्तरापादा एषां द्वाद्वे एभिः पुनः कयोः आर्यसित्युनोर्गुरुशुक्रतारयोः सप्तोः किंभूतयोः इतः सूर्यः राव्यः शुक्रः इत्यो गुरुः एषा भग्नो राक्षसार्भवेन शुद्धो भवेत्ततो योः पुनः किंभूतयोररिक्तयो रिक्ताविषिर्भनयोः ॥ १८ ॥

साधारणैर्देनशतोत्तराश्रवोदासांत्यमैत्रानिलभेष्वर्कार्तयन् ॥

क्षत्रक्रियारंभणमं शुभं त्र्यसृक्सोमैः सपूर्णासु जयासु युक् परैः ॥ १९ ॥

अथ क्षत्रियकार्यारंभे मादिशुद्धिमाह—साधारणेति ॥ बुधः, क्षत्रक्रियारंभणं क्षत्रियकर्म-
प्रारंभणमर्कार्तयन् कथयामासुः केषु साधारणे मिश्रसंज्ञे ऐंद्रं ज्येष्ठा ऐनं हस्तः शतं शतमिषक्
उत्तरात्रयं श्रवः श्रवणः दाक्षमेध्विनी आर्त्यं रेवती मैत्रमनुराधा अनलभं, कृत्तिका एषां द्वंद्वे,
एषु पुनः कैः अंशुः सूर्यः मंत्री गुरुः असृग् भोमः सोमश्रंद्रः एषां द्वंद्वे एतैः पुनः कासु जया-
सु तिथिषु किंभूतासु जयासु सपूर्णासु पूर्णातिथियुक्तासु पुनः कैः युक् परैः श्रेष्ठयोगैः ॥ १९ ॥

श्रवोद्वयादित्ययुगैर्दवाश्विनैः सविश्वकृन्मित्रभयातुर्भवेत् ॥

सितेदुसौम्यांगिरसेषु सत्तिधावयोगमुक्तेषु च वैश्यकर्म सत् ॥ २० ॥

अथ वैश्यकार्यारंभे मादिशुद्धिमाह—श्रव इति ॥ वैश्यकर्म सत्, शुभं स्यात् कैः श्रवोद्वयं
श्रवणयुगं आदित्ययुगं पुनर्वसु पुष्यः ऐदवं मृगशीर्षे आश्विनमश्विनी एषां द्वंद्वे एतैः किंभू-
तैः सविश्वेति विश्वकृत् चित्रा मित्रोऽनुराधामं यातुमं मूलभं एषां द्वंद्वे एभिः सहवर्तमानैः
पुनः क सितः शुक्रः इंदुश्रंद्रः सौम्यो बुधः आंगिरसो गुरुः एषां द्वंद्वे एषु किंभूतेषु अयो-
गमुक्तेषु कुयोगवर्जितेषु पुनः क सत्तिथौ ॥ २० ॥

त्रियुग्मताराश्विनहारचित्रामित्रक्षंभूलानिलवासवांत्याः ॥

विदिंदुशुक्रान्हि विपर्वरिक्ते शूद्रस्य कर्मण्युदितास्तद्वच्चैः ॥ २१ ॥

अथ शूद्रकर्मारंभे मादिशुद्धिमाह—त्रियुग्मेति ॥ शूद्रस्य कर्मणि त्रियुग्मादितास्तद्वच्चैः
शूद्रस्य संपदायै उदिताः प्रोक्ताः । त्रियुग्मताराः त्रयाणां पूर्वाणां उत्तराणां युगं मानि आश्वि-
नमश्विनी हरस्येदं हारमार्द्रा चित्रा मित्रक्षंमनुराधा मूलं अनिलः स्वाती वासवं धनिष्ठा
आंत्या रेवती आसां द्वंद्वे एताः कस्मिन् विद् बुधः इंदुश्रंद्रः शुक्रः एषामन्हि दिने किंभूते
विपर्वरिक्ते पर्वरिक्तातिथिवर्जिते ॥ २१ ॥

स्वकर्मवारांवरचारिभिर्युतं दृष्टं नृलभं निजकर्मसिद्धये ॥

उताय ११ दुश्चिक्व ३ जिघांस्वसद्ग्रहः शीर्षोदयः साधुचतुष्टयस्तथा ॥ २२ ॥

अथ स्वकार्यलभशुद्धिमाह—स्वकर्मति ॥ स्वकर्मवारारचारिभिर्युतं दृष्टं उत नृलभं
नरलभं निजकर्मसिद्धये स्यात् । तथा आय एकादश ११ दुश्चिक्व तृतीयं निचासुः पटं १ एषु
भवनेषु असंतोऽशुभा ग्रहा यस्य स पुनः साधुचतुष्टयः शुभग्रहयुक्तकेंद्र एवावेषः शीर्षोदयः
शीर्षोदयलभं निजकर्मसिद्धये स्यात् ॥ २२ ॥

शयाश्विने तिप्यमघाजवासवत्वाश्विनुराधामृगरेवतीशिफाः ॥

कृषीवलानामखिलक्रियोद्यमे सद्धारमादुर्नृदये च सत्कस्वम् ॥ २३ ॥

अथ हलिना कार्ये मादिशुद्धिमाह—शयेति ॥ सदा बुधा नृपीबलाना कुटुबिनाम-
खिलक्रियोधमे समस्तप्रारंभे शयादीनि आहु कचयति शयो हस्त आश्विनमश्विनी अनयो-
द्वेद्वे तिप्य पुष्य मघा अजो ब्रह्मा रोहिणी वासव वनिष्ठा त्वाष्ट्र चित्रा अनुराधा मृगो मृगशिर
रेवती शिफा मूल आसा द्वेद्वे एतास्तारा सद्धार शुभग्रहाणा वासर पुनर्नृदय नरराशिछत्र
किंभूतं सत्कल शुभग्रहा के सुखे चतुर्थभावे खे दशमभावे च यस्य तत् इति
सर्वाण्यपि कर्मपदानि ॥ २३ ॥

चित्रादिभे पाणिमृगौ पुनर्वसुद्वयं वलेशोड्युगं च पूषभं ॥ मैत्र
समेत्यैति सदन्हि सत्तिथौ महत्फलं प्रापणिकः स्वकर्मणि ॥ २४ ॥

अथ वाणिककार्ये मादिशुद्धिमाह—चित्रेति ॥ प्रापणिको नैगमः स्वकर्माणि महत्फलमेति
प्राप्नोति किं कृत्वा चित्राआदिममश्विनी अनयोद्वेद्वे पाणिमृगौ हस्तमृगशीर्षे अनयोद्वेद्वे इमौ
पुनर्वसुद्वय पुनर्वसु पुष्य बल लक्ष्मी तस्या ईश स्वामी विष्णुस्तस्योड्युग श्रवणघनिष्ठे च
पुन पूषभ रेवती मैत्रमनुराधा समेत्य प्राप्य क सदन्हि शुभग्रहाणा दिने पुन सत्तिथौ
शुपतिथौ ॥ २४ ॥

चतुष्टय १ । ४ । ७ । १० स्थे धिषणे धने २ बुधे
सत्याय ११ गेऽसत्यरि ६ गे सदुद्रमे ॥ भवेदिदं
कर्पककर्म सत्तिथौ वैदेहकर्मापि च लेखकक्रिया ॥ २५ ॥

अथ कर्पकादिकर्मसु लग्नशुद्धिमाह—चतुष्टयेति ॥ इद कर्पककर्म वैदेहकर्म सार्धवाहकर्म
लेखकक्रिया च भवेत् । चतुष्टयस्थे केंद्रगत १।४।७।१० धिषणे गुरौ सति पुनर्धनभावे बुधे पुन
सत्यायोगे शुभग्रहे एकादशभावगते पुनरसत्यरिगे खलग्रहे षष्ठभावगते पुनरेवविधे सदुद्रमे
शुभग्रहलग्ने सति ॥ २५ ॥

चलमूलदोमरवार्धकितारा भावजैवसहिता हि हिताय ॥ कविजी-
वबोधनदिने नरलग्ने विगलग्रहा लिपिकरस्य विधाने ॥ २६ ॥

अथ लिपिकरकार्ये मादिशुद्धिमाह—चलेति ॥ लिपिकरस्य वार्षिकस्य विधाने कर्मणि च-
लादितारा हिताय शुभाय स्यु । चलसंज्ञानि मूल दोर्हस्त अमरवार्धकिचित्रा तारा
आसा द्वेद्वे एता कर्तृपद किंभूता मृगो मृगशीर्ष भवस्येश्वरस्येद भावमार्द्रा जिनस्य कृष्ण-
स्येद नैन श्रवण एषा द्वेद्वे एतद्वे सहिता युक्ता पुन किंभूता विगलग्रहा गलग्रहवर्जिता
क कवि शुक्र जीवा गुरु बोधनो नुरः एषा दिने नरलग्ने ॥ २६ ॥

श्रवणत्रये त्रिदशमूडुलघूडुद्वयमरेषु जैष्णवमृगाजपदांत्ये ॥ विदशी-
तवृष्णिसितवृष्णिदिने स्यान्निरमा ३० पृष्मीकुयुजि चलवकर्म ॥ २७ ॥

अथ गोपकर्मारंभे मादिशुद्धिमाह—श्रवणेति ॥ चलवकर्म गोपकार्यं स्यात् । गोपगो-
मस्यचलवाः इति हैम । कस्मिन् श्रवणत्रये श्रवणघनिष्ठान्तभिपक् त्रिदशमूर्द्धवमात

तस्या उड्ड, पुनर्वसु, लघूनि, द्यमरं शक्राग्री विशाखा एषां द्वे एषु ज्येष्ठा मृगो मृग-
शीर्ष अनरदा पूर्वाभाद्रपदा आर्त्यं रेवती, एषा द्वे हस्ते पुनर्विदू बुधः अशीतवृश्चिगृहगरश्मिः
सूर्यः सितवृश्चिगः श्वेताशुश्र्वः एषा दिने किंभूते निः निर्गता, अमाष्टमी, कुयूक, यस्मात्-
स तस्मिन् ॥२७॥

लघुलोलमृद्वजखट्वाभशाकल्यमरेषु सद्धरिदिने परिभाति ॥
जयनंदपूर्णवति, वित्रिकलग्ने रथकारकर्म सकलं विहितं सत् ॥२८॥

अथ रथकारकर्मरभे मादिशुद्धिमाह—लघूनि ॥ रथकारकर्म, सकलं संपूर्णं सत्, निरंतरं-
परिभाति राजते । किंभूतं रथकारकर्म सकलं कलायुक्तं परिभाति इति पाठे रथकारकर्म परिमा-
वि कृतं सत् शुभ स्यात् । शेषं तथैव क लघूनि यानि लोलानि मृदूनि अमरवृद्धोद्यक्षा तदं
रोहिणी 'सुरवेष्टो विरंचिः' इति हेमः ॥ शाकं ज्येष्ठा द्यमरं विशाखा एषां द्वे एषु पुनः
क, सद्धरिदिने शुभग्रहाः हरिः सूर्य एषां दिने किंभूते नया जयातिभिः पूर्णा पूर्णातिभिः
अस्त्यर्थे वतुधत्तययः 'आभिस्तिथिभिर्गुक्ते पुनर्विद्विकलग्ने बुधगुरुशुक्राणां लग्ने ॥२८॥

चरमिश्रदेवरथकारभराज्यैर्लघुमिश्रमुष्टिकविधानमुशंति ॥
द्विजराजलेखरदिनेषु तदीये ह्युदये बुधा गुरुमुखाघृणि सक्ते ॥२९॥

अथ स्वर्णकारकार्यरभे मादिशुद्धिमाह—चरेति ॥ हि निश्चितं बुधा मुष्टिकविधानं स्वर्णकार-
कर्म उशंति वाठति 'कलादो मुष्टिकश्च स' इति हेमः ॥ कैः चलसप्तानि मिश्रे त्रै देवरथका-
र्यं चित्रा राज्यं मृगशीर्षा एषा द्वे एभिर्मैश्च पुनर्विद्विभिर्भूतः पुनर्द्विजराजलेखरदिनेषु
गुरुशुक्रसूर्यभौमवासरेषु पुनस्तदीये उदये गुरुशुक्रसूर्यभौमलग्ने किंभूते गुरुः मुखाघृणिश्चंद्र
आभ्या सक्ते युक्ते ॥ २९ ॥

रुचिरं च वैकटिककर्म कृतं सद्यमकृष्णवर्त्मवमुजिष्णुभवतैः ॥
विधिविश्वकृच्छ्रवभमूलविशाखासाहिते रसाध्वहनि धीरविलग्नैः ॥ ३० ॥

अथ मणिकारकर्मरभे मादिशुद्धिमाह—रुचिरमिति ॥ वैकटिकस्य मणिकारस्य कर्म
कृतं रुचिरं मनोहरं सन्निरंतरं स्यात् । कैः पुनो मरणी कृष्णवर्त्मा वन्दिः कृतिका वसवो घनिष्ठा
जिष्णुरिंद्रस्तदं ज्येष्ठा वातः स्वाती एषा द्वे एने किंभूते विधिर्यक्षा रोहिणी विश्वकृच्छ्रचित्रा
शिवभार्गवी मूलं विशाखा एषां द्वे एभिः सहितैः क असाध्वहनि अशुभग्रहादिने पुनर्गौर-
विलग्नैः स्फिरलग्नैः ॥ ३० ॥

सदा दिवाकीर्तिजनक्रियाकला चलेंद्रचित्रालघुपौष्णराजभा ॥
सौम्योदये सौम्यदिने सदाचिते सुतास्योपासमयोद्दिशते भवेत् ॥३१॥

अथ नापितकर्मरभे मादिशुद्धिमाह—सदेति ॥ सदा दिवाकीर्तिजनस्य नापितश्रेष्ठस्य
क्रियाकला क्रियाभिज्ञान भवेत् । किंभूता दिवाकीर्तिजनक्रिया कदा चक्रमे चरसप्तानि इद्रे ।

ज्येष्ठा चित्रा लूनि पौषां रेवती राता चंद्रो मृगशीर्ष एषा द्वंद्वे इमानि मानि यस्यां सा क सो
म्योदये शुभग्रहक्रमे किंभूते सदाचिते शुभग्रहव्याप्ते पुनः क औम्यदिने शुभग्रहवारे किं
भूते उपासप्रयोद्धिने निशांतकालवर्जिते पुनः कया सुतारया शुभतारकया ॥ ३१ ॥

अर्णोमलोल्लाश्विनतिष्यपितृमत्वाष्ट्रैर्द्वौर्दिकवीज्यवासरैः ॥

भवेदिदं मालिककर्म सुश्रिये नरोदये कंटकमुक्तकंटके ॥ ३२ ॥

अथ मालिककर्मारम्भे मादिशुद्धिमाह—अर्ण इति ॥ इदं मालिककर्म सुश्रिये स्वात्
कैः अर्णो नलं तद्वं पूर्वाषाढा लोल्लाश्विनं तिष्यः पुष्यः पितृमं मवा त्वाष्ट्रं चित्रा ऐ-
दवं मृगशीर्ष एषा द्वंद्वे एतेः पुनः कैः इंद्रुः कविः शुक्रः इज्यो गुरुः एषां वासरैः पुनः क
नरोदये नरलग्नै किंभूते कंटकैः पापग्रहेर्मुक्तकंटके त्यक्तकंटके ॥ ३२ ॥

आदित्यभादित्यमृदूग्रधन्वभः सांत्याजवाताजभकर्म सद्युगं ॥

चरोदये वारिचरोदयेनजे सत्कंटके हारि कुलालकर्मणि ॥ ३३ ॥

आदित्यमिति ॥ इदं काव्यं मिश्राध्याये द्वाचत्वारिंशत्तम तत्र व्याख्यातं अत्र प्रस्तावा-
ल्लिखितमतस्ततो व्याख्या ज्ञेया ॥ ३३ ॥

विकर्तनैकांतरवासरो ध्रुवं चित्राश्रवःक्षिप्रनगारिभांत्यभं ॥

स्थिरोदयः साधुपयो नभ १० स्थलो भवेच्च सिद्धयै पलगंडकर्मणि ॥ ३४ ॥

अथ चुनाराणां कर्मारम्भे मादिशुद्धिमाह—विकर्तनेति ॥ विकर्तनात् सूर्यादिकांतरवासरैः सूर्यः
मौमः गुरुः शनिः एषां वासरे इत्यर्थः । पुनर्ध्रुवं स्थिरसत्तम पुनश्चित्राश्रवः श्रवणः क्षिप्रसं-
ज्ञमानि नगारिर्द्वौ ज्येष्ठा आत्या रेवती एषा द्वंद्वैकत्वं पुनः स्थिरोदयः स्थिरलग्नं किंभूतः
स्थिरोदयः साधुपयो नभ स्थलः शुभग्रहयुक्तचतुर्थभावो दशमभावश्च समुच्चयार्थे इत्यादि कर्तुं
पदं पलगंडस्य लेपकः कर्मणि सिद्धयै भवेत् 'पलगंडस्तु लेपकः' इति हैमः ॥ ३४ ॥

चरे मृदुक्षिप्रकभोग्रधन्वभे कुर्विदकृत्यं विदधीत धीमता ॥

रवीज्ययुग्मद्युनि साधुभोदये तथैव भे सूचिककर्म सद्दिने ॥ ३५ ॥

अथ तंतुवायकार्यारम्भे मादिशुद्धिमाह—चर इति ॥ धीमता कुर्विदस्य तंतुवायस्य कृत्यं
दिदधीत । अत्र उक्तिश्चित्या कस्मिन् चरे चरसत्तमे मृदूनि क्षिप्राणि को ब्रह्मा तत्र रोहिणी
उग्रधन्वा इद्रस्तस्य भ ज्येष्ठा एषा द्वंद्वैकत्वे पुनः क रवीज्यौ सूर्यजीवो तयोर्ध्रुगं रविचंद्रौ
शुक्रशुक्रौ एषा द्युनि वासरे पुनः साधुभोदये शुभग्रहाणां राशिलग्ने ॥ अथ सूचिककर्माह ॥ त-
थैव भे उक्तलग्ने सूचिकसंतुवायस्तस्य कर्म स्यात् ॥ क सद्दिने शुभग्रहवासरे ॥ ३५ ॥

क्षिप्रादित्यांभोभवित्रानुसवासामीरोपध्यायकर्मत्रये ॥

रंगाजीवो रंजयत्येव लोकान्सोमांश्चोर्वा कर्मणा स्वेन शुके ॥ ३६ ॥

अथ चित्रकारकार्ये भादिशुद्धिमाह—क्षिपेति ॥ रंगाजीवश्चित्रकृत् स्वेन कर्मणा निज कृत्येन लोकान् रंजयति रागीकरोति ' रंगाजीवस्तौलिकश्चित्रकृत् ' इति हेमः । क दिप्राणि आदित्य पुनर्वसु अंभोम पूर्वाषाढा चित्रा अनुराधा सामीरं स्वाती ओषध्याय ओषधीनायश्चन्द्रस्तस्येद मृगशीर्ष कर्णत्रय श्रवणत्रिक एषा द्वेद्वे एषु पुन क मोनश्चन्द्र अशु सूर्य अन योर्द्वेद्वे तयोर्दिनयोः वाथवा पुन शुके शुक्रदिने एव निश्चित ॥ ३६ ॥

धीरादित्यश्वासनादित्यतिष्ठै राधाकर्णद्वंद्वर्षोष्णैर्दवाद्वयैः ॥

सद्वारैः स्यात्कर्म निर्णेजकस्य प्राग्रं पर्वप्रोद्भिज्ञतैः पुंसि लग्ने ॥ ३७ ॥

अथ रजकस्य कर्मारम्भे भादिशुद्धिमाह—धीरेति ॥ निर्णेजकस्य रजकस्य कर्म प्राग्रं श्रेष्ठ स्यात् कै धीराणि आदित्य हस्तं स्वासन स्वाती आदित्य पुनर्वसु तिष्य पुष्यः एषा द्वेद्वे एतैः किंभूतैः राधा विशाखा कर्णद्वंद्व श्रवणत्रिण्डि पौष्ण रेवती ऐन्दव मृगशीर्ष एषा द्वेद्वे एभिराद्वयै पूर्णे पुनः कैः सद्वारैः शुभग्रहवारैः किंभूतैः पर्वप्रोद्भिज्ञतैः दशादिव-
नितैः पुन क पुंसि लग्ने ॥ ३७ ॥

सौम्ये पूर्वास्वांत्यमे द्वीशमे वा शाक्रे शैवे यातुमे वासवे स्यात् ॥

पाणौ चित्रायामभीष्टं च शुके सूरैः सौरे पादुकाकारकर्म ॥ ३८ ॥

अथ चर्मकारकार्ये भादिशुद्धिमाह—सौम्य इति ॥ पादुकाकारकर्म चर्मकारकृत्यपनवीष्ट श्रेष्ठ स्यात् क सौम्ये मृगशीर्षे पूर्वांशु पूर्वात्रये आत्ये रेवत्या द्वीशमे विशाखाया वाथवा शाक्रे ज्येष्ठाया शैवे आर्द्राया यातुमे मूले वासवे त्रिघाया पाणौ हस्ते चित्राया शुके सूरैः सूर्यैः सौरे शुनौ वारे ॥ ३८ ॥

जायाजीवो बलवश्च प्रकुर्याल्लोले धीरे मैत्रचित्रेन्दवेषु ॥

शैवे तिष्ये नैऋपेये स्वकर्म ब्रह्मेन्द्रेज्येन्दूशनोभिः सुलग्ने ॥ ३९ ॥

अथ नरविशेषकर्मारम्भे भादिशुद्धिमाह—जायेति ॥ जायाजीवो नरः बलवो गोपश्च स्वकर्म निजकृत्य प्रकुर्यात् क लोले चरसङ्गमे शैरे स्थिरसङ्गे मैत्रमनुरागा चित्रा ऐन्दव मृगशीर्ष एषा द्वेद्वे एषु शैवे आर्द्राया तिष्ये पुष्ये नैऋपेये मूले पुन ब्रह्म सूर्य इन्द्रेभ्यो गुरु उग्र । दृक् एषा द्वेद्वे एभिः सुलग्ने शुभलग्ने ॥ ३९ ॥

व्याधो दाशः कौटिकोऽत्यावसायी पूर्वावातद्वीशवारीशकालैः ॥

तीक्ष्णैः पापाहन्यधात्मीयकर्म स्वार्थं कुर्यात्पापलग्नेऽनदाये ॥ ४० ॥

अथ व्याधादीना कार्ये भादिशुद्धिमाह—व्याध इति ॥ व्याधो मृगव्याधीना पुन दाशो धीवर पुन कौटिकः ' मासिक कौटिकत्राय ' इति हेम ॥ खाटकी इति मापा । पुन अत्यावसायी चाडालश्च आत्मीयकर्म कुर्यात् किमर्थं स्वार्थं निवार्य वा कै पूर्वात्रय

अनेकवर्णोदितधर्मकर्मणा समानधर्मस्य नयं नयंत्यपि ॥

परे जनावाप्तुमलं क्रियाफलं स्वधर्मसत्योलभते जनः श्रियम् ॥४५॥

अथ स्वधर्मं द्रष्टव्यं विक्रमार्कवर्णनं संदधाति—अनेकेति ॥ अलमित्यवधारणे परेऽपरे जनाः क्रियाफलमात्रं प्राप्तुं नयं नीतिं नयंति प्राप्नुवन्ति कस्य समानधर्मस्य तुल्यधर्मस्य केन अनेकवर्णोदितधर्मकर्मणा स्पष्टं । वा पुनः पक्षतरे स्वधर्मसत्यो लोकप्रवाहयुक्तो निजधर्मोक्तो जनः श्रियं लभते प्राप्नोति 'सत्यस्तु लोकमिदं' इति हैमः ॥ अर्थातरन्यासेन श्रीविक्रमादित्य उक्तः स च सत्यमुक्तवान् तमेव वर्णयितुमाह ॥ ४५ ॥

कांबोजगौडांध्रकमालवाननाः श्रीविक्रमार्कस्य सुराज्यगौर्जराः ॥

स्ववर्णधर्मक्रियोज्ज्वलीकृतं यशोऽभिगायंत्यधुनापि ते जनाः ॥४६॥
इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे वर्णकर्मधर्मनिरूपणाध्यायो विंशतितमः ॥

कांबोजेति ॥ अधुनापि कांबोजदेशप्रमुखाः सुराज्यगुर्जरास्ते जना लोकाः श्रीविक्रमार्कस्य यशः कीर्तिमभिगायन्ति किंभूतं यशः स्ववर्णधर्मस्य निजनिजवर्णधर्मस्य क्रियया उज्ज्वलीकृतं निर्मलीकृतं ॥ ४६ ॥

इति श्री पौर्णिमीयचच्छात्रैराजभट्टारकरपुरदरधीमहिमाप्रभसूरीश्वरचरणसरोरहचचरी-

कायमानशिष्यभावरत्नविरचिताया श्रीकालिदासकृतज्योतिर्विदाभरणस्य

मुख्योपधिकाया विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

कालनिर्णयप्रकरणम् ।

वर्णक्रियासंकथनादनंतरं वदामि कालव्यवहारनिर्णयं ॥

येनैव वेदस्मृतिर्कर्मसाधनं समेति सिद्धं प्रतिवेलमादरात् ॥१॥

अथ पूर्वोक्तं समयसाधनीयं स्यादतः कालव्यवहाराध्यायसंधानमाह—वर्णोति ॥ वर्णानां विप्रादीनां क्रियासंकथनात् अनंतरं अहमादरात् कालव्यवहारनिर्णयं वदामि कथयामि । न कालनिर्णयेन वेला प्रति इति प्रतिवेलं वेदस्मृतिर्कर्मसाधनं कर्तृपदं समेति प्राप्नोति ॥१॥

मधौ शुचौ माघ इषे युगक्रमं सितादिगत्र्या नवरात्रिकं व्रतं ॥

देवीप्रसादं वशया विशाखिलैः कृतं चतुर्वर्गफलप्रदं युगैः ॥ २ ॥

अथ नवरात्रिव्रतमाह—मन्वात्रिति ॥ मधौ चैत्रे शुचौ आषाढे माघे इषे आश्विने युगक्रमं सादिचतुर्युगानामनुक्रमेण सितादिगत्र्याः चैत्राषाढमाघाश्विनानां शुक्लपक्षप्रथमा रात्रिमारभ्य नवरात्रिकं व्रतं कर्तृपदं विशा नरेण वशया स्त्रियाऽखिलैर्युगैः कृतं सत् चतुर्वर्गफलप्रदं यात् । किंभूतं व्रतं देव्या प्रसादो यस्मिन् तत् देवीप्रसादं ॥२॥

अमांतरात्रावुत पक्षतौ घटं संस्थापयेत्त्रेयः ५ तुला ७ घटो ११ क्षरभे ॥

लग्ने तथा द्विप्रकृतौ शुभैर्ग्रहैश्चिकोणलग्नेषु खलैररिस्थितैः ॥ ३ ॥

अथात्र व्रते घटस्थापनमाह—अमांतति ॥ सुधीः घटं संस्थापयेत् क अमातरात्रौ अमावा-
स्यावसानरजन्या रत पक्षतौ प्रतिपदि पुनः क लेय सिंह. तुला घट. कुंभः उक्षा वृष. एषा
मे राशौ तथा पुनलग्ने द्विप्रकृतौ द्विस्वभावराशौ लग्ने तथा त्रिकोण लग्नेषु ५।७।१ शुभैर्ग्रहैः
तथारिस्थितैः पक्षभावगतै खलै. क्रूरै. ॥ ३ ॥

पृदाकुभाजां प्रिभविश्वकर्मभान्यपास्य वा चेदिह नोऽर्कमद्युभं ॥

पातद्वयं वै कलशोऽष्टमे क्षणे संस्थापितः स्थापयति त्रियोऽखिलाः ॥ ४ ॥

अथ कुमस्थाने भादिशुद्धिं तर्कयति—पृष्टेति ॥ वै निश्चित चेत् यदि यत् अर्कम
सूर्यनक्षत्रं तदेव द्युभ दिननक्षत्र न स्यात् । पातद्वय व्यतीपातवैधृतौ न भवत. इति या प्रतिपत्
स्यात्तस्यां अष्टमे क्षणे शुद्धं संस्थापित कलशोऽखिलाः समस्ताः त्रियो लक्ष्मीः स्थापयति
स्थिरीकरोति किंकृत्वा पृदाकु. सर्पस्तद्धमच्छे ॥ अर्जाग्निं पूर्वाभाद्रपदा विश्वकर्मभं चित्रा
एषा द्वे इतानि अपास्य त्यक्त्वा ॥ ४ ॥

होमे तदीये नवमीयुताष्टमीं नयेत्सदैवैह तदीयपारणां ॥

वृद्धौ नवम्यां समभावतस्तथा क्षये दशम्यां च विशारदैः स्मृता ॥ ५ ॥

अथात्र व्रते होमपारणाशुद्धिमाह—होम इति ॥ तदीये होमे नवरात्रिकव्रतहोमे नवमी-
युताष्टमी स्यात् । सदैव सुधीरिह नवमीयुत पृष्ट्या तदीयपारणा तस्य प्रत्यक्ष पारणा नयेत्
कुर्यात् । वृद्धौ तिथिवृद्धौ तथा समभावतस्तुल्यप्रमाणतो नवम्या पारणा नयेत् । च पुन क्षये
तिथौ सति दशम्या विशारदै. पठिते पारणा स्मृता ॥ ५ ॥

होमे व्रतेऽन्यत्र करग्रहादिके वै सन्मंगले पौष्णयमाहियातुभैः ॥

चित्राग्निपूर्वाभिरिनात्मजान्हि वा न स्थापयेत्कुंभमसत्तिथौ निशि ॥ ६ ॥

अथ रेवत्यादिषु होमादितेषु किंकृमस्थापनं निषेधति—होम इति ॥ सुधीः होमे व्रते
ऽन्यत्र करग्रहादिके सन्मंगले शुभकार्ये वा कुंभं घटे न स्थापयेत् । कैः पौष्णी रेवती
यमो भरणी अहिरक्षेपा यातुभं मूल एषा द्वे एते. पुन कामि चित्रा त्रिपूर्वाः आतां
द्वे आभिः पुनः क इनात्मजान्हि शनिदिने पुन. क असत्तिथौ अशुभतिथौ सति पुन
निशि राशौ ॥ ६ ॥

आस्ते कवावांगिरसे गुरो हरो श्रयेऽधिके मासि च हायने तथा ॥

एतद्व्रतं न प्रथमं समारभेदन्यत्र कांताव्रतमप्यनादृतम् ॥ ७ ॥

अथ गुर्वेस्तादिदोषे नवरात्रिकव्रतारं प्रथमं निषेधति—आस्त इति ॥ सुधीर्गन्धर्व
नवरात्रिकं व्रतं प्रथमं न समारभेत् न प्रारभेत् क क्वौ शुक्रे आगिरसे गुरौ वास्ते

सति पुनः हरो सिंहे गुरौ सति पुनः श्वेऽधिके मासि मासे हायने वर्षे च तथा च पुनः
अन्यत् कांताव्रतं स्त्रीव्रतमपि अनादृतं त्यक्तमित्यर्थः ॥ ७ ॥

व्रतं हि भद्रादिविरुद्धकालो नित्यं न दुष्यत्यबलाजनस्य ॥

नैमित्तिकं स्यात् प्रथमं सद्योप कालस्थिरं नित्यमनित्यमन्यत् ॥ ८ ॥

अथ नित्यानित्यव्रतविवेकमाह—व्रतमिति ॥ हि अवधारणे भद्रादिविरुद्धकालो वि-
ष्ट्यादिदुष्टकालोऽबलाजनस्य स्त्रीजनस्य नित्यं व्रतं न दुष्यति । प्रथमं नैमित्तिकं कारणिकं
व्रतं सद्योपमैत्रादिविरुद्धकाले दूषणयुक्तं स्यात् । कालस्थिरं अस्मिन् काले इदं व्रतमवश्यं
कर्तव्यमेव इति नित्यं व्रतं स्यादन्यत् अनित्यं व्रतं स्यादिति विवेकः ॥ ८ ॥

माघे निशीथानुगता चतुर्दशी पक्षे परे या शिवरात्रि-
संज्ञिका ॥ भवेदुपोष्या सजया १३पि वाम ३०या युता
च रिक्तां प्रविहाय पारणा ॥ ९ ॥

अथ शिवरात्रिकालशुद्धिमाह—माघ इति ॥ माघे मासे परे कृष्णे पक्षे या निशीथानुगता
मध्यरात्रिगता चतुर्दशी स्यात् सा शिवरात्रिसंज्ञिका उपोष्या उपोषणीया भवेत् । किंभूता
सजया त्रयोदशीयुक्ताऽपि वाऽथवा किंभूता अमया अमावास्याया युता युक्ता च पुनः रिक्ता
तिथिं विहाय पारणा स्यात् ॥ ९ ॥

यदा निशीथद्वयगामिनी भवेच्चतुर्दशी सा परपूर्वगा क्रमात् ॥

वृद्धिक्षयत्वादुत मुक्ततद्वया बन्ही विधेया किल कालवेदिभिः ॥ १० ॥

अथात्र न्यूनाधिकतिथौ विवेकमाह—यदेति ॥ यदा या निशीथद्वयगामिनी
मध्यरात्रिद्वयगामिनी परपूर्वगा उत्तरमध्यरात्रिनी आगामिकमध्यरात्रिनी यावत् गता प्राप्ता
चतुर्दशी भवेत् सा शिवरात्रिश्चतुर्दशी भवेत् । किञ्च संभावनाया उत कालवेदिभिर्देवज्ञैर्बन्ही
बहुकालतिथिश्चतुर्दशी विधेया किंभूता चतुर्दशी क्रमात् वृद्धिक्षयत्वात् मुक्ततद्वया वृद्धि-
दितभावात् वर्जितवृद्धिटीतिथिः ॥ १० ॥

देव्या व्रतेऽन्यत्र च बन्हिरेतसो व्रते सपर्यादिविधौ चतुर्दशी ॥

त्रयोदशीविद्धवती तथाष्टमी ग्राह्या नवम्या सहिताततोऽंधेका ॥ ११ ॥

अथ देव्यादिव्रते तिथिशुद्धिमाह—देव्येति ॥ देव्या व्रते भवानीव्रतेऽन्यत्र च बन्हिरे-
तस ईश्वरस्य व्रते सपर्यादिविधौ पूजादिकर्मणि च त्रयोदशीविद्धवती त्रयोदश्या विद्धा
चतुर्दशी तथा नवम्या सहिता अष्टमी च ग्राह्या ततोऽंधेका ग्राह्या ॥ ११ ॥

सहोऽपरा मुख्यतमा चतुर्थिका व्रते गणेशस्य विभूदयाश्रया ॥

एवं चतुर्थ्यो निखिलाश्च तद्व्रते भवन्ति सिद्धयै किल कृष्णपक्षजाः ॥ १२ ॥

अथ गणेशचतुर्थीप्रतिशुद्धिमाह—सह इति ॥ गणेशस्य व्रते सहो मार्गशीर्षमासस्त
स्यापरा कृष्णा मुख्यतमा श्रेष्ठतमा चतुर्थी चतुर्थी ग्राह्या । किंभूता चतुर्थी विधृदया-
श्रया चंद्रोदयव्यापिनी च पुनरेव किलेति सभावनाया तद्व्रते तस्य गणेशस्य व्रते
निखिलाः समस्ताश्चतुर्थ्य सिद्धयै भवति किंभूताश्चतुर्थ्य कृष्णपक्षना कृष्णप
क्षमाता ॥ १२ ॥

दशम्यविद्धा समुपोपयेदिमामेकादशीं द्वादशिकां च पारयेत् ॥

क्षणावराद्ध्या दशमी भमक्षणावमोत्तरा चेदपि तामुपोपयेत् ॥ १३ ॥

अथैकादशीव्रतमाह—दशमीति ॥ बुध इमा दशम्यविद्धा एकादशीं समुपोपये च
पुनर्द्वादशिका पारयेत् । उत चेत् यदि भमक्षणावमा भैरवैर्मास्यते ते ममाश्च ते क्षणाश्च
सप्तविंशतिस्त्रैश्वर्यु र्वाशान्मिषटिकाऽवमा हीना दशमी तदा सा एकादशी क्षणावरा-
ध्या क्षणै श्रेष्ठा भवेत्तदा सुधीस्तामुपोपयेत् ॥ १३ ॥

क्षणाधिका चेद्दशमी भमक्षणाऽधिकावमैकादशिकाऽधिका परा ॥

उपोषिता स्यादपरा फलप्रदा त्रयोदशी पारणयापि वा तदा ॥ १४ ॥

अथाधिकावमतिथौ एकादशीविवेकमाह—क्षणेति ॥ चेत् यदि क्षणाधिका मुहूर्ताधिका
भमक्षणा सप्तविंशतिमितमुहूर्तास्तेभ्योऽधिका वमा एवविधा दशमी पुनरेकादशिकाधिका
तदापरा द्वितीया एकादशी उपोषिता सती परा प्रकृष्टफलप्रदा स्यात् । वेति पश्चातरे
पारणयापि त्रयोदशी फलदा स्यात् ॥ १४ ॥

एकादशी चेत्स्पृशति त्रिवासरस्तदा शुभं तद्व्ययमप्युपोषितं ॥

सर्वेष्वावैर्मस्करिसाग्निकैस्तथाऽपरः समेकामपरामुपोपयेत् ॥ १५ ॥

अथैकादश्या विशेषमाह—रेकेति ॥ चेत् यदि एकादशी त्रिवासरान् दिनत्रय स्पृशति
तदा मस्करिसाग्निकैर्द्वय रियोगिभिः अग्निहोत्रिभिः किंभूतेर्मस्करिसाग्निकैः सर्वेष्वावैर्मस्करि-
युक्तैस्तद्व्यय तस्या एकादश्या द्व्यमुपोषितं शुभं स्यात् । तथाऽपरः कश्चित्समेका शुभा एका
परा अत्रेतना एकादशीमुपोपयेत् ॥ १५ ॥

चेद्द्वादशी पञ्चयधिका ६० तदा भवेदुपोपयेत्तामपि पष्ठिमा बुधः ॥

संपारयेद्द्वादशिका परा कचिन्नंदा च भद्रा समुपोपणोचिता ॥ १६ ॥

चेदिति ॥ चेत् यदि पञ्चयधिका पष्ठिपञ्चम्योऽधिका द्वादशी स्यात्तदा बुध पष्ठिमा
पष्ठिपञ्चमिमा तामपि द्वादशीमुपोपयेत् परामत्रेतना द्वादशिका संपारयेत् । पुन कचिन्
स्थाने नदा एकादशी भद्रा द्वादशी समुपोपये हिता शुभा स्यात् ॥ १६ ॥

भद्रावमेतां समुपोप्य पार्येत्रयोदशीं वारुणकालतोऽधिका ॥

यातामिह द्वादशिकादि यद्वरेहस्तदुल्लंघ्य सदैव पारणा ॥ १७ ॥

अथास्या विशेषमाह—भद्रेति ॥ या मद्रा द्वादशी अरुणकालतः सूर्योदयात् प्राक् चतु-
र्वेदिकात्मकोऽरुणोदयकालस्तस्मात् अवमेता अवमं क्षयं इता प्राप्ता वाऽरुणकालेऽधिका
तदा तां द्वादशीं समुपोष्य त्रयोदशीं पारयेत् । इह हरेः कृष्णस्य तत् द्वादशीकादि यत्
द्वादश्याः प्रथमचरणमेवंविधमहरुञ्ज्य प्रोद्भूय सदैव पारुणा स्यात् ॥ १७ ॥

चेद्द्वादशी पारणया हि लभ्या पूर्णान्वितैकादशिकां न पारयेत् ॥

वृद्धौ क्षये वापि तदन्यरूपं भनिर्णये तत्क्रमनीतिभावतः ॥ १८ ॥

चेद्द्वादशीति ॥ हि अवधारणे चेत् पारणया द्वादशी लभ्या प्राप्या स्यात्तदा मुधी पूर्णान्वि-
तैकादशिका दशमीयुक्तमैकादशीं न पारयेत् भोजन न कारयेदुपोषयेदित्यर्थः । तदेतुमाह
वृद्धौ क्षये वा तिथौ सति भनिर्णये नक्षत्रनिश्चयेऽपि तदन्यरूपं तस्या ईप्सितातिशया भन्व-
रूपमन्यस्वरूपं स्यात् । कस्माद्वेतो' क्रमनीतिभावतः तिथ्यादिक्रमन्यायमावात् ॥ १८ ॥

वृद्धिक्षयौ स्तः परमौ तिथौ सदा व्यर्धा रसाः सांग्रिसाश्च नाडिकाः ॥

सनेमतर्काः सपदर्णवास्तु भेनिरुयंशदोषौ द्विरदा युतौ क्रमात् ॥ १९ ॥

अथ तिथिनक्षत्रयोगानां वृद्धिक्षयनियमाह—वृद्धिरिति ॥ तिथौ तिथिविषये सदा व्यर्धा
रसा विगतं अर्धं येम्यस्ते एवंविधा रसाः पड्नाडिकाः सार्धपंचवटिकाः १।२० च पुनः सा-
ग्रिसाश्चरणमहिता पण्णाडिकाः सपादपट्टिकाः १।१५ क्रमेण वृद्धिपञ्चयौ १५रौ उत्कृष्टौ
स्तौ भवतः । तु पुनर्भे नक्षत्रविषये सनेमतर्काः सार्धपट्टिकाः १।३० सपदर्णवाः सपादप-
ट्टिकाः ४।१५ क्रमेण वृद्धिक्षयौ स्तः ॥ पुनर्युतौ योगविषये निरुयंशदोषौ निर्गतस्तृ-
तीयमागो यस्मात् एवविधौ दोषौ भुजौ द्वौ एतावता उभययुक्ता एकपट्टिका १।४० द्विरदा गजा
अष्टपट्टिकाः ८ क्रमात् वृद्धिक्षयौ स्तः ॥ १९ ॥

मैत्रं शुचौ चेच्छ्रवणं नभस्ये पौष्णं तथोर्जेऽर्कमघस्रयोगं ॥

तत्पारणा हंत्यपि धर्मभाजां पुराकृतैः पुण्यमशेषमेव ॥ २० ॥

अथ नक्षत्राश्रितद्वादशीं दर्शयति—मैत्रमिति ॥ चेत् यदि शुचौ आपादमासे मैत्र-
मनुरावा नभस्ये भाद्रपदे श्रवणः तथा ऊर्जं कार्तिके पौष्णं रेवती स्यात् । किंभूतं मैत्रादिभे
अर्कमघस्रयोगं अर्कैर्द्वादशभिर्भाज्यते इति अर्कमश्वासौ घस्रो वासरश्च द्वादशा इत्यर्थः । तस्य
योगः संयोगो यस्मिंस्तदिति तदा तत्पारणा तस्या द्वादश्या पारणा धर्मभाजा प्राणिना
पुराकृतमशेषमपि एवं पुण्यं हंति सा उपोष्या तदा शुभमित्यर्थः ॥ २० ॥

तथापि पादं प्रथमं विमुक्त्वा मैत्रे च मध्यत्रिलवं श्रुतौ हि ॥

पौष्णेऽत्यपादं हस्विसाराख्यं तत्पारणा धर्मफलाप्तये स्यात् ॥ २१ ॥

अथात्र नक्षत्रचरणमतविशेषं दर्शयति—तथेति ॥ हि अवधारणे तथा मैत्रेऽनुराधायाः
पौष्णेऽतिपादं विमुक्त्वा मध्यत्रिलवं श्रुतौ हि ॥ २१ ॥

यत्नं हरिवासरारूपं विहाय पौष्णात्पपादं रेवत्या अंत्यचरणं हरिवासरारूपं विहाय
तत्पारणा तस्या द्वादश्या पारणा धर्मकलाप्तये स्यात् ॥ २१ ॥

चैत्रे सिता द्युदलगा नवमी व्रते स्याच्छ्रीरामजन्मसमये
तदुपोषणं सत् ॥ वृद्धौ च सा दिनदलद्वयगा परा
चेत्पूर्वा क्षये द्विदिनमध्यगतान्यथा न ॥ २२ ॥

अथ रामनवमीमुपोष्यामाह—चैत्र इति ॥ चैत्रे मासे सिता शुक्ला द्युदलगा दिनादं
गता नवमी व्रते स्यात् । श्रीरामजन्मसमये तदुपोषणं तस्या नवम्या उपवासः स्यात् । चेत्
यदि वृद्धौ सत्या मा नवमी दिनदलद्वयगा दिनादंयुग्मगता परा अमेतन्ना स्यात् । क्षये सति
द्विदिनमध्यगता दिनद्वयमध्यप्राप्ता पूर्वा स्यात् । अन्यथा उक्तविपरीतेन स्यात् ॥ २२ ॥

रिक्तां समुद्रस्य दंशमी किल पारणायामायुःप्रजास्ववृ-
पवागपवर्गदा स्यात् ॥ श्रीरामजन्मसममन्यमहात्र-
तारूप्यं नोपोषितं ननु महोत्सवगीतमेतत् ॥ २३ ॥

अपास्याः पारणादिनामाह—रिक्तामिति ॥ किल संभावनाया रिक्ता नवमी समुद्रस्य
विहाय पारणायां दशमी आयुःप्रजास्ववृपवागपवर्गदा दीर्घजीवितसत्तानधर्मसरस्वती
मोक्षप्रदा स्यात् । ननु विनर्के महोत्सवगीतं महताढंनरेण गीतं स्तुतं वा उपोषितं सन् एतत्
श्रीरामजन्मसमं व्रतमन्यमहाप्रकार्यं नास्ति ॥ २३ ॥

अष्टमी नभसि मासि यापरा रोहिणीसहितमभ्यरात्रिगा ॥

कृष्णजन्मसमयोत्सवव्रता सर्वकामफलदा ह्युपोषिता ॥ २४ ॥

अथ गोजुलाष्टमीव्रतमाह—अष्टमीति ॥ नभसि श्रावणे मासे यापरा कृष्णा रोहिणी-
सहितमभ्यरात्रिगाष्टमी भवति हि अवधारणे साष्टमी उपोषिता सती सर्वकामफलदा
स्यात् । किमुताष्टमी कृष्णजन्मसमयोत्सवाय व्रतं यस्यां सा स्पष्टमिति ॥ २४ ॥

रोहिणीसहितमष्टमीदिनं चेन्निशीथसमयद्वयं स्पृशेत् ॥

तच्चयापचयतः परं पुरा तत्र वा यदि तत्तस्तथान्यथा ॥ २५ ॥

अथात्र वृद्धौक्षये उपोषणं तर्कयति—रोहिणीति ॥ चेत्तदि अष्टमीदिनं कर्तुं परं रोहिणी
सहितं निशीथमप्यद्वयं मध्यरात्रिगुग्मं स्पृशेत् तदिदं चयापचयनो वृद्धिसंयत्तात् क्रमेण
वृद्धौ सत्या परममेतन्मुपोष्यं स्यात् । वायवा क्षये सति पुरा पूर्वं दिन उपोष्यं स्यात् ।
यदि चेत्ततोऽन्यथा तदा तत्र स्यात् ॥ २५ ॥

रोहिणीविरहिताष्टमीं नयेन्मभ्यरात्रिसमयानुगामिह ॥

केवलामनुतिथिस्तपेऽथवा तां गतक्षणनिशीथगामपि ॥ २६ ॥

रोहिणीनि ॥ इह त्रये सुग्री केवला रोहिणीविरदिता रोहिणीनक्षत्रजनिता अष्टमी मध्यरा-
त्रिसमयानुगा नयेत् कुप्यति । अनु पत्र तिगेलयेऽत्र ता मनसगानिशीया मुहूर्तमानदी-
नमध्यरात्रिगतामपि नयेत् ॥ २६ ॥

सोमसौम्यसहिताष्टमी कभा केवलाप्युन शुभा त्युपोषिता ॥

भौमवासरवती तथोदयाद्वह्नीष्टफलदोतसंभवात् ॥ २७ ॥ ॥

सोमेति ॥ हि अत्रारणे सोमसौम्यसहिता चन्द्रनुक्ता कभा कस्य त्रयगो भ नक्षत्रं
यस्या सा कभा रोहिणीयुक्ता उत्र विरक्ते केवलाणि अष्टमी उपोषिता सतीति शुभा स्यात् ।
उदयात् भौमवासग्नौ भौमदिननुक्ता तथा ऊनमभात् किञ्चिद्व्यूनमयोगान् बह-
र्भाष्टफलदा स्यात् ॥ २७ ॥

अष्टमी भवति सप्तमीयुता गर्हिता व्रतविधौ यथा न तु ॥

वासुदेवजननोत्सवे तथा सा निशीथसमया समाहृता ॥ २८ ॥

अष्टमीति ॥ यथा सप्तमीयुतऽष्टमी व्रतविधौ उपोषणकर्मणि गर्हिता निर्दिता न स्यात्
तुभ्यश्चारेण तथा वासुदेवजननोत्सवे ऋगचनोत्सवे साष्टमी निशीथनमया मयरात्रि-
गता समाहृता आराविता ॥ २८ ॥ *

रोहिणी यदि जया क्षगोन्मितामष्टमीमुत्र सवेत्य रोहिणी ॥

मध्यरात्रिसमयामुपोषयेता निशीथनिकटानुगामपि ॥ २९ ॥

रोहिणीनि ॥ यदि चेत् जया अष्टमी क्षगोन्मिता इत्यत्रमिता रोहिणी मन्त्रेण संयोग प्राप्य
भवेत् । उत्र रोहिणी क्षगोन्मिता अष्टमी सवेत्य भवेत्तदा सुशीर्ष परात्रिसमया निशीथ-
निकटानुगा मध्यरात्रिगतामपि तं मष्टमीमुपोषयेत् ॥ २९ ॥

प्राङ्निशीथमुपगम्य वेङ्गवेर्नीयते परदिनाचिते तु ते ॥

पारणा तदवसानतो भवेद्वा वियोगसमयात्परं तयोः ॥ ३० ॥

अथात्र वैष्णवपञ्चमाह—पाडनिगीति ॥ वैष्णवे परदिनाचितेऽन्दिनागते ते द्वे-
ऽष्टमीरोहिण्यौ सवेत्य प्राङ् पूर्वमनु पश्चात् निशीथ मध्यरात्रि नीयते प्राप्यते तदवसानतोऽ-
ष्टम्याः प्रातात् पारणा भवेत् । वायवा तयोः अष्टमीरोहिण्योर्वियोगमन्तान् विच्छेत्ताकाञ्चात् प-
रमग्रे पारणा भवेत् ॥ ३० ॥

चतुर्दशी माधवमासि शुक्ला नृमिहसंभूतेचतुर्दशी स्यात् ॥

निशामुखे सा समुपोषगार्हा जयायुता पूर्णिमया युता वा ॥ ३१ ॥

अथ नरमिहज-मचतुर्दशीमाह—चतुर्दशीति ॥ मातृत्वमपि वैशाखमासे शुक्लाख्येन वृत्तिः
संभूतेचतुर्दशी नरमिहज-मचतुर्दशी स्यात् सा चतुर्दशी निशामुखे रजनीमुखे समुपोषगार्हा
उपोषणाय योग्या स्यात् । किंभूता जयायुता त्रयोदशीयुता वायवा पूर्णिमया युता ॥ ३१ ॥

अर्कास्तकालद्वयगा तु सा चेत्सयाधिकत्वात्प्रथमाऽपरा स्यात् ॥
तत्स्था नवा तद्विपरीतगार्हा वन्ही विधेयात्र सपारणा सा ॥ ३२ ॥

अत्र वृद्धिज्ञेय विधेकमाह—अर्केति ॥ चेत् यदि अर्कास्तकालद्वयगा सूर्यास्तकाल-
द्वयगता स्यात् सा क्षयाधिकत्वात् सवे प्रथमा अधिकेऽपरा अत्रेतना स्यात् । तत्स्था नवा
इति द्वयपरमव्यय नवेति विकल्पार्थे तद्विपरीतगा तदात्र वन्ही विधेयार्हा विगतु योग्या
किंभूता सा सपारणा पारण युक्ता ॥ ३२ ॥

इपांतदशो रजनीमुखायिको दीपोत्सवोऽसौ गदितो बुधैरिह ॥

श्राद्धं विधाय द्युदलक्षणत्रयं सायं सदैवोत्सुकमादृतं ततः ॥ ३३ ॥

अयं दीपमालिकायाह—इपातेति ॥ य इपातदर्श अश्विनमामभ्यातदशो रजनीमुखायिक
स यातोऽयिक स्यादित् जाति बुधैः सोऽपो दीपोत्सवो गदित प्रोक्त । द्युदलक्षणत्रय
मभ्यान्होपरि पश्यटिका यावन् श्राद्धं विधाय कृत्वा तत सायमभ्याया सदैव उत्सुक
'मराईया' इति भाषा आदृतमगीकृत ॥ ३३ ॥

रिक्तानिशीये किल विष्णुमायामभ्यर्च्य दीपोत्सवमप्यमायां ॥

कृत्वा बलेश्च प्रतिपद्यज्ञस्य पूजानु गोक्कीडनमृद्धये स्यात् ॥ ३४ ॥

रिक्तेति ॥ किलेति मम वन या रिक्तानिशीये चतुर्दश्या मा सरात्रे विष्णुमाया लक्ष्मी
मभ्यर्च्य संपूज्य अत्र पुनरमयाममरस्याया दीपोत्सव दीपमालिका कृत्वा प्रतिपदि
निमी नलेवालिराज्य मेहम पे पूजा च पुनर्दश्याहोऽनस्य गोमयनिर्मितगोवर्चस्य
पूजाऽनु पश्चात् गोक्कीडन मतीनमृद्धये सग्राये स्यात् ॥ ३४ ॥

अमा ३० यदा भूतदिने १४ऽराणहे प्रदृश्यते तद्विवसेऽक्षयं स्यात् ॥

श्राद्धं पितॄणां तदनुत्मुक्ताख्यं तमीमुवे लोकनृपार्थकारि ॥ ३५ ॥

अमनि ॥ यदा भूतदिने चतुर्दश्यामराहोऽमा प्रदृश्यते तदा तद्विने चतुर्दशी
दिने पितॄणां श्राद्धं वनृपद सायस्यातदनु पश्चात्तमीमुवे रजनीमुख उत्सुकान्य 'मराईया'
लोकनृपार्थकारि जनानां भूतस्य च नशकृत् स्यात् ॥ ३५ ॥

प्रातश्च सगवश्चैव मयान्ह शारदस्तथा ॥

माय न्हमर्वांदयत पंचांशो शुभिते कमान् ॥ ३६ ॥

अयं पञ्चाश विनाशनह—प्रातर्गिति ॥ प्रतः प्रभात १ रात्रि सगर २ च पुन
मध्यान्ह ३ पुन सारद ४ तथा पुन साराह ५ मिति अर्द्धादयन सूर्यस्यार्द्धमदशो
दशार् दृमि । दिव्यप्रमिस्य जनात् पंचाश ॥ ३६ ॥

पचधा भागकालोऽसौ त्रिधा पूर्वाण्हकं ततः ॥

मयान्हमपराण्हं तु द्वेधा पूर्वापराद्विकं ॥ ३७ ॥

अथ त्रिंशत् कालमाह—पंचेति ॥ पंचरा भागकालोऽसौ कालस्त्रिंशत् पूर्वाह्नकं ततो
मध्याह्नं ततोऽपराह्नं स्यात् । नु पुनः पूर्वापरार्द्धे पूर्वाह्ने उत्तरार्द्धे द्वेना कालः स्यात् ॥ ३७ ॥
दिनावसाने क्षणमास्त्यमा चेच्छ्राद्धं विधायेत्समुक्तमत्र कुर्यात् ॥
क्षयेऽथ वृद्धौ प्रतिपद्येते दर्शं ततोऽग्रे वलिपूजनं स्यात् ॥ ३८ ॥

दिनेने ॥ चेद्यदि दिनावसाने दिनमानेऽथा क्षणमा मुहूर्तमभेनास्ति तदात्र श्राद्धं विधाय
उत्सुकं कुर्यात् । अथ क्षये वृद्धौ उने प्राप्ते दर्शं प्रतिपदि उत्सुकं स्यात्ततोऽग्रे चत्वि-
जनं स्यात् ॥ ३८ ॥

श्राद्धे कृते शादरगामि दर्शं नंदोत्सुकं दूषणकृत्त राज्ये ॥

तदा निशीथे सुरशक्तिपूजा दर्शोऽपि लोकेश्वरसौख्यदा स्यात् ॥ ३९ ॥

श्राद्धेति ॥ शादरगामि, दर्शं भाविनामात्रास्यायां श्राद्धे कृते सति नंदोत्सुकं प्रतिपदि
उत्सुकं राज्यदूषणकृत्त स्यात्तदा निशीथे मध्यरात्रिदर्शोऽपि सुरशक्तिपूजा लक्ष्मीपूजा
लोकेश्वरसौख्यदा जननृपसुखदायिनी स्यात् ॥ ३९ ॥

सूर्यास्तकालोत्सुकमंगिकर्म स्यादंगकर्मण्यपराणि चात्र ॥

दर्शोदरः पंचदिनात्मकोऽसौ दीपोत्सवस्तद्व्यवहारसिद्धः ॥ ४० ॥

सूर्यास्तेति ॥ सूर्यास्तकालोत्सुकमंगिकर्म प्रागिकृतं स्यात् । च पुनरत्रापराणि अंगकर्मणि
स्युः ॥ दर्शोदरोऽसामर्थ्यः पंचदिनात्मकः त्रयोदशी चतुर्दशी दर्शं प्रतिपत् द्वितीयात्मकोऽसौ
दीपोत्सवः स्यात् । किंभूतो दीपोत्सवस्तद्व्यवहारेण श्राद्धादिकत्यव्यवहारेण सिद्धः स्यात् ।
इति दीपमालिकाविकाराः ॥ ४० ॥

अथाश्विने या दशमी निशामुखे शुक्ला स्मृता सा विजया बुधैरिह ॥

अर्कान्वितां बोधियुतां शमीसुत त्रितीश्वरः सर्वजनश्च पूजयेत् ॥ ४१ ॥

अथ विजयादशमीमाह—अथेति ॥ अयानंतरमुत चेत् याश्विने शुक्ला दशमी
निशामुखे रजनीमुखे स्यात् बुधैः सा विजयादशमी स्मृता प्रोक्ता । इह विजयायां सितो-
श्वरश्च पुनः सर्वजनः शमी लेशनाश्विनीं पूजयेत् । किंभूतां शमीं अर्कान्वितां अर्कतरुयुक्तां
पुनर्बोधियुतां अथत्ययुक्ता ॥ ४१ ॥

दिनावसानद्वयगामिनी यदा पूर्णा तदैवं विजया परा भवेत् ॥

न वेति दोषानननेकग्रहता शम्यर्चने सर्वहरिजयाय सा ॥ ४२ ॥

दिनेने ॥ यदा दिनावसानद्वयगामिनी पूर्णा दशमी स्यात्तदा विजया पराऽमेवता भवेत् ।
याथा एव न स्यात्तदा दोषानननेकग्रह रजनीमुखमनोपम्या ग्राहता इति मा विजया
दशम्यर्चने शमीतरुपूजने सर्वहरिजयाय सर्वदिगविजयाय स्यात् ॥ ४२ ॥

हुताशनीं फाल्गुनपूर्णिमास्यां निशीथपूर्वा ज्वलयेच्छुभार्थी ॥

पश्चात्तमीनज्वलने दिवा वा नृपश्रियं हंत्यपि पक्षतिर्वा ॥ ४३ ॥

अथ होत्रिकाधिकारमाह—हुनेति ॥ शुभार्थी हिनकाक्षी नर फाल्गुनपूर्णिमास्या
निशीथपूर्व मन्थराप्रित आदिमा हुताशनी नयेत् कुर्यात् । द्विकर्म च पुनः पश्चात्तमीनज्वलने
मन्थराप्रितोऽसारा रजनीं इत्तं प्राप्त तत् ज्वलने च तस्मिन् वायवा दिवा दिने हुताशनी
ज्वले सति पशतिः प्रतिपद् वा नृपश्रियं रामलक्ष्मीं हन्ति ॥ ४३ ॥

सूर्यास्तकालावधिरेव पूर्णिमाधिकोत्तमा वा कलया तदा कृते ॥

श्राद्धे च तत्र ज्वलिता हुताशनी नन्दातिथौ स्याद्रजसोत्सवः श्रियौ ॥ ४४ ॥

सूर्यास्तेति । यदा सूर्यास्तकालावधि सूर्यास्तसमय यावत् पूर्णिमा एव निर्धारणे
वायवा कलया अश्वेन आधिका वा ऊना हीना स्यात्तदा कृते श्राद्धे सति तत्र ज्वलिता
हुताशनी होत्रिका स्यात् । च पुनः रजमा रेणुना उत्पन्न श्रिये स्यात् । तस्मिन् नन्दातिथौ
प्रतिपत्तिथौ ॥ ४४ ॥

रिक्तान्विताग्रद्युयुतोत्त पूर्णिमा नेयास्तगे नज्वलने स्वाविह ॥

विष्टिस्तु तन्नित्यतया न दोषकृतयोपगमं परिपूर्णमारजः ॥ ४५ ॥

रिक्तेति ॥ तज्ज्वले होत्रिकाज्वलने रिक्तान्विता चतुर्दशीयुक्ता उत अग्रद्युयुता ग्रानि
पदा युक्ता पूर्णिमा नेया । रजो सूर्यस्तगे मनि इह होत्रिकाया तुरवसारणे विष्टिर्भद्रा
दोषहन् न स्यात् । कया तन्नित्यतया होत्रिकाया नित्यभावात्तया उपागम ग्रहणं दोषहन्
तथा परिपूर्णमारजो दोषहन् न स्यात् ॥ ४५ ॥

पूर्णास्तकालममगाप्युत शारद्वाना या पूर्णिमा नभसि

संगमगा तु तस्यां ॥ विष्टया युतोत्त रदिता मुनिन-

पेणं स्याच्चेत्संकमो भवति वा ग्रहणं तदा न ॥ ४६ ॥

अथ पूर्णिमाया मुनिवर्जमाह—पूर्णाति ॥ नभसे आगमामे पूर्णास्तकालावधि नभः
र्णास्तकालमगा अपि पुनस्त शारद्वाना शारद्वनक्षरावधाना तु पुनः संगमगा मगम-
नक्षलावधाना उत भद्रान्विता विष्टियुता उत रदिता विष्टिरादिना स्यात्तदा तस्या पूर्णि-
माया मुनिवर्ज स्यात् । चन् यदि तत्र चन्द्रः सूर्यवक्रतिर्वा ग्रहणं सूर्यवक्रावधानो न
स्यात्तदेति ॥ ४६ ॥

केचित्समिच्छन्ति तदेव तर्पणं श्रुतो च हस्ते श्रुतिशाम्बिनो ग्रहे ॥

स्यात्संकमे वा सति मशाम्बिनां नत्तर्पणे श्रावणग्रहपंचमी ॥ ४७ ॥

अथ त्रय मतमाह—केचिदिति॥ केचित्तदेव तर्पणं श्रुतौ श्रवणे हस्ते च समिच्छन्ति सम्यक्प्र-
कारेण वाञ्छन्ति कस्य श्रुतिशास्त्रिनो वेदशास्त्रिनः ॥ अथ ग्रहे सूर्यादिग्रहणे संक्रमे वा सति
श्रावणशुक्लपंचमी सर्वशास्त्रिणां सर्ववेदशास्त्रिणां तर्पणे ऋषितर्पणे स्यात् ॥ ४७ ॥

सा संगवांतैवमुपाकृतौ स्यात् पूर्वान्विता वापि च पाकयज्ञे ॥

तथा सिता पंचदशी समुक्ता तथाष्टकैतत्समयाभिरूपैः ॥ ४८ ॥

सा संगवेति ॥ उक्तं चोपाकर्माणि सा श्रावणशुक्लपंचमी संगवांता संगवसंतकाष्ठमाता
एव वागवा पूर्वान्वितापि स्यात् । न पुनः पाकयज्ञेऽभिरूपैः पाडितैस्तथा सिता शुक्ला
पंचदशी पूर्णिमा समुक्ता प्रोक्ता । तथाष्टकाश्राद्धविशेषमात्रा प्रोक्ता किंभूता एतत्समया उक्त-
काष्ठप्रमिता ॥ ४८ ॥

अथ भाद्रपदादिपंचमी द्युदलांतामृषीपंचमी च सा ॥

द्युदलद्वयगोत सा न चेदधिकासन्नगता हि तां नयेत् ॥ ४९ ॥

अथ ऋषिपंचमीमाह—अथेति ॥ अथ या भाद्रपदादिपंचमी सा ऋषिपंचमी स्यात्
किंभूता ऋषिपंचमीउत चेत् द्युदलद्वयगोत दिनार्द्धद्वयगता न चेत् अग्निका आसन्नगता समीपगता
तदा हि आवश्यकं सुधीः तां पंचमी द्युदलांतां दिनार्द्धपांता नयेत् प्रामुष्यात् ॥ ४९ ॥

अपरा मुनिपंचमीदिनादुत पूर्वा मुनिचारशुद्धिगा ॥

हरिताल्यभिपूजनेऽष्टमी कथिता सातिजयाय योपिताम् ॥ ५० ॥

अथ हरितालीपूजनमाह—अथेति ॥ मुनिपंचमीदिनात् ऋषिपंचमीदिनात् अग्न उतारा
पूर्वा वा मुनिचारशुद्धिगा अगस्त्यचारशुद्धिं प्राप्ता याष्टमी भवति साष्टमी हरिताल्यभिपूजने
भवानीपूजने योपितां स्त्रीणामतिजयाय कथिता प्रोक्ता ॥ ५० ॥

सिताष्टमी भाद्रपदस्य कीर्तिता दूर्वाचनेऽस्ते सति कुंभजन्मनः ॥

सिंहे रवौ शारदकालगामिनी मध्यान्हवृद्ध्याप्युत रिक्तया युता ॥ ५१ ॥

अथ दूर्वाष्टमीमाह—सिताष्टमीति ॥ भाद्रपदस्य सिता शुक्ला शारदकालगामिनी शारदसंत-
काष्ठप्राप्ता उत मध्यान्हवृद्ध्या रिक्तया नवम्या युता युक्ताष्टमी दूर्वाचने कीर्तिता प्रोक्ता
क कुंभजन्मनोऽगस्त्यस्यास्ते सति पुनः क तिहे रवौ सति ॥ ५१ ॥

कन्याखो कुंभजनावनस्तगे दूर्वाष्टमी वास्ति नभोऽपराष्टमी ॥

नभस्सितापि कचिदादृता न सा मुनिव्रतासन्नविभेदभावतः ॥ ५२ ॥

अथान् विभेदमाह—कन्येति ॥ कन्याखो कन्यामंशतो कुंभजनो अगस्त्येऽनस्तगेऽस्त-
पमिने वा नभोऽपराष्टमी श्रावणस्यापरा अत्रेतनाऽष्टमी अस्ति कचिन्नभमिना श्रावणस्य
शुक्ला सापि पंचमी नादृता कस्यान् मुनिव्रतान्नस्य ऋषिपंचमीनामर्षस्य विभेदभावतो
भित्तनाशनात् ॥ ५२ ॥

त्रयोदशीपूर्वमहश्रुष्टयं सैतं जयापार्वतिकाभिधं व्रतं ॥

शुचौ सदोदीरितमेव योपितां नारंभयेत्तावदजशुविद्धवत् ॥ ५३ ॥

अथ पार्वतीव्रतमाह—त्रयोदशीति ॥ सदा निरतर शुचा आपादमाप्ते सितस्य भाव मत् शौक्यं
त्रयोदशीपूर्वमहश्रुष्टयं दिनचतुष्टयं जयापार्वतिकाभिधं व्रतं सदा योपितां स्त्रीणामुदीरित
प्रोक्तं योपितव्रतं तावत्कालं नारंभयेत् न प्रारंभयेत् यावत्कालमजशुविद्धवत् अने
त्रिंशुत्तरस्य दिन द्वादशी तस्या वेद्ययुक्त स्यात् ॥ ५३ ॥

व्रतांतरात्राविह जागरादिकं समस्तसोभाग्यकरं तथा परं ॥

शुचैरमाया रजनीसमाचिता शुपक्षवत्सेवमहिब्रतं म्रियाम् ॥ ५४ ॥

व्रतान्तेति ॥ इत् प्रो व्रतांतरात्रो वनायम नरजन्या जागरादिन समस्तसोभाग्यकर स्यात् ।
तथापरं शुचैरमाया रजनीसमाचिता रजनीन्ध्यात्ता स्यात् स्त्रिया महिष्या
सा एवमहिब्रत स्यात् । किंभूत महिब्रतं शुपक्षवत् दिनपक्षयुक्त ॥ ५४ ॥

या स्यात्प्रिता सा नमसस्त्रिमा तिथिर्भधुप्रिया गौर्यभिपूजनाचिता ॥
चंद्रास्तकालानुगतादिगा क्षये वृद्धौ परा तद्व्यगा न वान्यथा ॥ ५५ ॥

अथ गौरीतिमाह—या स्यादिति ॥ नमम श्रावणस्य वा सिता शुद्धा त्रिमा तृतीया
तिथि स्यात् सा गौरीतिथिर्भवति । किंभूता त्रिमा मधुप्रिया मद्यपानाप्रिया पुन किंभूता
अभिपूजनेचिता पूजायोग्या पुन किंभूता चंद्रास्तकालानुगता पुन किंभूता क्षये आदिगा
पुनर्वृद्धौ पराद्वेनेना वायना तद्व्यगा तदुत्पन्नापिनी अत्यया न स्यात् ॥ ५५ ॥

मध्यान्हकालेऽधिगतादिसप्तमी नमस्यथो शीतलसप्तमीव्रते ॥

नेया वशाभिर्नवमी सिता तथा त्रिधा विभक्ते किल नाकुलव्रते ॥ ५६ ॥

अथ शीतलसप्तमीमाह—मध्यान्हेति ॥ अपो वशाभि स्त्रीभि शीतलसप्तमीव्रते नमसि
श्र वणे मध्यान्हकालेऽधिगता प्राप्ता आदिसप्तमी शुद्धा सप्तमी नेया कर्तव्या इत्यर्थः । तथा
स्त्रीभि त्रिधा विभक्ते नाकुलव्रते नाकुलसप्तमीने सिता शुक्ला नवमी नेया किञ्चेति
समाचना ॥ ५६ ॥

नमस्यशुक्लेन्दुदयाविका च या ग्राह्या तृतीया खलु सात्र कज्जला ॥

तथा तृतीया हि नमस्यशुक्लजा सा गर्भसूताव्रतमवपास्तगा ॥ ५७ ॥

अथ कज्जलीतृतीया माह—नमस्यति ॥ एतु निश्चितं नममि श्रावणेऽशुक्ला दृग्गा
उदयगा मूर्त्युदयगा च पुनरपि या तृतीया स्यात् सात्र कज्जला ग्राह्या । सत्रा
दवप्रनापतिस्तस्य पुत्रोत्पाद हि युक्तार्थः । तथा नमस्यशुक्लजा मातृपदशुक्लतृतीया या स्याद
भमृतावन स्यात् । किंभूता नमस्यशुक्लस्यास्तगा अस्त गते मति प्राप्ता ॥ ५७ ॥

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादश्यभयसंज्ञिका ॥

संगवानुगता कार्या स्त्रीजनेः कामसिद्धये ॥ ५८ ॥

अथाभयद्वादशोमाह—मासीति ॥ स्त्रीजनैर्भाद्रपदे मासि शुक्ला संगवानुगता संगवसंज्ञ-
कालप्राप्ता अभयसंज्ञिका द्वादशी कार्या कर्तव्या कस्यै कामसिद्धये वाञ्छितनिष्पत्तये ॥ ५८ ॥

मध्यान्हकालांतगता चतुर्दशी सिता हि सा भाद्रपदे नृत्योपितां ॥

बुधैरनंतव्रतमादृतं सदा तथा कलोनापि ततः फलाप्तये ॥ ५९ ॥

अथानंतव्रतमाह—मध्यान्हेति ॥ भाद्रपदे मासि सिता शुक्ला मध्यान्हकालांतगता
मध्यान्हकालावसाने प्राप्ता या स्यात् बुधैः सा चतुर्दशी एव अनंतव्रतमादृतमंगीकृतं
हि निश्चितं सदा तथा तेन प्रकारेण मध्यान्हावसानतः कलोना कलया हीनापि सा चतुर्दशी
एव अनंतव्रतमादृतं कस्यै नरस्त्रीणां फलाप्तये ॥ ५९ ॥

रवेर्व्रतं भानुदिने सदादिमे यामे चरेदन्यदिनस्य संक्रमे ॥

पूजादिदानादिकभोजनादिभिः प्रजायुरारोग्यधनादिसिद्धिर्कृत् ॥ ६० ॥

अथ सूर्यव्रतमाह—रवेरिति ॥ सुधीः हंसदिने सूर्यदिने रवेः सूर्यस्य व्रतं चरेत् कुर्यात् ।
संक्रमेऽन्यदिनस्यादिमे यामे प्रथमं ग्रहरे चरेत् । किंभूतं पूजादिदानादिकभोजनादिभिः कृत्वा
प्रजा संततिः आयुः आरोग्यं धनादिः एषां द्वेष्टे एषा सिद्धिर्कृत् ॥ ६० ॥

तथैव सर्वद्युचरव्रते भवेत्स्ववासरो वा निजसंक्रमः सदा ॥

स्वहोमदानार्चनभोजनक्रियो ग्रहस्तदीयोऽपि मिथस्तदिष्टकृत् ॥ ६१ ॥

अथ चंद्रादिग्रहाणां व्रतमाह—तथैवेति ॥ सदा स्ववासरो निजसंक्रमो वा तथैव सूर्यवत्
सर्वद्युचरव्रते चंद्रादिग्रहाणां व्रते भवेत् । अपि पुनस्तदीयस्तस्य नरस्यायं ग्रहो मिथस्तदिष्ट-
कृत् स्यात् । किंभूतः स्वहोमदानार्चनभोजनानां क्रिया यस्मिन् सः ॥ ६१ ॥

रवौ रवे राजदिने च राज्ञो यदोपरागो त्र्युत संक्रमे स्यात् ॥

शतोपरागप्रममेव पुण्यमेतद्व्येऽनंतफलं जपादौ ॥ ६२ ॥

अथ सूर्यादिग्रहणं पुण्यफलमाह—स्वाविति ॥ यदा रवौ रविवारे उत संक्रमे रविसंक्रमे
रवेः सूर्यस्य उपरागो ग्रहणं स्यात् । च पुन राजदिने चंद्रवासरे चंद्रसंक्रमे वा राजश्रद्धस्य
उपरागः स्यात्तदा शतोपरागप्रमं शत ग्रहणप्रमितमेव पुण्यं स्यात् । एतद्व्ये वारसंक्रमणद्व-
यग्रहणे जपादौ जपाविधौ अनंतफलं स्यात् ॥ ६२ ॥

स्पर्शं विधाय स्नपनं जपाद्यं कुर्यात्सुरार्चां हवनं च मध्ये ॥

विमुच्यमाने निजशक्तिदानं स्नानं विमुक्ते तरणौ विधौ तु ॥ ६३ ॥

स्पर्श इति ॥ तपने सूर्ये तु पुनर्विधौ चंद्रे स्पर्शं राहुणा स्पृष्टे स्नानं स्नानं विनाय
जपाद्यं कुर्यात् पुनश्च इति शेषः । च पुनर्मध्ये मध्यस्पृष्टेसुरार्चौ देवपूर्णां हवनं न कुर्यात् ।
विमुच्यमाने निजशक्तिदानं कुर्यात् । विमुक्ते सनि स्नानं कुर्यात् ॥ ६३ ॥

गर्भान्विता पश्यति चेन्नितंविनी वैकल्यमूतिग्रहणद्वयं हि सा ॥

न मृतकं जातमृतोद्भवं भवेद्यावच्छांकार्कविधुंतुदेक्षणम् ॥ ६४ ॥

अथ गर्भवत्या ग्रहणावलोकनं सद्रोषमाह—गर्भेति ॥ या नितंविनी स्त्री चेया
ग्रहणद्वयं चंद्रसूर्यग्रहणं पश्यति हि अवधारणे सा वैकल्यां प्रांथिल्यं मूतिः संततिर्यस्याः
सा अभिषेकं नतिः स्यात् । यावत्कालं शशांकार्कविधुंतुदेक्षणं चंद्रसूर्यराहुविश्लोकन
स्यात्तावत् जातमृतोद्भवं जन्मजं मृतजं मृतकं न भवेत् ॥ ६४ ॥

ग्रस्तौ रवींद्रौ व्रजतो यदास्तकं न भोजयेदुद्गम ईक्षिते पुनः ॥

भोक्तव्यमाद्यप्रहरद्वयं विधोस्पास्य वै यामचतुष्टयं रवेः ॥ ६५ ॥

ग्रस्ताविति ॥ यदा रवींद्रौ सूर्यचंद्रौ ग्रस्तौ सनी अस्तं व्रजतो गच्छन्तदा सुधीर्न
भोजयेत् । उत्रमे उदये ईक्षिते दृष्टे सति पुनर्भोजयेत् ॥ विधोश्चंद्रैस्पास्य आद्यं प्रहरद्वयमपास्य
विहाय भोक्तव्यं रवे सूर्यस्य ग्रहणे यामचतुष्टयमपास्य भोक्तव्यमिति इदं ग्रहणनामान्ये ॥ ६५ ॥

जाते मृते रोगरजोग्रहादिके न मृतके यावदुदेति भानुमान् ॥

तत्पूर्वमेव तु नयेन्निशीह या तात्कालिकी सा निधिराहता विधौ ॥ ६६ ॥

अथ मृतकादौ तिथिशुद्धिमाह—जात इति ॥ यावत् भानुमान् सूर्यां न उदेति
उत्पद्यति तावज्जाति जन्मनि मृते रोगरजोग्रहादिके रोगे रजसि आर्तये सूर्यादिग्रहणा-
दिके मृतके पूर्वमेव तु दिनं नयेत् गृहीयात् किंतु निशि रात्रौ तात्कालिके तत्पमय-
व्यापिनी तिथिः सा तिथिरिह विधौ विज्ञाने आहता गृहीता सुधीभिरिति शेषः ॥ ६६ ॥

घटीचतुष्कोनमितः क्षणः कचित्प्रातः सैकस्तस्वरुणोदयः स्मृतः ॥

सैकस्तथोपासमयो घटीद्वयं शेषं खरांशूदय एव कर्मणि ॥ ६७ ॥

अथ क्षणादिकालसंज्ञानमाह—घटीति ॥ घटीचतुष्कोनमितो घटिकाचतुष्केन ऊनो
हीनो निशावसानसमये क्षणः क्षणसंज्ञकालः स्यात् । कचित्प्रातः कालः स्यात् । तु पुनः सैकः
एकेन सहितः स कालोऽरुणोदयः स्मृतः कथितः । तथा सैकः एकेन सहितोऽरुणोदय
उपासमयः स्मृतः । 'उपा निशान्तेऽन्ते विन्ति' इति दैवः ॥ शेषं घटीद्वयं खरांशूदयः
सूर्योदय एव स्मृतः कर्मणि ॥ ६७ ॥

यज्ञादिदेवकार्येषु नेयमेतन्मनीषिभिः ॥

पितृकार्यं च सर्वत्र त्रिपंचभागवर्जितम् ॥ ६८ ॥

अथ श्राद्धे कालनियामकमाह—यज्ञादीति ॥ यज्ञादिवर्षेषु पितृकार्येषु सर्वत्र मनीषिभिः पंडितैरेतत् मनुक्तं नेयं ज्ञेयं किंभूतं एतत् त्रिपंचभागवर्जितं त्रिभागं पंचभागं कालं विहाय ॥ ६८ ॥

नीलोद्वाहोऽंगवच्छ्राद्धं यथाकालहितं गतं ॥
यतोऽंगिगो विवाहः स्यात्तदारब्धक्रमानुगमम् ॥ ६९ ॥

अथ श्राद्धे त्रिपंचभागकालो नेष्ट उक्तः नीलोद्वाहादिश्राद्धेष्वनियामकमाह—नील इति ॥ नीलोद्वाहः अंगवच्छ्राद्धं पित्रादीनां श्राद्धं यथाकालहितं यथोपलब्धकाले हितं गतं प्राप्तं यतोऽंगिगो विवाहः स्यात् । कथमारब्धक्रमानुगं प्रारब्धानुक्रमणानुगतं स्यात् यथा भवति तथेति क्रियाविशेषणं । कोऽर्थः यथावसरे नीलोद्वाहादि कार्यं क्रियते तत्संलग्नमेव श्राद्धं कर्तव्यमवश्यमेव अंगं नीलोद्वाहादि सोऽस्य श्राद्धस्यास्ति इति अंगिश्राद्धं नीलोद्वाहाद्यनुगतमेव भवति न स्वतंत्रं अतः कालनियामकता नास्ति ॥ ६९ ॥

नित्यं श्राद्धमनित्यं स्यान्नीलोद्वाहांगवन्मिथः ॥

प्रादुर्भावे प्रवृत्ते वै नैवासौ तदनेहसि ॥ ७० ॥

नित्यमिति ॥ वै निश्चितं नित्यश्राद्धं नीलोद्वाहांगवत् श्राद्धमिथः परस्परमनित्यं स्यात् ॥ कोऽर्थः त्रिपंचभागवर्जितकालः श्राद्धे उक्तः अत्र नित्यश्राद्धे नीलोद्वाहादिश्राद्धे नासौ नियमः । प्रादुर्भावे प्रवृत्ते नीलोद्वाहादिकार्ये प्रवृत्ते तदनेहसि नीलोद्वाहादिकार्यसमयेऽसौ त्रिपंचभागवर्जितकालो न स्यात् ॥ ७० ॥

नासत्यपैत्रानलविश्वकर्मभद्विदैवतर्क्षाभिधमासपूर्णिमाः ॥

पितृक्षयाहाश्च सुतीर्थसंगमाः पुण्या वृषोत्सर्गविधानतः स्मृताः ॥ ७१ ॥

अथ नीलोद्वाहस्थलमाह—नासत्येति ॥ नासत्यमश्विनी वैत्रं मघा आनलं रुतिका विश्वकर्मा चित्रा द्विदैवतर्क्षा विशाला एषा नक्षत्राणामभिधा नाम येषां ते च ते मासाश्च तेषां पूर्णिमाः आश्विनामाघकार्तिकचैत्रवैशाखमासानां पूर्णमास्यः च पुनः पितृक्षयाहाः पित्रोः क्षयदिनानि पुनः सुतीर्थसंगमा पुण्या धर्मयोग्याः स्मृताः कस्मात् वृषोत्सर्गविधानतः नीलोद्वाहादिकार्येण ॥ ७१ ॥

न सिंहगेऽस्ते च गुरौ सितेऽस्तगेऽधिके क्षये मासि च हायने तथा ॥

नीलोक्षकोत्सर्गविधिं विदुर्गयां गोदावरीं च प्रथमाब्दिकं विना ॥ ७२ ॥

अथ गुर्वस्तादिदोषे नीलोद्वाहं निषेधति—न सिंहेति ॥ सिंहगेऽस्ते च गुरौ सति अस्तगे सिते शुके तथाऽधिके क्षये मासि हायने वर्षे च सति नुषा नीलोक्षकोत्सर्गविधिं न विदुर्नृका ययति । गयां गोदावरीं प्रथमाब्दिकं प्रथमश्राद्धं विना एतानि विहायेत्यर्थः ॥ ७२ ॥

क्षयाधिमासाबुदितौ पुरा मया क्षयाधिकाब्दस्य च रूपमुच्यते ॥

क्षयाधिका मार्गवतो गुरोः समा द्विसंक्रमा या क्रमतो विसंक्रमा ॥ ७३ ॥

अथ क्षयाधिकलक्षणमाह—क्षयेति ॥ पुरा पूर्वं मया क्षयाधिमासौ उदितौ प्रोक्तौ च पुनरथ क्षयाधिकाब्दस्य क्षयाधिकवर्षस्य रूपं स्वरूपमुच्यते कथ्यते । मार्गवतो गुरोर्मार्गं गीष्णतेर्या द्विसंक्रमा द्वौ संक्रमौ यस्या सा समा वर्षः सा क्षया क्षयवर्षं स्यात् ॥ या समा विसंक्रमा गुरुसंक्रमणरहिता सा शरत् अधिका स्यात् क्रमत ॥ ७३ ॥

द्विचारवक्रांतरकालमैदवं वर्षं तदंतर्गतमीज्यहायनं ॥

क्षुब्धं तदैज्याब्दसमं त्वनेहसं विहाय शेषे समयेस्तुमंगलम् ॥ ७४

अथ क्षयवर्षे त्याज्यकालनियममाह—द्विचारोति ॥ तु पुनर्यत् ऐदवं वर्षं चाद्रवर्षं द्विचारो द्विवारचारः वक्रश्च तयोरंतरकालं तदंतर्गतं चाद्रवर्षांतरगतमेव विधमीज्यहायनं गुरुवर्षं स्यात्तदैज्याब्दसमं तद् बृहस्पतिवर्षस्तुल्यं क्षुब्धं क्षयमनेहसं कालं विहाय शेषे समयेऽतः शेषकाले मंगलकार्यमस्तु ॥ ७४ ॥

मार्गी पुरोधा गदितोग्रधन्वनो द्विराशिचारं कुरुते यदा तदा ॥

लुप्ता शरत्सापि निपादिकं चरेच्चतुष्टयं मंगलसाधिनी भवेत् ॥ ७५ ॥

अथ मार्गिगुरोर्लुप्तवर्षे कुमादौ मंगलकार्यमाह—मार्गीति ॥ उग्रधन्वन इन्द्रस्य पुरोधा गुरुर्भार्गी सन् यदा द्विराशिचारं कुरुते कोऽर्थो मिथुनादौ राशौ महातिचारेण समागतः सन् पश्चात् क्रियद्विर्दिनैर्वर्जितो यदा पूर्वाशिशुं भुक्तराशिं एति गच्छति तदा लुप्ता शरत् गदिता प्राक्ता । अपि पुन सा लुप्ता शरत् निपादिकं कुमादिचतुष्टयं कुंभमीनमेपवृषमिथुनानि चरेत् गच्छेत्तदा सा शरत् मंगलसाधिनी भवेत्तु पादिकचतुष्टयगुक्ते दृष्टवर्षे मंगल स्यादित्यर्थः ॥ ७५ ॥

क्षणद्वयं यत् शुदलोदरं स्मृतं सदादिजेभ्यः कुतपाख्यकालवत् ॥

दर्शक्षयाहाख्यनवान्नपक्षजश्राद्धेषु पिंडान् कुतपे प्रदापयेत् ॥ ७६ ॥

अथ श्राद्धकालमुद्धिं दर्शयति—क्षणेति ॥ यत् शुदलोदरं दिनद्वयमंतरं क्षणद्वयमस्ति तत् कुतपाख्यकालवत् श्राद्धकालमुच्यते स्मृतं जेभ्यः सदा निरंतरमादिजेभ्यः पित्रेभ्यो दत्तक्षयाहाख्यनवान्नपक्षजश्राद्धेषु सुभो जुनेपे पिंडान् प्रदापयेत् । 'श्राद्धकालस्तु कुत्रापि एवो मासो दिनस्य यः, इति हेम ॥ ७६ ॥

तिथिस्तदीया कुतपद्वये यदा पूर्वाक्षये स्यादपरा च वृद्धितः ॥

न तद्वये तन्निश्चयानुगा क्षये वृद्धौ विभातादुत्तयास्ति यत्तपि ॥ ७७ ॥

तिथिरिति ॥ यदा तदीया तिथिः श्राद्धतिथिः पुनः द्वये स्यात्तदा क्षये पूर्वा स्यात् ॥ वृद्धिमात्रं पराश्रयं स्यात्तद्वये पुनः द्वयं तिथिर्न स्यात्तदा तन्निश्चयानुगा श्राद्धकालमपरा स्यात् । उत चेत् विषयः तत् सूर्यादयान् अथ गच्छेत् या चरति तस्मिन् क्षये प्राक्ता ॥ ७७ ॥

श्राद्धे तिथिं यामनुपाक्षिके क्वचित्तत्पंचधा भक्तदिनत्रिभागगां ॥
नयेद्युगादी सितपक्षजौ सदा द्विभागगौ प्रागुदितानि चोक्तवत् ॥७८

श्राद्ध इति ॥ सुधीः क्वचित् अनुपाक्षिके मासपक्षादिके श्राद्धे या तिथिस्ता पंचधाभक्त-
दिनत्रिभागगा पुनः सितपक्षजौ श्वेतपक्षजातौ युगादितयो सदा द्विभागगौ च पुनः प्रागु-
क्तानि उक्तकालवन्नेयेत् ॥ ७८ ॥

श्राद्धेषु संकल्पविधिं परोष्विह क्वचित्तदारम्य समापयेत्यरं ॥
निमित्तजान्यानि तदाप्तकालगान्यन्हीष्टकाद्याभ्युदयानि पूर्वगे ॥७९

श्राद्धेति ॥ सुधीरिह परेषु श्राद्धेषु क्वचित्तदारम्य परमर्घ्यं समापयेत् । निमित्तजान्यानि
तदा सकालगानि इष्टकाद्याभ्युदयानि यज्ञाद्यभ्युदयश्राद्धानि पूर्वगेऽन्हीष्ट पूर्वान्हे समा-
पयेत् ॥ ७९ ॥

यागद्युपूर्वं किल पर्व साग्निकैर्नेयं यदीदोरुदयो नहीष्टये ॥
भूतादिपददर्शपदत्रयं समं वृद्धचन्ययोः षोडशघस्रमोऽध्वरः ॥ ८० ॥

इति श्री काविकालिदासादिते ज्योतिर्विदाभरणे कालनिर्णयाध्याय एकविंशतितमः ॥ २१ ॥
यागेति ॥ किलेति संभावनाया साग्निकैः पूर्वकृषिमिर्यागद्युपूर्वं पर्व यत् यस्मात् कारणात्

हि अवधारणे इंदोरुदये चंद्रोदये इष्टये यज्ञाय भूतादिपददर्शपदत्रयं चतुर्दशीप्रथमचरणं
दर्शचरणत्रयं समं न नेयं । वृद्धचन्ययोः षोडशघस्रमोऽध्वरः स्यात् ॥ सप्तदशप्रमितदिने
चतुर्दशप्रमितदिने चंद्रोदये च यज्ञो न स्यादित्यर्थः ॥ अत्र विशेषतस्तारतम्यं
संप्रदायाज्ज्ञेयम् ॥ ८० ॥

इति श्री ज्योतिर्विदाभरणस्य सुखबोधिकायां एकाधिकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ग्रंथाध्यायनिरूपणप्रकरणम्

अथेह पर्वव्रतकालनिर्णयादनंतरं ग्रंथनिरूपणक्रमं ॥

ब्रुवे तथा विक्रममेदिनीविभोरभिप्रजानंदकरस्य वर्णनम् ॥१॥

अथ सर्वनिर्णयाध्यायकथनानंतरं बीजकाध्यायो घटतेऽतो ग्रंथनिरूपणक्रमस्य विक्रमा-
कैवर्णनस्य चाध्यायं संदधाति—अथेति ॥ अथ मागल्ये इह द्वाविंशेऽध्याये पर्वव्रतकालनिर्ण-
यानंतरं अहं ग्रंथनिरूपणक्रमं ब्रुवे कथयामि । तथाभिप्रजानंदकरस्य अभीष्टलोकहर्षकारकस्य
विक्रममेदिनीविभोः श्रीविक्रमादित्यराज्ञश्च वर्णनं ब्रुवे ॥ १ ॥

मानान्ययोगशुभयुग्गुणरूपसंज्ञाः पंचांगजाः करणरूपगुणावबोधः ॥
वातायनभ्रमणगोचरसर्वभेदाः संस्कारकालनयशुद्धिरिपान्निपेकात् ॥२॥

अथ बीजकमाह—मानेति ॥ प्रथमाध्याये मानानि नवधा कालमानानि प्रोक्तानि इति ॥ १ ॥ द्वितीयेऽध्याये पंचांगनास्तिथिप्रमुखपंचांगजाता अयोगशुभयुग्गुणरूपसंज्ञाः कुयोगाः शुभयोगा एषां गुणरूपसंज्ञाः प्रोक्ता इति ॥ २ ॥ तृतीयेऽध्याये करणरूपगुणाः प्रोक्ता इति ॥ ३ ॥ चतुर्थेऽध्यायेऽवबोधो ज्ञानं पर्वज्ञानं पर्वध्यायः प्रोक्त इति ॥ ४ ॥ पंचमेऽध्याये वातायनभ्रमणगोचरो ग्रहगोचरः प्रोक्त इति ॥ ५ ॥ षष्ठेऽध्याये सर्वमेशः सर्वोत्पाताः प्रोक्ता इति ॥ ६ ॥ सप्तमेऽध्याये निषेकात् गर्भाधानकालात् ईषत् स्तोकमात्रं संस्कारकालनयशुद्धिः गर्भाधानादिसंस्कारकालनिर्णयनिर्दोषता प्रोक्ता इति ॥ ७ ॥

पट्कर्मबाहुजविशामुपवीतकर्म विद्याजपव्रतविधेः समुपक्रमश्च ॥
राजाभिषेकवदनाखिलराजसत्तादिग्भेदवद्गमननीतिरशेषरीतिः ॥ ३ ॥

पट्कर्मेति ॥ अष्टमेऽध्याये पट्कर्मा विप्रः बाहुजः सत्रियः विट् वैश्यः एषामुपवीतकर्म यज्ञसूत्रकृत्यं प्रोक्तमिति ॥ ८ ॥ च पुनर्नवमेऽध्याये एषा विप्रादित्रयाणां विद्याजपव्रतविधेःसमुपक्रमः विद्याजपव्रतविधानप्रारम्भः प्रोक्त इति ॥ ९ ॥ दशमेऽध्याये राजाभिषेकवदनाखिलराजसत्ता भूषाभिषेकप्रमुखसमस्तराज्यानि प्रोक्तानीति ॥ १० ॥ एकादशेऽध्यायेऽशेषरीतिः समस्तभेदयुक्ता दिग्भेदवद्विभेदतुल्या गमननीतिः प्रयाननिश्चयः प्रोक्त इति ॥ ११ ॥

अध्याययुग्ममुपयामविधानभेदं सर्वावराभरणधारणमंगभार्जा ॥
दुर्गे चतुर्विधमनेकविभेदरूपं चानेकभेदग्रहनिर्मितिरार्यरीत्या ॥ ४ ॥

अध्यायेति ॥ द्वादशे त्रयोदशे चाध्याये उपयामविधानभेद विवाहविधानकृत्यं अध्याययुग्मं प्रोक्तमिति ॥ १२ ॥ १३ ॥ चतुर्दशेऽध्यायेऽगमाना प्रोणिना सर्वावराभरणधारणं सकलवस्त्रमूपणधारणं प्रोक्तमिति ॥ १४ ॥ पचदशेऽध्यायेऽनेकविभेदरूपं चतुर्विधं दुर्गे सालं प्रोक्तमिति ॥ १५ ॥ च पुनः षोडशेऽध्याये आर्यरीत्या धर्ममार्गिणानेकभेदग्रहनिर्मितिर्गैहकर्तव्यता प्रोक्ता इति ॥ १६ ॥

गेहप्रवेशननयादिसुरप्रतिष्ठा वन्देः परिग्रहविधिर्वहुमिश्रकर्म ॥
वर्णक्रियाचरणधर्मनयोऽनु किंचित्सत्कालनिर्णयविधिर्यवहारसिद्धये ५

गेहेति ॥ सप्तदशेऽध्याये गेहप्रवेशननयादिसुरप्रतिष्ठा गृहप्रवेशनिर्णयो देवप्रतिष्ठा च प्रोक्ता इति ॥ १७ ॥ अष्टादशेऽध्याये वन्देः परिग्रहविधिरन्याधानविधानं प्रोक्तमिति ॥ १८ ॥ एकोनविंशतितमेऽध्याये बहुमिश्रकर्म प्रोक्तमिति ॥ १९ ॥ विंशतितमेऽध्याये वर्णक्रियाचरणधर्मनयः अनेकवर्णानां क्रिया आचरण धर्म एषा निर्णयः प्रोक्त इति ॥ २० ॥ एकविंशतितमेऽध्यायेऽनु पश्चात् किंचित् सत्कालनिर्णयविधिः शुभकालनिर्णयविधानं प्रोक्तं ॥ २१ ॥ कस्यैव्यवहारमिदं सर्वत्र योज्यमिति ॥ २२ ॥

अध्यायकर्मविनिरूपणरीतिरित्यमध्यायकेषु
कृतमाकृति २२ संमितेषु ॥ श्लोकैश्चतुर्दशशतैः

सजिनै १४२४ मयैव ज्योतिर्विदाभरणकाव्यविधानमेतत् ॥ ६ ॥

अध्यायेति ॥ द्वाविंशतितमेऽध्याये अध्यायकर्मविनिरूपणरीति प्रोक्ता इति ॥ २२ ॥
इत्थममुना प्रकारेण आकृतिसंमितेषु द्वाविंशतिप्रमितेष्वध्यायेषु मया श्रीकालिदासेन
एव एतज्ज्योतिर्विदाभरणकाव्यविधानं ज्योतिर्विदाभरणनाम कविकर्म कृतं कैः स-
जिनैश्चतुर्विंशतियुतैश्चतुर्दशशतै १४२४ श्लोकै कृत्वा ॥ ६ ॥

वर्षे श्रुतिस्मृतिविचारविवेकस्य श्रीभारते खद्युतिसंमितदेशपीठे ॥
मत्तोऽधुना कृतिरियं सति मालवेंद्रे श्रीविक्रमार्कनृपराजवरे समासीत् ७

अथ विक्रमार्कवर्णनं सद्धाति ॥ वर्षे इति ॥ श्रुतिस्मृतिविचारविवेकस्य खद्युति १८०
संमितदेशपीठेऽशीत्यधिकशतप्रमितदेशभण्डले श्रीभारते वर्षे भरतक्षेत्रे मत्तः कालिदासात्
अधुना साप्रतामिय कृतिः समासीत् जाता कस्मिन् मालवेंद्रे श्रीविक्रमार्कनृपराजवरे सति
शुभे सति ॥ ७ ॥

शंकुः सुवाग्वररुचिर्मणिरंगुदत्तो जिष्णुस्त्रिलोचनहरी घटवर्षराख्यः ॥
अन्येऽपि संति कवयोऽमरसिंहपूर्वा यस्यैव विक्रमनृपस्य सभासदोऽमी ८

अथ प्रथम नृपसभाया पंडितवर्गं वर्णयति-शकुरिति ॥ यस्य विक्रमनृपस्यैव अमी शंकु-
प्रमुखा पंडिता सभासदः पारगधाः सति । त्रिलोचनहरी इति द्वे इमा शेष स्पष्ट ॥ ८ ॥
सत्यो वराहमिहिरः श्रुतसेननामा श्रीवादरायणमणित्यकुमारसिंहाः ॥
श्रीविक्रमार्कनृपसंसादि संति चैते श्रीकालतंत्रकवयस्त्वपरे मदाद्याः ॥ ९ ॥

सत्य इति ॥ च पुनः श्रीविक्रमार्कनृपसंसादि सत्याचार्यादय एते पंडिताश्च पुनरपरे
मदाद्या अह कालिदास आद्यो येषां ते च ते श्रीकालतंत्रकवयः कालविधानशास्त्रज्ञाः सति ॥
शेष स्पष्ट ॥ श्रुतसेननामा सिद्धसेनदिवाकरो जैनध्वेतावरसत्कविरपरो नमिकुमदाचंद्र इति
श्रीकल्याणमंदिरस्तोत्रात्यकाव्ये पठित ॥ अत्र सिद्धशब्दस्थाने उद्गोमंगभयात्कविना श्रुतशब्दः
प्रयोजितः सिद्धशब्दस्य श्रुतशब्दपर्यायत्वात् ॥ यदुक्तं हेमानेकार्थ्या 'सिद्धो व्याघ्रादिके देवयोनौ
निष्पन्नमुक्तयो ॥ नित्ये प्रसिद्ध' इति ॥ 'क्याते प्रतीतप्रज्ञातवित्तप्रणितविश्रुताः' इत्याभिधानाचि-
तामणौ ॥ अस्य संबंधो जैनशास्त्रात् ज्ञेयः ॥ लेशेन सूचितो यतः ॥ दिदृशुभिर्भु संयातो द्वारपालो
न मुचति ॥ हस्ते न्यस्तचतु श्लोक उतागच्छतु गच्छतु ॥ १ ॥ दीयता दशलक्षणि श्लासनानि चतुर्दश ।
हस्ते न्यस्तचतुश्लोक उतागच्छतु गच्छतु ॥ २ ॥ सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मी करसरोरुदे ॥ किर्ति-
किं कुपिता राजन् येन देशातर गता ॥ ३ ॥ सर्वदा सर्वदोऽस्तीति मिथ्या सन्नयसे वुधैः ॥
नारयो लेभिरे पृष्ठ म वक्ष परयोषितः ॥ ४ ॥ आहवे तन नि स्थाने स्फुटित सिपुद्दह्यै ॥ गठित

यो रुमदेशाधिपतिं शकेश्वरं जित्वा गृहीत्वोज्जयिनीं महाहवे ॥
आनीय संभ्राम्य मुमोचयत्त्वहो स विक्रमार्कः समसह्यविक्रमः ॥१७॥

यो रुमेति ॥ यो विक्रमार्को रुमदेशाधिपतिं शकेश्वरं म्लेच्छनायक आहवे सग्रामे
जित्वा गृहीत्वा च उज्जयिनीमानीय संभ्राम्य च तु पुनस्त शकेश्वर मुमोच अहो इति
आश्चर्ये शेषं स्पष्ट ॥ १७ ॥

तस्मिन् सदाविक्रममेदिनीशे विराजमाने समनंतिकायां ॥

सर्वप्रजामंगलसौख्यसंपद्वभूव सर्वत्र च वेदकर्म ॥ १८ ॥

तस्मिन्निति स्पष्ट ॥ १८ ॥

शंकादिपंडितवराः कवयस्त्वनेके ज्योतिर्विदः सभमवंश

वराहपूर्वाः ॥ श्रीविक्रमार्कनृपसंसदि मान्यबुद्धिस्तै-

रप्यहं नृपसत्त्वा किल कालिदासः ॥ १९ ॥

काव्यत्रयं सुमतिकृद्रघुवंशपूर्वं पूर्वं ततो ननु कियच्छु-

तिकर्मवादः ॥ ज्योतिर्विदाभरणकालविधानशास्त्रं

श्रीकालिदासकवितो हि ततो वभूव ॥ २० ॥

शकादीति स्पष्ट ॥ २० ॥

वर्षैः सिंधुरदर्शनावरणैश्च ३०६८ र्याते कलौ संमिते मासे माधवसंज्ञिके
च विहितो ग्रंथक्रियोपक्रमः ॥ नानाकालविधानशास्त्रगदितज्ञानं वि-
लोक्यादरादूर्जे ग्रंथसमाप्तिश्च विहिता ज्योतिर्विदा प्रीतये ॥ २१ ॥

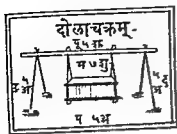
अथ ग्रंथारम्भमाप्तिकालौ दर्शयति—वर्षेरिति ॥ सिंधुरो हस्ती ८ दर्शनानि पद
१ अवर खं ० गुणास्त्रय ३ एभिर्वर्ष ३०६८ समिते प्रमिते कलौ कलियुगे याते गते सति
माधवसंज्ञिके वैशाखे मासे मया ग्रंथक्रियोपक्रमो ग्रंथकरणमारभो विहित ऊन ॥ च पुनर
ओर्जे कार्तिकमासे ग्रंथसमाप्तिर्विहिता कृता कस्यै ज्योतिर्विदा दैवज्ञाना प्रीतये किंरुवा
नानाकालविधानशास्त्रगदितज्ञानमादरात् विलोक्य दृष्ट्वा । अत्र ग्रंथात्ते मगलमपि दर्शित यतो
ज्योतिर्विदा प्रीता प्रसन्ना चासौ या उश्मीश्च प्रीतया तस्या सत्त्वोने हे प्रीतये हे प्रसन्न-
उद्दमी त्वमसि ॥ २१ ॥

इति श्रीकविकालिदासोदिते ज्योतिर्विदाभरणे ग्रंथाध्यायानिरूप-
णक्रमनृपविक्रमवीखर्णना यो द्वाविंशतितमः ॥ २२ ॥

अथ सुखबोधिकादृत्यशस्तिमाह ॥ अस्तेकात्तदृहन्नात स्यात्काराशोन्नतरिमना ॥ सन्नुदा
नरुलोपेत नयताञ्जनदर्शन ॥ १॥ निरुदकनरुगात्रो रत्नपात्रो गुणादयो विविधकलाविद्या
० ममाउर्ध्वे दधान ॥ सकटसुरविभूना सेव्यसामोप्यदायो नयति सत्वनमहेन् वदेमान मुरदुः॥

॥२॥ श्रीवर्द्धमानात्तु परंपराते पदेऽभवत् सूरिवरः श्रियादयः ॥ चंद्रमहाग्रयो विभुक्तानि कीर्ति
श्रीपौर्णिमायामिधपक्षगच्छे ॥ ३ ॥ श्रीसिद्धराजसदसीह विजित्य मूरीन् वादं विधाय वत
षण्मत्तमामकालं ॥ यः पूर्णिमां जिनवरागमसूक्तियुक्तया सत्योद्धवार दृढधीरनवद्यनूत्यः ॥४॥
तत्पदे सुक्रियायुक्तो धर्मबोधस्ततो यतः ॥ खट्विचंद्रमिता १२० ज्ञानाः शाखाः पौर्णिमिकामि-
थाः ॥५॥ परंपराते क्रमतस्ततः श्रीविद्याप्रभः सूरिवरोऽत्र पेदे ॥ बभूव शास्त्रार्थसुभ । समुद्रप्रोद्धा-
सने चंद्रसमानधर्मा ॥६॥ छलितप्रभसूरिकुंजरोऽजनि पेदे तत आश्रितः श्रियं ॥ विनयप्रभमू-
रिपुंगवोऽजनि पेदे तत आश्रितः श्रियं ॥७॥ सप्तद्वर्षीचलमानुमंतो नयंति शश्वत्किञ्च सूरिराजाः ॥
नामार्थतश्चापि गुणेशैः सर्वोत्तमैः श्रीमहिमाप्रभाख्याः ॥ ८ ॥ एषां प्रतापतपनश्च यक्ष-सि-
तांशुर्मुख्यवरे स्वरिसमस्तपदे त्रयातः ॥ नित्योदयौ विदधतो खलराहुनाशं चित्रं ततो नमहता-
ममितानुभावः ॥ ९ ॥ आमोक्तौ परिपूर्णानिर्मलमतिः शद्धानुज्ञास्तौ प्रधीः काव्ये कर्कशतर्क
शास्त्रकलने गाणित्यशास्त्रे तथा ॥ सांगे श्रीमहिमाप्रभाख्यसुगुरुः मूरीश्वरो राजते ख्यातः
सर्वगणे परोपकरणाद् विद्यादिदानेन वै ॥ १० ॥ तच्छिष्योऽभूद्भावरत्नामिधानस्तत्पादा-
ब्जोपासनासक्तचित्तः ॥ एतस्मूक्त्या काळिदासस्य गुर्व्या ज्ञातार्थो यस्तद्गुरोर्ज्ञानकामात् ॥११॥
तेनासौ सुखबोधिका सुललिता ज्योतिर्विदां तुष्टये शास्त्रस्यास्य कृता यथामति मया
शोच्या सुधीर्मियतः ॥ संक्षिप्तानि पदान्यनेकश इहैकैकाक्षराख्यान्यापि काठिन्यं कविना गिरां
समुद्रितं त्याज्यं खलत्वात्पुनः ॥१२॥ परिश्रमोऽयं सरुलो ममास्यास्ताद्वाच्यमानेन विवेक्षने-
न ॥ सतां प्रसादाच्च ततो दधानैः खलैः खलत्वं जगतीह किं स्यात् ॥ १३ ॥ सज्जनेभ्यो-
नमो नित्यं खलेभ्योऽपि नमो नमः ॥ भवंत्येके गुणज्ञा यद्दोषज्ञास्त्वपरे दृढं ॥१४॥ उम-
येषां कृपादग्निः कृतिर्मे यातु शुद्धितः ॥ अग्निसारे यथा हेम निर्दोषं च सुवानता ॥१५॥
श्रीविक्रमार्कादहिपद्मयोर्वीमते गतेऽद्वे खलु राघ १७६८। मासे ॥ शुद्धे तृतीयेऽपि त्रिषो
गमस्तिवारे समाप्ता सुखबोधिकेयम् ॥ १६ ॥ इति श्रीपौर्णिमायामच्छाधिराजमहारकपुरंदर-
श्री श्रीमहिमाप्रभमूरीश्वरचरणसरोरुहचंबरीकायमानशिष्यमावरत्नविरचितायां श्रीकाळिदास-
कृतज्योतिर्विदाभरणस्य सुखबोधिकायां ग्रंथाध्यायनिरूपणक्रमश्रीविक्रमार्कनृपवर्णनोनाम
द्वाविंशतितमोऽध्यायः संपूर्णः ॥ २२ ॥ गच्छे श्रीमहिमाप्रभाख्यसुगुरोः श्रीपौर्णिमायामिधो
शिष्यः सूरिवरस्य मांडणसुतो यो भावरत्नामिधः ॥ वाट्टहाकुसिसमुद्भवः मुकृतवान्
श्रीपत्तने पत्तने छदोऽयकरणाभिधस्मरणतोऽलंकारयुक्तामिमां ॥१॥ वक्रवाळधिमारूढो बरडाब्धो
महानली ॥ सुखाय क्षेत्रपालोऽस्तु राकापक्षकवारिणाम् ॥ २ ॥ अस्य मूलग्रंथस्य सर्वोध्याय
राशीकृतवृत्तसंख्या १४२० श्लोकमानंतु २४२० अथ वृत्ते संख्या सप्तसहस्रा ७००० सूत्रवृ-
त्तिमीलेन ग्रं० ९४२० अनुष्टुभ्यः ॥ श्रीः

आ० नं० १ पृ० १७ श्लो० २८



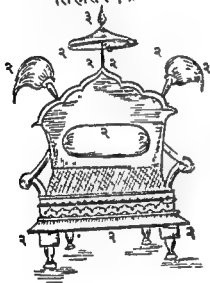
आ० नं० २ श्लो० २४ पृ० १२३
मातृका चक्रम्-



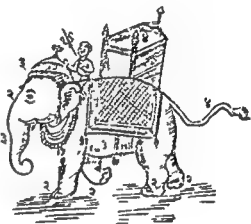
आ० नं० ३ पृ० १२६ श्लो० ३५
मन्त्रदेवद्वारी



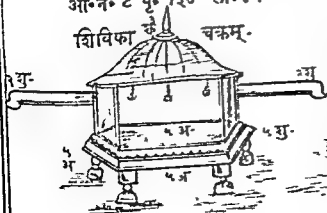
आ० नं० ४ पृ० १३१ श्लो० १२
सिंहासनचक्रम्-



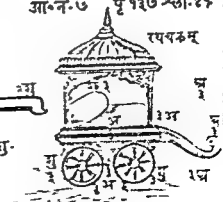
आ० नं० ५ पृ० १३५ श्लो० ३३
गजचक्रम्



आ० नं० ८ पृ० १३८ श्लो० ४५
शिविका चक्रम्-



आ० नं० ७ पृ० १३७ श्लो० ४१
रथचक्रम्



आ० नं० ६ पृ० १३६ श्लो० ३८
अवचक्रम-

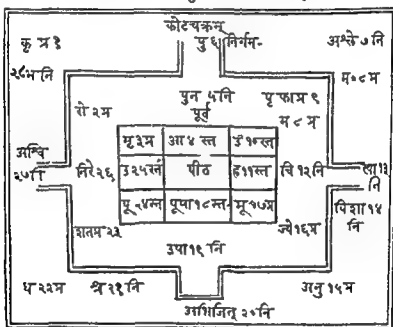


आ० नं० ९ पृ० १४५ श्लो० ७१

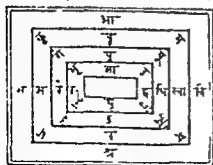
हत काल चक्रम-

| | | |
|--------|----|----------|
| ई बु | पू | अ र वृ |
| उ | | द |
| वा म श | प | वं नं रु |

आ० नं० ११ पृ० १४८ श्लो० ८४



आ० नं० १० पृ० १४७ श्लो० ८० गोटचक्रम



आ० नं० १० पृ० १४८ श्लो० ८१ आ० नं० ११ पृ० १४९ श्लो० ८२

दोषिणाचक्रम-

| | | |
|--------|-------|-------|
| ई १५ | पू १० | आ २११ |
| उ ११५ | | द ११३ |
| वा ११५ | प ११८ | न ११५ |

गारिगुणचक्रम-

| | | |
|----|----|---|
| ई | पू | आ |
| उ | | द |
| वा | प | न |

आ० नं० १४ पृ० १६५ श्लोक ३१

वार काल चक्रम्-

| | | |
|-------|------|-------|
| ई | पू | आ |
| उ | | द |
| रु | | गु |
| वा चं | पु म | बु नै |

आ० नं० १५ पृ० १६५ श्लोक ३१

वार पाश चक्रम्-

| | | |
|-------|------|------|
| ई बु | पू म | चं अ |
| ऊ वृ | | रु द |
| वा शु | पु श | ने |

आ० नं० १६ पृ० १६६ श्लोक ३२

चंद्र ग्रह चक्रम्-

| | | |
|----|----|----|
| ई | पू | अ |
| उ | | द |
| रु | | गु |
| वा | पु | ने |

आ० नं० १७ पृ० १६६ श्लोक ३४

तिथि पाश चक्रम्-

| | | |
|----|----|----|
| ई | पू | अ |
| उ | | द |
| रु | | गु |
| वा | पु | ने |

आ० नं० १८ पृ० १६६ श्लोक ३४

तिथि काल चक्रम्-

| | | |
|----|----|----|
| ई | पू | अ |
| उ | | द |
| रु | | गु |
| वा | पु | ने |

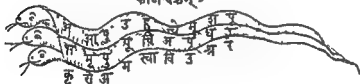
आ० नं० १९ पृ० १६८ श्लोक ४३

परिघट्ट चक्रम्-

| | | | | | |
|------|-----|--------|----|------|----|
| म | शु | हा | वि | त्वा | वि |
| परिघ | दंड | चक्रम् | | | |

आ० नं० २० २१ पृ० २०६ श्लोक ४५

कणिक चक्रम्-



आ० नं० २५ पृ० २४५ श्लोक ८३

पट्ट चक्रम्-

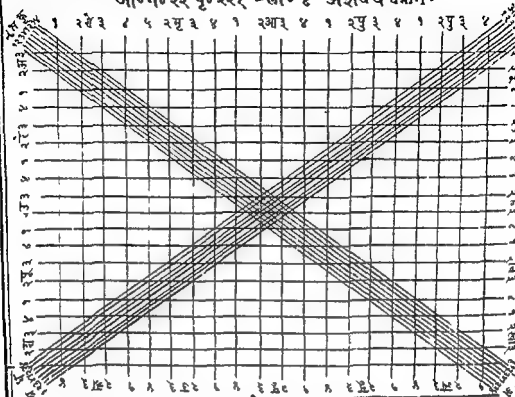
आ० नं० २४ पृ० २४४ श्लोक ८१

रविक चक्रम्-

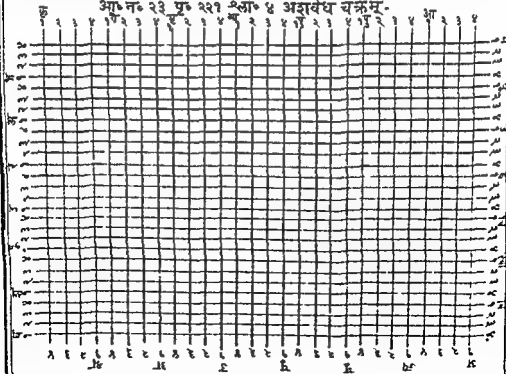
| | | | |
|-----|----|----|----|
| ज | रु | पा | शु |
| ३ म | रु | पा | शु |

| | | | |
|-----|----|----|----|
| शु | रु | पा | शु |
| ३ म | रु | पा | शु |

आ० न० २२ पृ० २२१ श्लो० ४ अंशवेधचक्रम.



आ० न० २३ पृ० २२१ श्लो० ४ अंशवेधचक्रम.

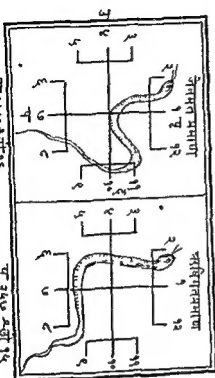


आ० न० ३० पृ० २५७ श्लो० १७ अहिचक्रम्.



अहिचक्रम् आ० न० २९

अहिचक्रम् आ० न० २८

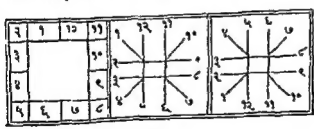


पृ० २५७ श्लो० १६

पृ० २५७ श्लो० १५

अहिचक्रम् आ० न० ३१ पृ० २५८ श्लो० २०

प्रवोलीचक्रम् आ० न० ३२ पृ० २५९ श्लो० २१



| | | |
|---|---|---|
| ३ | ४ | २ |
| ४ | ३ | ४ |
| २ | ४ | २ |

दिव्यत्सचक्रम् आ० न० ३३ पृ० २६२ श्लो० ३९

आ० न० ३५ पृ० २७० श्लो० १०

| | | |
|------|----|----|
| इ | पू | आ |
| ३३११ | ११ | ११ |
| ३ | २ | ३ |



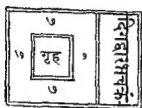
आ० न० ३४ श्लो० ५२ पृ० २६५



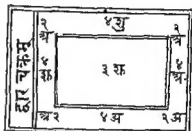
षोडशगृहभेदाः श्लो० ४२ पृ० २७८

| | | | | | | | |
|---------|---------|--------|--------|--------|--------|--------|--------|
| १११११ | ११११२ | ११११३ | ११११४ | ११११५ | ११११६ | ११११७ | ११११८ |
| गृह | धान्य | जय | लक्ष्म | नक्ष | पक्ष | मनोर | सुमुख |
| ११११९ | १११११० | ११११११ | १११११२ | १११११३ | १११११४ | १११११५ | १११११६ |
| द्विष्ट | द्विष्ट | नक्ष | लक्ष्म | नक्ष | पक्ष | मनोर | सुमुख |

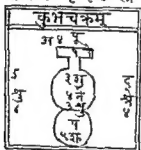
आ० न० ३६ पृ० २७९ श्लो० १२



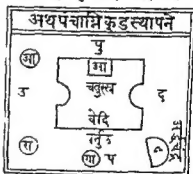
आ० न० ३६ पृ० २८० श्लो० १५



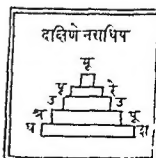
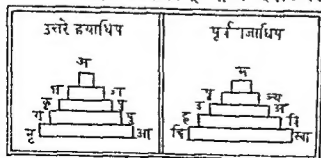
आ० न० ३७ पृ० २८४ श्लो० ७



आ० न० ३७ पृ० २९६ श्लो० १५



पृ० २९८ श्लो० २३ सिंहासनत्रयचक्रम् आ० न० ३९१४०१४९



राजमुद्राचक्रम्-

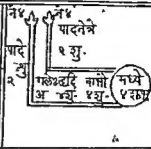
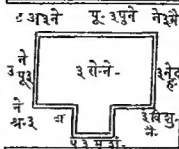
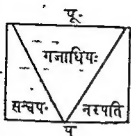
आ.नं. ३८ श्लो. २२ पृ. २१०

कूपचक्रम्-

आ.नं. ४५ पृ. ३०८ श्लो. १५

वापी चक्रम्-

आ.नं. ४६ पृ. ३०९ श्लो. १६

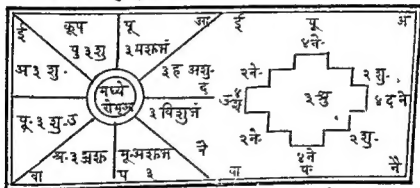


तडागचक्रम्-

आ.नं. ४७ पृ. ३०९ श्लो. १७

कुंडचक्रम्-

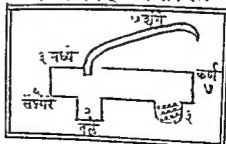
आ.नं. ४७ अ



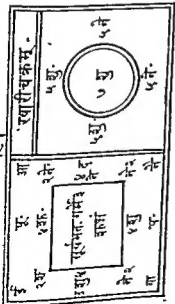
कूपचक्रम्- आ.नं. ५२ पृ. ३१३ श्लो. ३४



तैलिकयंत्रम्- आ.नं. ५३ पृ. ३१४ श्लो. ३६



गिरिवाचकम् आ.नं. ४८ पृ. ३१० श्लो. २०

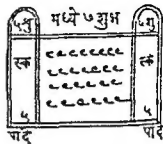
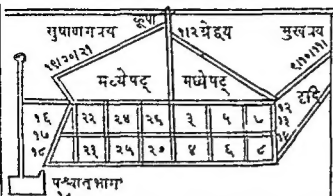


नौकाचक्रम्

आ.न.५० पृ.३११ श्लो.२५

सेतुवधचक्रम्

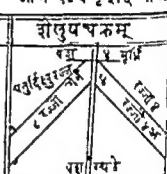
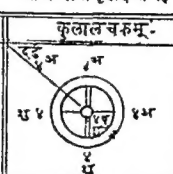
आ.न.५१ पृ.३१२ श्लो.२९



आ.न.५४ पृ.३१४ श्लो.३७

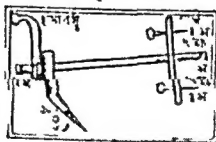
आ.न.५४ पृ.३१५ श्लो.४३

आ.न.५४ पृ.३१६ श्लो.४९



हलचक्रम्

आ.न.५५ पृ.३१८ श्लो.५३



आ.न.५३
श्लो.३९
पृ.३०९

गन-चक्रम्
३११

आ.न.५३
श्लो.३९
पृ.३०९

गन-चक्रम्
३११

आ.न.५३
श्लो.३९
पृ.३०९